श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके संरक्षक महानुभावः—

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन बैंकर्स, सदर मेरठ
संरक्षक, अध्यक्ष एवं प्रधान ट्रस्टी।

(२) श्रीमती सौ० फूलमाला देवी, धर्मपत्नी श्री ला० महावीरप्रसाद जी
जैन बैंकर्स, सदर मेरठ, संरक्षिका।

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के प्रवर्तक महानुभावः—

१		श्रीमान् लाला लालचन्द जी जैन सर्राफ	सहारनपुर
२	,,	सेठ भंवरीलाल जी जैन पाण्ड्या	झूमरीतिलैया
३	,,	कृष्णचन्द जी रईस	देहरादून
४	,,	सेठ जगन्नाथ जी जैन पाण्ड्या	झूमरीतिलैया
५	,,	श्रीमती सोवती देवी जैन	गिरीडीह
६	,,	मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन	मुजफ्फरनगर
७	,,	प्रेमचन्द ओमप्रकाश जी जैन प्रेमपुरी	मेरठ
८	,,	सलेकचन्द लालचन्द जी जैन	मुजफ्फरनगर
९	,,	दीपचन्द जी जैन रईस	देहरादून
१०	,,	बारूमल प्रेमचन्द जी जैन	मसूरी
११	,,	बाबूराम मुरारीलाल जी जैन	ज्वालापुर
१२	,,	केवलराम उग्रसैन जी जैन	जगाधरी
१३	,,	गेंदामल दगडू शाह जी जैन	सनावद
१४	,,	मुकन्दलाल गुलशनराय जी जैन नई मण्डी	मुजफ्फरनगर
१५	,,	श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन	देहरादून
१६	,,	जयकुमार वीरसैन जी जैन सर्राफ	सदर मेरठ
१७	,,	मंत्री दिगम्बर जैन समाज	खण्डवा
१८	,,	बाबूराम अकलङ्कप्रसाद जी जैन	तिस्सा
१९	,,	विशालचन्द जी जैन रईस	सहारनपुर
२०	,,	हरीचन्द ज्योतिप्रसाद जी जैन ओवरसियर	इटावा
२१	,,	सौ० प्रेम देवीशाह सु० बा० फतेहलाल जी जैन संघी	जयपुर
२२	,,	मन्त्राणी दिगम्बर जैन महिला समाज	खण्डवा
२३	,,	सागरमल जी जैन पाण्ड्या	गिरीडीह
२४	,,	गिरनारीलाल चिरञ्जीलाल जी जैन	गिरीडीह
२५	,,	राधेलाल कालूराम जी जैन मोदी	गिरीडीह
२६	,,	फूलचन्द बैजनाथ जी जैन नई मण्डी	मुजफ्फरनगर
२७	,,	सुखबीरसिंह हेमचन्द जी जैन सर्राफ	बड़ौत
८	,,	गोकुलचन्द हरकचन्द जी जैन गोधा	लालगोला
	,,	दीपचन्द जी जैन सुपरिन्टेन्डेण्ट इञ्जीनियर	कानपुर

३०	श्रीमान् लाला मन्त्री दि० जैन समाज नाई की मण्डी		आगरा
३१	,,	सचालिका दि० जैन महिलामण्डल नमककी मण्डी	आगरा
३२	,,	नेमिचन्द जी जैन रुडकी प्रेस	रुडकी
३३	,,	झब्बनलाल शिवप्रसाद जी जैन चिलकाना वाले	सहारनपुर
३४	,,	रोशनलाल के० सी० जैन	सहारनपुर
३५	,,	मोल्हडमल श्रीपाल जी जैन, जैन बेस्ट	सहारनपुर
३६	,,	शीतलप्रसाद जी जैन	सदर मेरठ
३७	,,	❀ जीतमल इन्द्रकुमार जी जैन छाबडा	झूमरीतिलैया
३८	,,	❀ इन्द्रजीत जी जैन वकील स्वरूपनगर	कानपुर
३९	,,	❀ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन बडजात्या	जयपुर
४०	,,	❀ दयाराम जी जैन आर. ए. डी. ओ.	सदर मेरठ
४१	,,	❀ मुन्नालाल यादवराम जी जैन	सदर मेरठ
४२	,,	+ जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन	सहारनपुर
४३	,,	+ जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन	शिमला
४४	,,	+ बनवारीलाल निरञ्जनलाल जी जैन	शिमला

नोट:—जिन नामोंके पहिले❀ ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोकी स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आये हैं, शेष आने हैं। तथा जिनके पहिले + ऐसा चिन्ह लगा है उनकी स्वीकृत सदस्यताका रुपया अभी तक कुछ नही आया, सभी बाकी है।

सम्पादकीय

जैन न्यायके महान् प्रतिष्ठापक कुशाग्रबुद्धि तार्किकशिरोमणि वादीभकेशरी श्री समन्तभद्र श्री अकलङ्कदेव आदि महापुरुषोने जैन न्यायके मौलिक तत्त्वोकी समीचीन विवेचना आप्तमीमासा, प्रमाणसग्रह, न्यायविनिश्चयादि कारिकात्मक रचनाओके द्वारा की। जैनदर्शनके प्रणेता भगवान उमास्वामीके दार्शनिक शास्त्र 'श्री तत्त्वार्थसूत्र' के सदृश जैन न्यायको सूत्रवद्ध करने वाली "जैन न्याय सूत्र ग्रन्थ" जैन परम्परामे नहीं बन पाया था। इसी कमीको आचार्यप्रवर श्री माणिक्यनन्दीने आचार्य स्मृति-परम्परासे आये हुए जैन न्यायरूप सागरको परीक्षामुखसूत्ररूप गागरमे पूर्ण करके जैन न्यायका गौरव बढ़ाया है। यह जैन न्यायका प्राथमिक सूत्रग्रन्थ है जो कि भारतीय न्याय विषयक कृतियोमें अद्वितीय है।

यह ग्रन्थ ६ परिच्छेदोमे विभाजित है। इसके सूत्रोंकी सख्या २१२ है। ये सूत्र सरल, विशद एव नपे-तुले हैं। वस्तु विचारमे अति गम्भीर, अन्तस्तलस्पर्शी तथा अर्थ-गौरवसे ओतःप्रोत हैं। सभी सूत्र संस्कृत गद्यमें हैं, किन्तु उनके आदि अन्तमें एक २ श्लोक हैं:—

प्रमाणादर्थससिद्धिस्तदा भासाद्विपर्ययं. ।
इतिवक्ष्ये तयोर्लक्ष्म सिद्धमल्प लघीयस: ॥
परीक्षामुखमादर्श, हेयोपादेयतत्त्वयो· ।
सविदे माहशो बाल: परीक्षादक्षवद् व्यधाम् ॥

आद्य श्लोकमे ग्रन्थ प्रयोजन तथा उसकी रचनाकी प्रतिज्ञा की है । और प्रतिज्ञानुसार ग्रन्थ रचना की है । सूत्रकारने हेय—उपादेय तत्त्वका यथार्थ बोध कराने के लिये परीक्षकके समान दर्पणवत् कृति बनाई ।

प्रतिपाद्य विषय:—प्रथम परिच्छेद १३ सूत्रो द्वारा प्रमाणका स्वरूप तथा प्रमाणके प्रामाण्यके स्वतस्तत्व परतस्त्वका निर्णय किया है । द्वितीय परिच्छेदमें प्रमाण के प्रत्यक्ष परोक्ष दो भेद बताये हैं । प्रत्यक्षके सांव्यवहारिक तथा मुख्य भेदोको १२ सूत्रोंसे प्रतिपादन किया है । तृतीय परिच्छेदमे परोक्ष प्रमाणके स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान, आगमका १०१ सूत्रोमे कथन है । चतुर्थमें ६ सूत्रो द्वारा प्रमाणके विषय सामान्यविशेषात्मकको समझाया है । सामान्य विशेषके भेद भी दर्शाये हैं । पांचवें परिच्छेदमे ३ सूत्रो द्वारा प्रमाणका फल साक्षात्, अज्ञाननिवारण, परम्परा दान-उपादान उपेक्षा कहकर उसे प्रमाणसे कथञ्चित् भिन्न अभिन्न सिद्ध किया है । छठे परिच्छेदोमे प्रत्यक्षाभास परोक्षाभासका स्वरूप बताकर जय—पराजय व्यवस्था बताई है । इसमे ७४ सूत्र हैं । इस प्रकार इस ग्रथमे जैन न्यायके सभी मौलिक ग्राह्य विषयोका पूर्ण व्यवस्थित चयन हुआ है ।

न्याय विषयके ऐसे कठिन दार्शनिक विषयका आध्यात्मिक सम्बन्ध दिखाकर न्यायादि अनेक विषयके पारखी, मनीषी, विद्वान् श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी सहजानन्द मालाने परीक्षामुखसूत्रप्रवचन द्वारा सरल सुबोध स्पष्ट किया है । समयसारादि अनेक ग्रन्थोपर प्रवचन करने वाले विद्वान्के प्रौढ ज्ञानने इसे दुरूहतासे बचाया है जो कि न्याय विषयक गम्भीर अध्ययन चिन्तन एव सुयोग्य विद्वत्ताका ही सुन्दर मधुर फल है । न्यायविषयक क्षेत्रमे तत्त्व निर्णयका आधार प्रमाण ही होता है । इसलिये प्रमाण और प्रामाण्यकी परीक्षा करना अत्यावश्यक है । इन प्रवचनो द्वारा लोकमे प्रमाणविषयक विपरीत धारणायें दूर होगी ।

मुझें इन प्रवचनोका प्रूफ शोधनका अवसर मिला है । मैं आशा करता हू कि आध्यात्मिक तत्त्वके विज्ञ रसिक जन इनके स्वाध्याय द्वारा लाभ उठायेंगे ।

—देवचन्द जैन, एम० ए०

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[पञ्चदश भाग]

●

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहरजी वर्णी 'सहजानन्द'जी महाराज

❁

प्रमाणकी आख्यातिका सम्बन्ध प्रमाणसे अर्थकी सिद्धि होती है और प्रमाण से अर्थकी असिद्धि रहती है इसी हेतु इस ग्रन्थमे प्रमाण और प्रमाणाभासके स्वरूपका वर्णन है। अब दूसरा अर्थ लीजिए। प्रमाण मायने देव, "प्र" कहो प्रकृष्ट "म" कहो ज्ञान लक्ष्मी और "ण" कहो दिव्यध्वनि। जिसके उत्कृष्ट लक्ष्मी ज्ञान और दिव्य ध्वनि प्रकट हो उसका नाम है प्रमाण अर्थात् आप्त अरहतदेव। उससे तो अर्थकी सिद्धि होती है। अर्थ मायने प्रयोजन। ससारके सकटोसे छूटना उसकी सिद्धि होती है और जो प्रमाणाभास है कुदेव उससे प्रयोजनकी सिद्धि नहीं होती ऐसा स्मरण मात्र नमस्कार इस श्लोकमे आया है। प्रमाणका मुख्य अर्थ है ज्ञान। यह तो नमस्कारपरक अर्थ किया लेकिन उसका प्रासगिक अर्थ है ज्ञान। ज्ञानका स्वरूप इस ग्रन्थमे बताया है कि जो स्व और परका निर्णय करे उस ज्ञानको प्रमाण कहते है, और वह प्रमाण दो प्रकारका है—प्रत्यक्ष और परोक्ष। तो दूसरे अध्याय मे प्रत्यक्ष प्रमाणका स्वरूप बताया है। अब उसके अतिरिक्त जो दूसरा प्रमाण रहा परोक्ष, उसके स्वरूप निर्णयके लिए कहते हैं कि—

परोक्षज्ञानका स्वरूप—जिसका विशद परोक्षमितरत् स्वरूप है, जैसा कि द्वितीय परिच्छेदमे बताया गया है उस विशद स्वरूप वाले विज्ञानसे अतिरिक्त जो भी विज्ञान हैं वे सब अविशद वाले हैं और परोक्ष हैं। अथवा यो कहलो कि विसद प्रत्यक्ष तो अविशद परोक्ष। परोक्षका यह सक्षिप्त स्वरूप है। जो अविशद ज्ञान है उसे परोक्ष कहते हैं इसके अनुमानको भी बता रहे हैं अविशद ज्ञान परोक्ष परोक्षत्वात्। जो अविशद ज्ञानस्वरूप हो उसको परोक्ष कहते हैं क्योकि परोक्ष होनेसे। जो जो परोक्ष होते हैं वे वे सब अविशद ज्ञानात्मक होते हैं। जो अविशद ज्ञानात्मक नही होते है वे परोक्ष भी नही होते हैं, जैसे मुख्य प्रत्यक्ष और साव्यवहारिक प्रत्यक्ष। यहा इस व्याप्तिमें व्यतिरेक व्याप्ति होनेपर दृष्टान्त मिलता है और अन्वय व्याप्ति होनेपर

दृष्टान्त नहीं मिलता। जैसे यह अनुमान प्रयोग बनाया जाय कि सर्वं अनेकान्तात्मक सत्त्वात् जगतमें जितने भी पदार्थ हैं वे सब अनेकान्तात्मक होते हैं सत् होनेसे अब इसमे इस तरहसे व्याप्ति नही बन सकती कि जो जो सत् होते हैं वे वे सब अनेकान्तात्मक होते हैं। यद्यपि यह व्याप्ति सही है मगर इसका दृष्टान्त कुछ नही मिलता है सब सन् है वे हमारे पक्षमे आ गए हैं सो दृष्टान्त नही मिलता। और जब यह कहा जाय कि जो अनेकान्तात्मक नहीं होता वह सत् भी नहीं होता। इसमे कुछ दृष्टान्त तो दो जैसे आकाशके फूल खरगोशके सीग, इसी तरह यहा व्यतिरेक व्याप्ति कहकर दृष्टान्त देना चाहिये। जो स्पष्ट ज्ञान वाला नही होता वह परोक्ष भी नहीं होता। जैसे कि प्रत्यक्षज्ञान। और यह विज्ञान जो कि सब कुछ बताया जायगा वह परोक्ष है इस कारणसे अविशदज्ञान रूप है, जो स्पष्ट ज्ञानात्मक हो उसे परोक्षज्ञान कहते हैं। अब उसका निमित्त क्या है, उसके भेद कितने हैं यह सब बतानेके लिये सूत्र कहते हैं।

प्रत्यक्षादिनिमित्त स्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागमभेदमिति ॥२॥

परोक्षज्ञानके भेद—प्रत्यक्ष आदिक हैं निमित्त, जिनके ऐसे परोक्षज्ञान होते हैं और वे स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क अनुमान और आगमके भेदसे ५ प्रकारके होते हैं इनका क्या स्वरूप हैं यह स्वयं सूत्रोंके रूपमे वर्णन किया जायगा, इसलिए अलग न कहकर स्वरूप सूत्रोंके प्रकरणमे कहेंगे। उनमेसे यहा परोक्षज्ञानके प्रथम भेदरूप स्मृतिज्ञानका स्वरूप बतलाते हैं।

संस्कारोद्बोधनिबन्धना तदित्याकारा स्मृति ॥ ३ ॥

स्मरण ज्ञानका निमित्त और स्वरूप—तत् "वह है" इस तरहके आकार वाले जो ज्ञान हैं उन्हे स्मरण ज्ञान कहते हैं। जब किसी भी चीजका ख्याल आता है तो उसकी मुद्रा वह है। वह था, वह होगा, चाहे भूतकालमे लगालो। किसी ढगमे लगावो वह मुद्रा है उसकी। वह है इस प्रकारका जिसका आकार है, मुद्रा है उसे स्मृतिज्ञान कहते है, और यह ज्ञान बनता है किस प्रकार है इसमे कौनसा ज्ञान सहयोगी होता है स्मरण ज्ञान सस्कारके उद्बोधके कारण होते हैं अर्थात् सस्कार नाम है धारणा ज्ञानका। कई जगह सस्कार शब्दका प्रयोग आता है, पर उसका असली अर्थ क्या है कैसा सस्कार बना हुआ है, सस्कारका अर्थ है धारणा। अवग्रह ईहा, अवाय ज्ञान होकर फिर उसे न भुला सके ऐसी योग्यता वाले ज्ञानको धारणा ज्ञान कहते हैं और उसीका दूसरा नाम है सस्कार। तो उस धारणा ज्ञानका उद्बोध होने पर स्मरण ज्ञान बनाता है। जैसे किसी भी चीजका पहिले ज्ञान किया था, इन्द्रिय द्वारा जाना था, उसकी धारणा बनी थी वह धारणा जब चेती तब उसका एक पुन व्यक्त रूप बना तो उस कारणसे यह स्मरण ज्ञान होता है। इसमे यह बात मुख्यरूपसे आ गई कि जिस चीजको हमने जाना था, देखा था, अनुभवा था उस ही के विषयमे

एक जागृति होती है स्मरण ज्ञानमे कि वह है। जैसे बाजारमे किसी दूकानपर छतरी रखकर बैठे हुये थे। पानी बरसना बद हो-जानेसे वहासे चल दिये। आगे जानेपर किसीकी छतरी देखकर झट धारणा ज्ञान जग गया। ओह! मेरी छतरी वहा रखी है। हम अपनी छतरी भूल आए तो यह जो स्मरण हुआ वह धारणाके जगनेसे हुआ। अब धारणाका जगना चाहे किसी निमित्तपूर्वक हो तो या अकस्मात् हो तो सस्कार के उद्बोधके कारणसे वह है इस प्रकारके आकार और मुद्रा वाला जो ज्ञान है उस को स्मृतिज्ञान कहते हैं। अब शिष्योके प्रबोधके लिए और सुखपूर्वक जाननके लिए दृष्टान्तोके द्वारा उसका स्वरूप बतला रहे है।

यथासदेवदत्त इति ॥ ४ ॥

स्मृतिज्ञानकी तच्छब्दमुद्रितता – जैसे कि वह देवदत्त है। उसमे वह लग गया ना, और न भी कोई वह बोले मुखसे तो वह उसके साथ लगा ही रहता है। जितने भी स्मरण ज्ञान होते हैं वे सब तत् शब्दकी मुद्रासे हुआ करते है। तो इस प्रकार तत् शब्दके द्वारा जाना हुआ जो ज्ञान है वह स्मरणज्ञान है। अब निबन्धोमे जैसे हम वाक्य लिखते है—"जिसने आत्माके स्वरूपका अनुभव किया है वही वास्तविक रूपसे चारित्र पाल सकता है।" ऐसा एक वाक्य बनाया। अब इसमे जो 'वह' शब्दसे कहा गया द्वितीय वाक्य उसमे स्मरण बसा हुआ है। जिसने आत्माका अनुभव किया यह तो है एक सीधा कथन, वह चारित्र पाल सकता है। इसमे स्मरण बसा हुआ है। कौन पाल सकता है चारित्र ? वह, जिसने आत्मानुभव किया। तो निबधोके बीचमे भी जिस जिस जगह वे शब्द हैं उसमे तत् शब्दके, जितने भी शब्दपद हैं उन सबमे स्मरण बसा है। कोई पुराना स्मरण है कोई तत्कालका तो स्मरणकी मुद्रा तत् शब्दसे प्रकट होती है।

स्मृतिज्ञानकी प्रमाणभूतता – स्मृतिज्ञान अप्रमाण नही है, प्रमाणभूत है। जितने ख्यालमे आते है वे सब ज्ञान प्रमाणभूत हैं क्योकि सम्वादक होनेसे, विसम्वादी न होने से। सशयज्ञानमे विवाद पडा है पर स्मृतिज्ञानमे विवाद नही है। विवादरहित ज्ञानका नाम प्रमाण है। जिस ज्ञानके होनेपर किसी प्रकारका विवाद नही उठता वही तो प्रमाण है। तो स्मरणज्ञान करते समय भी स्मरण करने वालेका कोई विवाद तो नही उठता। जैसे किसीको हम आज्ञा भी देते कि देखो! वह समयसार उठा लेआवो जो अमुक जगहका छपा है। तो इसमें कोई विवाद तो नही रहता। वह उस ही चीज को ले आता है। तो जो अनिश्चयसे भरा न हो निश्चित हो वह सब प्रमाण है। जो जो सम्वादक ज्ञान है वे सब प्रमाण होते हैं। जैसे प्रत्यक्ष आदिक। और स्मरण ज्ञान भी सम्वादक है, इस कारण स्मृति भी प्रमाण है।

क्षणिकवादी द्वारा स्मरणज्ञानके निराकरणमे स्मृति शब्दवाच्य अर्थ

के प्रथम विकल्पका निरसन - अब इस प्रसगमें क्षणिकवादी लोग स्मरणका खण्डन कर रहे हैं जो खण्डन बिना विचार किये बहुत ही दिलको लुभाने वाला होगा और यह यह साबित करेगा कि स्मरण ज्ञान कोई ज्ञान नहीं है, क्षणक्षयवादी पूछते हैं कि स्मृति शब्दका वाच्य अर्थ क्या है, स्मरण शब्दसे तुमने कहा क्या ? किसका नाम स्मरण ज्ञान है ? क्या ज्ञानमात्र होनेका नाम स्मरण है या अनुभूत पदार्थके विषयमें होने वाले ज्ञानका नाम स्मरण है । स्मरण शब्दके दो वाच्य विचार किए गए । क्षणिकवादी स्मरणका अर्थ पूछ रहे हैं कि स्मरणका अर्थ क्या है ? स्मरण । ज्ञानमात्र तो अर्थ किया नहीं जा सकता कि ज्ञानमात्रका नाम है स्मृतिज्ञान । यदि ज्ञानमात्रको ही स्मृतिज्ञान कह दिया जाय तो प्रत्यक्ष आदिक भी जितने ज्ञान हैं वे सब स्मृति शब्दसे वाच्य हो जायेंगे, क्योंकि सभी ज्ञानोंमे ज्ञानपना तो है ही । अब ज्ञानपनेको तुम स्मृति कह रहे हो फिर दृष्टान्त भी क्या मिलेगा । अभी तो यह व्याप्ति बनी थी कि जो अविशद ज्ञानात्मक नहीं है वह परोक्ष भी नहीं है जैसे कि प्रत्यक्ष, प्रत्यक्ष अविशद ज्ञानात्मक नहीं है विशद है तो वह परोक्ष भी नहीं कहलाता है । तो प्रत्यक्ष भी स्मृति कहलाता है तो दृष्टान्त भी कुछ न मिलेगा । ऐसा तो है नहीं कि वही दार्ष्टान्त हो वही दृष्टान्त बन जाय ।

स्मरणशब्दवाच्य अनुभूतार्थविषयविज्ञानरूप द्वितीय विकल्पमे अनुभव विज्ञानताके विकल्पका शंकाकार द्वारा निरसन — यदि कहोगे कि स्मरणका यह अर्थ है कि अनुभूत पदार्थोंको विषय करने वाला विज्ञान (इस विकल्पमे बल है) जो पदार्थ अनुभवमे आ चुका है जिसे देख लिया, सुन लिया, छू लिया, जान लिया, ऐसे पदार्थोंके सम्बन्धमे जो ज्ञान उत्पन्न होता है फिर वह स्मरण कहलाता है यदि स्मरणका यह अर्थ करोगे तो देवदत्तने किसी पदार्थका अनुभव किया और यज्ञदत्तके ज्ञानको उसका स्मरण बन जाना चाहिये क्योंकि अनुभूत पदार्थोंके सम्बन्धमे जो ज्ञान होता है उसका नाम है स्मरण । अनुभूत तो हुआ देवदत्तका और स्मरण हो यज्ञदत्तको । यदि यह कहो कि देवदत्तके अनुभूति अर्थको यज्ञदत्त का ज्ञान कैसे स्मरण करेगा जिसके ही द्वारा जो हो पहिले अनुभवमे आया है वही वस्तु कालान्तरमे ही प्रतिभासके उस ही अनुभवके अनुभूत अर्थमें उत्पन्न हुए ज्ञानका नाम स्मरण है । देवदत्त अनुभूत करे और यज्ञदत्त स्मरण करे यह सम्भव नहीं है । यदि ऐसा कहोगे तो हम पूछते हैं (क्षणिकवादी कह रहे हैं) कि यह बताओ कि अनुभूत पदार्थमे यह ज्ञान उत्पन्न हुआ है यह आप किस ज्ञानके द्वारा जानोगे ? अनुभूत पदार्थके सम्बन्धमें होने वाले ज्ञानको तुम स्मरण कह रहे हो तो यह स्मरण ज्ञान अनुभूत पदार्थोंके सदभमे उत्पन्न हुआ ज्ञान है, अनुभूतमे उत्पन्न हुआ है, यह तुम कैसे जानोगे ? अनुभव से तो जान नहीं सकते, अर्थात् जो बात कल देखी थी उसका स्मरण हो रहा है आज तो कल जो बात अनुभवमें आयी थी उसके सम्बन्धमे ही आज ज्ञान चल रहा है, क्या तुम कलके हुए अनुभवके द्वारा आजके स्मरणको जानोगे ? कल जो अनुभव हुआ था

उस कालमे तो स्मरण नही है। स्मरण तो आज हो रहा है। अनुभवके सम्बन्धमें उसका ख्याल नही बना करता है। जब अनुभवके द्वारा स्मृति विषय न हो सकी तो स्मृति असत् रही। अनुभवके समयमे स्मृति न थी। तो जो असत् है वह स्मृति अनुभवके द्वारकैसे विषय किया जा सकता है? तो अनुभवके द्वारा जब स्मृति विषयमे नही आ सकती तो अनुभवमे नही समझा जा सकता है यह ज्ञान जिसे कि स्मरण कहा जा रहा है अनुभूत पदार्थोंमे उत्पन्न हुए अनुभवके समयमे पदार्थकी अनुभूयमानता है अनुभूतता नही है। जिस समय पदार्थका अनुभव किया जा रहा है उस समय पदार्थको आप अनुभूत पदार्थ कहोगे या अनुभूयमान पदार्थ कहोगे? जिस समय जिस बातका अनुभव किया जा रहा है उस समय उसको क्या कहोगे? अनुभूयमान कहा जायगा। जिस समय जो भी भाव अनुभवमे आ रहा, मानलो भोजन किया जा रहा है तो भोजनके अनुभवके समयमे यह कहा जायगा कि भोजन किया जा रहा है। यह तो न कहा जायगा कि भोजन किया जा चुका है। जब भोजनके उपभोगका समय गुजर जायगा तब कह सकेंगे कि भोजन किया जा चुका। तो अनुभवके कालमे अनुभूतपना नही रहता किन्तु अनुभूयमानपना रहता है। जब अनुभवके समयमे पदार्थकी अनुभूयमानता रहती है और अनुभूतिसे स्मृति मान रहे हो तो यह कहना चाहिये कि अनुभूयमान पदार्थमे होने वाले ज्ञानको स्मरण कहते हैं, अत. अनुभवके द्वारा अनुभूतमे उत्पन्न हुआ है ज्ञान यह नही जाना जा सकता।

स्मृतिशब्दवाच्य अनुभूतार्थविषयविज्ञानरूप द्वितीय विकल्पके स्मृतिविज्ञातताके विकल्पका शङ्काकार द्वारा निरसन—यदि कहो कि स्मृतिके द्वारा जान लिया जायगा कि अनुभूत पदार्थकी स्मृति होती है तो क्षणिकवादी उत्तर देता है कि नही स्मृति न तो अतीत अर्थका विषय करती है और न अतीत अनुभवका विषय करती है। जैसे कल जो खाया था उसका आज स्मरण किया जा रहा है तो आज जो स्मरणरूप ज्ञान हो रहा है यह आजका स्मरणरूप ज्ञान अतीतको विषय नही कर रहा। यदि अतीत अनुभवको आजका स्मरण विषय करले तो न रसोई बनानेकी जरूरत रही न खानेकी। अतीत अनुभव आज विषयभूत हो गया। मानो जो काम कल हुआ था सो ही आज हो गया। तो स्मृति अतीत अनुभवको और अतीत पदार्थको विषय नही करती। यदि स्मृतिके द्वारा अतीत अनुभव और अतीत पदार्थका विषय मानलोगे तो फिर जितने भी अनुभव हुए हैं सबको विषय क्यो नही कर लेते आजकी स्मृति, स्मरणज्ञान यदि अतीत पदार्थको विषय करले तो जितने भी अतीत अनुभव हुए हैं सभीको क्यों नही विषय कर लेते? इससे स्मरणज्ञान अतीत अनुभवको भी विषय नही करती तो यह नही कह सकते कि अनुभूतपदार्थमे उत्पन्न हुआ है यह ज्ञान इसने स्मरणको समझा। तो न स्मरण समझ सका न प्रत्यक्ष समझ सका कि यह मैं अनुभूत पदार्थमे उत्पन्न हुआ हूँ। इस कारण स्मृतिज्ञानका कोई स्वरूप नही बनता। क्षणिकवादी लोग केवल दो ज्ञान मानते हैं—प्रत्यक्ष और अनुमान। तीसरे ज्ञानको

सत्ता नही है। तीसरे जो और ज्ञान होते हैं, विकल्प होते हैं वे सब झूठ हैं, काल्पनिक हैं। अब ज्ञान अपना प्रथम काम करगा, किसी अन्य ज्ञानके द्वारा जाना गया पदार्थ इस समयका ज्ञान जाने यह ज्ञानका काम नही है। जिस समय जो ज्ञान पदार्थ उत्पन्न हुआ है उस समय वह ज्ञान उस कालकी बातको जानेगा। तो क्षणक्षयवादमे स्मृति-ज्ञान नही है। यो शङ्काकारने स्मृतिका स्वरूप ही मिटा दिया।

स्मरणज्ञानके निराकरणका निराकरण—अब उक्त आशङ्काका समाधान करते हैं कि स्मृतिका स्वरूप मिटता नही है। इसका स्वरूप सूत्रमें ही बता दिया कि 'तत्', इस आकारको लिए हुए जो अनुभूत अर्थके सम्बन्धकी प्रतीति है उसको स्मृति कहते हैं। स्मरण ज्ञानमें अनुभूत पदार्थका विषय होता है। जो जाने, देखे, सुने उस ही पदार्थका ख्याल आनेका नाम तो स्मरण ज्ञान है और वह स्मरण ज्ञान वह के रूप मे प्रकट होता है। वह था, वह है, वह होगा, तत् शब्द उसकी मुद्रा है। तब यह कहना कि अनुभूत पदार्थका स्मरण होना यह तो न स्मरणसे जाना जाता, न प्रत्यक्ष ज्ञानसे जाना जाता और इस प्रकार स्मरण ज्ञानका अभाव कहना यो ठीक नहीं है कि स्मरणमें जो कुछ जाना गया है वह आत्माके द्वारा जाना गया है, मतिज्ञानकी अपेक्षा रखने वाले आत्माके द्वारा वह अनुभूत हुआ है जो स्मरण ज्ञानमे हुआ करता है। स्मरण ज्ञानमे क्या हुआ करता कि अनुभूयमानका भी विषय बन रहा और अनुभूतका भी विषय बन रहा अर्थात् जो स्मरण ज्ञान चल रहा है वह स्मरणके रूपमे तो अनुभूयमान है और जिस पदार्थका स्मरण चल रहा है वह पदार्थ पहिले अनुभूत हो चुका था, अब इस आत्माके स्मरण ज्ञान और प्रत्यक्ष ज्ञान दोनों आकारोंका अनुभव सम्भव है। यह तो एक क्षणिकवादमें ही शङ्का उठती है कि जब ज्ञान क्षण भरको रहता है दूसरे क्षण नही रहता तो ऐसा क्षणिक ज्ञान प्रत्यक्ष ही करता है स्मरण नही करता लेकिन ज्ञानभाव ही तो मात्र कुछ नही। ज्ञानका आधारभूत एक आत्मपदार्थ है और उसकी ज्ञानपरिणतियाँ हैं तो इस आत्मामें प्रत्यक्षका आकार भी होता है और स्मरण का आकार भी होता है। यह कहना अयुक्त है कि एक ही ज्ञानमे प्रत्यक्ष और स्मरण दोनोंका आकार कैसे सम्भव है। एक वस्तुमात्रके ज्ञानम दो आकार नहीं हैं, पर एक आत्मामें अनेक आकार सम्भव हैं? जैसे कि तुम (क्षणक्षयवादी) ही मानते हो कि एक चित्रज्ञानमें अनेक चित्रकारकी प्रतीति होती है। क्षणक्षयवादका ही एक सिद्धान्त चित्राद्वैत है। इस सिद्धान्तका यह विषय है कि एक ही ज्ञानमें नीलाकार, पीताकार, मधुर रस आदिक अनेक अनुभवमे आते हैं तो उस ज्ञानमे आकार तो चित्रित हो गया पर ज्ञान वह निरश अखण्ड है। तो जैसे चित्राद्वैतवादियोने एक ज्ञानमे अनेक आकार चित्रित माने हैं ऐसे ही यहाँ भी लगा सकते कि एक आत्मामे नाना प्रकारके ज्ञान सम्भव होते हैं।

आत्मामे नाना ज्ञेयाकारोका अविरोध—क्षणिकवादी लोग न तो आत्मा

को पदार्थ मानते हैं और न पुद्गलको पदार्थ मानते हैं। क्षणिक सिद्धान्तमे रूपी पदार्थ नही होता किन्तु रूप ही एक पदार्थ है। रूप, रस, गध, स्पर्श ये सब जुदे-जुदे पदार्थ है रूप आदिक किसी एक जातिके आधारमे रहते हैं सो बात नही। कोई किसीका आधार नही हुआ करता। यदि रूईमे आग लग रही है तो यह नही कहा जा सकता कि रूई जल रही है। अरे रूई और आग ये दोनो जुदे-जुदे पदार्थ हैं तथा जो रूई है वह जल नही रही, जो जल रही वह रूई नही रही। ऐसा भी नही है कि जो अभी नीला है वह काला पीला आदिक बन जाय। पदार्थ जितने समय नील आदिक रहते हैं उतने नये-नये उत्पन्न होते रहते हैं। यह बात ज्ञानमे समझी जाती है कि जैसे ज्ञानमे नये-नये सतान उत्पन्न होते रहते हैं इसी प्रकार नील पीत आदिक पदार्थोंमे सतान करते जाइये। वहाँ लोग भ्रम करते कि जो नीला कल था सो आज है पर नीला आदिक अनेक होते रहते हैं तो ऐसा नील अथवा कोई रस कोई गध कोई पदार्थ ये सबके सब ज्ञानमे आते है अब इस समय उन पदार्थोंका विवेचन नही किया जा सकता। भेदोकरण नही किया जा सकता। इस कारण वह चित्राद्वैत रूप है। तो जैसे क्षणिकवादियोमे चित्रज्ञानके द्वारा चित्राद्वैतकी प्रतीति कर ली है इसीप्रकार एक आत्माके द्वारा अनुभूयमानका आकार व अनुभूत आकार सम्भव है और, जैसे चित्राद्वैतवादियोने एक ही विज्ञानमे एक ही साथ एकता मान ली है। एक ज्ञानमे अनेक आकारका विरोध नही आता है। तो अवग्रह, ईहा, अवाय धारणा और स्मृति आदिक नाना ज्ञानोका स्वभाव पाया जा रहा है तो आत्मामे अनेक ज्ञेयाकार सभव है ही। यहाँ यह शका न करना चाहिये कि जब प्रत्यक्ष ज्ञानके द्वारा अनुभूयमान अनुभव किया जा रहा है तो स्मरण ज्ञानसे जो कुछ अनुभव बन रहे हैं वे अनुभूयमानरूपमे बन रहे है यह अनुभव किया जा रहा है। अनुभूतार्थके विषयकी बात कही रही। यह बात यो कहा कि स्मृति विशेषणकी अपेक्षा रखकर तो आत्मामे उसका अनुभव प्रतीत होता है जैसे कि चित्राद्वैत ज्ञानमे नीलाकार पीताकार आदिक विशेषणोकी अपेक्षा माना है इसी प्रकार आत्मामे स्मृति आदिक विशेषणोकी अपेक्षा रखकर उस रूपमे अनुभव करता है।

स्मृति ज्ञानमे गृहीतागृहित्वदोपका अभाव —यह भी नही कह सकते कि अनुभूत पदार्थको विषय करने वाला होनेसे स्मृतिज्ञान अप्रमाण हो गया, क्योकि स्मृति ज्ञानसे गृहीतग्राही हो गया। जो धारावाही ज्ञान होता है। जिस पदार्थको जाना उस हीको बारबार जाना जाय तो वह ज्ञान अप्रमाण होता है इसे धारावाही ज्ञान कहा गया है। जैसे कोई पुरुष जान गया कि यह घडी है तो बार-बार यदि कोई घडी घडी घडी कहता फिरे तो लोग उसे पागल कहेगे तो धारावाही ज्ञान अप्रमाण माना गया। जो जाना जा चुका उसका बार बार क्यो ज्ञान किया जा रहा है। यह शका नही कर सकते क्योकि स्मरणमे पहिले किये हुए ज्ञानसे कुछ विशेषता है। जैसे कि अनुभवके समय प्रत्यक्षके समयमे पदार्थके विशद आकार रूप प्रतिभास था, स्पष्ट ज्ञान हो रहा था उस प्रकार स्मृतिमे स्पष्ट ज्ञान नही हो रहा स्मृति ज्ञानमे स्पष्टताकी प्रतीति नही है

लो कितना बडा भारी फर्क निकल आया। प्रत्यक्षमे तो स्पष्ट ज्ञान हो रहा था और स्मरणमे स्पष्ट ज्ञान नही हो रहा है। तो उसज्ञानसे स्मरण ज्ञानमे कुछ विशेषता है अतएव स्मरण ज्ञानको गृहीतग्राही ज्ञान नही कह सकते। गृहीतज्ञान वह कहलाता है कि जितने अशमे जितनेरूपमे पदार्थको जाना था उतने ही अशमे उतने रूपसे जानना-सो गृहीतग्राही है। उसमे कुछ विशेषता आये तो गृहीतग्राही नही कहलाता। बारबार उसकी भावना करे तो बार-बार भावना करनेके समयमें जो स्पष्टताकी प्रतीति हो रही है वह सो भावनाज्ञान है।

क्षणिकवादमे विशद ज्ञानकी अप्रमाणता – क्षणिकवादी कह रहे हैं इस समय शकाकारके रूपमे कि वैशद्य कुछ होता ही नही है। स्पष्टज्ञान तो अप्रमाण माना गया है। जैसे कहते है कि हमने खूब समझा स्पष्ट यह ज्ञान तो विकल्पात्मक ज्ञान है, असलमें तो प्रत्यक्ष ज्ञानसे उस एक समयका कुछ निर्विकल्प रूपसे प्रतिभास किया गया वह तो है प्रमाण। फिर पदार्थमे जो विकल्प उठता है जिससे कि स्पष्टता समझमे आती है वह है सब अप्रमाण। वह काल्पनिक ज्ञान है। सही ज्ञान निर्विकल्प होता है और निर्विकल्प ज्ञानमें स्पष्ट प्रतिभास नही होता किन्तु सामान्य प्रतिभास होता है। तो जब स्पष्टता कुछ चीज ही नही है तो फिर परिच्छित्ति विशेष मानना कि प्रत्यक्षके ज्ञानने जाना उससे कुछ विशेष स्मृतिने जाना यह कैसे कहा जा सकता है क्योंकि बार बार उस ही पदार्थकी भावना करते जायें, और उस समय जो स्पष्टता प्रतीत होती है वह धारणाज्ञान है। जैसे कि सुबह घूमते हुए जा रहे थे, बाहरमे एक ठूठ देखा पहिले कुछ सामान्य समझमे आया फिर उसके पास गए तो वह ठूठ और भी विशेष समझमे आया। और भी पासमें गए तो उसे देखकर पूर्ण निश्चय कर लिया कि यह ठूठ ही है। तो अविषाद ज्ञानमे निर्बलता आ रही है यह तो भावना ज्ञान है न कि सचमुच ज्ञान विशद हो रहा है, और वह भावना ज्ञान तो कल्पारूप है, इस कारण भ्रान्त है। जैसे स्वप्नमे देखे हुए पदार्थका जो ज्ञान होता है वह बिल्कुल स्पष्ट दिखता है वहाँ भावना ज्ञान है ना। चीज तो कुछ नही एक भावना बन गयी। तो जैसे स्वप्नके समय भावना ज्ञान स्वप्न आदिक ज्ञान स्पष्ट नजर आते हैं किन्तु है भ्रान्त, इसीप्रकार इस जगती हुई हालतमें जो कुछ यह सब साफ-साफ नजर आ रहा है यह सब है भ्रान्त। तो वह अनुभूत पदार्थको विषय करता है, ऐसा हठ किया जाय तो यह सब केवल प्रलाप है। एक प्रत्यक्ष ज्ञानके सिवाय और कुछ वास्तविक नही है हाँ एक गौण रूपसे अनुमान ज्ञान भी है तो स्मृति आदिककी सिद्धि करना यह एक एक प्रत्यक्ष और अनुमान दोनोको मिलान करना है। उसमें एक निर्विकल्प ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान ही वास्तविक है। स्मरण ज्ञान कोई चीज नही है ऐसा स्मृति ज्ञानके अपलापमे क्षणिक वादी कह रहे हैं।

स्मृतिज्ञानमेगृहीत ग्राहित्व दोषका अभाव—शकाकारने यह कहा था कि चूँकि स्मृति ज्ञान पहिले जाने हुए पदार्थके सम्बन्धमें होता है तो जिस पदार्थको पहिले

इस कारणसे प्रत्यक्ष प्रमाण है। जो ज्ञान जिस पदार्थसे उत्पन्न हुआ वह ज्ञान उस पदार्थके जाननेमे प्रमाण होता है तो यही बात स्मरणमे भी घटा लीजिये। स्मरण ज्ञान भी जिस पदार्थसे उत्पन्न हुआ है उस पदार्थको जान लिया, चाहे वह अब अतीत हो गया, असत् हो गया। और फिर ज्ञान पदार्थमे उत्पन्न होता है, यह एकान्त है। ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न नही हुआ करता, किन्तु ज्ञानका विषय पदार्थ बना करता है, तो स्मरण ज्ञान गृहीतग्राही नही है किन्तु ग्रहीतके सम्बन्धमे कुछ नई शैलीमे ज्ञान किया जा रहा है।

अविसंवादकत्व होनेसे स्मृतिज्ञानकी प्रमाणरूपता—यह अनुमान बिल्कुल युक्त है कि स्मरण ज्ञान प्रमाण है अविसम्वादक होनेसे। स्मरण ज्ञान करते हुये पुरुष उसमे विवाद नही किया करते। जिस पदार्थका स्मरण हो गया वह तो पदार्थमे कुछ भी विवाद नही रखता। जैसे स्वयं कोई चीज घरमे किसी जगह रख दी, अब कुछ दिन बाद उसका ख्याल कर रहा है किसीने उस वस्तुको मांगा तो वह उसका ख्याल करने लगा। तो जिस जगह उसने वह चीज रखी थी उसी जगह जाकर उस वस्तुको वह पा लेता है, तो विवाद तो नही रहा स्मरणमे। अविसम्वादी ज्ञान रहा। जैसा जैसा ख्याल किया वैसा ही पदार्थ पा लिया गया तो उसमें अब विवाद क्या रहा? इस कारण स्मृति ज्ञान बराबर प्रमाणभूत है। हां किसी किसी स्मरणमें यदि विवाद आ जाय तो वह स्मृत्याभास है, स्मृति नही है। यो तो कोई कोई प्रत्यक्ष भी विवाद वाला होता है तो वह प्रत्यक्षाभास कहलाता है, पर कोई स्मरण अगर विसम्वाद वाला हो गया तो इसका अर्थ यह नही कि सब स्मरण विसम्वादी कहलाते हैं। अन्यथा यदि एक भी प्रत्यक्ष विसम्वादी हो गया, प्रत्यक्षाभास हो गया तो सब प्रत्यक्षों को भी प्रत्यक्षाभास मान लेना चाहिये।

स्मरणको विसंवादी माननेपर अनुमानकी प्रवृत्तिका अभाव—स्मृति ज्ञानकी प्रमाणतामे बिल्कुल सीधीसी एक और भी बात है कि यदि स्मरणज्ञानको विसम्वादी मानते हो कि स्मरण ज्ञान तो अप्रमाण है, उसमे तो विसम्वाद है, तब फिर अनुमानकी वृत्ति कैसे होगी, क्योकि अनुमान तब किया जा सकता है जब पहिले साध्य-साधनका सम्बन्ध जान लिया जाता है। साध्य-साधनका सम्बन्ध जानते समय पहिले स्मरण होता है। अनेक जगह धुवां देखा वहाँ अग्नि भी थी ऐसे अनेक धुवां और अग्निका ख्याल आता है और उस स्मरणसे फिर यह सम्बन्ध पुष्ट होता है कि जहाँ जहाँ धुवां होता है वहां वहां अग्नि होती है। तो सम्बन्धके स्मरण बिना तो अनुमान बनाया ही नही जा सकता है। यदि स्मरणको मान लिया अप्रमाण तो अनुमानकी प्रवृत्ति कैसे बनायी जा सकती है? सम्बन्धके स्मरण बिना अनुमानका कभी उदय ही नही हो सकता। अनुमान तो तब बनेगा जब साध्य साधनकी व्याप्ति बने। व्याप्ति तब बनती है जब उसका स्मरण हो।

स्मृतिज्ञानकी अप्रमाणताके कारणोंके पृष्टव्य तीन विकल्प और प्रथम विकल्पका निराकरण अच्छा, बताओ ! स्मरण ज्ञानको विसम्वादी कहते हो तो किस कारणसे कहते हो ? क्या उस स्मरण ज्ञानका विषयभूत पदार्थसे सम्बन्ध नहीं है कुछ भी इस कारणसे स्मरण ज्ञान अप्रमाण है या स्मरणज्ञानका विषय कल्पित है ? इस कारण अप्रमाणभूत है अथवा सम्बन्ध होनेपर भी स्मरणके द्वारा वह सम्बन्ध विषय नहीं किया जा सकता, इस कारण स्मरण अप्रमाण है। स्मरण ज्ञानका विसम्वाद सिद्ध करनेमे तुम कौनसा विकल्प ठीक समझते हो ? यदि कहो कि सम्बन्ध नहीं है इस कारण स्मरण ज्ञान अप्रमाण है तब फिर अनुमान पदार्थ कैसे बन जायगा ? जब दुनियामें कहीं सम्बन्ध ही नहीं होते एकका दूसरेके साथ और स्मरण भी नहीं बन सकते तो अनुमान तुम बना कैसे लोगे ? यदि सम्बन्धके बिना अनुमान बना लिया जाय तो जिस चाहे सम्बन्धरहित पदार्थसे जिस चाहे चीजका अनुमान कर लिया जाय, कुछ भी अटपट कह दिया जाय, चूँकि यह आदमी सामने आ रहा है इसलिए कलकत्तामे आग लग गयी। यों जैसा चाहे अटपट बोला जा सकता है। जब सम्बन्धके बिना ही अनुमान मान लिया गया तो जो चाहे अनुमान कर लिया जायगा, तो सम्बन्धका अभाव होनेसे स्मरण अप्रमाण है यह बात सही नहीं होती। सम्बन्ध बराबर है।

स्मृतिकी अप्रमाणतामे पृष्टव्य कल्पितविषयरूप द्वितीय विकल्पका निराकरण यदि कहो कि स्मरण ज्ञानका पदार्थके साथ कल्पित सम्बन्ध है, पदार्थ तो है नहीं अब उसकी कल्पनायें करते रहे, ज्ञानका सम्बन्ध बना रहे, यों कल्पित सम्बन्धके कारण स्मरण ज्ञान अप्रमाण है, ऐसा कहनेपर तो प्रत्यक्ष और अनुमान ज्ञानमे भी प्रमाणता न रहेगी, क्योंकि प्रत्यक्ष ज्ञान प्रमाण इस कारण हो रहा था कि प्रत्यक्षसे जो देखा वही पाया जाता है बादमे इससे कहते है कि प्रत्यक्ष प्रमाणभूत है। प्रत्यक्षसे देखा कि यह सीप पड़ी है तो आगे बढ़कर जब उसे उठाया तो सीप ही मिल जाती है। तो निश्चय हुआ कि प्रत्यक्ष ज्ञान प्रमाण है और अनुमान ज्ञानको प्रमाण इस कारण कहा था कि अनुमान है सविकल्प ज्ञान। विकल्पमें जो बात मानी गई थी वह बात पायी गई, इस कारण अनुमान प्रमाण है। जैसे किसी घरमे धुवाँ दिख रहा था तो अनुमान किया कि यहाँ आग है और आगे जाकर देखा तो वहा आग मिल गई। इससे अनुमान भी प्रमाण माना गया लेकिन सम्बन्ध तो सब कल्पित हुआ करते हैं तो यह भी कल्पित हो गया तो फिर प्रत्यक्ष और अनुमान भी प्रमाणभूत नहीं ठहरे। स्मृतिसे ग्रहण किया जाने वाला सम्बन्ध कल्पित होनेपर अनुमान भी कल्पित बन जायगा। फिर इससे तुम्हारे सिद्धान्तका समर्थन नहीं हो सकता। क्षणिकवादमे कहा है कि 'सर्वं क्षणिकं सत्त्वात्'। समस्त पदार्थ क्षणिक हैं क्योंकि सत् होनेसे। तो अनुमान बनाया और इसमे सम्बन्धका स्मरण भी तो किया। अब प्रमाण भी अप्रमाण है। सम्बन्ध भी कल्पित है तो अनुमान भी कल्पित है, फिर पदार्थ क्षणिक है

यह भी नही सिद्ध हो सका।

स्मृतिकी अप्रमाणताके कारणमे प्रष्टव्य सम्बन्धकी विवेचनाशक्यता रूप तृतीय विकल्पका निराकरण—यदि कहो कि हम तीसरी बात मानते हैं अर्थात् सम्बन्ध होनेपर भी स्मृतिके द्वारा वह विषयभूत नही किया जा सकता है। अर्थात् स्मरण सम्बन्धका विषय नही करता स्मरणके द्वारा जो विषय किया जाता है सामान्य उसका तो असत्त्व है इसलिए स्मृति अप्रमाण है। क्षणिकवादियोके सिद्धान्तमे प्रत्यक्ष को छोडकर अन्य ज्ञान द्वारा, अनुमान द्वारा जो जाना जाता है सो पदार्थ नही जाना जाता किन्तु अन्यापोह जाना जाता है। अर्थात् चौकीको निरखकर जो सविकल्प जाना गया वहाँ कि यह चौकी है यह नही जाना गया। किन्तु चौकीके अतिरिक्त हाथी घोर आदिक अन्य कुछ नही है यो जाना गया। अन्यका जो परिहार है वह तो सामान्यरूप है, अभाव सब सामान्य हैं। तो स्मरणके द्वारा जो विषय किया गया वह तो सामान्य है और सामान्यका होता है असत्त्व इस कारण स्मरणज्ञान प्रमाणभूत नही है। समाधानमें कहते हैं कि यह बात तो अनुमानमे भी कही जा सकती है, अनुमानज्ञानके द्वारा भी जो विषय किया जाता है वह सामान्य है, अन्यापोह है। सामान्यतो असत् होता है इस कारण अनुमान भी अप्रमाण हो जायगा। यदि यह कहो कि प्रत्यक्षके द्वारा जो स्वलक्षण निश्चित किया गया है उसका अनुमानमें व्यभिचार नही है। कहते हैं कि यह बात स्मृति ज्ञानमे भी मान लो। स्मृति ज्ञानका जो लक्षण किया गया है वह स्मृति ज्ञानमे बराबर पाया जाता है।

लिङ्गलिङ्गि सम्बन्धकी अनुमानप्रवृत्तिहेतुभूततामे तीन विकल्प और उनमेसे तद्दर्शनरूप विकल्पका निराकरण—अच्छा यह बतलावो कि अनुमानकी प्रवृत्तिमें साधन साध्यका सम्बन्ध है ना। जैसे इस पर्वतमें अग्नि है क्योंकि धुआ होनेसे तो अग्नि और धुवाका जो सम्बन्ध है वह सम्बन्ध अनुमानमे प्रवृत्ति करनेका कारण है तो वह सम्बन्ध क्या सत्तामात्र होनेसे ही अनुमानमे प्रवृत्तिका हेतु है या उसके देखनेसे अनुमानमे प्रवृत्ति होती है या साध्य साधन सम्बन्धके स्मरण करनेसे अनुमानमे प्रवृत्ति होती है, ये तीन विकल्प किए गए। यदि कहो कि साध्य साधनका सम्बन्ध है बस इतनी सत्तामात्रमे ही अनुमानमें प्रवृत्ति हो जाती है तो फिर जब कोई आदमी किसी ऐसे द्वीपसे आये नालिकेर आदिक द्वीपसे, जहा अग्नि होती ही नही है जहाँके मनुष्य लोग जो मिले सो खा लेते हैं, ऐसे किसी द्वीपसे आया हुआ मनुष्य है उसे तो अग्नि और धूमके सम्बन्धमे कुछ ज्ञान भी नही है। उसे अगर धूमकी सत्ता मालूम हो जाया है धुवाँ इतना मात्रज्ञानसे अग्निका ज्ञान होजाना चाहिए। पर उसे तो अग्निका ज्ञान नही होता। जो नही जानता है दोनोको, व दोनोके सम्बन्धको यो उसे साधन देखनेसे साध्यका ज्ञान कैसे हो सकता है अथवा उसे साधनका ज्ञान ही नही और न फिर साध्य का ज्ञान हो सकता है। अविज्ञात पदार्थका भी सत्त्व सिद्ध हो जाय तो प्रत्येक एका-

तमतियोर्क बात, विरोधकी बात मान लेना चाहिए। इससे साध्य साधनका सम्बन्ध केवल अस्तित्व माननेसे अनुमानकी प्रवृत्तिका कारण नही होता।

लिङ्गलिङ्गिसम्बन्धकी अनुमान प्रवृत्तिहेतुभूततामे दिये गये शेष विकल्पोका निराकरण यदि कहो कि साध्य साधनका सम्बन्ध देखने मात्रसे अनुमानकी प्रवृत्तिका हेतु हो जाता है तो किसीने बाल्यावस्थामे अग्नि और धुवाका सम्बन्ध जाना था, अब वृद्ध दशामे जहाँ कि बुद्धि सठिया जाती है, स्मरण भूल जाता है ऐसी हालत मे धूमके देखनेसे अग्निका ज्ञान हो जाय पर अत्यन्त वृद्ध जहाँ सब बातें भूल जाती है, कोई बात याद ही नही रहती ऐसेके भी तो धुवा देखनेसे अग्निका ज्ञान नही होता यदि कहो कि उनको भी हो जाता जब कि स्मरण होता उस समय धूमके देखनेसे अग्निका ज्ञान वृद्धोको हो जायगा। तो कहते हैं कि तब तो स्मरणज्ञान प्रमाण हुआ यही तो सिद्ध हुआ। बतलावो कितनी अधेरकी बात है कि स्मृति ज्ञान पूर्वक अनुमानको तो माना अनुमानकी प्रमाणता स्मृतिकी बदौलत है और फिर स्मरणका निराकरण करें तो यह कितनी बेहूदी बात है। यदि स्मरणका निराकरण किया जाता है तो अनुमानका भी निराकरण हो बैठता है। अनुमान ज्ञान बने इसमें कारण है स्मरण ज्ञान और स्मरण ज्ञान तो मानते नही, तब फिर अनुमान ज्ञान कैसे बन सकता है।

समरोपव्यवच्छेदक होनेसे स्मृति ज्ञानकी प्रमाणरूपता स्मरण ज्ञान प्रमाणभूत है क्योकि स्मरण ज्ञान सशय विपर्यय अनध्यवसाय आदिक ज्ञानका निराकरण करने वाला है इस कारण अनुमानकी तरह प्रमाण है। जैसे अनुमान ज्ञान सशय विपर्यय, अनध्यवसायका निराकरण करनेसे प्रमाणभूत है तो यही बात स्मरणमे समझिये। इस प्रसगमे यह भी नही कह सकते कि स्मरणका विषयभूत जो सम्बन्ध आदिक है उसमे समारोप ही नही हो सकता तो सशय विपर्यय अनध्यवसाय नही हो सकता। फिर कैसे निराकरण किया जाय। स्मरण ज्ञानमे भी किसीमे बराबर सशय, विपर्यय अनध्यवसाय हो सकता है। जैसे कोई पुरुष स्मरण करना चाहे और स्मरण मे नही आता तो यह अनध्यवसाय हुआ, कोई भजन बोलते हुएमे बीचमे भूल गया अब वह ख्याल बनाता है और ख्यालमे नही आता है एक सामान्य सी झलक तो रहती है कुछ ऐसा सो, पर ख्याल मे नही आता। कभी कभी स्मरण उल्टा भी हो जाता है। कभी स्मरणमे ही सशय हो बैठता, यह बात नही कह सकते कि स्मरण ज्ञानमे सशय, विपर्यय अनध्यवसाय नही होते तो अनुमानज्ञान बनाते समय दृष्टान्त क्यो दिया करते, जैसे अनुमान ज्ञान किया कि इस पर्वतमे अग्नि है, धुवाँ होनेसे, इतना सुनकर दूसरा सुनने वाला न माने तो वहाँ दृष्टान्त देता है अथवा स्वय अपने ज्ञानको विवाद दृढ करनेके लिए वह स्मरण करता है ओह ठीक है, रसोईघरमे भी तो यही बात है कि धुवाँ देखा और वहाँ अग्नि थी तो अनुमानज्ञानमे जो साधर्म्यका दृष्टान्त दिया जाता उससे सिद्ध है कि स्मरणमे कोई कमजोरी आयी, उसको दूर करनेके लिए उस स्मरण

को पुष्ट बतानेके लिए अनुमान ज्ञानमे दृष्टान्त दिया जाता है। अनुमान ज्ञानमें जो दृष्टान्त भी दिया जाता है वह स्मरणका कारणभूत है, नही तो अनुमान ज्ञान करते समय बताते समय केवल हेतु ही कह देवे, और कुछ न कहे चूंकि अनुमान ज्ञानके अवयवोके दृष्टान्तसे भी कहना होता है इस कारण सिद्ध है कि स्मरणके विषयभूत सम्बन्धके बारेमे भी संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय सम्भव होते हैं। जब स्मरणमे समाक्षेप हो सकता है तो उसका निराकरण भी कर दिया जाता है तब स्मरण ज्ञान प्रमाण हो जाता है।

परोक्षज्ञानके भेद कारण आदि वर्णन करनेका प्रकरण—परोक्षज्ञानके भेद कहे जा रहे हैं। परोक्षज्ञान स्मृति प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम ५ भेद रूप हैं उन ५ भेदोमेसे स्मरण ज्ञानकी चर्चा चल रही है। जब पहिले जाने हुए पदार्थ के सस्कारका उद्बोध होता है अर्थात् कोई पदार्थ इतनी दृढतासे पहिले जाना गया था कि उसके धारणा ज्ञान बन गया था तो अब धारणाका उद्बोध होना है। अपने आप या कोई चिन्ह निरखकर किसी भी प्रकार धारणाका उद्बोध होनेपर जो तत् रूपकी मुद्रामें ज्ञान बनता है—ओह ! वह है, वह होगा, वह था, तत्रूपसे जिसकी मुद्रा बनती है ऐसा विज्ञान स्मरण ज्ञान होता है। स्मृतिज्ञान बिना तो कुछ व्यवहार भी नही बन सकता। प्रत्यक्षज्ञान और स्मृति ज्ञानमे प्रकट अन्तर मालूम होता है। अथवा अनुमान आदिक ज्ञानमे और स्मृतिज्ञानमे स्पष्ट अन्तर मालूम होता है। स्मरणका क्या विषय है। अनुभूत पदार्थके विषयमे जो तद्रूपसे एक ज्ञानोद्बोध होता है उसका नाम स्मरण ज्ञान है। आप सब अपने आपमे विचार सकते हैं कि हम कितना स्मरणज्ञान किया करते हैं। बचपनकी याद आती है तो यह याद कौनसा ज्ञान है। प्रत्यक्ष ज्ञान तो है नही, क्योकि इन्द्रियसे सामने कुछ समझा जाय तो उसको कहते हैं साव्यवहारिक प्रत्यक्ष। सो तो हो नही रहा है। बचपनके ज्ञानका कुछ अनुमान ज्ञान भी नही है, तो अपनेपर बीती हुई बातोका स्मरण चल रहा है यह आगम आदिक भी नही है। स्मरण ज्ञान स्वतंत्र ज्ञान है, अर्थात् आत्माकी जो ज्ञान शक्ति है आत्माके सहज ज्ञानगुण का एक इस प्रकारका परिणमन है, जिसे हम स्मरण ज्ञान कहा करते हैं ये ज्ञान कोई स्वतन्त्र-स्वतन्त्र पदार्थ नही हैं। जो एक आत्मा है उस आत्माका अनेक वातावरणोमे, अनेक साधनोमे जो जो ज्ञान व्यक्त होते हैं वे उस ज्ञान गुणके परिणमन कहे जा रहे हैं। सो यहाँ परोक्षज्ञान परिणमनोके भेद बताये जा रहे हैं। आत्मा तो ज्ञान स्वभाव मात्र है, अखण्ड है अभिन्न है। वास्तवमे उसमें भेद नहीं है किन्तु तीर्थ प्रवृत्ति चलानेके लिए लोगोको यथार्थ तत्त्वकी बात समझानेके लिए उसमे भेद किए जाते हैं और ये सब भेद गुणरूप होते हैं और परिणमन रूप होते हैं। ज्ञान गुणका जो परिणमन है वह परिणमन कितने प्रकारका होता है, किन-किन साधनोसे होता है उन प्रकारोका यह वर्णन किया जा रहा है।

अविशद्बोधात्मक परोक्षप्रकारभूत स्मृतिज्ञानकी प्रमाणरूपता—ज्ञानके दो भेद हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्षका वर्णन द्वितीय अध्यायमे किया गया है। इस अध्यायमे परोक्षज्ञानका वर्णन किया जा रहा है। परोक्षज्ञानका लक्षण अविशदपना है जो अस्पष्टज्ञान होता है उसे परोक्षज्ञान कहते है। जैसे आखोसे देखकर जो पदार्थका स्पष्ट ज्ञान होता है इस तरहका स्पष्ट ज्ञान स्मरणमे तो नही हुआ करता लेकिन अपने उपयोगके सामने वह स्मरण की हुई चीज साफ विदित होती है फिर भी वह विशद ज्ञान नही है। तो प्रत्यक्ष ज्ञानसे भिन्न यह स्मृतिज्ञान है और स्मरणज्ञानके आधारपर स्मरण प्रत्यभिज्ञान तर्क अनुमानादि ज्ञान बना करते हैं। अगर स्मरणको न माना जाय तब फिर कुछ भी नही बन सकता। शास्त्र कैसे पढा जाय? वाच्य-वाचक सम्बन्धका स्मरण तो है नही। कल तक जो जाना था उसका स्मरण होता नही है तो अज्ञानी जन कैसे उस तत्त्वको प्रमाण कर लेंगे? इस कारण स्मृतिज्ञान प्रमाण है और वह अविशद होनेसे परोक्ष ज्ञान है।

प्रत्यभिज्ञानका स्वरूप और एकत्र प्रत्यभिज्ञानकी मुद्रा—परोक्ष प्रमाणोके भेदोमे द्वितीय भेद प्रत्यभिज्ञान प्रमाणका है। अब उस प्रत्यभिज्ञान प्रमाण के कारण और स्वरूप बतानेके लिये सूत्र कहते हैं.—

दर्शनस्मरणकारणक सङ्कलन प्रत्यभिज्ञानम्। तदेवेद तत्सदृश तद्विलक्षण तत्प्रतियोगीत्यादि ॥ ५ ॥

प्रत्यभिज्ञानका स्वरूप और एकत्वप्रत्यभिज्ञानकी मुद्रा—दर्शन और स्मरण हैं कारण जिसके ऐसे सकलनात्मक ज्ञानको प्रत्यभिज्ञान कहते है। उसकी मुद्रायें यह वही है, यह उसके सदृश है, यह उससे विलक्षण है, यह इसमे इसका प्रतियोगी है इस तरहकी हुआ करती हैं। प्रत्यक्ष अर्थात् साव्यवहारिक प्रत्यक्षमे वर्तमान समयमे जो अभिमुख पदार्थ है उसका बोध होना है और उस बोधके समयमे उसका अनुभवन है, इसके पश्चात् फिर ये ही चीज अनुभूत कहलाने लगती हैं, विज्ञान जान लिया। इस जाननमे अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चार ज्ञान हुए। यदि किसी ज्ञानमे अवग्रह ईहा तक ही हो सके, अवाय धारणा न बने, उसके सम्बन्ध मे फिर स्मरण ज्ञान न हो सकेगा, अवाय तक भी हो जाय, किसी पदार्थका निश्चय भी हो जाय, पर धारणा न बने तो भी स्मरण ज्ञान नही बन सकता। धारणा ज्ञान होनेके बाद उसे धारणाका उद्बोध होनेपर स्मरणज्ञान होगा। तो प्रत्यक्ष ज्ञानका विषय तो वर्तमानमात्र है। इसे साव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहो अथवा दर्शन कहो। दर्शन मे तो केवल वर्तमानका बोध है और स्मरणमे अतीत पदार्थके सम्बन्धमें बोध है, किंतु प्रत्यभिज्ञानमे वर्तमान दर्शन और अतीतका स्मरण इन दोनोमे जोड करने वाला विज्ञान होता है। जैसे यह वही पुरुष है जिसे गत वर्ष बम्बईमे देखा था। तो गत

वर्षमे उसके देखनेका तो स्मरण चला और सामने जो देखा गया उसका दर्शन हुआ प्रत्यक्ष हो रहा, अब इस प्रत्यक्षमे और उस स्मरणमे तो यह प्रत्यभिज्ञान नहीं है, पर दर्शन और स्मरणका कारण पाकर जो सकलनरूप ज्ञान है वह प्रत्यभिज्ञान है, यह वही पुरुष है, न तो इसको प्रत्यक्ष कह सकते, क्योंकि प्रत्यक्षकी मुद्रा है यह, न इसे स्मरण ज्ञान कह सकते, स्मरण ज्ञानकी मुद्रा है यह। अतः यह वही है यह विज्ञान दर्शनसे भिन्न है और स्मरणसे भिन्न है। इसे एकत्व प्रत्यभिज्ञान कहते हैं।

सादृश्य और वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञानकी मुद्रा—प्रत्यभिज्ञानकी दूसरी मुद्रा है सत् सदृश। जङ्गलमें जा रहे थे कि वहा रोझ देखा। उस रोझको देखकर यह ज्ञान होना कि यह रोझ गायके समान है। यह ज्ञान न तो स्मरणमे गर्भित है और न दर्शनमे गर्भित है। क्योंकि दर्शनमें तो यह ज्ञान आया है कि यह है और स्मरणमे गायका स्मरण है, किन्तु न तो यहा दर्शनकी बात चल रही है न स्मरणकी बात चल रही है दर्शन और स्मरण दोनो होनेपर दर्शन और स्मरणके कारणसे जो एक सकलन ज्ञान होता है दर्शनके विषयभूत पदार्थमे और स्मरणके विषयभूत पदार्थमे जो एक सदृशताको जोड लगाया गया है वह है प्रत्यभिज्ञानका विषय। इसे कहते हैं सादृश्य प्रत्यभिज्ञान। प्रत्यभिज्ञानकी तीसरी मुद्रा है तद्विलक्षण। जैसे उस रोझको देखकर यह रोझ भैंसासे विलक्षण है ऐसा ज्ञान हो तो इसमे रोझका तो दर्शन है, भैंसाका स्मरण है और दोनोंमे एक जोड लगाया है असमानताका। यह रोझ भैंसासे विलक्षण है तो इस वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञानमे न तो केवल दर्शन विषयभूत है न केवल स्मरणकी बात है, किन्तु दर्शन और स्मरणके कारणसे हुआ जो एक विलक्षणताका जोडरूप ज्ञान है वह विषयमे आया है।

प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञानोंकी मुद्रायें—प्रत्यभिज्ञानमे चौथी मुद्रा है प्रतियोगी की जो कि अनेक मुद्रावोमे बँधे हुए हैं, जिनके भेद अनेक किये जा सकते हैं। जैसे कहा कि यह पेन्सिल उस पेन्सिलसे छोटी है तो इसमे लघुताकी प्रतियोगिता की गई है वह मदिर इस मदिरसे अधिक दूर है तो इसमें भी दोनोंकी प्रतियोगिता की गई है, यह बच्चा उस बच्चेसे अधिक बुद्धिमान है, यह भी प्रत्यभिज्ञान है। यह बच्चा तो दर्शन का विषय हुआ और उस बच्चेका स्मरण हुआ और उसमें बुद्धिमत्ताकी अधिकता प्रतियोगमें लगाई गई, तो प्रतियोगी विज्ञान अनेक तरहके होते हैं। इस तरह प्रत्यभिज्ञानके विषयमें न तो केवल प्रत्यक्षकी बात है न स्मरणकी ही बात है किन्तु प्रत्यक्ष और स्मरणके कारणसे उत्पन्न हुआ जो एक दूसरी बातका ग्रहण जोडरूप विज्ञान, चाहे एकत्वका जोड हो या सादृश्यका जोड हो या विसदृशका जोड हो या अन्य आपेक्षिक बातें तथा लक्षण देखकर लक्ष्यका विज्ञान आदि ये सब प्रत्यभिज्ञान कहलाते हैं।

प्रत्यभिज्ञानकी प्रत्यक्ष गर्भितता होनेसे असिद्धिकी आशङ्का—अब

यहाँ शङ्काकार कहता है कि प्रत्यभिज्ञान तो प्रत्यक्ष प्रमाणरूप है, यह तो प्रत्यक्ष प्रमाण है खास, उसे परोक्षरूप क्यों कहा जा रहा है ? युक्तिमें भी देखो कि प्रत्यभिज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाणरूप है क्योंकि प्रत्यभिज्ञान इन्द्रियके अन्वयव्यतिरेक-पूर्वक होता है। देखो ना जब हुआ ज्ञान एकत्व आदिकका तो इन्द्रियके अन्वयव्यतिरेकसे हुआ। इन्द्रियके व्यापार बिना प्रत्यभिज्ञान होता नहीं और इन्द्रियके व्यापारमें प्रत्यभिज्ञान होता है इस कारण प्रत्ययभिज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाणरूप है। जैसे कि अन्य प्रत्यक्ष होते हैं अथवा इन्द्रियका अन्वयव्यतिरेक पाया जाता है। यह भी नहीं कह सकते कि स्मरणपूर्वक होता है प्रत्ययभिज्ञान, इस कारण इसमें प्रत्यक्षपना नहीं घट सकता। शङ्काकार कह रहा है कि कोई यह भी नहीं कह सकता कि प्रत्यभिज्ञान चाहे एकत्वका प्रत्यभिज्ञान हो, चाहे सादृश्यका प्रत्यभिज्ञान हो ये सब स्मरणपूर्वक हुए हैं, इस कारण यह ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं कहला सकता। शङ्काकार उत्तर देता है कि इस तरह प्रत्यक्षका निषेध नहीं किया जा सकता, क्योंकि विद्यमान अर्थका इन्द्रियसे सम्बन्ध हुआ है। प्रत्यभिज्ञान ज्ञान करते समय चाहे वह स्मरणके पश्चात् क्यों न हुआ हो, लेकिन उसमें इन्द्रियका सम्बन्ध तो जुटा, तो इन्द्रियके सम्बन्धसे जो ज्ञान हुआ विद्यमान अर्थका वह प्रत्यक्ष ही कहलायगा, यह नियम नहीं बनाया जा सकता कि जो स्मरणसे पहिले इन्द्रियजन्य ज्ञान हो वह तो प्रत्यक्ष कहलाये और स्मरणके बाद जो ज्ञान हो वह प्रत्यभिज्ञान आदिक कहलाये। ऐसा कोई वचन न तो कोई राजाके कानून में कि जो स्मरणसे पहिले ज्ञान हो तो वह प्रत्यक्षज्ञान होता और न लोकव्यवहारमें भी है। यह भी बात नहीं है कि स्मरणके बाद इन्द्रियका काम नहीं रहता। यह वही देवदत्त है जिसे पूर्वमें देखा था, इस विज्ञानमें स्मरणके पश्चात् भी आज एक वर्ष गुजरनेके बाद भी इन्द्रियके प्रवृत्ति तो चल रही। यह मनुष्य इन्द्रियसे देखा जा रहा है इस कारण यह प्रत्यक्ष ज्ञान है। इससे यह मान लेना चाहिये कि इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्धमें जो विज्ञान होता है वह सब प्रत्यक्ष है। चाहे वह स्मरणके पहिले इस तरहका इन्द्रियजन्य ज्ञान हो या स्मरणके पश्चात् इन्द्रियजन्य ज्ञान हो वह सब प्रत्यक्ष कहा जायगा। और, इस प्रत्यक्ष ज्ञानमें गृहीतग्राहीपना भी नहीं है, क्योंकि अनेक देश अनेक कालमें अवस्थासे युक्त एक सामान्य द्रव्य गुण आदिक इन ज्ञानोंके विषयभूत हैं इसलिए यहाँ भी अपूर्व अर्थका ग्रहण हुआ है, इससे धारावाही ज्ञान भी नहीं कह सकते।

प्रत्यभिज्ञानको प्रत्यक्षसे विलक्षण न माननेपर आपत्तियां - अब प्रत्यभिज्ञानको प्रत्यक्षरूप माननेकी आशङ्काका उत्तर देते हैं कि उक्त आशङ्का ठीक नहीं है प्रत्यभिज्ञानमें इन्द्रियके अन्वयव्यतिरेककी अनुसारिता है यह बात सिद्ध नहीं होती। प्रत्यभिज्ञान इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्धसे उत्पन्न नहीं होता। जो इन्द्रिय पदार्थके सम्बन्धसे कहा उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहलो, पर यह तो इन्द्रिय और अर्थके सम्बन्धसे होने वाले ज्ञानसे विलक्षण ज्ञान है। यदि प्रत्यभिज्ञानको प्रत्यक्ष ज्ञानसे विलक्षण ज्ञान न मानोगे तो

किसी भी पुरुषको पहिली बार देखनेपर वहाँ भी प्रत्यभिज्ञान बन जाना चाहिये। जैसे किसी चीजको अभी तक नही देखा, कोई बडा आविष्कार जैसे हवाई जहाज जिसने अभी तक नही देखा वह हवाई जहाज देखता है तो उसे देखनेके साथ प्रत्यभिज्ञान तो नही होता। तुमने तो यह नियम बनाया कि इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्धसे ज्ञान होने से प्रत्यभिज्ञान भी प्रत्यक्ष है तब तो जिस-जिस पदार्थका इन्द्रियके सम्बन्ध होनेपर ज्ञान हुआ वह सब प्रत्यभिज्ञान कहा जाना चाहिये। यदि यह कहो कि किसी चीजको फिर देखनेपर पहिले देखनेसे जो सस्कार बनाया था उस सस्कारके प्रबोधसे उत्पन्न हुआ जो स्मरणज्ञान उसकी सहायता लेकर ये इन्द्रियाँ जानती हैं, यह भी बात गलत यो है कि प्रत्यक्षज्ञान किसी दूसरे ज्ञानकी अपेक्षा नही रखा करता। अन्य ज्ञानोमे तो है यह बात कि दूसरे ज्ञानकी अपेक्षा रखे पर प्रत्यक्षज्ञानमें नहीं है यह कि किसी दूसरे की अपेक्षा रखे। जैसे स्मरण हुआ किसी चीजका तो पहिले जाने हुएकी अपेक्षा रखनी पडी। प्रत्यभिज्ञान हो तो इसमें दर्शन और स्मरणज्ञानकी अपेक्षा आयेगी किन्तु आँखोसे किसी चीजको देख लिया, प्रत्यक्ष ज्ञान हो गया तो यह किस ज्ञानकी अपेक्षा रखता है? प्रत्यक्षज्ञान स्मृतिकी भी अपेक्षा नही रखा करता और यदि प्रत्यक्ष स्मृति ज्ञानकी अपेक्षा रखले तो फिर अपूर्व अर्थका साक्षात्कार फिर नही किया।

प्रत्यक्ष और स्मरणसे भिन्न ही प्रत्यभिज्ञान माननेकी अनिवार्यता—यह भी कहना अयुक्त है कि अनेक देश अनेक कालकी अवस्थासे युक्त सामान्य द्रव्य आदिक वस्तु इस प्रत्यभिज्ञानका प्रमेय है, क्योंकि अयुक्त है यह बात कि देश आदिकके भेदसे भी कोई प्रत्यक्ष होता है तो वह भी आँखासे सम्बद्ध अर्थका ही प्रकाश करता हुआ प्रतीत होता है। अनेक भेद पड जानेसे प्रत्यक्षकी विधिमे अन्तर न आ जायगा। यह यो अयुक्त है कि प्रत्यभिज्ञान इन्द्रिय और पदार्थसे सम्बद्ध बातको नही जानता। इसका विषय ही प्रत्यक्ष ज्ञानके विषयसे विलक्षण है। इसका विषय क्या है कि पूर्व पर्याय और उत्तरपर्याय, इन दोनोमे जो एकता है वह प्रत्यभिज्ञानका विषय है। जैसे यह वही देवदत्त है तो 'यह" कहकर देवदत्तकी जो अवस्था जानी और "वह" कहकर जो वर्षभर पहिलेके देवदत्तकी जो अवस्था जानी इस बीचके लम्बे समयमे वह एक ही रहा आया ऐसा जो पूर्वउत्तर पर्यायमे रहने वाला जो एकत्व है वह प्रत्यभिज्ञानका विषय है अथवा सादृश्य आदिकमे देखिये। यह रोझ गौके सदृश है। तो वर्तमान है रोझ और पूर्व विज्ञात है गौ, इन दोनोके प्रसगमे सम्बन्धमे जो सदृशता है वह सदृशता प्रत्यभिज्ञानका विषय है। प्रत्यभिज्ञानका विषय इन्द्रिय और पदार्थसे सम्बद्ध पदार्थ नहीं हैं। प्रत्यक्ष तो वर्तमानको ही ग्रहण करता है। और, जो यह कहे कि स्मरण करने वाले पुरुषके भी पहिले देखे हुए पदार्थके प्रतिभाससे उत्पन्न हुई जो मति है वह चक्षुसे सम्बद्ध होनेपर प्रत्यक्ष बन जाती है। यह भी कहना गलत है क्योंकि इन्द्रियजन्य ज्ञान स्मृतिके विषयके पूर्वरूपसे ग्रहण करने वाले होते हैं यह नियम नहीं है। प्रत्यक्षसे तो जब चाहे हो, तब भी अभिमुख और नियमित पदार्थका बोध

हुआ है तब वह प्रत्यक्ष है । प्रत्यभिज्ञानमे न तो प्रत्यक्षका विषयभूत पदार्थ आया, किन्तु दोनो ज्ञानोसे जाने हुएमे जो एक नई बात जानी जा रही है वह सम्बधित सादृश्य आदि विषय हुआ है प्रत्यभिज्ञानमे ।

प्रत्यभिज्ञानके अभावमें लोकव्यवहार व प्रवृत्तिके उच्छेदका प्रसग – देखिये ! प्रत्यभिज्ञान प्रमाण अलगसे न माना जाय प्रत्यक्ष स्मृति आदिकसे भिन्न न माना जाय तो फिर लोकव्यवहार भी समाप्त हो जायगा किसीको उधार दिया रुपया पैसा, अब हम उससे तब ही ले सकते हैं जब एकत्व प्रत्यभिज्ञान बने कि यह वही पुरुष है जिसे उधार दिया था । केवल प्रत्यक्षमे लेनदेनका व्यवहार नही बन सकता है । तो लेनदेनका व्यवहार न बने अथवा कुछ भी व्यवहार न बने कोई चीज है जिससे रोटी बन जाती है, चाहे इस ज्ञानका बारबार उपयोग न करे लेकिन यह हर समय झलक देती रहती है । प्रत्यक्षज्ञानका विषय अलग कोई न माना जाय तो न कोई व्यवहार बन सकता न कोई कही आ जा सकता । जैसे मान लो आज अमुक गाँव जाना है तो एक प्रत्यभिज्ञान बना हुआ है कि उस गाँव जाना है जिस गाँवका हमने प्रोग्राम बनाया या जिस गाँवको हमने कई बार देखा । तो चलना बोलना सब कुछ प्रत्यभिज्ञान बिना नही बन सकता । किसी मनुष्यसे बोला ही कैसे जायगा । बोलते तभी हैं जब कोई प्रयोजन हो और प्रयोजन प्रत्यभिज्ञान बिना नही बन सकता । यह मेरा वही साथी है जो इस इस प्रकारसे रहता है । यह हमारा काम देगा या हमे इससे सुविधा है । कुछ भी बात प्रत्यभिज्ञानमे आये तब हमारे बोलचालका व्यवहार होता है । या केवल प्रत्यक्ष ही प्रत्यक्ष रहे तो कैसे बोला जायगा । प्रयोजन भी नही रह सकता । सब नये नये हैं । फिर तो एकत्व माना ही नही जा सकता है । तो प्रत्यभिज्ञान ज्ञान माने बिना न तो लोक व्यवहार सध सकता और न गुजारा ही हो सकता है ।

प्रत्यक्षमे स्मृतिके विषयभूत पूर्वरूपकी ग्राहकताका अभाव – इन्द्रिय ज्ञान स्मृतिके विषयके पूर्वरूपको ग्रहण करने वाला नही है । फिर इन्द्रियजज्ञान कैसे उसका प्रतिभास करेगा । पहिले देखे हुए पदार्थका विज्ञान करना हो तो उसका प्रतिभास कहा जाता है और उसका ऐसा प्रतिभास यदि हो गया तो इन्द्रियज्ञानके परोक्ष अर्थ ही तो ग्रहण किया फिर इन्द्रियज प्रत्यक्षमे स्पष्ट प्रतिभासपना तो नही रहा । मानलो कि इन इन्द्रियोने स्मृतिका सहारा लेकर जाना पर जो जाना वह इस प्रत्यक्ष ने जो भी जाना वह अस्पष्ट ही तो जाना । इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्धसे जैसा एक देश विशद ज्ञान होता है वैसा विशद ज्ञान तो नही हो सका इस कारण स्मृति ज्ञान का विषय अन्य है । साव्यवहारिक प्रत्यक्षका विषय अन्य है और प्रत्यभिज्ञानका विषय अन्य है । यदि स्मृतिके विषय स्वभावरूपसे जान लिया जाय तो स्मरणका विषयभूत पूर्वस्वभाव वर्तमानरूपसे प्रतिभासित हो गया तब यह विपर्यय ज्ञान हो गया । जितने

भी प्रत्यभिज्ञान हो रहे हैं प्रत्यक्ष फिर तो सब विपरीतख्याति हो ज येंगे।

वैशद्यका अभाव होनेसे प्रत्यभिज्ञानकी प्रत्यक्षरूपताकी असिद्धि - भैया! विशद जो लक्षण बनाया है प्रत्यक्षका उसकी जरा याद करो। अन्य ज्ञानोंके व्यवधान बिना जो ज्ञान होता है उसे विशद ज्ञान कहते हैं। यह स्पष्ट ज्ञानकी परिभाषा जो ज्ञान किसी अन्य ज्ञानकी अपेक्षा रखकर बने वह ज्ञान स्पष्ट नहीं हो सकता। जैसे स्मरण ज्ञान पूर्व प्रत्यक्षकी अपेक्षा करके होता है याने अन्य ज्ञानकी अपेक्षा रखता है इसलिये स्मरणमे आया हुआ पदार्थ दिखने वाले पदार्थकी तरह स्पष्ट ज्ञात नहीं होता। प्रत्यभिज्ञानमे भी स्मरण और दर्शन इन ज्ञानोकी अपेक्षा पड़ी है इसलिए प्रत्यभिज्ञानका विषय भी विषद (स्पष्ट) नहीं हो सकता। प्रत्यक्षका विषय आखोसे जो दीखा तुरन्त जो जाना, इस ज्ञानने अन्य किसी भी ज्ञानकी अपेक्षा नहीं की तभी यह विशद है। जो मुख्य प्रत्यक्ष होते हैं उनमे भी यही बात है। अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान केवलज्ञान ये ज्ञान भी अन्य ज्ञानोकी अपेक्षा लेकर नहीं जाना करते, ये भी अन्य ज्ञानोंकी अपेक्षा बिना अपने आप स्पष्ट जान लेते है इसलिए प्रतीत्यन्तरके व्यवधानसे रहित जो प्रतिभास होता उसे विशदज्ञान कहते हैं। य वैशद्य निर्मलता नहीं है प्रत्यभिज्ञानमे इसलिए प्रत्यभिज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं कहा ज सकता है। इस तरह यह प्रत्यभिज्ञान स्मरणमे और प्रत्यक्षमे एक अलग अनूठा ज्ञान हुआ है वह प्रत्यभिज्ञान इस प्रयोगमे जानना चाहिये। वह ही है यह, यह मेरे सदृश है, यह उससे विलक्षण है, यह उससे छोटा है यह उससे बड़ा है यह उससे दूर है, यह उससे निकट है यह जो एक सींग वाला है सो गैंडा है आदि अनेक प्रकारोंमे दर्शन और स्मरणके बीच जो जोड़ रूप ज्ञान है वे सब ज्ञान प्रत्यभिज्ञान अपनेमे बड़ा महत्त्व रखने वाला ज्ञान है जिससे शास्त्र प्रवचन स्वाध्याय आदिक ये सब चल रहे हैं। तो प्रत्यभिज्ञान प्रत्यक्षज्ञान नहीं हो सकता है यह स्वतन्त्र प्रमाण है।

ज्ञानके भेदोका सैद्धान्तिक पद्धतिके प्रकरणोमे समन्वय – दार्शनिक पद्धतिमें ज्ञानके दो भेद किये गए प्रथम एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष। प्रत्यक्ष ज्ञान के दो भेद किये गए हैं एक साव्यवहारिक प्रत्यक्ष दूसरा मुख्य प्रत्यक्ष। साव्यवहारिक प्रत्यक्षमे आभिनिवोधक ज्ञानका जो प्रथम भेद है मति उसे माना गया है और मुख्य प्रत्यक्षमे अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान, केवलज्ञान ये तीन ज्ञान लिए गए है। अब शेष बचे हुए स्मृति प्रत्यभिज्ञान तर्क, अनुमान और आगम ये ५ परोक्ष माने गए हैं। इन ५ मे सिद्धान्तदृष्टिसे स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमानका प्रथम भेद स्वार्थानुमान ये तो आभिनिवोधिक ज्ञानके भेद हैं अर्थात् मतिज्ञानके प्रकार है। परार्थानुमान तथा आगम ये दो श्रुतज्ञानके भेद हैं। इनमेसे प्रत्यभिज्ञान प्रमाणके इस प्रकरणमे अब उदाहरण देकर प्रत्यभिज्ञानके प्रकार दिखाये जा रहे हैं। जिन उदाहरणोंसे सर्वसाधारण मनुष्योंको भी स्पष्ट बोध हो जायगा।

यथा स एवाय देवदत्तः ॥ ६ ॥
गोसदृशो गवय· ॥ ७ ॥
गोविलक्षणो महिष· ॥ ८ ॥
इदमस्माद्दूरम् ॥ ९ ॥
वृक्षोऽयमित्यादि ॥ १० ॥

एकत्व प्रत्यभिज्ञान और सादृश्य प्रत्यभिज्ञानके उदाहरण जैसे कि यह वही देवदत्त है, यह है एकत्व प्रत्यभिज्ञानका उदाहरण। जो देवदत्त पहिले किसी समय जान लिया गया था वही देवदत्त अब सामने आया है। तो वर्तमान देवदत्त पर्यायको देखकर पूर्व देवदत्त पर्यायका स्मरण करके उन दोनोके बीचमे भी यह वही का वही था, इस प्रकार एकत्वका सकलन हुआ है इस प्रत्यभिज्ञानमे। प्रत्यभिज्ञाका सो लक्षण है, दर्शन और स्मरण है कारण जिसमे ऐसे सकलनको अर्थात् योगात्मक ज्ञानको प्रत्यभिज्ञान कहते हैं, सो यहाँ वर्तमान देवदत्तके दर्शन और पूर्वपरिज्ञात देवदत्तके स्मरणके कारणसे इन दोनो पर्यायोके बीच हुए एकत्वका परिज्ञान हुआ है। दूसरा उदाहरण है सादृश्य प्रत्यभिज्ञानका। यह रोझ गायके सदृश है। कोई मनुष्य जङ्गलमेसे गुजर रहा था, वहाँ रोझ दौडता हुआ दीखा तो उस रोझको देखकर इस पुरुषको गायका स्मरण हो आया। और रोझके दर्शन और गायके स्मरणके कारणमे उन दोनोके बीच सदृशताका ज्ञान कर लिया यह रोझ गायके सदृश है। इस परिज्ञान मे दर्शन तो हुआ रोझका और स्मरण हुआ गायका। तो रोझके दर्शन और गायके स्मरणके कारणसे उनमे सदृशताका योग कर दिया गया है। यह रोझ गायके सदृश है। इस सादृश्यको न तो प्रत्यक्ष हो जान सकता था जो कुछ जाना गया सदृशताका परिचय और न ही स्मरणके द्वारा सदृशताका परिचय होता है। सदृशताका परिचय सादृश्य प्रत्यभिज्ञानसे हुआ करता है।

वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञान व प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञानके उदाहरण—तीसरा उदाहरण दिया है वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञानका। भैंसेको देखकर गायका स्मरण करके उनमे विलक्षणताका परिज्ञान किया गया है। यह भैंसा गायसे विलक्षण है। यहा भी दर्शन तो हुआ है भैंसाका और स्मरण हुआ है गायका। भैंसेका दर्शन करके गायका स्मरण करके इन दोनो ज्ञानोके कारणसे उत्पन्न हुआ जो इन दोनोकी विलक्षणताका ज्ञान वह है वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञान। इसमे वैलक्षण्यका योग किया गया है। इन दोनो मे विलक्षणता है, विभिन्नता है। चौथा उदाहरण किया गया है प्रतियोगी प्रत्य-भिज्ञानका। यह इससे दूर है अथवा यह उससे दूर है। कहने वाला जहाँ बैठा है उस की दृष्टिमे जो एक माध्यम स्थान बना है उससे जितनी दूर यह पदार्थ है जिसके बारे मे कहरहे है उससे दूर वह द्वितीय पदार्थ है जिसका कि स्मरण किया जा रहा। यहा दर्शन और स्मरणके कारणसे जो दूरीका प्रतियोग किया गया है वह है प्रतियोगी

प्रत्यभिज्ञान। जैसे इस धर्मशालाके स्थानमे यह लगा हुआ मदिर पास है और बडा मन्दिर यहासे दूर है तो बडे मन्दिरका स्मरण करके और छोटे मदिरके बारेमे कहना कि यह मदिर बडे मदिरसे पास है। तो यह निकटताका प्रतिभोग बताया गया है। यह न तो केवल प्रत्यक्षज्ञानका विषय है और न स्मरणका विषय है। प्रत्यक्षमें है छोटा मदिर और स्मरणमें है बडा मदिर। तो इस प्रत्यभिज्ञानमे न तो छोटा मदिर विषयभूत हुआ न बडा मदिर विषयभूत हुआ। किन्तु उसकी दूरी विषयभूत हुयी।

शेष प्रत्यभिज्ञानोकी लाक्षण्यरूपता - ४ वें उदाहरणमे बचे हुए शेष समस्त प्रत्यभिज्ञान लगा लेना चाहिए। यह शाखामान वृक्ष है एक सीग वाला यह है गण्डक हस्ती इत्यादिक लक्षण लक्ष्य वाले अनेक विज्ञान लगा लिए जाते हैं। यह लेख उस लेखसे स्पष्ट है, अच्छा है यह प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान हुआ। इसका उत्तरपत्र उसके उत्तरपत्रसे अच्छा है यह प्रतियोग प्रत्यभिज्ञान है। इस जगहसे तो फलाना बाग ध्यानके लिए अच्छा है, ये सब प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान कहलाते हैं। प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञानोमे विषयोंके प्रकारकी सीमा नहीं है इसलिए उसकी कोई मुद्रा नहीं बन पाती है। जैसे कि एकत्व सादृश्य वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञानकी एक मुद्रा है इस तरह प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञानकी एक समान मुद्रा नही है। इसी प्रकार लक्षणोसे लक्ष्यके परिज्ञान मे, लक्षण्यप्रत्यभिज्ञानमे भी अनेक मुद्रा हैं।

प्रत्यभिज्ञान प्रमाणकी असिद्धिकी आशङ्का – यहा क्षणिकवादी शङ्का कर रहा है कि 'स एव अय' वह ही यह है आदिक जो प्रत्यभिज्ञान बना है वह ज्ञान नही है। स इस उल्लेख वाला ज्ञान तो स्मरण ज्ञान है और अय शब्दसे जिसका उल्लेख किया गया है वह प्रत्यक्ष प्रमाण है। तो यह दो प्रमाणोका समूह है प्रत्यक्ष और स्मरण। प्रत्यक्ष और स्मरण ज्ञानोसे व्यतिरिक्त कोई ज्ञान नही है जो प्रत्यभिज्ञान शब्दसे कहा जाय और ऐसा भी नही है कि प्रत्यक्ष और स्मरण दोनो ज्ञानोकी एकता हो जाय। दो ज्ञान हैं भिन्न भिन्न ज्ञान हैं, भिन्न भिन्न विषय हैं, दो ज्ञान मिल कर किसी एक ज्ञानरूप नही बन सकते हैं। यदि इस तरह दो ज्ञानोसे एक ज्ञान बना दिया जाय अर्थात् प्रत्यक्ष और स्मरणसे प्रत्यभिज्ञान बना दिया जाय तो प्रत्यक्ष और अनुमानको भी एक ज्ञान बना डालो। क्षणिकवादी कह रहे हैं कि प्रत्यभिज्ञान नाम का कोई स्वतन्त्र ज्ञान नही है। यदि कहो कि स्मरणज्ञानमे और प्रत्यक्षज्ञानमें स्पष्ट और अस्पष्टका फर्क है, प्रत्यक्षमे तो स्पष्ट बोध है, स्मरणमे अस्पष्ट बोध है इस कारण भेद है और इसी प्रकार प्रत्यभिज्ञानसे तो अस्पष्ट बोध है और प्रत्यक्षसे स्पष्ट बोध है, भेद तो बना हुआ है। तो कहते हैं इसी प्रकार प्रत्यक्ष और अनुमानमें भी भेद है। प्रयोजन यह है कि प्रत्यभिज्ञान नामका कोई प्रमाण अलगसे नही है क्षणिक वादी प्रत्यभिज्ञानको इस कारण भी प्रमाण नही मान सकते कि प्रत्यभिज्ञान नामका यदि कोई प्रमाण मान लिया जाय तो फिर पदार्थ नित्य सिद्ध हो जायगा। यह वही है इसमें

नित्य रना माया ना । तब तो सारा ही क्षणिकवाद उलट जायगा । क्षणिकवादके सिद्धान्तमे प्रत्यभिज्ञान नामका कोई प्रमाण नही है ।

प्रत्यक्ष और स्मरणसे व्यतिरिक्त प्रत्यभिज्ञानकी सिद्धि—उक्त शकाका अब उत्तर देते हैं कि प्रत्यभिज्ञान नामका प्रमाण है उसका विषय प्रत्यक्ष और स्मरण के विषयसे जुदा है। स्मरण और प्रत्यक्षज्ञानसे उत्पन्न हुआ जो पूर्व उत्तर पर्यायमे रहने वाला एक द्रव्य तद्विषयक जो सकलन ज्ञान है उसका विषय एकत्व है अर्थात् प्रत्यभिज्ञानने पूर्व और उत्तर पर्यायमे रहने वाले एकत्वका ज्ञान किया है यह एकत्व प्रत्यक्षका विषय नही बन सकता । क्योकि प्रत्यक्ष तो वर्तमान मात्र पर्यायको विषय करता है । यह पूर्वोत्तर पर्यायवर्ती द्रव्य स्मरणका विषय नहीं बन सकता, क्योकि स्मरण तो केवल अतीत पर्यायको ही ग्रहण करता है । वर्तमान और अतीत पर्यायके बीच रहने वाला जो एक आधार है,एकत्व है उसे प्रत्यभिज्ञानने विषय किया। यदि कहो कि प्रत्यक्ष और स्मरण दोनोसे जो सस्कार उत्पन्न हुआ उस सस्कारजनित कल्पना वाले ज्ञानसे एकत्व जाना गया है । वास्तविक कोई प्रत्यभिज्ञान नही। कहते हैं कि सस्कारजनित ज्ञान सही, उसीका नाम तो प्रत्यभिज्ञान है । अब जो एकत्व जाना गया वह कल्पना रूप है या वास्तविक है यह विषय दूसरा है । सो प्रमाणसे विचारनेपर एकत्व वास्तविक सिद्ध होता है ।

प्रत्यभिज्ञान प्रमाण न माननेपर अनुमान प्रमाणकी व्यर्थता—प्रत्यभिज्ञान प्रामाण्यके प्रसगमे दूसरी बात यह है कि प्रत्यभिज्ञान यदि न माना जाय तो क्षणिकवादमे जो यह अनुमान बनाया गया है यत सत् तत् सर्वं क्षणिक । जो सत् है वह सब क्षणिक है । यही क्या ? जितने भी अनुमान बनाये जायें, सब व्यर्थ हो जायेंगे यह प्रकृत अनुमान कहना यो व्यर्थ है कि क्षणिकवादमे दो प्रमाण माने गए हैं प्रत्यक्ष और अनुमान । तो प्रत्यक्ष तो क्षणिकको विषय करता है और अनुमान एकत्वकी प्रतीतिके निराकरणको करता है पदार्थ देखा प्रत्यक्षसे जाना तो क्या जाना ? क्षणिक जाना । जानते ही तो नष्ट हो गया । और, ऐसा ही क्यो ? पहिले नष्ट होता फिर जाना जाता । प्रत्यक्ष ज्ञान उस समय नही उत्पन्न होता जिस समय कोई पदार्थ है। क्योकि पदार्थ तो तब हुआ क्षणिक होनेसे जिस क्षणमे सत् बना । वह एक क्षण ही रहकर विलीन हो गया । अब द्वितीय क्षणमे हमारे ज्ञानने उसे परखा । जब वस्तु न रही तब प्रत्यक्षने जाना जिस समय वस्तु है वह उसके स्वरूप लाभका क्षण है । उसे पहिले बन जाने दे तब तो जानेगा ज्ञान । वह बना कि मिटा ? तब जाना प्रत्यक्षने । तो प्रत्यक्ष ज्ञान तो क्षणक्षयको विषय करता है किन्तु अनुमान ज्ञान क्षणक्षयको विषय करने वाला नही माना गया, किन्तु इस पदार्थमे एकत्वकी कल्पना हो बैठती है जीवो को कि यह वही है, उसको निराकृत करनेके लिए अनुमान बनाया गया है । अनुमानसे क्षणिक सिद्ध नही किया किन्तु अक्षणिक नही है यह सिद्ध किया है । तो इस प्रकार

अनुमान एकत्वकी प्रतीतिका निराकरण करनेके लिए बनाया जाता है, बौद्धोंके क्षणिक समझनेके लिए ज्ञान नहीं बनता, क्योंकि पदार्थोंकी क्षणिकता तो प्रत्यक्षसे ही सिद्ध होती है ऐसा क्षणिकवादमें माना गया है। यदि एकत्व सुन मानते नहीं तो निराकरण किसका करते? जब कुछ एकत्व नहीं है तो उसका निराकरण न बनेगा और एकत्व का निराकरण ही अनुमानका प्रयोजन है। तब अनुमान प्रमाण व्यर्थ हुआ।

अनुमान प्रमाणमें समारोप व्यवच्छेद मात्रकी अप्रयोजकता—यदि कहो कि अनुमान ज्ञान संशय, विपर्यय, अनध्यवसायको दूर करनेके लिए बनाया गया है यह बात भी ठीक नहीं है क्योंकि यह वही है इस प्रकारके एकत्वको जाने बिना तो संशय विपर्यय भी सम्भव नहीं हो सकते। यदि समारोपकी सिद्धिके लिए मानते हो कि यह वही है इसलिये ज्ञान हुआ करता है। तो सिद्ध हो गया ना कि प्रत्यक्ष और स्मरणसे भिन्न कुछ दूसरा ज्ञान है। फिर यह निषेध करना कि "प्रत्यभिज्ञान अर्थात् एकत्वका ज्ञान करने वाला ज्ञान प्रत्यक्ष और स्मरणसे भिन्न कुछ नहीं है", यह युक्त न रहा। और यह कहना कि समारोपके निषेधके लिए अनुमान बनाया जाता है। एकत्व कुछ नहीं है। इस की प्रतीति गलत है क्योंकि अनुमान समारोपके निषेधके लिए है। एकत्वके निषेधके लिए नहीं है सो कहना भी गलत है। समारोप केवल प्रत्यक्षमें नहीं होता अथवा स्मरणमें ही नहीं होता। किन्तु सर्वत्र समारोप सम्भव है। प्रत्यभिज्ञानमें भी संशय हो बैठता है। संशय, विपर्यय अनध्यवसायको समारोप कहते हैं। सभी ज्ञानोंमें ये संशय आदिक सम्भव है। जैसे हाथके नाखून काट दिया। अब १५ दिन बाद जो नाखून बढ़ गए, उन बढे हुए नाखूनको देखकर कहना कि यह वही नाखून है पर क्या है वही? वह तो कटकर कहीका कहीं चला गया था। तो यह विपर्यय हो गया। यह कहना चाहिये था कि यह नाखून उसके सदृश है जो १५ दिन पहिले काट दिया गया था। हो तो सदृश प्रत्यभिज्ञान और कह दिया कोई एकत्व प्रत्यभिज्ञान तो विपर्यय हुआ। कोई दो लडके एक साथ उत्पन्न हुए जिनकी सकल भी बिल्कुल एक सी है। उनका नाम भी कुछ रख दिया। मानो एक लडकेका नाम है देवेन्द्र और एक का नाम है सुरेन्द्र। अब देवेन्द्र नामक लडकेको देखकर कोई यह कहे कि यह देवेन्द्रके समान है तो यह सदोष ज्ञान है ना? यह विपरीत हो गया और देवेन्द्रको ही देखकर कहा कि यह सुरेन्द्र ही है तो वह भी विपर्यय हो गया। तो प्रत्यभिज्ञान आदिकमें भी समारोप चला करता है, इसलिए यह कहना व्यर्थ है कि अनुमान प्रमाण समारोपके निषेधके लिए बनाया गया है। जैसे प्रत्यक्षका विषय है ऐसे ही स्मरणका भी स्वतन्त्र विषय है और प्रत्यभिज्ञानका भी स्वतन्त्र विषय है।

प्रत्यभिज्ञान प्रमाण न माननेपर प्रत्यक्ष और अनुमानकी भी अप्रमाणताका प्रसंग—अब एक अन्य बात यह है कि प्रत्यभिज्ञानका निषेध करनेपर फिर तुम यह कैसे कह सकते हो कि अभ्यास दशामें और अनभ्यास दशामें प्रत्यक्ष

और अनुमानके प्रामाण्यकी सिद्धि स्वत. और परत: होती है ।-प्रत्यक्षमे प्रामाण्य स्वत माना है क्षणिकवादने और अनुमानमे परत: माना है । किसी तरह माननेमे प्रत्यभिज्ञानको नहीं माननेपर प्रत्यक्ष भी अप्रमाण हो जायगा । यह अनुमान भी अप्रमाण हो जाएगा । कैसे ? जैसे २० हाथ दूर खडे रहकर चमकती हुई सीपको सीप जाना और फिर आगे बढकर उस सीपको हाथमें लगकर वह कहता है कि जो हमने जाना था वही यह निकल आया । हमने सीप जाना था सो देखो यह सीप ही पायी गई । तो इस ज्ञानसे, प्रत्यक्षसे प्रमाणकी दृढता आयी कि जो प्रत्यक्षसे जाना था वह बिल्कुल सही है । तो यह दृढता एकत्वने करायी कि नहीं ? जो देखा था वही पाया, इसमे एकत्व हुआ ना विषय । अब एकत्व तुम मानते नहीं तो फिर प्रत्यक्षमे अविसम्वादता कैसे सिद्ध करोगे । जैसे दो आदमी खड़े हुए हैं जिनमें एक कह रहा कि वह सीप है, दूसरा विवाद करने लगा—अजी नहीं, तुम्हे भ्रम हो गया है । जब दूसरेको उस उस चीजके निकट ले जाकर उस सीपको उठाकर दिखाया बताया कि यह है ना सीप लो हमने जो समझा था वह सही था ना । जो देखा था वही पाया गया ना, तो एकत्वका ज्ञान कराकर प्रत्यक्षकी प्रमाणताको दृढ कराया गया है, इसी प्रकार अनुमानमें भी, इस कमरेमे अग्नि जल रही है—धुवा होनेसे, ये ज्ञान किया अग्निका । किसीने विवाद उठाया कि जाडेके दिन हैं । यह भाप उठ रही है । तुम्हें व्यर्थका भ्रम हो गया है । तो उसका हाथ पकड़कर कमरेमे ले जाकर दिखा दिया—लो यह है ना अग्नि । जिसका अनुमान किया था वही यह पायी गई । तो एकत्वका परिज्ञान करा कर उस अनुमानमे भी अविसम्वादता सिद्ध कर दी गई है । एकत्वका ज्ञान न मानोगे तो ज्ञानकी प्रमाणतामे अविसम्वादता सिद्ध नहीं कर सकते । फिर प्रमाणका यह लक्षण करना कि अविसम्वादीकी ज्ञान प्रमाण होता है यह व्यर्थ ठहरा । इससे प्रत्यभिज्ञान नामक ज्ञान वास्तविक प्रमाणभूत है । इसका विषय प्रत्यक्ष और स्मरणके विषयसे बिल्कुल भिन्न विषय है । प्रत्यक्षसे जाना, वर्तमान, स्मरणसे जाना अतीत और प्रत्यभिज्ञानसे जाना वर्तमान और अतीतके बीच एकत्व या उनमें सादृश्य आदि । इससे प्रत्यभिज्ञान, नामक ज्ञान वास्तविक प्रमाणभूत रहता है ।

ज्ञानमात्र आत्माके परिणमनोकी चर्चा—आत्मा ज्ञानमात्र है । योगियोके ध्यानके लिए आत्माकी ज्ञानमात्रताका परिचय बहुत महत्त्वशाली है । हम अपने बारे मे अन्य अन्यरूपसे बोध करते रहें तो मेरा बोधरूपमे आना नहीं बन सकता है । और जब अपनेको ज्ञानमात्र हूँ ऐसी प्रतीति रखे रहे और ऐसा ही उपयोग बनायें तब चूंकि जानने वाला भी ज्ञान है और जिसे जाना गया है वह भी ज्ञानस्वरूप है, तो जब जानने वाला ज्ञान हुआ और ज्ञेय भी ज्ञानस्वरूप हुआ तो ज्ञान और ज्ञेयका एकत्व हो जाता है उस समय निर्विकल्पता होती है तो ऐसे ज्ञानमात्र आत्माका संसारमें किस किस प्रकारसे ज्ञान परिणमन होता है उसका यह प्रकरण चल रहा है । आत्मा ज्ञानरूप है और चूंकि इस समयमें आत्मा कर्मबद्ध है । ज्ञानावरण कर्मका सम्बन्ध है ता

ज्ञानावरणके क्षयोपशमके अनुसार आत्माके ज्ञानका प्रकाश चल रहा है, तो वह ज्ञान-प्रकाश जो ज्ञानावरणके क्षयोपशमके होनेपर होता है उसके भेद कितने हैं ? उन भेदों का यह प्रकरण है। ज्ञान दो प्रकारके हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष दो प्रकारके हैं एक देश प्रत्यक्ष और सकल प्रत्यक्ष। सकल प्रत्यक्ष तो क्षायिक ज्ञान है। ज्ञानावरण का क्षय होनेपर सकल प्रत्यक्ष प्रकट होता है। एक देश प्रत्यक्ष क्षायोपशमिक ज्ञान है और परोक्ष प्रमाण सब क्षायोपशमिक ज्ञान हैं। यहा परोक्षके भेदोकी बात चल रही है। परोक्ष प्रमाण, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान, इन ५ प्रकारोंमें पडा होता है। स्मृति उसे कहते हैं कि जिसे पहिले जाना है उसकी याद होना। तो जैसे स्मृति प्रत्यक्षसे अलग प्रमाण है इसी प्रकार प्रत्यभिज्ञान भी प्रत्यक्षसे अलग प्रमाण है। प्रत्यभिज्ञान उसे कहते हैं कि पहिले जानी हुई चीज और सामने पडी हुई चीज, इससे सम्बन्ध रखने वाली किसी बातका ज्ञान करना जैसे यह वही देवदत्त है जिसे कलकत्तामे देखा था। तो इस प्रत्यभिज्ञानमे न तो अतीतसे जाना न वर्तमानसे किन्तु अतीत और वर्तमान वस्तुके विषयमे जो एकत्व है उस तत्त्वका जाना। इसी प्रकार सादृश्य प्रत्यभिज्ञानमें चलें यह रोझ गायके समान है। वनमें जाते हुए पुरुषको रोझ दीखा, उस प्रसगमे यह ज्ञान जगा कि यह रोझ तो बिल्कुल गायके समान है। तो इस प्रत्यभिज्ञानके विषयमे न तो रोझ आया और न गाय आयी, किन्तु यह रोझ गायके समान है यहा रोझ और गायसे सम्बन्धित जो सदृशता है उसका ज्ञान हुआ इसी तरह वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञानमे न वर्तमानका ज्ञान है न अतीतका किन्तु अतीत और वर्तमानसे सम्बन्धित किसी तत्त्वका ज्ञान है। जैसे यह भैंस गायसे बिल्कुल विपरीत है। भैंसा बैलसे बिल्कुल अलग होता है। इसमे न भैंसाका ज्ञान कराया गया न गाय का। ज्ञान तो दोनोके हुए, पर इस प्रत्यभिज्ञानमे इन दोनोके सम्बन्धमे बढी हुई जा भिन्नता है उसका ज्ञान किया गया है, इसी प्रकार जब प्रतियोगी ज्ञान करते हैं, यह भैया उससे तीन वर्ष बडा है तो इसमे यह भैया, न "यह" ज्ञानमे आया न बडे भैया का ज्ञान किया किन्तु ज्ञानको तुलनामें जो तीन वर्षका बडापन है वह ज्ञानमे आया। तो प्रत्यभिज्ञान वर्तमान और अतीत इनसे सम्बन्ध रखने वाले तत्त्वका ज्ञान कराता है।

'क्षणिकवादमे प्रत्यभिज्ञानकी' अमान्यता प्रत्यभिज्ञानको क्षणिकवादी लोग नही मानते। क्षणिकवादियोके यहा दो ज्ञान माने गए हैं—प्रत्यक्ष और अनुमान। जितने भी सविकल्प ज्ञान हैं वे सब अनुमान बताये गये हैं। चौकीको देखकर समझा कि यह चौकी है तो यह ज्ञान प्रत्यक्ष नही है क्षणिकवादमे, किन्तु अनुमान ज्ञान है क्षणिकवादमें प्रत्यक्ष ज्ञानका स्वरूप इस तरह करीब-करीब समझो। जैसे जैन सिद्धान्त दर्शनका स्वरूप मानता है, निर्विकल्प दर्शन होता है। दर्शनमे सामान्य प्रतिभास कहा गया है। वस्तुके सम्बन्धमे यदि जरा भी बोध बनाया कि दर्शन नही रहा, क्षणिकवादमे किसी पदार्थके सम्बन्धमे अगर कुछ समझा गया तो वह प्रत्यक्ष नहीं रहा, अनुमान बन गया। प्रत्यक्षज्ञान उनको निर्विकल्प है और उसकी युक्ति देते

हैं कि जब जिस समयमे पदार्थ है उस समयमे तो निश्चय नही हो पाता है और जिस समय निश्चय हो पाता है उस समय वह पदार्थ नही रहता क्योंकि सर्व क्षणिक है। तो प्रत्यक्ष कहाँ होता है ? जब पदार्थ था तब निश्चय नही हुआ, जब निश्चय हुआ तब पदार्थ न रहा, तो निश्चयको प्रत्यक्ष नही कहा गया। तो जो निर्विकल्प ज्ञानको प्रत्यक्ष प्रमाण मानते हैं और सविकल्प ज्ञानको अनुमान प्रमाण मानते हैं उनके यहा प्रत्यभिज्ञान नही माना गया। प्रत्यभिज्ञान मान लेनेपर क्षणिकवादका घात होता है क्योकि यह कहा जाय कि यह वही पुरुष है जिसे कलकत्तामे देखा था तो इससे यह सिद्ध होगा कि यह क्षणिक नही है। यह एक वर्षसे यही बना आया है। यह क्षणिक वादको कहा मंजूर है। तो उनसे कहा जा रहा है कि जो लोग प्रत्यभिज्ञान नही मानते हैं वे नैरात्म्यभावनाका अभ्यास क्यो करते हैं क्योंकि उसकी तुक ही नहीं है।

क्षणिकवादमें संसार और मुक्तिकी एक झाकी क्षणिकवादी लोग यह कहते हैं कि यदि कोई ध्यान रखता है कि यह मैं वही हूँ जो पहिले था तो वह ससार मे रुलेगा। जो आत्मदर्शन करेगा वह ससारमे रुलेगा। यह क्षणिकवादके मुक्तिके उपायोंके प्रकरणमे कहा है। जो आत्मा न मानेगा वह ससारसे तिर जायगा। क्षणिक वादियोने ऐसा क्यो माना ? तो उनका सिद्धान्त है कि जब आत्मा क्षणिक है; क्षण, क्षणमे नया नया आत्मा होता है तो तत्त्व तो यह है, और कोई माने कि मैं वही हूँ, मैं आत्मा हूँ ऐसा जो दर्शन करेगा ख्याल बनायेगा, वह तभी तो ख्याल बना सकता जब कि वह क्षणिक न रहे। कुछ समय तो रहे। और कुछ समय रहा आत्मा तो क्षणिकवाद रहा नही। तो जो आत्मा मानता है आत्माका दर्शन करता है वह मैं हूँ, वही मैं हूँ, इस प्रकार जो अपने आत्माकी प्रतीति रखता है। वह ससारमें भटकता है, दुःखी होता है। और जो यह समझता है कि आत्मा क्षणिक है प्रतिक्षण आत्मा नष्ट होता रहता है, आत्मा कई समय रहता ही नही, इस प्रकार जो नैरात्म्यकी भावना भाये वही इस ससारसे मुक्त हो सकता है ऐसा क्षणिकवादियोंका सिद्धान्त है। तो उनसे कहा जा रहा कि नैरात्म्यकी भावनाका अभ्यास क्यो कराया जा रहा है। भावनाका अभ्यास तो तब कराना चाहिये कि जब कुछ विवाद हो, आपत्ति हो, स्वामित्व हो। जब आत्मा क्षणिक ही है और प्रत्यभिज्ञान होता ही नही है—मै वही हूँ ऐसा बोध क्यो करवा रहे हो ? यदि यह कहो कि पीछे आत्म दर्शन मिट जायगा यह तो फल है। आत्मदर्शन होना ससार है और आत्मा नही है इस प्रकारका बोध होना यह मुक्तिका मार्ग हैं ऐसा क्षणिकवादमे जो कहा है, उनसे कहा जा रहा है कि अब प्रत्यभिज्ञान मानो तब तो यह उपाय लोगोको बतावो कि भाई मैं आत्मा वही हूँ, मैं सदा नही रहता हू ऐसा अभ्यास करो, यह कहना तब युक्त है जब प्रत्यभिज्ञान होता हो प्रत्यभिज्ञान तुम मानते नही।

सोऽहके बोधकी असिद्धिसे विघात—यदि कहो कि लोगोको ऐसी प्रतीति

तो हो रही है कि मैं वह हूँ प्रत्येक मनुष्यके चित्तमे यह ध्यान तो जग रहा है कि मैं यह हू । मैं वह हूँ ऐसा बोध तो सभीको होता है । कहते हैं कि बस यही तो हम कह रहे हैं कि उसी बोधका नाम प्रत्यभिज्ञान है । प्रत्यभिज्ञान प्रमाणका तुम निषेध नहीं कर सकते । और तुम्हारे यहाँ सोह ज्ञान यो नही बन सकता कि प्रत्यभिज्ञान तुम मानते नही । 'स' यह तो है स्मरण और 'अहं' यह है प्रत्यक्ष । नो दोके सिवाय तुमने तीसरी बात मानी नही, तो तुम्हारे यहा यह बोध सिद्ध नही हो सकता कि मैं वह हूँ, और जब बोध नही हो सकता कि मैं वही आत्मा हू जो पहिले था तो तुम्हारे यहा आस्रव तत्त्वकी सिद्धि नही हो सकती । क्षणिकवादी लोग कर्मोका आस्रव यह बकते हैं कि अपने आपके बारेमे यह ध्यान रखना कि मैं वह हूँ इससे कर्मोंका आस्रव होता है । देखिये ! सुननेमें ऐसा लगता है कि जो बात मुक्तिका उपाय है वह तो कही जा रही ससारका उपाय और जो ससारका उपाय है उसे वे कह रहे मुक्तिका उपाय ! क्षणिकवादका सिद्धान्त है कि यह मानना कि यह मैं वह हू मैं आत्मा हू अविनाशी हू, इस प्रकारका ध्यान जो रखेगा उसके रागादिक आस्रव चलेंगे, ससारमें रुलेगा । तो प्रत्यभिज्ञान जो लोग नही मान रहे उनके यह ज्ञान कैसे बन सकता है, कि मैं वह हू जो पहिले था, आगे रहूँगा । जब प्रत्यभिज्ञान नही माना तो आस्रव भी नही बन सकता । तब मुक्ति उपायकी बात करना व्यर्थ है । न्यायशास्त्रमे ज्ञानप्रमाणकी विस्तृत रूपसे चर्चा यो की गई है कि हम वस्तुका जो कुछ भी स्वरूप निर्णय करें उसका निर्णय करनेकी हममे कला तो आये । कैसे हम उसे सब समझें उसके लिये प्रमाणो की चर्चा है । प्रत्यभिज्ञान भी एक प्रमाण है । प्रत्यभिज्ञान न हो तो ससारका व्यवहार और मुक्तिका उपाय ये सब कुछ भी नही बन सकते । जिसको कुछ पैसा उधार दिया है उसके सम्बन्धमें जब यह ज्ञान होगा, कि यह वही पुरुष है जिसे उधार दिया था तभी तो आप मागेंगे । उधार लेने वाला जब यह समझेगा कि यह वही सेठ है जिससे उधार लिया था, तभी ना बात बनेगी । तो प्रत्यभिज्ञान बिना ससारका व्यवहार नही बन सकता और न मुक्तिका उपाय बन सकता । हम वस्तुस्वरूपके ज्ञानका अभ्यास करते हैं, पढते हैं रोज गुरुसे तो प्रत्यभिज्ञान नही है तो कहाके गुरु और कहा के शिष्य । तो प्रत्यभिज्ञान बिना यहाकी सब बातें कुछ भी नही बन सकती हैं । इससे प्रत्यभिज्ञान मानना ही होगा ।

पर्यायोमे एकत्व सम्भवके सम्बन्धमे क्षणिकवादियोकी आशङ्का – अब यहा क्षणिकवादी शङ्काके रूपमे कह रहे हैं कि प्रत्यभिज्ञान उसे कहते हैं कि पूर्व पर्याय और उत्तर पर्यायमें जो एकत्वका ग्रहण है उसका नाम प्रत्यभिज्ञान है लेकिन पूर्व पर्याय और उत्तर पर्यायमें एकत्व सम्भव ही नही है । पूर्व पर्याय स्वतत्र है उत्तर पर्याय स्वतत्र है । पूर्व और उत्तर पर्यायमें जब एकत्व ही नही है तो प्रत्यभिज्ञान कोई प्रमाण नही है क्योकि प्रत्यक्षसे देखो तो सब क्षणिक हैं इस प्रकारका ज्ञान होता है । प्रत्येक पदार्थ एक समय रहता है दूसरे समय नही रहता है, यह तो जान रहा है प्रत्यक्ष

ज्ञान क्योंकि प्रत्यक्षज्ञानका स्वरूप है कि अपने कालमे नियत अर्थको जाने। पदार्थका काल है एक समयमात्र। तो प्रत्यक्षने तो केवल विनश्वर चीज जानी, नष्ट होने वाली वस्तुको जाना, तो उसमे प्रत्यभिज्ञान कैसे सम्भव है? उत्तर देते हैं कि सर्वथा क्षणिक पदार्थ हुआ ही नही करता। पदार्थ है और वह अनन्तात्मक है। जो है वह कभी नष्ट नहीं होता। उसकी पर्यायें बदलती रहती है। मैं आत्मा हू तो अनादिसे हू, अनन्त काल तक रहने वाला हूँ, इसकी क्षण क्षणमे पर्यायें बदलती रहती हैं. मैं आत्मा सदा काल रहता हू ऐसा माननेसे ससार हो जायगा। यो सदेह न रखिये क्षणिकवादी लोगो! किन्तु जो क्षणिक पर्यायें हैं उन पर्यायोंमें यह मैं हू इस प्रकारकी बुद्धि होने से ससार होता है। पर्यायोमे द्रव्यकी बुद्धि होनेसे संसार है। कहीं द्रव्यको अविनाशी त्रैकालिक माननेसे ससार नही है। मूल बात तो यह है कि पर्यायको द्रव्य माननेसे ससार परिभ्रमण होता है। इसका इलाज क्षणिकवादियोने ऐसा सोचा कि पर्यायमात्र को द्रव्य मानलें, इसके आगे कोई द्रव्य है ही नही तो अपने आप यह बात बन जागगी कि हम किसी भी पर्यायको किसी भी स्थितिमे यह मैं हूं ऐसा न सोच सकेंगे, लेकिन वस्तुस्वरूपके विरुद्ध उपाय निकालनेसे काम नही बनता। पदार्थ जैसा है वैसा ही निर्णय करके उसमे फिर मुक्तिका उपाय ढूढना चाहिये। मैं आत्मा सदाकाल हूं और स्वभावमात्र हू, सहज-शक्तिमात्र हूँ।

ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वको माननेपर अहङ्कार ममकार व कर्तृत्वबुद्धिके अभावकी सुगमतया सिद्धि—अपने आपको केवल ज्ञानमात्र हूं, ऐसा भाव बना लिया तो केवल ज्ञानमात्र हू ऐसी दृढतम अवधारणा होनेपर वे सब बातें अपने आप आ जाती हैं जो कि हमे अपनी उन्नतिके लिए चाहियें। जैसे मेरा धन नही, मेरा घर नही, मेरा परिवार नही, यह बात ज्ञानमात्र आत्माको स्वीकार करनेपर आ जाती है। यह ज्ञानमात्र आत्मा जो आकाशवत् निर्लेप भावमात्र, जिसको न कोई पकड सकता, जिसे न कोई छेद सकता, न कोई भेद सकता, इस प्रकारका अपूर्व ज्ञानमात्र आत्मा, उसका यहाँपर कौन है? कहाँ परिवार है इस ज्ञानमात्र भावका? जिस सकलमे हम परिजनोको निरखते हैं, जिन सूरतोको देखकर हम यह निर्णय करते हैं कि यह मेरी माता है पिता है, भाई है आदि क्या वे इस आत्मासे कुछ सम्बन्ध रखते हैं? यह मैं अनन्त स्वतन्त्र ज्ञानमात्र हू. ऐसा निर्णय होनेपर यह बात स्वतः सहज बन जाती है कि परद्रव्योमे ममकार नही रहता। उपदेश किया जाता है कि परद्रव्योमे कर्तृत्व बुद्धि मत करो और इसके लिये बहुत-बहुत चिन्तन करना पडता है, लेकिन मैं ज्ञानमात्र हू, इस प्रकारका निर्णय हो जानेपर परद्रव्योके प्रति कर्तृत्वका भाव सुगमतया हो जाता है। यह मैं ज्ञानमात्र केवल ज्ञानप्रकाशमात्र हू यह परको छू सकता तो है नही, परका ग्रहण कर नही सकता, परको करेगा क्या? यह बात बिल्कुल सत्य है कि कोई भी जीव किसी भी परपदार्थकी परिणतिको नही करता, किन्तु मात्र अपनेमे अपने भाव बनाता है। अपनेमे अपने भाव बनानेके अतिरिक्त हम आप आत्मा और कुछ भी काम

नही कर रहे । तो ऐसा भावमात्र ज्ञानमात्र मैं आत्मा कभी किसी परका कर्ता हूं ? उपदेश दिया जाता है कि तुम शरीरको आत्मा मत मानो कि यह मैं हू, पर्यायको मत मानो कि यह मैं हू, यह बात उसके सुगमतया बन जाती है जो अपने आपको ज्ञानमात्र प्रतीतिमे लिए हुए है । मैं ज्ञानमात्र हू इस ज्ञानमात्र आत्माके देह कहां है ? इसके आवरण कहां है ? यह तो आकाशवत् अमूर्त तत्त्व है, एक चैतन्यकी विशेषता जरूर है । ज्ञानमात्र अपनेको स्वीकार कर लेनेपर परद्रव्योंमे अहङ्कार मनाना हो जाता है ।

ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वकी उपलब्धिसे अभोक्तृत्वभाव व ध्यानकी सुगमतया सिद्धि— उपदेश दिया जाता है कि तुम पर द्रव्योको भोगनेका विकल्प मत करो । मैं किसी भी पर द्रव्यको भोगता नहीं हूँ मैं किसी भी परका भोक्ता नहीं हूँ, यह बात उसके सुगमतया बनती है जो अपने आपको ज्ञानमात्र अनुभव कर रहा है । मैं ज्ञानमात्र हू । इस ज्ञानमात्र मेरेका भोग ही कहां है बाहर ? जो विकल्प करता हू, बस वही भोग है । अपनेमें भावोंको भोग रहा हूँ । ज्ञानमात्र आत्माकी सुधि होने पर मैं ज्ञानमात्र आत्माको ही करता हूँ ऐसी खबर होनेपर नहीं भोगता हू यह निर्णय कर ही लेते हैं यह बात सुगमतया बन जाती है । जब मैं अपनेको भोगता हूं तब मैं किसी पर पदार्थकी आसक्ति क्यों करू ? जब मैं भावमात्र हूँ, भावोको ही करता हू, भावोंको ही भोगता हूँ, भावोंके सिवाय अन्य कुछ मेरा है नही, तब बाहर मुझे कुछ ढूँढनेकी क्या जरूरत रही । तब तो अपने आपमें ही खोजना चाहिये । हम आत्म-साधनाके आदेश पढते हैं, उपदेश दिया जाता है कि ध्यान करो, यहां वहां चित्त न लगावो व्यर्थके विकल्प मत करो । यह बात उसके सुगमतया बन जाती है जो इस बातपर डटा है, कि मैं ज्ञानमात्र हूँ । यथार्थता भी यही है, और इसी यथार्थतापर डट जाय कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, निर्णय करें, अन्य बाहरी बातोंसे कुछ प्रयोजन न रखे तो उसके यह ध्यान सुगमतया सिद्ध हो जाता है । जिस ध्यानमे विकल्प नही जगता । केवल शुद्ध सहज ज्ञायकस्वरूप आत्मतत्त्व जिसके अनुभवमे चलता है, स्वानुभव, ज्ञानानुभव वह बात उस जीवमे स्वत· प्रकट हो जाती है जो अपनेको ज्ञानमात्र प्रतीतिमे लिए हुए है और ज्ञानमात्र हूँ ऐसा ही निरन्तर अनुभव करनेका लक्ष्य बनाये । ऐसा सम्यग्ज्ञान ऐसी ज्ञान परिणति हम आपके बनी रहे, उसमें बाधायें न आ सकें, ऐसी बात यदि कुछ दिन भी बनी रहे तो ऐसा अलौकिक अनुभव होगा, जिस अनुभवके प्रसादसे सदाके लिये जन्ममरणकी परम्परा कट जायगी । जीव मुक्त हो जायगा । हमें ऐसा उपाय बना लेना चाहिये । यह तो है एक सारभूत व्यवसाय और अन्य अन्य प्रकारके कार्योंमे लगे रहना ये हैं सब व्यर्थके कार्य । इस ही ज्ञानमात्र आत्माके परिणमनोको न्यायशास्त्रमे कि किस किस रूपमें यह बात प्रकट होती है यह बताया जायगा ।

अविसवादकता होनेसे प्रत्यभिज्ञानकी प्रमाणरूपता—प्रत्यभिज्ञानको

प्रमाण न माननेमे क्षणिकवादियोकी यह युक्ति थी कि चूंकि पदार्थ विनश्वर हैं, एक समय ही ठहरने वाले है तब प्रत्यक्षका विषय उस पदार्थके रहनेके समयमे ही नियत है फिर वह एकत्वको कैसे जान सके ? यह पदार्थ वही है यह ज्ञान तो तब बन सकता था जब कि पदार्थ विनश्वर न होता उसके उत्तरमे कहा जा रहा है कि प्रत्यक्षसे ही लोगोको अविनाशी रूपमे पदार्थोंकी प्रतीति हो रही है। और ऐसा अनुभव हो रहा है। जीवनमे कितने समागम पहिले मिले और वे ही जब आज मिलते हैं तो प्रत्यभिज्ञान होता है। यह वही पुरुष तो है। प्रत्यभिज्ञानमे फिर क्या विवाद रहा ? इसलिए प्रत्यभिज्ञान नियमसे प्रमाणरूप है क्योंकि जो विषय है प्रत्यभिज्ञानका, प्रत्यभिज्ञान उसे ग्रहण करता है उसमे कोई विसम्वाद नही है। जैसे प्रत्यक्षसे अग्नि देखते हैं तो प्रत्यक्ष क्यों प्रमाण हैं ? इसलिए कि प्रत्यक्षसे जो जाना उसमे विवाद नही उठता। इसी तरह प्रत्यभिज्ञानसे जो जाना उसमे भी तो विवाद नहीं आता। यह उसका ही तो लडका है। बहुत दिनोसे देखते आये —यह वही लडका है ऐसा जो भीतर बोध होता है इसमे भी विवाद नही है।

एक ज्ञानमे अनेक आकार आ सकनेके सम्बन्धमे चर्चा—क्षणिकवादियोका यह कहना भी अयुक्त है कि प्रत्यभिज्ञानके विषयमें दो आकार आते हैं। एक तो "यह" और दूसरा "वही" है। दो आकार एक ज्ञानमे समा नही सकते। एक ज्ञानमे एक ही आकार आ सकता है। इस कारण प्रत्यभिज्ञान प्रमाण नही बन सकता, यह कहना उनका यो अयुक्त है कि ऐसे तो उनका प्रत्यक्ष भी नही बन सकता। क्योकि प्रत्यक्षमे भी अनेक आकार आ गये। रंग आ रहा, पदार्थका आकार आ रहा उसकी लम्बाई चौडाई आ रही, और जिस पदार्थको खा रहे हो उसका रस भी आ रहा, गंध भी ज्ञानमे आ रहा। तो यो नीलादिक अनेक आकारोसे आक्रान्त एक चित्र ज्ञानमे भी प्रमाणत्व नही बन सकता जैसा कि क्षणिकवादियोने माना। प्रत्यक्षमे जब अनेक आकार आ जाते हैं तो प्रत्यभिज्ञान प्रमाणमे यदि दो आकार आ जायें—एक प्रत्यक्ष वाला एक स्मरण वाला, तो इसमे कौनसा विरोध है ?

प्रत्यक्ष और स्मृतिके आकारोके परस्पर प्रवेशरूप व अप्रवेशरूपसे ज्ञानमे आनेकी चर्चा—अब शंकाकार कहता है कि प्रत्यभिज्ञानकी मुद्रा यह है सः एव अय, यह वही है तो इसमे दो आकार आये—स्मरण वाला "यह" और प्रत्यक्ष वाला "वह"। तो ये दो आकार परस्पर एक दूसरेमे प्रवेश करने रूपसे प्रतिभास रहे है या ये दोनो आकार एक दूसरेमे प्रवेश नही कर रहे इस रूपमे प्रतिभासमान है। प्रत्यभिज्ञानमे जो दो आकार माने हैं, क्या वे दो आकार एक दूसरेमें प्रवेश करके आते हैं या बिना प्रवेश किये हुये आते हैं। यदि कहो कि वे दो आकार एक दूसरेमे प्रवेश कर जाते हैं तो जब प्रवेश करेंगे तो एक कोई आकार ज्ञानमे आया। दो कैसे ज्ञानमें आयेंगे ? "यह वही है" इसमे हैं दो आकार, प्रत्यक्ष वाला "यह" और स्मरण वाला

"वही" तो ये दो आकार यदि एक दूसरेमें समा गये फिर ज्ञानमे आया तो ज्ञानमे एक आकार कौन रहेगा ? यदि कहो कि ये दोनो आकार एक दूसरेमें समा नही सकते तो इसका अर्थ यह है कि परस्पर भिन्न दो आकारोंका प्रतिभास होना चाहिये । पर प्रत्यभिज्ञानमे दो आकारोका प्रतिभास कहाँ है । वह तो एकत्वको जान रहा है । प्रत्यक्षमे "यह जानता है" यह है स्मरणमे यह जानता कि "वह है" किन्तु यह वही है प्रत्यभिज्ञानका विषय प्रत्यभिज्ञानका विषय प्रत्यक्षके और स्मरणके विषयसे जुदा है । जैनियोसे कहा जा रहा है कि यदि तुम यह मानते कि दो प्रतिभासोंका एक ज्ञान आधार है प्रत्यभिज्ञानमे प्रतिभास तो दो हो रहे हैं किन्तु उनका आधार एक ज्ञान है तो शकाकार उत्तर देता है कि यह बात ठीक न बनेगी, क्योकि दो प्रतिभासोका एक आधार नहीं बन सकता । भला "यह" है प्रत्यक्ष और "वही" यह है परोक्ष तो परोक्ष और अपरोक्षरूप आकार एक ज्ञानमे कैसे आ जायगा ? यदि परोक्ष और अपरोक्ष प्रतिभास भी एक ज्ञानमे आ सकते हैं माना जाय तो जितने दुनिया भरमे ज्ञान हैं वे सब एक ज्ञानमे आ जायें यह प्रसग आ पड़ेगा । इससे प्रत्यभिज्ञानकी कोई व्यवस्था नही बन सकती । शकाकारके इस कथनका अब उत्तर सुनिये—कि वहाँ जो दो आकार हैं परोक्ष और अपरोक्ष वे कथचित् एक दूसरेमें प्रवेश करनेके रूपसे ज्ञान आया करते हैं । प्रवेश तो उन दोनो आकारोका इस दृष्टिसे है कि प्रत्यभिज्ञानमें प्रत्यक्ष और परोक्षसे सम्बन्धित एकत्व विषयमे आया । और यह विषय तब बन पाता है, जब स्मरण और प्रत्यक्ष दोनों एक जगह आयें । इसलिये कथचित् परस्पर प्रवेश है और सर्वथा प्रवेश यो नहीं है कि प्रत्यक्षका विषय है विशद और परोक्षका विषय है अविशद । प्रत्यभिज्ञान भी परोक्ष ज्ञान है । तो प्रत्यक्ष और परोक्षमे पाया जाने वाला जो एकत्व है वह परोक्षज्ञान है । वहा दोनो आकार सर्वथा प्रविष्ट नहीं होते ।

एक ज्ञानको बहुविधज्ञान माने बिना चित्राद्वैतकी भी असिद्धि - अब शंकाकार जरा यह बताये कि यदि दो आकार एक आत्मामे नही आ सकते, एक ज्ञान में नही आ सकते तो तुम्हारा चित्रज्ञान कैसे बनेगा ? क्षणिकवादमे चित्राद्वैत माना गया है व विज्ञानाद्वैत माना गया है । विज्ञानाद्वैतमें तो सिर्फ एक ज्ञान ज्ञान मात्र है किन्तु जिन बौद्धोंका चित्राद्वैत सिद्धान्त है वे मानते हैं कि एक ज्ञानमे चित्र विचित्र नीला पीला आदिक अनेक पदार्थ एक साथ आते हैं और वह ज्ञान चित्रित हो जाता है । तो चित्रित ज्ञानमे अनेक आकार एक साथ आयें तभी तो चित्रज्ञान बन सकता है । तुम यहां प्रत्यभिज्ञानमें दो आकार भी नही मानना चाहते और अपने चित्रज्ञानमें दुनिया भरके पदार्थोंका आकार मान लेते हो । यदि अनेक आकार एक आत्मामें न प्रतिभाससे जायें तो चित्रज्ञान कैसे बन सकता है ? क्योंकि नीला पीला आदिक जितने प्रतिभास हैं परस्पर यदि इनका प्रवेश है तो ये सब एकरूप बन जायेंगे । फिर चित्रता क्या रही ? जैसे कि दो विकल्प किये गे प्रत्यभिज्ञानमे दोनो आकार एक दूसरेमे प्रवेश करते हैं या नही ? तो हम भी पूछते हैं कि तुम्हारे उस चित्र प्रत्यक्षज्ञानमे नीला पीला

आदिक आकार परस्परमे प्रवेश करते हैं या नही ? यदि परस्परमे प्रवेश करें तो चित्रता ही क्या रही ? यदि कहो कि वे परस्पर प्रवेश नही करते तो चित्रता क्या रही ? ये भिन्न-भिन्न सन्तान नीला पीला आदिक प्रतिभास, ये जुदे जुदे प्रतिभासनेमे आ गये। यदि यह कहो कि भले हो ये नीले पीले आदिक अनेक पदार्थ हैं किन्तु एक ज्ञानमे तो आ जाते हैं सब ? कहते हैं कि यही बात प्रत्यभिज्ञानमे कह लीजिए। प्रत्यभिज्ञानमे भी ये दोनो आकार एक साथ आ गये।

प्रत्यभिज्ञानकी बहूपयोगिता हम आप प्रत्यभिज्ञानसे ज्यादह काम लेते रहते हैं पर इस ओर ख्याल नही करते। हमारा आपका परस्परका सारा व्यवहार प्रत्यभिज्ञानपर आधारित है। आपको देखते ही आपसे बडे प्रेमसे हम मिले तो प्रत्यभिज्ञान हुआ तभी तो हम मिले। यह मेरा वही परिचित मित्र है। सामायिक, पूजन आदि करना, भोजन बनाना आदिक सभी बाते प्रत्यभिज्ञानपर आधारित हैं। प्रत्यभिज्ञान बिना हम थोडा चल भी नही सकते। यहासे उठकर अपने-अपने स्थानपर लोग अभी जायेंगे तो प्रत्यभिज्ञान न हो तो कैसे लोग जायेंगे ? कोई प्रश्न करता है अध्ययन करता है, पढता है, प्रत्यभिज्ञान न हो तो ये कुछ भी सम्भव नही हैं। स्मृति जिसके उपयोगमे आती है उससे कम प्रत्यभिज्ञान उपयोगमे आता हो सो बात नही है। रात दिन हमारे कार्योंमे, व्यवहारमे प्रत्यभिज्ञान चलता रहता है। बिना पढे लिखे लोगो की बात तो दूर रहो, अनेक पढे लिखे लोग भी प्रत्यभिज्ञानकी बात ही नहो समझते कि यह हमारे कितना निरन्तर काममे आता है। स्वाध्याय कर रहे हैं, पढ रहे हैं, उसका अर्थ समझ रहे हैं, यह बात प्रत्यभिज्ञानके बिना नही बन सकती। जैसा अब पढा वैसा ही इससे पहिले भी पढा था। इसका यही अर्थ हम पहिले भी समझते थे। तो पहलेकी समझ और वर्तमानका अध्ययन इन दोनोका सम्बन्ध है तब ना स्वाध्याय बना। तो प्रत्यभिज्ञान बन गया। स्मृतिमे तो केवल स्मरण ही स्मरण रहा 'वह'। और प्रत्यभिज्ञानमे प्रत्यक्ष और स्मृतिका जोड रहता है 'यह वही है' तो प्रत्यभिज्ञान परोक्ष प्रमाण है और हम आपके जीवनमे बहुत काममे आता है, उपयोगमे रहता है। प्रत्यभिज्ञानको अप्रमाण कैसे कह दिया जाय ?

प्रत्यभिज्ञानकी झाकी— अब शकाकार कह रहा है कि प्रत्यभिज्ञानमे दो प्रत्यक्ष ही तो आये—एक पहिलेका प्रत्यक्ष और एक वर्तमानका प्रत्यक्ष। तो पहिलेका जो दर्शन है वह भी इस ध्रुव एकत्वमे प्रवृत्ति नही करता और वर्तमानका जो प्रत्यक्ष है वह भी ध्रुव एकत्वमे प्रवृत्ति नही करता। दोनोका अपना न्यारा न्यारा विषय है। तो फिर किसी स्मरणकी सहायता लेकर भी एकत्व प्रत्यभिज्ञानको यह प्रत्यक्ष कैसे पैदा कर सकता है। जैसे किसी सुगंधित वस्तुका ख्याल करनेसे सुगंधित वस्तुके स्मरणकी सहायता लेकर क्या ये आँखें गंधका भी ज्ञान कर लेगी ? तो जैसे सुगंधित वस्तुके स्मरणकी सहायता लेकर भी आँखें गंधका ज्ञान नही कर सकतीं इसी प्रकारसे

स्मरणकी सहायता लेकर भी प्रत्यक्ष प्रत्यभिज्ञानको उत्पन्न नहीं कर सकता उक्त शंका का अब उत्तर देते है कि यह भी तुम्हारा कथनमात्र है । सब लोग बुद्धिसे स्पष्ट समझ रहे हैं उस पदार्थके एकत्वको । किसी भी पुरुषको दूरसे आता हुआ देखकर आप तुरन्त ख्याल करते हैं कि यह फला व्यक्ति है, इसमें प्रत्यभिज्ञान बराबर गुप्त रूपमें काम कर रहा, लेकिन लोग सीधे यह समझते हैं कि हमने प्रत्यक्षज्ञानसे काम लिया । प्रत्यभिज्ञान विना आप परिचय नही कर सकते कि यह वही पुरुष है । किसी भी रिस्तेदारको देखकर जो आप यह ज्ञान कर लेते हैं कि यह फूफा जी आये तो इस ज्ञानमें प्रत्यभिज्ञानने झट काम कर दिया कि यह वही है । स्मरण भी आ गया, प्रत्यक्ष भी हो गया । इतनी फुर्तीसे प्रत्यभिज्ञानने काम किया कि हम उसके इस उपयोगको समझते नही और कहते हैं कि हमने प्रत्यक्षसे समझा । तो जिसके विना हमारा आहार, विहार, परिचय, व्यापार, लेन-देन कुछ भी नही बन सकता, उस प्रत्यभिज्ञान को हम अप्रमाण कैसे कहदें ?

ज्ञानस्वरूप आत्माके विकासोमे एक प्रत्यभिज्ञानरूप विकास —देखिये, मूलमे तो आत्मा ज्ञानस्वरूप है । जिस किसी आध्यात्मिक पुरुषको सब प्रकारके निर्णय के पश्चात् केवल ज्ञानसामान्यात्मक आत्मतत्त्वमें मग्न होनेकी धुनि लगी है उसको तो इन विकल्पोकी आवश्यकता नहीं है । लेकिन यहा जिन्हे इन सब आत्माके परिणमनों का परिचय नही है उसको इस आत्मतत्त्वमें प्रवेश करनेमे सुविधा नहीं मिल सकती । हम ज्ञानस्वरूप आत्मा किस किस स्थितिमे किस किस रूपसे परिणमते हैं, यह अपनी ही तो कथा की जा रही है । हम अपनी बात समझना, कठिन मानें और इस ओरसे प्रमाद करके स्वच्छन्द होकर पर तत्त्वोकी ओर ही उपयोगको दौडाते रहे तो यह मोह का ही तो प्रभाव है जो हम अपनी बात नहीं समझ सकें । यह मैं ज्ञानस्वरूप किस रूपसे ज्ञान करता रहता हूं, यह ही कथन यहाँ चल रहा है । चूंकि यह कर्मोंसे बद्ध है, इन्द्रियोंसे जकडा हुआ है ऐसी स्थितिमे इन्द्रिय और मनकी सहायता पाकर यह ज्ञान विकासी हो रहा है । यद्यपि ज्ञान ज्ञानसे ही विकसित हो रहा है, इन जड इन्द्रियोमे विकसित नहीं हो रहा, किन्तु वर्तमान स्थितिमे ऐसा निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है कि इन्द्रिय और मन तो निमित्त हैं और स्मृति ज्ञान आदिक ज्ञान विकास ये नैमित्तिक परिणमन हैं । तो इस स्थितिमें हमारे ज्ञान अधूरे रह जाते हैं । उन अधूरे ज्ञानोमे जो केवल स्मरणरूप ज्ञान है उसे तो स्मृति कहा है और जो प्रत्यक्ष और स्मरणके जोडरूप ज्ञान है उसे प्रत्यभिज्ञान कहा है । यह उसके समान है, यह उससे बिल्कुल निराला है, यह उससे बडा है, यह उससे दूर है ये सब बातें प्रत्यभिज्ञानसे सम्बन्धित हैं और ऐसे ये ज्ञान जीवोंके रोज रोज हुआ करते हैं । तो जो बात प्रमाणों से विज्ञात है उसमे क्या सन्देह करना प्रमाणसे जानी हुई वस्तुको अनेक युक्तिया देकर भी अन्यथा नहीं बनाया जा सकता । अगर प्रमाणसे जाने हुए पदार्थमे भी यथा तथा युक्ति देकर उन्हें अन्यथा बनाया जाय तब तो कोई व्यवहार ही नही चल सकता ।

अन्यथा बनाया ही नही जा सकता। हाथपर अग्नि धरकर कोई समझता रहे कि यह अग्नि गर्म है और मुखसे कहे कि यह अग्नि बडी ठडी लगती है, तो यह बात कैसे हो सकती है। रस्सी पडी थी सामने और समझ लिया साँप। अब यह वस्तु स्वरूपके विरुद्ध बात जानी गई इसलिये अप्रमाण है। लेकिन हिम्मत बनाकर पास जाकर उसे गौरसे देखा तो समझमे आया कि यह तो रस्सी ही है। तो अब इस यथार्थ ज्ञान करने वालेको कोई कितना ही बहकावे कि नही, नही यह तो साँप है, यह खायेगा, इसे हाथमे मत लो, तो इसे कौन मान लेगा? प्रत्यभिज्ञान भी प्रमाण है। उसमे जो जाना, जो विषयमे आया उसमे किसी भी प्रकारका विसम्वाद नही है। और, फिर सहकारी पदार्थोंकी शक्ति भी अचिन्त्य है। किस प्रकारका क्षयोपशम पाकर, किस प्रकार मनकी प्रवृत्ति होनेपर यह प्रत्यभिज्ञान बनता है, यह उसकी एक विधि है।

उपादान निमित्तकी एक प्रासगिक चर्चा—पदार्थोंमे सबमे अपनी अपनी शक्तियाँ है। कोई निमित्तभूत पदार्थ है। शक्तिया दो पदार्थके नातेसे उनकी अपनी अपनी हैं अलग-अलग। अब निमित्त कहना, उपादान कहना, यह आपेक्षित कथन हो जाता है। वस्तुस्थिति तो यह है कि परिणमने वाले पदार्थ स्वय अपनी ऐसी कला रखते हैं कि अनुकूल निमित्तका सन्निधान पाकर स्वय परिणमते हैं। ऐसे परिणमनमे निमित्तने शक्ति नही सौंपी, निमित्तने अपना कुछ उसमे दिया लिया नही, यह सम्बन्ध स्पष्ट है। इसमे विवाद क्या कि परिणमने वाले पदार्थ अनुकूल निमित्तका सन्निधान पाकर अपनी कलासे अनुरूप परिणम जाते हैं। दृष्टान्तके लिये ले लो। आप तखतपर बैठे हुये हैं। तखत इतना मजबूत होना चाहिये—यह तो है एक निमित्तकी बात। अन्यथा कमजोर, टूटा हुआ सडा हुआ तखत हो तो उसपर आपके बैठनेकी बात नही बन सकती। तो वह तखत मजबूत हैं यह तो है निमित्तकी बात, लेकिन आप इस तखतपर बैठ गये तो आपके इस बैठनेकी क्रियामें, आपके इस बैठनेकी परिस्थितिमे इस तखतने अपने आपमेसे कौनसा गुण निकालकर आपमे डाला कि आप बैठे? उसने अपना कौनसा प्रभाव, शक्ति, परिणति आपमे डाली? यहा तो यह स्पष्ट समझमे आ रहा कि आपमें स्वय सामर्थ्य है, कला है उस ढगसे बैठनेकी तो तखतका आश्रय पाकर आप इस तरहसे बैठ गये। तखत या अन्य पदार्थ आश्रयमे न होता तो आप न बैठ सकते थे। इतनेपर भी आप अपनी कलाका उपयोग जिस निमित्तको पाकर कर सके हैं उसको निमित्त कहा जाता है। इस प्रकारकी दृष्टि रखकर जो पदार्थोंके परिणमन का निर्णय रखता है उसको मोह नही सताता। वह जानता है कि मेरेमे जो कुछ भी हम कष्टरूप अपने आपमे अपनी परिणति कर रहे हैं उसमे कला मेरी है। अपराध मेरा है, परिणति मेरी है। आश्रयभूत किसी परद्रव्यका अपराध नही है। जब हम ही ऐसी योग्यता वाले हैं तो इस प्रकारका विवाद कर लेते हैं। तो हमारे दु:खमे हमारा ही अपराध कारण है। इस प्रकारकी दृष्टि रखने वाला पुरुष व्याकुल नही होता, और जो यह समझता है कि इस निमित्तने मुझे सताया है। जहा ऐसी दृष्टि

बनी वहाँ फिर उस दु:खको मेटनेका इलाज भी नही बन पाता, क्योकि दूसरेका हम कुछ कर सकते नही, और मान रखा है कि उसने मुझे सताया है, तो अब इसका इलाज किया ? यदि यह ध्यान रखते कि मैं अपनी ही कल्पनासे अपनेको सता रहा हूँ तो यह यत्न भी कर सकता है कि उस कल्पनाको ज्ञान द्वारा दूर करदे। तो विपरीत ज्ञानमे कष्टसे छूटनेका इलाज नही होता। इससे वस्तुका यथार्थ ज्ञान रखें और इसमे जो कुछ बात है, कला है उसका हम परिज्ञान बनायें, आने आपकी चर्चाए, अपने आपके निकट रहनेमे जो प्रसन्नता होती है वह प्रसन्नता अन्य किसी पर वस्तुकी आशामें, आधीनतामे नही हो सकती। यह प्रत्यभिज्ञानकी चर्चा चल रही है। आप भीतर निरखते जाइये कि हम प्रत्यभिज्ञान प्रमाणके द्वारा कितने काम निकलते हैं। ऐसे उपयोगी प्रत्यभिज्ञानको अप्रमाण नही कहा जा सकता।

एकत्वकी प्रत्यभिज्ञाके सम्बन्धमे शकासमाधान—क्षणिकवादी केवल दो प्रमाण मानते है—प्रत्यक्ष और अनुमान। जितने सविकल्प ज्ञान है वे तो हैं सब अनुमान और जो निर्विकल्प ज्ञान हैं वे हैं उनके प्रत्यक्ष। चौकीको निरखकर चौकी समझ लिया तो वह अनुमान ज्ञान है, सविकल्प ज्ञान है और निरखते ही कोई विकल्प न उठा और जो कुछ प्रतिभास होता है वह है प्रत्यक्षज्ञान। तो ऐसे केवल दो ही प्रमाणों का मानने वाले क्षणिकवादी कह रहे हैं कि प्रत्यभिज्ञान नामका कोई प्रमाण नही है क्योकि प्रत्यभिज्ञानमे दो प्रमाण पाया करते हैं—प्रत्यक्ष और स्मरण। और, स्मरण भी क्या है ? पूर्व प्रत्यक्ष। तब दो ज्ञान हुये पूर्व प्रत्यक्ष और वर्तमान प्रत्यक्ष। पूर्व प्रत्यक्ष भी वस्तुके एकत्वको ग्रहण नही करता और वर्तमान प्रत्यक्ष भी एकत्वको ग्रहण नहीं कर रहा। एक वर्पमे वही है ऐसा जो एकत्व है उसे न तो पूर्व प्रत्यक्षने जाना और न वर्तमान प्रत्यक्षने जाना। तब प्रत्यभिज्ञान प्रमाण बन ही नहीं सकता। प्रत्यभिज्ञान प्रमाण उसका नाम है कि जैसे किसी पुरुषको देखकर ऐसा ज्ञान करना कि यह वही पुरुष है जिसे अमुक समय देखा था तो पहिलेका ज्ञात पदार्थ और अबका ज्ञात पदार्थ इन दोनोमें जो सदा वर्तमान एकत्व जाने वह है एकत्व प्रत्यभिज्ञान, तो स्मरणकी सहायतासे भी प्रत्यक्ष एकत्वको नही जान सकता। ऐसा कहने वालोंके प्रति कह रहे हैं कि इस तरह तो हम यह भी कह देंगे कि असर्वज्ञका ज्ञान कितना ही अभ्यास विशेषकी सहायता लो जाय पर सर्वज्ञके ज्ञानको उत्पन्न नही कर सकता। क्षणिकवादी लोग क्षण क्षणमें पदार्थको मानते हैं किन्तु सर्वज्ञ मानते हैं। वह सर्वज्ञ उनका कैसा है और कौन सर्वज्ञ त्रिकालकी जानता, किसे जानना और वही एक यदि त्रिकाल रहता है तो उसमे क्षणिकपना नही रहा और पदार्थका त्रिकाल पना मानते हैं तो उनका क्षणिकपना समाप्त, तो क्षणिकपना मानकर भी त्रिकाल सर्वज्ञपना माना है। तो सर्वज्ञका ज्ञान बन कैसे गया यह उनसे प्रश्न किया जा रहा है। पहिले तो वह असर्वज्ञ था, अल्पज्ञ था, अब अल्पज्ञके ज्ञानने सर्वज्ञके ज्ञानको उत्पन्न कैसे कर दिया ? तो इस विषयमे क्षणक्षयवादका मतव्य है कि नैरात्म्यभावनाका अभ्यास किया

जाता है। मैं शाश्वत नहीं हूँ ऐसा अभ्यास बनाया जाता है। तो जैसे स्मरणकी सहायता पाकर भी प्रत्यक्ष ज्ञान एकत्वको प्रत्यभिज्ञानको उत्पन्न नहीं कर सकता उसी तरह अभ्यासकी सहायता पाकर भी अल्पज्ञका ज्ञान सर्वज्ञके ज्ञानको उत्पन्न न कर सकेगा। और, फिर दर्शनका भी तो विषय एकत्व है। प्रत्यक्षमें क्या जाना ? एक क्षणमें जाना। निर्विकल्प वस्तुको जाना तो आखिर एकत्वको ही तो जाना। नानापनेको तो नहीं जाना। तो एकत्व विषयपनकी मनाई कैसे की जा सकती है ?

एकत्वकी प्रतीतिसिद्धता और देखिये—एकान्ततः अनित्यपना तो किसी जगह प्रतीतिमें आता नहीं। जो कुछ दिखता है वह वर्षोंसे है और तुम कहते हो कि क्षण क्षणमें नष्ट होता है। जैसे दीपक जलता है तो उसमें एक-एक बूंद आ आकर दीपक जल रहा है। लोगोंको यह भ्रम रहता है कि दीपक वही है, पर वहाँ नया नया दीपक बन रहा है तो जैसे नवीन तैल बिन्दुके दीपकोंमें एक दीपक है ऐसा लोग भ्रम करते हैं इसी तरह क्षण क्षणमें नवीन नवीन आत्मा उत्पन्न होते रहते हैं और उनकी सन्तानमें लोग यह भ्रम कर लेते हैं कि आत्मा वही है। सुनते हुये तो अच्छा सा लगता है कि ठीक ही तो कह रहे हैं लेकिन यह दृष्टान्त प्रसंगके अनुरूप नहीं है। पदार्थ तो मूल कुछ मान लो। वह तैल बूंद है तो वह तैल बूंदका मूल पदार्थ इस समय तैलरूपमें है, फिर वह दीपकरूपमें हुआ फिर धुवाँके रूपमें हुआ। अन्य अन्य रूप बदले मगर मूलका जो पदार्थ है वह कभी नष्ट नहीं होता। पर्यायको ही द्रव्य पूरा मानकर दृष्टान्त दिया जाता है। क्षणिकवादमें आत्माके बारेमें भी, जैसे कि यह बात पायी जाती है कि कभी क्रोधी है आत्मा। कभी मानी है, कभी छल कपटमें है, कभी लोभमें है, कभी शान्त है। तो एक-एक अवस्थामें रहने वाले आत्माको उस ही अवस्थामें पूरा मान लिया। जैसे क्रोधी न रहा आत्मा तो उनका कथन है कि वह आत्मा ही नहीं रहा। अब यह दूसरा आत्मा पैदा हुआ। इस तरह सर्वथा अनित्य पदार्थ किसीको प्रतीत भी नहीं होता। तो जैसे प्रत्यक्षके द्वारा वर्तमान पर्यायके आधाररूपसे पदार्थकी एकता प्रतीतिमें आती है इसी प्रकार स्मरणकी सहायता लेकर प्रत्यक्षसे उत्पन्न हुए प्रत्यभिज्ञानके द्वारा स्मरणमें आयी हुई पर्याय और प्रत्यक्षमें आयी हुई पर्याय इन दोनोंके आधाररूपसे जो एकत्व है वह प्रतीतिमें आया है। जैसे यह वही मनुष्य है जो ८ वर्ष पहिले छोटा बच्चा था। तो क्या जाना हमनेकी ८ वर्ष पहिलेके बच्चेकी पर्यायमें और आजके जवान किशोरकी पर्यायमें इन दोनोंके आधारमें रहने वाला जो एक जीव है, मनुष्य है उसको ग्रहण किया है। तो प्रत्यभिज्ञानका विषय कैसे नहीं है ? अवश्य है।

एकत्र विपरीत ज्ञान होनेपर सर्वत्र विपरीत ज्ञान माननेका अनौचित्य अब यहाँ क्षणिकवादी शङ्का कर रहा है कि जैसे नख काट दिये जाते हैं या बाल काट दिये जाते हैं और १०–१५ दिन बादमें फिर वे बढ आते हैं तो लोग यही कहते हैं कि

है तो वही बाल हैं अथवा ये तो वही नख हैं जो पहिले थे। किन्तु यह तो बताओ कि वे बाल अथवा नख वही कैसे हैं ? अरे वे तो कहींके कही काटकर फेंक दिये गये थे। अब तो ये नख अथवा केश दूसरे हैं। तो जैसे दूसरे नख अथवा केशोमे लोग एकत्वका भ्रम करते हैं इसी तरह सर्वत्र एकत्वका भ्रम करते हैं। प्रत्यभिज्ञान कोई चीज नहीं है तथा जैसे केश कट गये वे तो कहीके कही फेंक दिये गये अब नये केश उगे तो लोग यह नहीं कहते हैं कि पहिले कटे हुए केशोंकी तरह ये केश हैं। ऐसा लोग बोलते ही नही हैं। केश कट गये फिर भी लोग कहते कि ये वही बाल हैं जो पहिले थे। ऐसा झूठ तो बोलते हैं कि ये वही बाल हैं पर ऐसा सत्य नही बोलते कि जो बाल पहिले कट गये थे उसी तरहके ये बाल उगे है। तो जैसे इन बालोमे एकत्व नहीं है जो बाल थे वे दूसरे थे अब जो उगे वे दूसरे हैं। जो एकत्व विषय न होकर भी जैसे लोग यहा एकत्वका ज्ञान करते हैं इसी तरह सब जगह एकत्व विषय नही है मगर भ्रमवश एकत्वका ज्ञान करते हैं। इसलिये प्रत्यभिज्ञानका कोई विषय नही है। एक क्षणका ही एकान्त सही है। इसपर उत्तर देते हैं कि यह तो एक बदलती चीज हो गयी। तो सादृश्य प्रत्यभिज्ञान था, उसे लोगोने एकत्व प्रत्यभिज्ञानमें ढाल दिया। बाल कट गए और नये बाल उत्पन्न हो गए तो वहा सादृश्य प्रत्यभिज्ञान है। अब दूसरी बात है कि लोग उलायतमें या उस समझे हुए विषयमे ऐसा रूढिमे कह बैठते हैं कि ये वही बाल हैं। यदि शब्दोको ही पकडकर मिथ्या कहते हो तो हो जाने दो मिथ्या, अगर एक जगह मिथ्या हो जायगा तो सब जगह तो मिथ्या न हो जायगा। जैसे किसी समय सीपको चाँदी जान लिया तो इसका अर्थ यह नही है कि चादीको जब हम चादी भी जानते रहें तो वह भी मिथ्या हो जाय। सादृश्य प्रत्यभिज्ञान भी प्रमाणभूत है और एकत्व भी प्रमाणभूत है। एक जगह एकत्वको सादृश्यरूपमे समझ लिया या सादृश्यको एक रूपमे समझ लिया तो सब जगह विपरीतपना न हो जायगा। अगर यो मानो तो प्रत्यक्ष भी भ्रान्त हो जायगा। यदि किसी प्रत्यक्षमें भ्रम आ गया जैसे प्रत्यक्षसे देख तो रहे हैं दूरका ठूठ कुछ अधेरे उजेलेमें और समझ रहे हैं पुरुष तो प्रत्यक्ष अगर एक जगह झूठ बन गया तो इसका अर्थ यह नही है कि सब जगह झूठ है। सफेद शङ्ख मे यदि एक पुरुषने पीला शङ्ख जान लिया और उसी पुरुषने यदि स्वर्णको भी पीला जाना तो इसके मायने भ्रान्त तो नही हो गया। शङ्ख सफेद है उसे पीला समझना विपरीत ज्ञान है, पर ऐसा तो नही है कि स्वर्णको भी पीला समझे, तो वह भी विपरीत ज्ञान कहलाये। तो जहा प्रत्यभिज्ञानाभास है वहां प्रत्यभिज्ञानाभास है और जहां सत्य प्रत्यभिज्ञान है वहां बराबर सत्य प्रत्यभिज्ञान हैं।

प्रत्यभिज्ञान प्रमाणके अभावमे अनुमान प्रमाणकी भी असिद्धि—सीधी सी बात है कि यदि प्रत्यभिज्ञान न मानोगे तो अनुमानकी भी सिद्धि नही हो सकती, क्योकि अनुमान प्रमाण बनता कब है कि पहिले वर्तमानका ख्याल आये और फिर वर्तमानमे देखे हुयेकी सदृशता जाने तो वहाँ प्रत्यभिज्ञान हुआ तब अनुमान बना।

जैसे पहिले यह परिचय था, समझ थी कि जहां जहाँ धुवा होता है वहा अग्नि होती है। रसोईघरमे धुवाँ था, अग्नि जल रही थी। तो उस हीकी तरह इस पर्वतमे धुवाँ उठ रहा है तो यहां अग्नि होना चाहिये। तो साधनसे साध्यका जो ज्ञान करते हैं तो पहिले ज्ञान किया हुआ साधन साध्यका स्मरण होता है तब ज्ञान होता है और उस स्मरण सादृश्यमे उस एकत्वको प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। तो प्रत्यभिज्ञान माने बिना अनुमान प्रमाणकी भी सिद्धि नहीं हो सकती। जैसे एक पुरुषने पहिले धुवाँ देखा और अग्निसे उत्पन्न होता हुआ पुनः देखा वही पुरुष जब उस धुवेंके समान किसी जगह नया धुवाँ देखता है तभी तो अग्निका ज्ञान सम्भव है। तो प्रत्यभिज्ञान पहिले हुआ तब सन्निधान हुआ। प्रत्यभिज्ञान हम आप सबके जीवनमे इतना व्यापक ज्ञान चल रहा है कि हर बातमे प्रत्यभिज्ञान मदद करता है। भोजन करते हैं, तो प्रत्यभिज्ञान होता रहता है। निशकतासे दाल चावलका कौर खानेको उठा लेते हैं, तो पहिले बोध है कि इस तरहका इसमे स्वाद है सुख है तो पहिले बोधमे और अबके जाने हुए उसमे सदृशताका बोध बराबर बना हुआ है तब तो खाते हैं। आप झट अपने कमरेमे जाकर, घुस जाते हैं, मंदिर पहुँच जाते हैं, दूसरोसे बोलने लगते हैं, चलना बोलना उठना खाना पीना आदिक समस्त व्यवहारोमे प्रत्यभिज्ञान बराबर लगा हुआ है। तो प्रत्यभिज्ञानके बिना अनुमान प्रमाण भी नही बन सकता। जब तक सादृश्य प्रत्यभिज्ञान न बने तब तक अनुमान नही बन सकता। इस कारणसे जिसे अनुमान प्रमाणको मानना है, उसमें साधन और साध्यके सम्बन्धको मानना है, उसे प्रत्यभिज्ञान प्रथम मानना ही पडेगा। जैसे स्पष्ट याने देखे हुये पदार्थ प्रमाणभूत हैं इसी प्रकार पहिले देखे हुए पदार्थोंका स्मरण होना भी प्रमाणभूत है और इसी प्रकार पहिले स्मरण किये हुए पदार्थमें और वर्तमानमे देखे जा रहे पदार्थमे एकत्व समझना, भिन्नता समझना, छोटा बडा समझना, ये सब प्रत्यभिज्ञान भी प्रमाणभूत हैं।

प्रत्यभिज्ञानसे अबाधित व्यवहार—इस प्रत्यभिज्ञानका लोग बराबर व्यवहार करते हुये चले जा रहे हैं। एक अक्षरको देखकर झट वह समझा कि यह वह अक्षर है और दो तीन अक्षरोका पद देखकर झट यह ज्ञानमे आता कि इसका यह भाव है, यह प्रत्यभिज्ञान बिना हो सकता है क्या ? जो हमने पहिले पढा, जिसका हमे अभ्यास बना उसकी सहायतासे हम उसका स्वाध्याय करते हैं और उसका अर्थ समझते हैं। जैसे कोई पुरुष आत्माका मना करे कि मै आत्मा नही हूँ तो मैं आत्मा नही हू ऐसा समझा किसने ? ऐसी समझ किसमे बनी कि मैं आत्मा नही हूँ। यह भी तो एक समझ है, आत्मा हूँ यह भी समझ है। मैं आत्मा नही हू यह भी समझ है। जगतमें कोई आत्मा है ही नही यह भी एक समझ है। तो जो समझ है वही तो आत्मा है। जिसमें समझ है वही तो आत्मा है। तो आत्माका निषेध भी आत्मा ही कर रहा है। तो जिस ज्ञानके द्वारा हम आत्माका निषेध करनेका उपयोग बनाते हैं, जिस उपयोगके द्वारा हम आत्माका नास्तित्व सिद्ध करते हैं उस उपयोगको माने नही यह कहाँ तक

युक्त है । तो इसी तरह प्रत्येक मनुष्य प्रत्यभिज्ञानके द्वारा सारे व्यवहार कर रहा है। प्रत्यभिज्ञानसे तो देखो प्रत्यक्ष भी काम कर रहा है । प्रत्यक्षमें देखा और झट समझ गये कि यह थाली है तो पहिले उसको जाना था अनेक बार और थाली है ऐसा निर्णय बना था उसकी कुछ मदद इस समय मिल रही है कि नहीं मिल रही है । जो यह समझकर कि यह थाली है ऐसा जो समझ रहा है इस समझमें पहिली समझकी सहायता है कि नहीं, यह तो प्रत्यभिज्ञानकी पद्धति है । जो योगी पुरुष आत्मतत्त्वका ध्यान करने शीघ्र बैठ जाते हैं, निशङ्क बैठ जाते हैं उन्हें यह पता है कि आत्मा अमूर्त ज्ञानमय आनन्दस्वरूप है और इस तरह दृष्टिसे झट ध्यानमें आ जाता है । इन बातोंका संस्कार पड़ा है उन संस्कारोंकी सहायता लेकर झट आत्माका ध्यान करने बैठ जाते हैं तो इस परिणतिमें उनकी प्रत्यभिज्ञाने काम किया या नहीं ? तो प्रत्यभिज्ञान प्रमाण माने बिना आगे कुछ सिद्ध कर ही नहीं सकते । तो प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणकी भाँति निर्विरोध निःसन्देह प्रत्यभिज्ञान भी प्रमाण है । प्रत्यभिज्ञान शब्दमें तीन शब्द लगे हैं — प्रति, अभि, ज्ञान । प्रति शब्दसे तो उस पर्यायको लिया जो पूर्वमें समझा था । उसके प्रति और अभि शब्दसे समझ लिया जो अभिमुख पदार्थ है, सामने पदार्थ है तो पूर्वज्ञात पदार्थके प्रति और अभिमुख रहने वाले पदार्थके सम्बन्धमें जो एकत्व सादृश्य वैलक्षण्य अथवा छोटे बड़े दूर समीप आदि ज्ञान किये जाते हैं उसका नाम है प्रत्यभिज्ञान । ऐसा ज्ञान सब मनुष्योंके होता है और प्रतीतिसिद्ध है । प्रतीतिसिद्धज्ञानका अपलाप करने लगे तब कुछ भी बात सिद्ध नहीं की जा सकती है । हम झट विश्वासके साथ अपने आत्माकी ओर झुकते हैं और क्लेश समाप्त करते हैं, विशुद्ध आनन्द भोगते हैं । इसको उसका पूर्ण निर्णय है कि किस तरह झुका जाता है और किस तरह आनन्द लिया जाता है । उसके स्मरणकी सहायतासे हम झट इस ही योगको करनेके लिए तैयार हो जाते हैं, तो प्रत्यभिज्ञान अच्छे कामोंमें, बुरे कामोंमें, ध्यान साधनामें भक्तिपाठमें, लोकव्यापारमें, अपने खानपानमें सर्वत्र काम कर रहा है । उस प्रत्यभिज्ञानको किसी भी प्रकार मना नहीं किया जा सकता ।

प्रत्यभिज्ञानको अप्रमाण सिद्ध करनेमें शंकाकारके चार विकल्प — जो लोग प्रत्यभिज्ञानको अप्रमाण मानते हैं उनसे पूछा जा रहा है कि प्रत्यभिज्ञानमें अप्रमाणता किस कारणसे समझ रहे हो । क्या प्रत्यभिज्ञान गृहीतग्राही है, अर्थात् पहिले ग्रहण किये हुए पदार्थको ही प्रत्यभिज्ञान जानता है क्या इस वजहसे अप्रमाण कहते हो क्योंकि धारावाही ज्ञान अप्रमाण कहा गया है । जो प्रमाणसे निश्चित हो चुका वह पूर्व अर्थ बन गया । उसका जानना प्रमाणभूत नहीं आता । अपूर्व अर्थके निश्चयको प्रमाण कहा है । तो क्या प्रत्यभिज्ञान पहिले जाने हुए पदार्थको जानता है इस कारण अप्रमाण है यह आपकी मंशा है या इस कारण अप्रमाण समझते हो कि प्रत्यभिज्ञान स्मरणके बाद होता है अथवा प्रत्यभिज्ञान शब्दाकारको धारण किए हुए है । प्रत्यभिज्ञानकी बुद्धिमें स एव अयं यह नहीं है अथवा रोमके महत्व गाय है आदिक

जो शब्दाकार आते हैं प्रत्यभिज्ञान बुद्धिसे, या बाधित होता है किसी प्रमाणके द्वारा, इस कारण अप्रमाण है। यो चार विकल्पोमे पूछा जा रहा है।

गृहीतग्राही होनेसे प्रत्यभिज्ञान अप्रमाण है इस विकल्पकी अयुक्तता— गृहीतग्राही होनेसे प्रत्यभिज्ञान अप्रमाण है यह विकल्प तो अयुक्त है अर्थात् गृहीतग्राही होनेसे प्रत्यभिज्ञानका विषय न तो प्रत्यक्ष गृहीत पदार्थ है, और न स्मृति गृहीत पदार्थ है, किन्तु स्मृति और प्रत्यक्ष दोनोसे ग्रहणमे आने योग्य एक द्रव्य प्रत्यभिज्ञानका विषय है। यह वही है इस ज्ञानमे न तो 'यह' प्रत्यभिज्ञानके ग्रहणमे आता है और न 'वह' प्रत्यभिज्ञानके ग्रहणमें आता है। प्रत्यभिज्ञानका विषय गृहीतग्राही नही हैं, क्योकि प्रत्यक्ष और स्मरण दोनोका जो विषयभूत पर्याय है उसके आधारमे रहने वाला जो एकत्व सादृश्य आदिक धर्म है वह प्रत्यभिज्ञानका विषय है। सो यद्यपि प्रत्यभिज्ञान ने जिस एकत्वको ग्रहण किया उस एकत्वका प्रत्यक्ष और स्मरणसे जाने हुये के साथ सम्बन्ध है अतएव कथचित पूर्वार्थ है, ग्रहण किया हुआ भी कह सकते हैं क्योकि प्रत्यभिज्ञानसे वही तो जाना, उसके ही सम्बन्धमे तो जाना जैसा कि प्रत्यक्ष और स्मरणने जाना। फिर भी सूक्ष्मदृष्टिसे देखें तो प्रत्यभिज्ञानका विषय उन दोनो विषयोसे कुछ अलग है। इस कारण अप्रमाण नही है, क्योकि इस तरह थोडा भी सम्बन्ध निरखकर अप्रमाण मानते रहेगे तो अनुमान ज्ञानको भी अप्रमाण मानना पडेगा, क्योकि अनुमान ज्ञानमें जो कुछ जाना है वह सर्वथा अपूर्व अर्थ नही है। धुवाँ देखा और उसे निरखकर अग्निका ज्ञान किया तो धुवा भी आप पचासो बार जान चुके, अग्नि भी जान चुके और जानी हुई चीजको ही अब जान रहे हो तो यह पूर्वार्थ ही तो हुआ। तो अनुमानमे जो जाना वह सर्वथा अर्थ तो नही है। यदि सर्वथा ही नया हो तो अनुमान जान नही सकता। जिस सम्बन्धमे हमे पहिलेसे परिचय न हो, न देखी हुई चीज हो सामने तो उसका अनुमान भी नही बन सकता। तो यो अनुमान ज्ञानमें जो विषय आया वह भी कथचित् पूर्वार्थ है। सर्वथा अपूर्व उसे भी नही कह सकते, क्योकि जो तर्क नामका प्रमाण है उसका विषय है, यह साध्य साधन सामान्य, धुवाँ देखकर जो अग्निका ज्ञान किया तो उसमे तर्क प्रमाणने सहयोग दिया ना। झट समझ गया भीतर ही भीतर कि जहाँ जहा धुवा होता है वहा वहा अग्नि होती है। तो तर्क ज्ञानसे जाना ना यह और जाना अग्नि सामान्य। यह तो नही कहा जा रहा कि जहाँ जहाँ धुवा होता है वहा वहाँ लकडीकी आग होती है अथवा पत्थरकी आग होती है। आग सामान्यका अविनाभाव है। तो तर्क ज्ञानसे जो विषय किया है उससे कथचित अभिन्न ही तो है यह पर्वतकी अग्नि जिसका अनुमान किया जा रहा है। अनुमान प्रमाणमे जिसे जाना जा रहा है वह तर्क ज्ञानसे पहिले ही जाना जा चुका था। तो तर्क विषयसे अभिन्न है। यह अनुमानसे आया हुआ साध्य यद्यपि अनुमानमे कथचित देश कालके विशेषसे विषयमे भेद हुआ मगर जाना तो उस हीको जिसको तर्क ज्ञानने समझा दिया था, इस कारण वह भी पूर्वार्थ सिद्ध हो जाता है। तो अनुमान

भी प्रमाण नहीं बन सकता। गृहीतग्राहीका यदि ऐसा अर्थ लगाया जाय कि जो थोड़ा बहुत भी अंश किसी अन्य प्रमाणोंसे जान ले उसके बारेमें जाने सो गृहीतग्राही है और अप्रमाण है। यों कहनेपर तो आप कुछ भी प्रमाण नहीं व्यवस्थित कर सकते इससे यह कहना युक्त नहीं है कि गृहीतग्राही होनेसे प्रत्यभिज्ञान अप्रमाण होता है।

स्मरणानन्तर होनेसे प्रत्यभिज्ञानको अप्रमाण माननेपर सिद्धान्त-विघात —अब दूसरे पक्षकी बात सुनो। स्मरणके अनन्तर हुआ है यह प्रत्यभिज्ञान इस कारण अप्रमाण कहना युक्त नहीं है। स्मरणके अनन्तर होने वाले ज्ञानको अप्रमाण कहने पर जब रूपके स्मरणके बाद रसका सम्बन्ध हो जाय तो उस समय जो रसज्ञान उत्पन्न हुआ है वह भी अप्रमाण हो बैठेगा क्योंकि तुमने तो नियम बना रखा है कि स्मरणके बाद अनेक ज्ञान होते हैं और प्रमाणभूत होते हैं। रूपके स्मरण करने के बाद यदि कोई चीज रखी जाय और उससे जो रसका ज्ञान हुआ क्या वह अप्रमाण है, प्रमाणभूत है ? उसका अनुभव करते हैं, आनन्द लेते है। रोज-रोज भोजन करते हैं लोग और उसी भोजनको कल भी किया और उससे जो स्वाद आया, ज्ञान हुआ क्या वह गृहीतग्राही है ? नहीं, प्रमाणभूत है। अरे कल खाया था, कल ग्रहीत हुआ था उसके बाद तो विस्मरण भी हो गया। नई इच्छा जगी और फिर भोजन खाया। उसमें जो ज्ञान हुआ वह अप्रमाणभूत नहीं है। तो स्मरणके बाद जो ज्ञान होता है वह अप्रमाण है यह कोई युक्तिसंगत बात नहीं है। रस ज्ञानसे पहले जो स्मरण ज्ञान होता है उसको क्षणिकवादियोंने समनन्तर कारण माना है अर्थात् जिस ज्ञानके बाद लगातार दूसरा ज्ञान होता है उस दूसरे ज्ञानका कारण पूर्वज्ञान है क्योंकि ज्ञानाद्वैत सिद्धान्तमें ज्ञानसे ज्ञानरूपता मानी गई है। ज्ञानसे पहिले जो ज्ञान था वह समनन्तर कारण कहा जाता है अर्थात् अनन्तर उत्पन्न हुए ज्ञानका कारण ! तो रूपके स्मरणके बाद फिर जो रस चखा उस रसज्ञानकी उत्पत्ति स्मरणके बाद हुई फिर भी प्रमाणभूत है। जैसे कोई अंधेरेमें आम दे दे कि इसे चखो ! तो आमको चूसने वाला पुरुष रूपका ध्यान तो कर ही लेता है -हरा, पीला जैसा है, तो रूप स्मरण रस ज्ञानका समनन्तर कारण बना और प्रमाण है इस कारण यह नहीं कह सकते कि स्मरणके बाद होने वाले ज्ञान अप्रमाण हैं। अब शङ्काकार कह रहा है कि यहां तो रूपस्मरणके बाद जो रसज्ञान हुआ है इस प्रसङ्गमें तो बोधरूपसे समनन्तर कारण है और तुम्हारे प्रत्यभिज्ञानमें जो जिनका था वह स्मरणके रूपसे समनन्तर कारण है। तो रूपज्ञानके बाद रसज्ञान होना यह तो स्मरणके बाद नहीं हुआ किन्तु बोधके बाद हुआ और तुम्हारा प्रत्यभिज्ञान स्मरणके बाद हुआ ? उत्तर देते हैं कि यह कहना अयुक्त है क्योंकि चाहे स्मरणरूप हो, जो जो भी हैं वे बोधरूप तो होते ही हैं ऐसा नहीं कह सकते कि स्मरण तो बोधरूप नहीं होता और अन्य बोधरूप होते। इस कारण तुम्हारा रूपस्मरणके बाद होने वाला रसज्ञान भी स्मरणके बाद हुआ और प्रत्यभिज्ञान भी स्मरणके बाद हुआ। तुम्हारा प्रमाण है

रसज्ञान तो प्रत्यभिज्ञान भी प्रमाण है।

स्मरणानन्तरभावी होनेसे प्रत्यभिज्ञानको अप्रमाण माननेपर अनुमान के प्रमाणत्वकी असिद्धि देखिये ! स्मरणके अनन्तर होने मात्रसे प्रमाण न माना जाय प्रत्यभिज्ञानको तो अनुमान भी प्रमाण नही बन सकता है। पर्वतमे धुवा देखकर अग्निका ज्ञान किया कि जहा जहा धुवा होता है वहा वहा अग्नि होती है। तो स्मरण के बाद ज्ञान होनेसे यदि अप्रमाणता मान ली जाय तो अनुमान भी प्रमाण नही बन सकता। अब न्यायग्रन्थके अनुसार भी देखलो कि साधन और साध्यके सम्बन्धके बाद ही अनुमान ज्ञान उत्पन्न होता है। धुवाको देखकर जो अग्निका ज्ञान हुआ तो पहिले तो देखा गया धुवा और धुवा देखकर एकदम हुआ साध्य-साधनके सम्बन्धका ज्ञान कि जहा–जहा धुवा होता है वहा वहा अग्नि हुआ करती है उस सम्बन्धका हुआ स्मरण, यह सम्बन्ध बिल्कुल सही है। हमने इस जगह भी देखा, उस जगह भी देखा ये सब बातें झूल जाती है ज्ञानमे। तो साध्य-साधनके सम्बन्धके स्मरणके बाद ही अनुमान ज्ञान होता है। तो स्मरणके बाद होने वाले ज्ञानको अप्रमाण कहेंगे तो अनुमान ज्ञान भी अप्रमाण बन जायगा। क्योंकि बतलावो ना यह सच बात कि सम्बन्धके स्मरण के बाद ही अनुमान ज्ञान बना। यदि ऐसा न होता तो फिर दृष्टान्त देनेकी क्या जरूरत थी ? इस पर्वतमे अग्नि है, धुवा होनेसे जैसेकि रसोईघर। रसोईघर ऐसा जो सपक्षका दृष्टान्त दिया वह तो सम्बन्ध दिखानेके लिए ही दिया। इससे सिद्ध है कि सम्बन्धके स्मरणके बाद अनुमान ज्ञान बनता है। तब प्रत्यभिज्ञानको अप्रमाण स्मरण के बाद होनेके कारण नही कह सकते।

शब्दाकारधारी होनेसे प्रत्यभिज्ञानके अप्रमाणत्वके विकल्पकी असमीक्षिताभिधानता—शब्दाकारको धारण करता है प्रत्यभिज्ञान इस कारण अप्रमाण है। यह तीसरा पक्ष भी युक्त नही है, क्योंकि ज्ञान शब्दाकारको नही धारण करता। भले ही ज्ञानके साथ साथ इसकी गुनगुनाहटके शब्द आते रहते हैं मगर पौद्गलिक चीज है शब्द और ज्ञान है चेतनका धर्म। चेतनका धर्म ज्ञान शब्दके आकारको धारण करे यह बात युक्त नही है और यह भी युक्त नही है कि जितने भी पदार्थ हैं वे सब शब्दमय हैं। शब्द ही रूप है। शब्दोके सिवाय न चेतन पदार्थ है, न अचेतन पदार्थ। ये तो मनगढत कल्पनायें हैं। ज्ञान शब्दाकारको धारण नही करता इस कारण यह नही कह सकते कि शब्दाकारधारी होनेसे ज्ञान अप्रमाण होता है। पदार्थोंने शब्दको कुछ धारण किया है क्या ? सामने जो पदार्थ दिख रहे हैं ये जैसे हैं दिख रहे हैं इनमे शब्दाकार कहा पाया जाता ? इनका सयोग वियोग हुआ परस्परमे उस समय भाषा वर्गणा जातिके पौद्गलिक स्कध वचनरूप परिणम जाते हैं। वचनरूप परिणमन होने मे भी यह दिखने वाले स्कंधोका शब्दपरिणमन नही है किन्तु भाषावर्गणा जातिके पुद्गल स्कधोंका शब्दरूप परिणमन है। ज्ञानमे तो शब्दकी बात ही नही है। प्रत्यभि-

ज्ञान शब्दाकारधारी होनेसे अप्रमाण है, यह कहना अयुक्त है।

प्रत्यभिज्ञानप्रमाणकी अबाध्यमानता—अब चौथे पक्षके विषयमें सुनो। प्रत्यभिज्ञान बाध्यमान है इस कारण अप्रमाण है, यह कहना युक्त नहीं। प्रत्यभिज्ञान किससे बाधा आती है बतलावो? प्रत्यभिज्ञानमें जो विषय निर्णीत किया है उसका बाधक प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है क्योंकि प्रत्यक्ष ज्ञान उसे जानता है जो सामने हो। किसी देवदत्तको देखकर ऐसा ज्ञान करना कि यह वही देवदत्त है जिसे १ वर्ष पहिले देखा था। इस ज्ञानमें जो कुछ विषय आया वह विषय प्रत्यक्षका नहीं हो सकता। प्रत्यक्ष तो सामने आये हुए पदार्थको ही जानता है। जो जिस विषयमें प्रवृत्ति नहीं करता वह उसका न साधक होता न बाधक। जैसे रूप ज्ञानका रस ज्ञान न साधक है न बाधक। आमको चखा और स्वाद लिया। उस स्वादको लेकर कोई यह कहे कि आम पीला होता है तो यह झूठ बात है। आम तो मीठा होता है। तो रूपज्ञान जुदी चीज है, रसज्ञान जुदी चीज है। इसी तरह प्रत्यभिज्ञानका विषय अलग है प्रत्यक्षका विषय अलग है। प्रत्यक्ष प्रत्यभिज्ञानके विषयमें बाधक नहीं हो सकता। अनुमान भी प्रत्यभिज्ञानके विषयमें बाधक नहीं है क्योंकि अनुमानकी प्रवृत्ति प्रत्यभिज्ञानके विषयमें नहीं होती। साधनसे साध्यके ज्ञान होनेका नाम अनुमान है। तो अनुमानने अनुमेयको जाना एकत्व सादृश्यका नहीं जाना। जंगलमें रोझको देखकर यह कोई ध्यान करे कि यह तो गायके समान जानवर है। तो क्या यह अनुमानका विषय है? यह प्रत्यभिज्ञानका विषय है। अनुमान ज्ञान प्रत्यभिज्ञानके विषयके सम्बन्धमें कभी भी बाधक बन ही नहीं सकता इस कारण यह निर्णय रखना चाहिये कि प्रत्यभिज्ञान प्रमाण है क्योंकि समस्त बाधासे रहित है। जैसे—प्रत्यभिज्ञान प्रमाण है क्योंकि इसमें कोई बाधा नहीं आ रही। आँखोंसे देखा कि यह चौकी है तो यह ज्ञान प्रमाण है क्योंकि इसमें कोई बाधक नहीं हो रहा। इसी तरह प्रत्यभिज्ञानके द्वारा जब जाना कि यह वही देवदत्त है या यह रोझ गायके समान है यह भैया उस बड़े भैयासे २ वर्ष छोटा है आदिक जो भी बात ज्ञानमें आती है बिल्कुल सही है। उनमें कोई बाधक नहीं बन रहा। इससे एकत्व प्रत्यभिज्ञान प्रमाणभूत है। और इसी तरह सादृश्य प्रत्यभिज्ञान भी प्रमाणभूत है। जैसे जाना कि यह रोझ गायके समान है तो गाय और रोझमें जो सामान्य धर्म ज्ञानमें आया है जिस दृष्टिको हम समानता कहते हैं उस समानताका ज्ञान प्रमाण है। सादृश्य प्रत्यभिज्ञानके विषयमें भी कोई बाधा देने वाला प्रमाण नहीं है। तथा यह संवादक भी है अर्थात् विवादरहित कार्यकारी ज्ञानको पुष्ट करने वाला प्रयोजनको सिद्ध करने वाला भी है। जैसे कोई रोगी शहदका त्याग किये हुए है तो वैद्यने बताया कि शहदकी तरह गुण मिश्रीकी चासनीमें है तो उसका जो बोध हुआ वह कल्याणकारी है। तो प्रत्यभिज्ञान प्रत्यक्षकी तरह पुष्ट ज्ञान है, स्मरणकी तरह पुष्ट ज्ञान है। अनुमानकी तरह अविसम्वादी ज्ञान है। जिस ज्ञानसे हम रात दिन व्यवहार बना रहे हैं, धर्ममार्गमें भी अपना कार्य निकाल रहे हैं उस

ज्ञानको अप्रमाण कहना यह तो बडे दु:साहसकी बात है। अन्य प्रमाणोकी भांति प्रत्यभिज्ञान भी प्रमाण है।

सादृश्यकी सिद्धिके सम्बन्धमें शंका समाधान—एकत्व प्रत्यभिज्ञानमे तो एक ही पदार्थकी पूर्व उत्तर पर्यायके आधारकी एकता देखी जाती है और सादृश्य प्रत्यभिज्ञानमे भिन्न-भिन्न दो पदार्थोमे गुण आकार आदिककी समता देखी जाती है। इस प्रसगमें शंकाकार कह रहा है कि जो समानता है वह उन दो पदार्थोंसे भिन्न है या अभिन्न ? जैसे रोझको देखकर यह ज्ञान हुआ कि यह गायके समान है तो वह समानता रोझसे भिन्न ? या अभिन्न है गायसे भिन्न है। यदि भिन्न कहते हो कि वह समानता गायसे रोझमें भिन्न है तो उसको समानता ही क्या कहलायी ? यदि कहो कि अभिन्न है तो या तो रोझ रह गया या गाय। कोई सादृश्य तो रहा नहीं। तो पदार्थोंकी सदृशता न भिन्न है न अभिन्न इस कारण सादृश्यको विषय करने वाले प्रत्यभिज्ञानमे बाधा आती है। विसम्वाद होता है इस कारण प्रत्यभिज्ञान सिद्ध ही नही होता। इसका उत्तर दिया जा रहा है, सादृश्यका क्या स्वरूप है, सादृश्यका अर्थ क्या है और सादृश्य प्रत्यक्षसे भी सिद्ध है अनुमानसे भी सिद्ध है, ये सब बातें एक विवरण सहित आगे बतावेंगे लेकिन यहां इतनाही समझनो कि समानताका बोध सबका निर्विवाद हो रहा है। दो जुलजुवा बच्चोको देखकर सभी कहते कि ये दोनो बच्चे एक समान हैं तो सदृशता का बोध सबको बराबर निर्वाध हो रहा है इसकी असिद्धि नही है। कदाचित एक साथ उत्पन्न हुए एकसे आकारके दो पुत्रोमे जिनका कुछ नाम रख लो, एकका नाम राम और दूसरेका नाम भरत। अब वे दोनो एकसे आकारके है और किसी समय रामको देखकर कोई यह कह दे कि देखो वह रामके समान है तो यह गलत हुआ ना। राम ही तो है और कहा जा रहा कि यह रामके समान है। तो एक जगह यदि सादृश्य प्रत्यभिज्ञान गलत हो गया तो इसके मायने यह नही है कि सब जगह गलत हो गया। इससे जिस प्रकार एकत्व प्रत्यभिज्ञान प्रमाण सिद्ध है इसी तरह सादृश्य प्रत्यभिज्ञान सिद्ध है। प्रत्यभिज्ञानमे दो ज्ञेयोके सम्बन्धको बात जानी जाती है। चाहे वह सम्बन्ध एकतारूपसे किया हो चाहे सदृशतारूपसे किया हो चाहे विसदृशतासे किया हो या प्रतियोगितासे किया हो वे सब प्रत्यभिज्ञान कहलाते हैं।

सादृश्य प्रत्यभिज्ञानका अनुमानमे अन्तर्भाव—शंकाकार कहता है कि प्रत्यभिज्ञानको मानता कौन नहीं, हम भी मानते हैं मगर वह अनुमान प्रमाण है, प्रत्यभिज्ञान कोई जुदा प्रमाण हो सो बात नही। अनुमानरूपसे प्रत्यभिज्ञानको माना जाता है। यह वही देवदत्त है यह ज्ञान अनुमान है। प्रत्यभिज्ञान नही क्या यह रोझ गायके सदृश है यह भी प्रत्यभिज्ञान नही, अनुमान है। किस प्रकारसे यह ज्ञान अनुमान कहलाता है सो सुनिये। पूर्व क्षणमें और उत्तर क्षणमें दो पदार्थ देखे गये। जैसे पहिले देखा था गाय, और अब देख रहे हैं रोझ, तो उनमे जो एक सादृश्य दिख रहा है वह

प्रत्यक्षसे दोनो प्रत्यक्षोमे ही जाना जा रहा है। जब गायको देखा था तब वही आकार देखा गया था, अब रोझको देख रहे हैं तो वही आकार दिख रहा है। तो यह सादृश्य तो प्रत्यक्षसे जाना गया लेकिन जो पुरुष ऐसा जानकर भी सादृश्यका व्यवहार नही करता है उसको अनुमानसे समझना चाहिये कि यह रोझ पहिले जानी हुई गायके समान आकारकी यहाँ उपलब्धि है। तो देखो साधन बन गया। साधनसे साध्यके ज्ञान होने को अनुमान कहते हैं। गायके समान आकारकी उपलब्धि होनेसे यह रोझ गायके समान है। अनुमान बन गया ना फिर सादृश्य प्रत्यभिज्ञान क्या रहा ? इस शंकाका अब उत्तर देते हैं कि इस तरह माननेपर तो अनुमानमें भी अनवस्था हो जायगी। पर्वत मे जो धुवा दिख रहा है उसमे ऐसा ज्ञान किया जा रहा कि पहिले जाने हुये धूमके समान यह धूम है। इस प्रकार जो साधनका ज्ञान बना, है यद्यपि यह सादृश्य प्रत्यभिज्ञान, अनुमान करते समय धुवां देखकर जो झट यह बोध हो जाता है कि यह धुवा उन सब धुवोंके समान है जिनको हमने देखा था यह है सादृश्य प्रत्यभिज्ञान तुम कर रहे हो अनुमान, तो उसमें भी रहने वाले जो सदृशताका धर्म है उसका भी अनुमान बनाना पडेगा। जैसे पर्वतका धुवा पहिले देखे धुवेंके समान है क्योंकि पहिले देखे हुए धुवोंकी तरहका आकार है। तो अब इसका अनुमान बनावें कि यह धुवा सदृश आकार होनेके कारण समान है क्योंकि सदृश आकार है इसमे फिर जो भी सदृश आकारका हेतु देखा वहाँ भी अनुमान बनाया जावे तो वहाँ अनुमानकी अवस्था नही रह सकती। यदि तुम पदार्थमें होने वाली समानताके व्यवहारको इस हेतुसे सिद्ध कर रहे हो कि यह सदृश आकार होनेसे समान है तो सदृश आकारमें भी तुम किस तरह व्यवहार बनावोगे ? दूसरा सदृश धर्म दिखाकर तो अनवस्था हो जायगी। यदि पदार्थमें सदृशता सिद्ध करोगे तो अन्योन्याश्रय दोष हो जायगा इस कारण सादृश्य प्रत्यभिज्ञानको अनुमान न समझना चाहिये, वह एक स्वतन्त्र ज्ञान है। जैसे एकत्व प्रत्यभिज्ञानका व्यवहार बहुत होता रहता है, किन्तु अत्यन्त अधिक उपयोग होनेपर भी लोग उसकी आलोचना नही कर पाते हैं इसी तरह सादृश्य प्रत्यभिज्ञानका भी व्यवहार अधिक होता रहता है। खिचडी पक रही है और पकनेके बाद चावल टटोला तो वह घुल गया तो झट यह ज्ञान हो गया कि चावल पक गया। इसके बीच सादृश्य प्रत्यभिज्ञान भी हो गया पर लोग ख्याल नही रखते। रोज खिचडी पकाते थे, इस तरह घुल जाती थी और पकी कहलाती थी यह सब ज्ञानमें आया कि नही ? जिस समय पके हुए चावलको टटोला तो एकत्व प्रत्यभिज्ञानकी तरह बात बातमें सादृश्य प्रत्यभिज्ञान भी चल रहा है। इतना तो विस्तृत उपयोग होता है जिसपर भी न माने कोई तो मत माने, पर इसका उपयोग छोड दे कोई तो व्यवहार भी अपना नही बना सकता।

सादृश्यप्रत्यभिज्ञानका उपमानमें अनन्तर्भाव—अब जो कि उपमान प्रमाणको मानता है वह शंका कर रहा है कि जब हमने रोझ देखा तो चू कि हमने गाय भी देखा था और गायके देखनेसे एक धारणा मनमें बना ली थी। तो गायके

देखनेसे बनायी है व रखा जिसने ऐसा जब रोझको देखता हूँ तो रोझके देखनेसे तुरन्त गायका स्मरण हो आता है और तब इस प्रकारके आकारका ज्ञान बनता है कि वह उसके समान है या यह मेरे समान है। तो यह ज्ञान तो उपमान हुआ। उपादान प्रमाण कहते उसे हैं कि जहाँ एक अर्थकी दूसरे अर्थमे उपमा दी जाय। समानता दिखाई जाय तो यह सादृश्य प्रत्यभिज्ञान उपमान प्रमाण हुआ यह कोई अलग प्रमाण नही है, क्योंकि उपमानका प्रमेय होता है क्या ? समानतासे सहित पदार्थ अथवा पदार्थमें रहने वाली समानता यह है उपमानका विषय। तो यो उपमान तो सही है पर सादृश्य प्रत्यभिज्ञान कोई प्रमाण नही है। उत्तर देते हैं कि यह तुम्हारा कथन बिना विचारा हुआ है। विचार करनेपर तो तुम ऐसा नही कह सकते। प्रत्यभिज्ञान होता है सकलनात्मक ज्ञान, कि जिस एकत्व प्रत्यभिज्ञानमे पूर्व और उत्तर पर्यायमें एकत्वका सकलन किया गया था तो सादृश्य प्रत्यभिज्ञानमे एक पदार्थका और पूर्व विज्ञात दूसरे पदार्थमें जो सदृशता है उसका सकलन किया है इसलिए सादृश्य प्रत्यभिज्ञानपनेको नही छोड रहा। जैसे यह वह ही है इसमे उत्तर पर्यायकी पूर्व पर्यायके साथ एकताकी प्रतीति करायी जा रही है और वह प्रत्यभिज्ञान है इसी प्रकार प्रथम देखे हुए पदार्थका पूर्व देखे हुए पदार्थका पूर्व देखे हुये पदार्थके साथ सदृशताकी प्रतीति करायी जाती है। यह उसके समान है तो वहा हुआ एकत्वका सकलन और यहा होता है सदृशताका सकलन। तो जैसे पूर्व पर्याय और उत्तर पर्याय सम्बन्धी ज्ञानोमे जो एकत्व समझमें आया वह एक व जाना गया इसी तरह वर्तमान पदार्थमे और पूर्व विज्ञात पदार्थमे जो सदृशता है वह सदृशता जानी गयी है। यदि ऐसा कहोगे कि एकत्वका ज्ञान तो प्रत्यभिज्ञान है यह हम मान लेंगे पर सादृश्यज्ञान तो अनुमान ही है। ऐसा कहोगे तो तुम यह बतलावो कि विसदृशताका ज्ञान हुआ तो वह किस नाम का प्रमाण है। जैसे रोझ देखकर रोझ देखने वाले पुरुषको गाय देखनेसे जो सस्कार बना हुआ था उससे यह समझता है कि यह रोझ गायके समान है तो इसी प्रकार उसने भैंसको देखा था और भैंसके देखनेसे उसके आकारका सस्कार भी बनाया था। वही पुरुष रोझ देखकर जो यह ज्ञान करता है कि यह रोझ भैंससे बिल्कुल विलक्षण है तो विलक्षणताकी भी तो प्रतीति हुआ करती है। जैसे एक पदार्थमे दूसरे पदार्थकी प्रतीति होती है इसी प्रकार विसदृशताकी भी प्रतीति होती है। तो विलक्षणताकी जो प्रतीति होती है, वह एकत्व प्रत्यभिज्ञानमे भी नही गया और उपमान प्रमाणमे भी नही गया, जो तुमने प्रमाण माना उसीमे रुचि होवेकी एकत्व मानते और उपमान भी प्रत्यभिज्ञान भी तो यह बतावो कि यह वैलक्षण्यज्ञान किस ज्ञानमे शामिल होगा क्योंकि इसका विषय न अनुमान है न सदृशता। जो प्रमाणकी सख्या मानते हैं अनुमान प्रमाणवादी, उनकी सख्याका विघात हो जायगा ना, इसमे सही बात मान लो कि सकलात्मक ज्ञानको प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। चाहे वह एकत्वका सकलन करे चाहे सदृशताका चाहे विसदृशताका।

सादृश्य और वैलक्षण्यका विधान—शंकाकार कह रहा है कि सदृशताके अभावका नाम विसदृशता है। समानता न जची उसीका नाम विसदृशता है। तो वह विसदृशता अभावनामका विषय है। सदृशताका अभाव जानो गया और अभावका जानना अभाव प्रमाणसे बनता है। मीमांसक सिद्धान्तमें प्रत्यक्ष, अनुमान, अर्थापत्ति, उपमान, और अभाव ये प्रमाण माने गए हैं। तो जो असद्भाव है, अभावरूप है उसको अभाव प्रमाण जानता है तो विसदृशता सदृशताका अभाव है तो विसदृशताका ज्ञान अभावप्रमाणसे हो जायगा। जो यह पूछा गया था कि यह रोझ भैंससे विसदृश है। यह ज्ञान किस ज्ञानमें भी नहीं आया और अनुमानमें भी नहीं आया इसपर शंकाकार कह रहा है कि अभाव प्रमाणमें आ गया। और इस से फिर प्रमाणोंकी संख्याका विघात भी नहीं होता। इसपर उत्तर देते हैं कि जिसे तुम कहते हो कि सदृशताके अभावका नाम विसदृशता है। तब तो वही दोष। या अब बतलावो वैलक्षण्यका ज्ञान किस प्रमाणमें अन्तर्भाव करोगे? शङ्काकार कहता है कि विसदृशता उसे कहते हैं कि जो सदृशता बतावे। कई चीजें हैं उनमें आकार गुण आदिक समान पाये जायें, उन गुणोंको बताना मिलाना इनका नाम है सादृश्य। वह कैसे वैलक्षण्यका अभाव बन जायगा? सादृश्य विधिरूप है, वैलक्षण्यके अभावरूप नहीं है। इसपर उत्तर देते हैं कि वैलक्षण्य भी इस रूपमे मानो कि अनेक धर्मोमे विसदृशरूपसे बताना, फिर वह कैसे सादृश्यके अभाव मात्र बन जायगा, वैलक्षण्य विधिरूप है। उन अनेक पदार्थोंमें जो आकार नहीं मिलता था उन आकारोंको बताया जा रहा है। इससे वैलक्षण्य ज्ञानको अभाव प्रमाणमें सामिल नहीं किया जा सकता। जैसे सादृश्य प्रत्यभिज्ञान एक विधिरूप है, एकत्व प्रत्यभिज्ञान विधिरूप है इसी प्रकार वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञान भी विधिरूप है।

यौगाभिमत उपमान प्रमाणमें सादृश्यप्रत्यभिज्ञानका अनन्तर्भाव—अब इस समय उपमान प्रमाण मानने वाला एक दूसरा सैद्धान्तिक जो थोडा लक्षणमें अन्तर मानता है प्रश्न कर रहा है कि यह रोझ गायके समान है, ऐसा जो ज्ञान किया गया है वह अनुमान प्रमाण ही तो है। किस तरह? यह रोझ गायकी तरह है, इस प्रकार उपमानरूप वचनका जिसने संस्कार बनाया है फिर वनमें रोझको देखता है तो रोझको देखकर झट यह ज्ञान करता कि यह है रोझ शब्दसे समझा जाने वाला पदार्थ इस तरह संज्ञा और संज्ञी वचन और अर्थ इसके सम्बन्धका ज्ञान करनेका नाम उपमान है। उपमान ही प्रमाण तो हुआ। अब इस शङ्काका उत्तर देते हैं। उत्तर सुननेसे पहिले थोडा यह जान जायें कि मीमांसकके उपमानमें और नैयायिकके उपमानमे अतर क्या है? मीमांसकके उपमान प्रमाणसे तो रोझको देखकर झट यह ज्ञान हुआ कि यह गायकी तरह है तो गायकी समानताका ज्ञान कर लिया जायगा, पर नैयायिकके उपमानमें क्या बात आई? इस पुरुषने सुन रखा था कि रोझ गायकी तरह होता है और गायको पहिले अनेक बार जाना है। अब वही पुरुष जो वनमें आकर रोझको देखता

है तो उसका ज्ञान इस ढङ्गमे होता कि ओह यह है रोझ शब्दके द्वारा जाना गया पदार्थ। यह उपमानमे अन्तर आया। तुमने सज्ञा और सज्ञीके सम्बन्धका ज्ञान किया, इस ढगसे अप्रमाण जाना किसी भी प्रकार माना जाय यह सदृशताका ज्ञान उपमान प्रमाणमे नही आता। बल्कि उपमान प्रमाण सादृश्य प्रत्यभिज्ञानमे सामिल किया जाना चाहिये ऐसा क्योकि सादृश्य प्रत्यभिज्ञान भी कोई अलग प्रमाण नही है, किन्तु प्रत्यभिज्ञान प्रमाणका भेद है। मूलमें ज्ञान वह माना जाना चाहिये कि जिसमे भेद सब मूलमे गर्भित हो जांय। उत्तरमे कहे जा रहे हैं कि जैसे एक समय घटका ज्ञान करने वाले पुरुषको फिर घट दिख जाय वही घट तो यह ज्ञान करता है कि यह वही घट है ऐसा ज्ञान प्रत्यभिज्ञान है न। तो इसी तरह गायके समान रोझ इस शब्दमे वाच्य वाचक सम्बन्धको जानकर फिर रोझके देखनेसे जो साम्यका ज्ञान हुआ है वह भी प्रत्यभिज्ञान ही है। नैयायिकके उपमान प्रमाणके सिद्धान्तमे यह माना जाता है कि जिसे पहिले नही जाना उसके दर्शन होनेसे तो स्मृति कहलाती है और जिनका सम्बन्ध पहिले जान लिया उसका ज्ञान होनेसे उपमान कहलाता है ऐसा भेद नही है। जहाँ भी दो पदार्थोंमे दो परिणतियोमे किसी बातका टिकाव किया जाय, सकलन किया जाय वे सब प्रत्यभिज्ञान होते हैं। प्रत्यभिज्ञानका सामान्य लक्षण यह है दर्शन और स्मरणके कारणमे संकलनात्मक ज्ञान है वह प्रत्यभिज्ञान है यह लक्षण एकत्व प्रत्यभिज्ञानमे भी घटित है और सादृश्य वैलक्षण्य प्रतियोगि आदिकमे भी घटित है। एकका हुआ दर्शन दूसरेका हुआ स्मरण उन दोनो पदार्थोंमें ही किसी धर्मका सकलन सो प्रत्यभिज्ञान है। यो एकत्व प्रत्यभिज्ञानकी तरह सादृश्य प्रत्यभिज्ञान भी प्रमाण और प्रमाणभूत है।

वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञानका उपमान प्रमाणमे अनन्तर्भाव— जो लोग प्रत्यभिज्ञानको अप्रमाण मानते और उसका अन्तर्भाव उपमान प्रमाणमें किया करते है उनसे पूछा जा रहा है कि वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञानको तुम उपमानमे अन्तर्भाव कर नही सकते, अन्य किसमे करोगे? शकाकारने बताया था कि वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञान भी उपमानमें गर्भित होता है। सो यदि गायसे विलक्षण भैंस आदिकके देखनेसे जो यह बोध होता है कि यह गाय नही है तो इसमे जो सज्ञा सज्ञीके सम्बन्धके निषेधका ज्ञान हुआ उसे यदि उपमान कहते हो, उपमान प्रमाणवादी नैयायिकोसे कहा जा रहा है कि जैसे गाय की तरह रोझ होता है ऐसी बात सुनकर रोझको देखनेपर ओह यह है गाय शब्दके द्वारा वाच्य अर्थ इसे उपमान कहते हैं क्योकि सज्ञा और सज्ञीका सम्बन्ध बन गया, इसी तरह यह नही है रोझ ऐसा जो सज्ञा सज्ञीके सम्बन्धका निषेध है वह भी उपमान है ऐसा यदि मानोगे, तो तुम्हे अपने ही सिद्धान्तको बदलना होगा। तुम्हारे ही सिद्धान्तका घात होगा क्योकि तुम्हारे अर्थात् शकाकारके सिद्धान्तमे बताया गया है कि प्रसिद्धार्थसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानम्। पहिले जाने हुए पदार्थमे जो धर्म रहता है उस धर्मसे वर्तमान साध्यकी सिद्धि कर लेना इसका नाम उपमान है। जैसे रोझ दिख

जानेपर यह ज्ञान लेना कि यह है रोझ शब्दके द्वारा वाच्य पदार्थ । तो लो इसमें वैलक्षण्यकी बात तो जरा भी नही आयी और तुमने वैलक्षण्यको भी उपमानमें मान लिया तो यह सिद्धान्तका घात हो गया । यदि कहो कि ज्ञात अर्थके सादृश्यसे भी उपमान होता है और ज्ञात पदार्थकी विलक्षणतासे भी उपमान होता है तो इस सूत्रमें कुछ शब्द बढा देना चाहिये । अथवा एक सूत्र और बढादें कि: प्रसिद्धार्थवैधर्म्याच्च साध्यसाधनमुपमानम् । अथवा दोनो ही बातें आ जायें उपमानके लक्षणमे सदृशताकी भी बात आ जाय और विसदृशताकी बात आ जाय और उसे बना बैठे यो प्रसिद्धार्थ-कत्वात्साध्यसाधनमुपमाम् । अर्थात् पहिले ज्ञात किया हुए अर्थकी एकता उसके सम्बन्ध में कुछ भी बातसे साध्यका साधन कर लेना उपमान है, इतने पर भी प्रत्यभिज्ञानका प्रत्यक्षमे अन्तर्भाव तो अयुक्त ही है और उपमान प्रमाणमें यदि प्रत्यभिज्ञान जैसे ही लक्षणके शब्द बोल दें तो फिर कहने भरका भेद है । ज्ञात तो वही हुआ जिसे तुम उपमानसे कहते हम प्रत्यभिज्ञान शब्दसे कहते । और उपमान शब्द देकर जितने ही लक्षण बतलाये वह शब्द ही ऐसा है कि उसमे सब लक्षण आ ही नही सकते हैं । प्रति-योगी प्रत्यभिज्ञान उसमें कैसे बता सकोगे ।

प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञानका उपमान प्रमाणमें अनन्तर्भाव —देखिये — अपने निकट जो मकान है जैसे अपने घरसे करीब ५० गज दूरी पर सेठका मकान है तो उसको निरखकर एक संस्कार बन गया कि यह है मकान । फिर किसी दूसरेके मकान की बात कही जाय जो कि एक फर्लांग दूर हो तो उसे देख करके यह कहा जाता है कि यह उस मकानसे दूर है । यहाँ पर प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान है । निकट वाला मकान और दूर रहने वाला मकान । उनमें प्रतियोगी कौन है ? बीचकी जमीनसे दूर ज्ञात हुआ अन्य मकान । जमीनसे चाली हुई दूरीको प्रतियोगी कहते हैं मुकाबले वालेको । जैसे कहते हैं प्रतियोगिता पुरस्कार मायने मुकाबला करके किस बालकसे कौन बालक से कौन बालक श्रेष्ठ है ऐसा मुकाबला करके कोई इनाम देते इसे कहते हैं प्रतियोगिता तो यो ही पास वाले मकानका मुकाबला दूर वालेसे किया जा रहा । जब यह ज्ञान हुआ कि यह इससे दूर है तो यह प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान है उसका कहा अन्तर्भाव किया जायगा ? उपमानके कितने ही लक्षणभेद कर लो इसका अन्तर्भाव कहां होगा, अथवा आंवला खूब देखा और उससे संस्कार बन गया कि इतने बडे होते हैं आंवले । और फिर देखा कैथ उसे देखकर यह कहना कि आंवला कैथसे छोटा होता है तो यहा छोटा आंवला देखनेसे जो आकारका संस्कार बनाया है उस जीवने अब देखा उससे विपरीत अर्थ उसके मुकाबले वाला उल्टा कैथ तो उसको देखनेसे कहता है कि यह इस से बडा है । ऐसा जो ज्ञान होता है उसे कौनसा प्रमाण कहोगे ? उपमान भी नहीं अनुमान भी नही, प्रत्यक्ष भी नही । कोई मानना पडेगा ना अलग प्रमाण ।

सम्बन्ध प्रतिपत्तिरूप प्रत्यभिज्ञानोका उपमानमे अनन्तर्भाव —और भी

देखिये । जो जीव वृक्षको नही जान रहा वह किसीसे पूछता है कि वृक्ष कैसा होता है तो वह उस पूछने वाले से कहता है कि शाखा पत्तो वाला वृक्ष होता है । अब इस वचनको सुनकर सस्कार बन गया जिसमे शाखायें फूटा हो, पत्ते होते हो, टहनी होती हैं वह पेड होता है । अथवा फोटो दिखाकर बता दिया कि ऐसा होता है पेड ! फिर उसने कही देखा शाखा आदिक वाले उस पदार्थको तो वह झट ख्याल करता है, ओह ! यह वृक्ष है. वृक्ष शब्दके द्वारा कहा गया पदार्थ । इस रूपसे जो सज्ञा सज्ञीका सम्बन्ध जाना जा रहा है इस ज्ञानको आप कौनसा प्रमाण बतावेंगे ? उपमान तो है नही, प्रत्यक्ष अनुमान आदिक भी नही । मानना पडेगा ना कोई अलगसे ज्ञान । कोई पुरुष नही जानता था कि गैंडा कैसा होता है । पूछा कि भाई गैंडा कैसा होता है ? तो किसीने बताया कि जिसका एक सीग निकला हो, मुखके आगेसे उसे गैंडा कहते हैं, इस बातको सुनकर उप सस्कार बन गया कि गैंडा उसे कहते हैं जिसके मुखके आगेसे एक सीगसा निकला हो । और जब कभी अजायबघरमे वह गया और वहाँ मिल गया गैंडा तो उसे देखकर झट वह ख्याल कर लेता है — ओह ! यह है गैंडा शब्दके द्वारा वाच्य पदार्थ । तो यहाँ जो सज्ञा सज्ञीके सम्बन्धका ज्ञान हुआ उस ज्ञानको आप किस प्रमाणमे गर्भित करेंगे ? उपमान तो हो नही सकता । यह उपमान प्रमाणवादी नैयायिक उपमानको सीधा यो नही मानता कि जैसे रोझ दीखा और झट ज्ञान किया कि ओह ! यह तो गायके समान है । इस तरहका लक्षण मानते थे मीमासक । नैयायिक तो यह मानते हैं कि पहिले सुन समझ रखा हो कि जो सीगवाले गायके समान आकार वाला हो वह रोझ होता है और फिर देखा जङ्गलमे रोझ तो उसे जो यह सम्बन्ध मिल गया कि रोझ शब्दके द्वारा कहा जाने वाला यह है जानवर इस रूपमे उपमान माना है । तो उन्ही शब्दोको डालकर पूछा जा रहा है कि इन ज्ञानोको आप किस प्रमाणमें मानते हैं ? ये सब उपमान प्रमाणमे तो आ नही सकते क्योकि ये जो दृष्टांत दिये जा रहे हैं प्रतियोगीके इन सभी दृष्टान्तोमें प्रसिद्ध अर्थकी समानता नही है । यह इससे दूर है, यह कहलाता है गैंडा आदिक घटनाओमे ज्ञान अर्थकी समानताकी बात ही नही कही जा रही । इससे तुम्हे यदि प्रमाणकी सही व्यवस्था बनानी है सभी प्रमाण आ जायें और ऊपपटांग प्रमाणकी सख्या बढ़े नही, यदि ऐसी व्यवस्थित प्रमाण व्यवस्था रखना चाहते हो तो तुम्हे प्रत्यभिज्ञानको प्रमाण मान लेना चाहिये नही तो प्रमाणके नम्बर तुम्हे बढाने पड़ेंगे ।

स्मरण और प्रत्यभिज्ञानके प्रमाणत्वकी सिद्धि—यहाँ तक यह कहा गया कि जैसे साव्यवहारिक प्रत्यक्ष प्रमाणभूत है देखिये ! इसी प्रकार स्मृतिज्ञान भी प्रमाणभूत है । प्रत्यक्ष है एक देश विशद और स्मृति है अविशद लेकिन विसम्वाद इसमे भी नही है । जैसे जब किसी बातका स्मरण करते हैं तो क्या आप चित्तमें विसम्वाद भी रखते हैं ? निःशंक उसे वहाँ ही समझ लेते हैं । तो प्रत्यक्षकी भाँति स्मरण भी प्रमाण है और जैसे प्रत्यक्ष और स्मरण प्रमाण है इसी प्रकार

प्रत्यक्ष और स्मरणके विषयभूत पदार्थोंमें एकता जानना सदृशता जानना विसदृशता जानना प्रतियोगिता समझना ये सारे प्रमाणभूत ज्ञान हैं और चूंकि ये सब प्रत्यक्ष और स्मरणके कारणसे उत्पन्न हुए ज्ञान है अतः सभी प्रत्यभिज्ञान। एकत्व प्रत्यभिज्ञानमें तो यह विषय बना था। जैसे कि यह वही देवदत्त है, यह और वहसे सम्बन्धित एकताको जाना एकत्व प्रत्यभिज्ञानने, सादृश्य प्रत्यभिज्ञानने। सादृश्य प्रत्यभिज्ञानकी यह मुद्रा है जैसे कि यह रोझ गायके समान है। इसमें प्रत्यक्षसे जाने हुये रोझमें और स्मरणसे जाने हुए गायमें सदृशताका ज्ञान किया गया है। वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञानकी यह मुद्रा है जैसे कि यह रोझ भैंससे बिल्कुल अलग है। तो यहाँ प्रत्यक्ष से जाने हुये रोझमें और स्मरणसे जानी हुई भैंसमें विसदृशताका ज्ञान किया गया है। प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञानकी यह मुद्रा है जैसे यह मंदिर उस मकानसे पास है। प्रत्यक्षसे जाने गये मंदिर और स्मरणसे जाने गए मकानमें निकटताका मुकाबला किया है। यह है प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान। इसके अनेक तरहके उदाहरण बनते हैं। यह उससे दूर है, यह उससे छोटा है। यह उससे बड़ा है, ये सब प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान हैं। अब एक नया प्रत्यभिज्ञान सुनो – सम्बन्ध प्रतिपत्तिरूपप्रत्यभिज्ञान सुन रखा था कि सिंह ऐसा होता है जिसका मुख बिलावके समान किन्तु बड़ा, जिसके गर्दनपर बहुत लम्बे बाल। जिसकी पूंछ लम्बी, ऐसा होता है सिंह। और जंगलमें जब कभी शेर दिख गया तो वहाँ जो यह ज्ञान हुआ – ओह यह है शेर शब्दके द्वारा वाच्य पदार्थ तो ऐसा जो सम्बन्धका बोध किया गया यह भी प्रत्यभिज्ञान है। तो इस प्रकार ये सारे प्रत्यभिज्ञान चूंकि मूलमें एक ही प्रकारकी विधि रखते हैं ये प्रत्यक्ष और स्मरणके कारण से सकलनात्मक हुए हैं इस कारण ये सभी प्रत्यभिज्ञान कहलाते हैं। यों स्मृति भी प्रमाण है और प्रत्यभिज्ञान भी प्रमाण है। अब इसके बाद तीसरा परोक्ष प्रमाण है तर्क प्रमाणके कारण और स्वरूपको सूत्र कहते हैं।

उपलम्भानुपलम्भनिमित्तं व्याप्तिज्ञानमूहः। (अध्याय ३ सूत्र नं० ११)

तर्क प्रमाणके कारण और स्वरूपका निरूपण – उपलम्भ और अनुपलम्भ है निमित्त जिससे ऐसा जो व्याप्ति ज्ञान है उसे तर्क कहते हैं। उपलम्भका अर्थ है साध्य साधनका सद्भाव। जहाँ साधन हो वहाँ साध्य पाया जाता है ऐसा सद्भाव बतानेका नाम उपलम्भ है। और जहाँ साध्य नहीं है वहाँ साधन भी नहीं होता। इस प्रकार अनुपलब्धिके निर्णय करनेका नाम है अनुपलम्भ अपने क्षयोपशमके अनुसार साध्य और साधनका उपलम्भ और अनुपलम्भ समझना, उसका द्वार निश्चय और अनिश्चय होना अर्थात् साधनके सद्भावमें साध्यका होना साध्यके अभावमें साधनका न होना इस प्रकारका जो व्याप्तिज्ञान होता है उसे तर्कमें निर्णय है। पायी जाने वाली बात नहीं कह रहे। आप बराबर धुवां देखते रहें वह तर्क न कहलायगा किन्तु उसके सम्बन्धमें निर्णय हो कि जहाँ धुवां होता है वहाँ अग्नि होती है जहाँ अग्नि नहीं वहाँ

धुवा नही, ऐसे निर्णयको कहेगे तर्क प्रमाण । यो कोई आदमी रोज रोज तो आग देखता रहे रोज-रोज धुवा देखता रहे तो यह तर्क ज्ञान नही है । उन दोनोमे अविनाभावका सम्बन्ध समझना इसका नाम है तर्क ज्ञान । तो निर्णय होनेका नाम तर्क ज्ञान यह दोष कोई अब नही देख सकता कि जो अतीन्द्रिय पदार्थ है साध्य भी अतीन्द्रिय । जिसका निश्चय या आगमसे होता या अनुमानसे । प्रत्यक्षमे होता नही । तो उसका सम्बन्ध जानना तर्क ज्ञान न होगा क्योकि उसकी उपलब्धि ही नही होती । यह दोष क्यो न आयगा ? यो कि यहाँ उपलब्धिका अर्थ निश्चय है, पकडना मिलना नही है । जैसे कहा कि इस प्राणीका पुण्य विशेष है क्योकि पुण्य विशेष न होता तो विशिष्ट सुख आदिक इसे न मिलते । तो विशिष्ट सुख आदिकका सद्भाव पाया जानेसे पुण्यविशेषके अस्तित्वका निर्णय करना यह तर्क ज्ञानसे हुआ । वैसे तो सुख भी ग्रहण नही होता पुण्यविशेष भी ग्रहण नही होता, पर आगमसिद्ध है उसका तर्कमे निर्णय है अथवा ऐसा अनुमान किया कि सूर्यमे गमनशक्तिका सम्बन्ध है, सूर्यमे गति शक्ति है अन्यथा यह गति नही कर सकता था, उदय अस्त न होता । गतिमत्ता इसमे न बन सकती थी । इसमे गमनशक्तिकी उपलब्धि कहा है ? गमनशक्ति क्या प्रत्यक्षसे दीखती है ? नहीं ! लेकिन तर्क ज्ञान बराबर बन गया, क्योकि निर्णय हो गया । तो सूत्रमे जो उपलम्भ और अनुपलम्भ जो दो शब्द दिये हैं उनका अर्थ निश्चय अनिश्चय है । साधनके होनेपर साध्यका निश्चय होना, साध्यके न होनेपर साधनका अनिश्चय होना ऐसा अर्थ करनेपर इस अतीन्द्रिय धर्मके अनुमानमे भी तर्क ज्ञानका लक्षण घटित हो जाता है । तो जैसे पुण्य विशेष आगमके सिवाय अन्य किसीसे तो नहीं जाना जा सकता । सूर्यमे गमन शक्तिका सम्बन्ध अनुमानके सिवाय और किसी प्रमाणसे तो नही जाना जा सकता । सूर्य चल रहा है क्योकि एक दिशासे दूसरी दिशामे पहुच गया, तो चलते भी नही देखा जा रहा है और अनुमानसे समझ लिया तो यो प्रत्यक्षसे उपलब्धि न भी हो तो भी उसके सम्बन्धमे ज्ञान हो जाता है । इससे यह सिद्ध हुआ कि साध्य साधनके अविनाभावका नाम है व्याप्ति और व्याप्तिके ज्ञानको कहते हैं तर्क ।

तर्ककी उपलम्भानुपलम्भनिमित्ततापर शङ्का समाधान—साध्यसाधनके अविनाभावका ज्ञान करना सो तर्क ज्ञान है, साधनके होनेपर साध्यका होना, साध्यके न होनेपर साधनका न होना ऐसे निर्णयका नाम तर्क प्रमाण है । इसपर शङ्काकार कहता है कि किसी पुरुषको बचपनमे तो साध्यसाधनके सद्भाव व अभावका निर्णय था, अब वृद्धावस्थामे वह निर्णय विस्मृत हो गया लेकिन साधन सामने दिख रहा है तो स्वरूपकी उपलब्धि होनेपर भी पदार्थ सामने होनेपर भी अविनाभावका ज्ञान तो नही रहा, साध्यके अभावमे यह साधन नही होता । इस प्रकारका उसे अब ध्यान नही रहा अधिक वृद्धावस्थामें अपनी ही सिद्धि भूल जाती है तो तर्क जैसी बात ध्यानमे न रहे ऐसा हो ही जाता है लेकिन सामने कुछ चीज हो वह तो दीखेगी उसे ? तो साधन स्वरूप सामने प्राप्त होनेपर भी अविनाभावका ज्ञान नहीं है इससे उपलम्भ और अनुप-

लम्भ तो तर्क ज्ञानके सम्बन्धमे कैसे अबाधित हो सकते हैं। कहा था ना, कि साधनके उपलम्भमे साध्यका उपलम्भ होना और साध्यके उपलम्भमे साधनका अनुपलम्भ होना, अर्थात् साध्यके होनेपर ही साधनका होना, साध्यके अभावमें न होना, यह बात वहा कैसे बन सके ? इससे तर्क ज्ञान प्रमाण है। अब इस शङ्काका उत्तर देते हैं कि तर्क ज्ञानमें स्मरण आदिक भी तो कारण हैं। याने धुवाको देखा जाना इतने मात्रसे तर्क ज्ञान नही होता किन्तु स्मरण होवे, प्रत्यभिज्ञान होवे, ये भी कारण पडते हैं। धुवा देखकर एक तो यह ख्याल आता है ओह ! ऐसा धुवां वहां भी देखा था और वहां अग्नि थी तो इसमें स्मरण भी होता है, प्रत्यभिज्ञान भी होता है, वह भी कारण पडता है। अब उस वृद्ध पुरुषको प्रत्यक्ष तो हो रहा है साधनका परस्पर नहीं चल रहा, इस कारणसे तर्क ज्ञान नहीं बन रहा। बारबार निश्चय और अनिश्चय होवे अर्थात् साधनके होनेपर साध्यका होना, साध्यके अनिश्चयमें साधनका अनिश्चय होना यह बात बार बार आवे जो कि स्मरणसे आती है और प्रत्यभिज्ञानसे आती है तो वह कारण होती है। इस प्रकार स्मरण आदिकमे भी तर्क ज्ञानका कारणपना है। तो कोई कहे कि जब तर्क ज्ञानमें स्मरण भी कारण है, प्रत्यभिज्ञान भी कारण है, तो यह बताते क्यो नही हो ? सूत्रमे तो सिर्फ इतना भर कह रखा कि- उपलम्भ और अनुपलम्भके निमित्तसे व्याप्तिज्ञान होता है। स्मरण भी कहो, प्रत्यभिज्ञान भी कहो। उत्तर—यह दोष नही दे सकते। यह दोष इसलिए नही दे सकते कि उपलम्भ और और अनुपलम्भ तो मूल कारण हैं। इसलिए इसकी बात तो सूत्रमें कहनी ही पडेगी। और स्मरण प्रत्यभिज्ञान यह तो प्रकृत बात है, स्मरण और प्रत्यभिज्ञानके बिना उपलम्भ और अनुपलम्भ नही ज्ञात हो सकता। तो स्मरण आदिक उपलम्भ और अनुपलम्भके ज्ञानके कारण है सो प्रसिद्ध बात है इसलिए इसको कहा नही है, पर समझना चाहिए कि स्मरण और प्रत्यभिज्ञान भी सहायक है तर्कज्ञानके बनने में।

व्याप्तिज्ञानके असाधारण उपायभूत तथोपपत्ति व अन्यथानुपपत्तिके निरूपणका उपक्रम—तर्क कहो, ऊहापोह कहो, वकालत कहो सब एक ही बात है। तो जैसे कानून और युक्तियोकी बात जाननेमे जो चिन्तन, मनन चलता है वह चिन्तन मनन-कौन सा ज्ञान कहोगे ? प्रत्यक्ष नहीं, स्मृति नही, प्रत्यभिज्ञान नही। तर्क है और तभी तर्कका दूसरा नाम चिंता कहा गया है। चिन्ताके मायने हैं, रंज नही, शोक नही। जो अनेक प्रकारसे सबन्ध चिन्तन होता। अविनाभावका विचार होता वह सब चिन्ता है, तर्क ज्ञान है। तो व्याप्तिके ज्ञानका नाम तर्क है ऐसा कहनेपर यह जिज्ञासा होती है कि व्याप्तिज्ञान आखिर किस तरहका हुआ करता है- उसका है सक्षेपमे कि तथोत्पत्ति और अन्यथानुत्पत्ति इन दो विधियोसे व्याप्तिका ज्ञान होता है। तथोत्पत्तिका अर्थ है तथा उत्पत्ति। साधनके होनेपर साध्यकी उत्पत्तिका नाम है तथोत्पत्ति। अन्यथानुत्पत्ति। अन्यथा ऐसा न हो तो अर्थात् साध्यके अभावमें साधनकी अनुत्पत्तिका नाम है अन्यथानुत्पत्ति। इसी विषयको सूत्रमें कहते हैं।

इदमस्मिन् सत्येव भवति असति तु न भवत्येवेति ॥३-१२॥

तथोत्पत्ति व अन्यथानुपपत्तिकी मुद्रा—यह इसके होनेपर ही होता है और यह इसके न होनेपर नही ही होता है इस प्रकारका ज्ञान होना सो व्याप्तिज्ञान है। अर्थात् साध्यके होनेपर ही साधन होता है तब तो साधन देखकर साध्यका निश्चय किया जायगा ना। अग्निके होनेपर ही धुवाँ होवे तब धुवाँ देखकर अग्निका ज्ञान बन सकेगा। यह तो है तथोत्पत्ति, जिसका फलित अर्थ है यह साधनके होनेपर साध्यका होना। वास्तविक प्रयोग तो यह है कि साध्यके होनेपर ही साधनका होना यह है तथोत्पत्ति। तब यह कहेगे कि नियमसे यह साधन है। तो साध्यके न होनेपर साधन होता ही नही ऐसे ज्ञानका नाम है, अन्यथानुत्पत्ति। इन दोनोका अर्थ एक ही है, पर जाननेकी पद्धति दो हैं। इससे यह निर्णय करिये कि साधनका स्वरूप बस अन्यथानुत्पत्ति है। इसका स्वरूप लोग भिन्न-भिन्न तरहसे मानते हैं, जिसका वर्णन अभी ही इस प्रसगमे किया जायगा। लेकिन उनमें दोष सम्भव है। किन्तु, अन्यथानुत्पत्ति मे कोई दोष सम्भव नही है। साध्य न हो तो साधन होता ही नही है। तब ना साधन होनेपर यह निश्चक निर्णय करते हैं कि अवश्य साध्य है। इस प्रकार तथोत्पत्ति और अन्यथानुत्पत्तिसे व्याप्तिका ज्ञान होता है। देखिये—आत्मचिन्तन चला ना, तर्क वितर्क विचार हुआ ना। तो जहाँ चिन्तन चले। अविनाभावका सम्बन्ध जान जाय सो तर्क ज्ञान है।

प्रमाणसख्या बनानेकी विधि— ज्ञान कितने होते हैं ? इस सम्बन्धमें अनेक दार्शनिकोने अपनी अपनी बात रखी और उसमे कुछ प्रमाण फालतू मान लिये गये, कुछ प्रमाण छोड दिये गए और अपनी सख्या बनाली। जैसे अभाव प्रमाण मानना, उपमान प्रमाण मानना ये सब फालतू बातें हैं क्योकि अभाव प्रत्यक्षगम्य होता है, अनुमान आदि गम्य होता है। इन सब प्रमाणोंसे जैसा सद्भाव जाना जाता है वैसा ही अभाव जाना जाता है। उपमान मान लिया तो उपमानका विपरीत जो ज्ञान है उसको माना ही नही गया। उपमानमे सदृशता आई, किन्तु विसदृशताका कोई ज्ञान नही माना। अब स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क इनका जिकर ही नही। तो कितना व्यवस्थित ढङ्ग है ज्ञानके भेद बतानेमे कि कोई बात छूट न जाय और कोई बात दुबारा आ न जाय। इस प्रकारसे यह भेद किया गया है। परोक्षके भेद स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम ये ५ हैं। जिनमेसे तर्क प्रमाणका यह प्रसङ्ग चल रहा है। अब जो ऊपर बताया है कि तथोत्पत्ति और अन्यथानुत्पत्तिसे व्याप्तिका ज्ञान होता है तो इन दोनोको किसी दृष्टान्तमे ढालकर किसी व्यक्तिके उदाहरणमें जमाकर जिससे कि सुखपूर्वक ज्ञान हो जाय सूत्र कहते हैं—

यथाग्नावेव धूमस्तदभावे न भवत्येवेति च ॥ १३ ॥

तथोत्पत्ति व अन्यथानुपपत्तिका उदाहरण जैसे अग्निके होनेपर ही धुवा होता है यह हुआ तथोत्पत्ति और अग्निके अभावमे धुवां होता ही नही है यह हुआ अन्यथानुपपत्ति। यह हेतुके स्वरूपकी समीचीनता समझनेके लिए खास लक्षण है अनुमान प्रमाणमे जो हेतु दिया जाय उस हेतुमें यदि यह बात ढूंढनी है कि यह सच्चा हेतु है या नहीं, तो उसकी कुञ्जी अन्यथानुपपत्ति है। तर्कसे जानो कि इस साध्यके बिना यह हेतु नही हो सकता इस कारणसे यह हेतु सही है। अब यहां शङ्काकार कहता है कि तर्क ज्ञान तो अप्रमाण है फिर उसका कारण बताने, स्वरूप बतानेका परिश्रम क्यो कर रहे हो? उत्तर देते हैं कि कैसे अप्रमाण है तर्क ज्ञान? क्या वह ग्रहीतग्राही है, इस कारण अप्रमाण है? या वह विसम्वाद मचाने वाला है या प्रमाण विषय परिशोधक है? इससे अप्रमाण है। विकल्पोका तात्पर्य यह है कि गृहीतग्राही उसे कहते हैं जो एक बार किसी प्रमाणको ग्रहण करले, उसे फिर दुबारा ग्रहण करना, जाने हुएको जानना, पीसे हुएको पीसना वह ग्रहीतग्राही है। जैसे गेहूं पीसा गया और उस पीसे हुएको फिर पीसा गया तो उससे अच्छा बारीक आटा निकला तो इसमे कुछ बुरा तो नही हुआ। उस पिसे हुए आटेको पीसनेसे कुछ विशेपना नजर आई है तो उसे फालतू न कहा जायगा। फालतू तो तब कहा जाय जब उसमें कोई विशेषता न आये। इसी तरह किसी पदार्थको भी ज्ञान जानले, अगर उसी पदार्थको कुछ विशेषताके साथ दूसरा ज्ञान जाने तो ग्रहीतग्राही नही है। जैसे कुछ जानकारी न हो और बारबार वही रटा करे तो ग्रहीतग्राही है। विसम्वाद मचाने वाले इस विकल्पका अर्थ है कि उसमें कोई विवाद उठाये, विकल्प मचे, कि कर्तव्यमूढता आये, अनध्यवसाय जगे, सशय हो जाय, विपर्यय हो, कोई विसम्वाद हो उसके मायने है विसम्वाद! तीसरे विकल्पका अर्थ है कि प्रमाणके विषयका परिशोधक अर्थात् जैसे अनुमान प्रमाणका जो विषय हो उसी विषयका समर्थन करे कोई तो उसे कहते हैं प्रमाण विषयपरिशोधक! जो तर्क अप्रमाण है या विसम्वादी होनेसे अप्रमाण है अथवा प्रमाणके विषयका परिशोधक है, इससे अप्रमाण है।

प्रत्यक्ष द्वारा तर्कके विषयका ग्रहण किये जानेकी अशक्यता—गृहीतग्राही होनेसे तर्क अप्रमाण है यह विकल्प युक्तिसगत नही है क्योकि यदि तर्कका विषय किसी प्रमाणसे गृहीत है तो बताओ तो किस प्रमाणसे गृहीत है। साध्य और साधन की निर्बाधरूपसे समस्त रूपसे व्याप्ति ज्ञानका नाम तर्क है ना, तो साध्य साधनकी व्याप्ति क्या प्रत्यक्षसे जानी जाती है या अनुमानसे। प्रत्यक्षसे तो किसी प्रकार भी तो व्याप्ति नही जानी जा सकती। प्रत्यक्षसे तो जो सामने है वह जान लिया गया। अब यह इसके अभावमें न हुआ करे यह बात तो प्रत्यक्ष नही जानता। क्योकि प्रत्यक्ष तो अविचारक है उसमें कल्पनायें नही उठा करती, प्रत्यक्ष निर्विकल्प है। यह तो सामने मौजूद मात्रको जानता है। दूर देशमें, दूर कालमें या सूक्ष्म बातमें प्रत्यक्षका अवलम्बन नही है। असन्निहित अर्थको प्रत्यक्ष नही जानता क्योंकि जो दूर

देशकी बात है, बहुत सूक्ष्म बात है उसके जाननेमे विशदता नहीं आती । जैसे यहा बैठे हुए श्रवण बेलगोलके बाहुबलिका स्मरण कर रहे हैं । ज्ञान सही है । विसंवाद नही उत्पन्न हो रहा मगर ज्ञानमे विशदता नही है । जब बाहुबलि प्रतिमाके सामने आप हो तब विशदता है । तो प्रत्यक्षके द्वारा साध्य साधनकी व्याप्ति नही जानी जा सकती । साधन साध्य जैसे सत्त्व अनित्यत्व आदिक हैं ना, सो सत्त्वका अनित्यके साथ व्याप्ति लगाते हो, जैसे धूमकी अग्निके साथ व्याप्ति लगाते हो तो ये सारीकी सारी बातें सत्ता होना, अनित्य होना, नित्य होना, अग्नि होना, आदिक उपस्थित पदार्थ की तरह प्रत्यक्षमे विशद रूपसे प्रतिभासमे नही आ रही । जैसे किसीने कहा कि सब कुछ क्षणिक है, सत्त्व होनेसे, तो सत्त्व भी तुम्हारे हाथपर धर दें, और अनित्यत्व भी तुम्हारे हाथपर धर दें कि देख लो । तो ये प्रत्यक्षसे ही जाने जा रहे यह बात इस समय क्षणिकवादियोके प्रति कही जा रही है । इससे उन्हीके अनुभावके उदाहरण देकर बतला रहे हैं । यदि ये समस्त भाव प्रत्यक्षमे विशद हो जायें तो प्राणिमात्र सर्वज्ञ बन जायगा, क्योकि तुम्हारे सत्त्वका प्रत्यक्ष कर लिया, क्षणिकत्व भी प्रत्यक्ष कर लिया तो सभी प्रत्यक्ष हो गए । फिर तो अनुमान प्रमाण भी अनर्थक हो जायगा । जब प्रत्यक्षसे ही उस वस्तुकी बात जान ली गयी तो अनुमान बनानेकी क्या जरूरत है । हाथपर अग्नि धर कर दिखा दे कोई, गर्म है और फिर भी अनुमान बनावे कि अग्नि गर्म होती है, तो अनुमान बनानेकी क्या आवश्यकता है ? इससे तर्क ज्ञान गृहीतग्राही नही है और फिर प्रत्यक्ष तो अविचारक होता है । विचार कुछ नही रखता । विकल्प नही करता । प्रत्यक्षमे चिन्तन नही उठा करता । तो प्रत्यक्ष इस बुद्धिके व्यापारको करनेमे असमर्थ है कि वह सोचे कि जितने जो कुछ भी धूम हैं, चाहे इस देशमे हो अथवा अन्य देशमे हो आज हुये, पहिले थे, आगे होंगे, वे सब अग्निसे ...

... अग्निके सिवाय अन्य पदार्थोंसे धुवां उत्पन्न नही होता । ऐसा विचार
नही कर सकता । प्रत्यक्ष तो मात्र सामने ठहरे हुए पदार्थमे व्या-
... कहो कि सामने रहने वाले पदार्थोमे यदि प्रत्यक्षसे व्याप्ति जान
वैसी ही सब चीजें संग्रहीत करके बुद्धिमें सबके उपसंहारसे व्याप्ति
देते हैं कि यह बात भली नही है उसमे सबका उपसंहार
जहा धुवा होता वहा वहाँ अग्नि होती । धुवा अग्निसे ही
... इस बातको प्रत्यक्ष जान गया । वह तो निर्विकल्प होता
... समझना कि यह नीला है यहाँ तक तो प्रत्यक्ष है नहीं ।
नही रहा । इस प्रत्यक्ष द्वारा तर्कके विषयको ग्रहण
तर्कका विषय ग्रहीतग्राही नही है और तर्क इस कारण

विकल्पोंसे भी व्याप्तिका अग्रहण—यहा शङ्काकार
व्याप्तिका ज्ञान प्रत्यक्षसे नही हो पाया तो न सही

किन्तु प्रत्यक्षके बाद जो विकल्प उठते हैं उन विकल्पोंसे तो साध्य साधनकी व्याप्तिका ज्ञान हो जायगा, फिर तर्क नामक प्रमाण माननेकी क्या जरूरत है ? इसका उत्तर है कि प्रत्यक्षके बाद जो भी विकल्प उठते हैं उन विकल्पोंका उस ही एक वस्तुके विषयमें ही तो निर्णय चलता है सो उस विकल्पसे भी सबका उपसंहार करते हुए व्याप्ति ग्रहण नहीं होता जैसे कि जहाँ जहाँ धुवाँ होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है । सारे देश, सारे काल, सर्वत्र सबका उपसंहार करके जो व्याप्ति बनाई गई है वह प्रत्यक्षके बाद होने वाले विकल्पका भी विषय नहीं है । और कदाचित् मान लो कि है विषय तो वह विकल्प इस ही ढङ्गका होगा जो कि प्रत्यक्ष ज्ञानसे जुदा है । उस हीका नाम तर्क ज्ञान है । प्रत्यक्ष तो सबका उपसंहार नहीं कर सकता और न व्याप्तिका ग्रहण कर सकता, क्योंकि प्रत्यक्षका साध्य साधनमें सम्बन्ध जोड़नेका काम नहीं है । जब सम्बन्ध निश्चित् न हो सका और फिर भी तुम प्रत्यक्षको ही व्याप्तिका ज्ञान मान बैठोगे तो अन्य देशान्तरोंमें साधन साध्यको जाना ही नहीं जा सकता । प्रत्यक्षसे व्याप्तिका ग्रहण होना असम्भव है ।

प्रत्यक्षसे कारणकार्यकी व्याप्तिके ग्रहणकी व कार्यके अकारणताकी आशङ्का— अब शङ्काकार कह रहा है कि देखो ! धुवाँ जो है वह अग्निका कार्य है । वह धुवा अपने कार्य धर्मका अनुसरण करता है । कार्यका धर्म क्या है ? कारणके होनेपर होना, यह है कार्यका धर्म उसीको तो कार्य कहते हैं । तो अब हमने कार्यको देख लिया और कार्यका धर्म है यह कि कारणके होनेपर ही होना तो कार्यको प्रत्यक्ष से जानकर ही निर्णय तो हो गया कि अग्निके होनेपर ही धुवाँ होता है । कार्यको हमने प्रत्यक्षसे देखा और कार्यमें यह धर्म पड़ा हुआ है कि कारणके होनेपर ही होना । तो इसका अर्थ यह हुआ ना कि कार्यको देखकर इसकी व्याप्ति बन गई । किस तरह कि प्रत्यक्षसे तो देखा कार्य और कार्यमें पड़ा है यह धर्म कि कारणके होनेपर ही होना । तो अब हमने प्रत्यक्षमें कार्यको देखा तो प्रत्यक्षने ही व्याप्ति बन गयी, एक बात । दूसरी बात यह कहना है कि कभी—कभी कार्य कारणके अभाव होनेपर भी हो जाता है । जैसे सिगड़ीमें पत्थरके कोयलेकी आग जलायी । खूब धुवाँ उठता है और इसी बीच झट सिगड़ी उठाकर घर आये दूसरेके घरमें । वहाँपर अब धुवाँ है और आग नहीं । तो कारणके अभावमें भी जब कार्य देखा जाता है तो कार्यपनेका भी तो उल्लघन हो गया । फिर कार्यके साथ तुम्हारी व्याप्ति क्या ठहरी ? उत्तर देते हैं कि इस तरह कार्यको यदि अकारणक कहने लगो अर्थात् कार्य कारणके बिना भी हो जाता है । अग्नि न थी और लो कार्य हो गया, अग्नि हटा दी और लो कार्य बना हुआ है । सिगड़ी वहाँसे उठाकर अन्य घर दी पर कमरेमें धुवा बना हुआ है । कारणके होनेपर कार्य अगर होता तो कारणके हटानेपर कार्यको भी तो हट जाना चाहिये, इससे मालूम होता कि सब बातें अकारणक हैं । किसीके कारणसे कुछ नहीं होता, ऐसा माननेपर तो अग्निके हटनेपर धुवा अगर हो गया तो अकारणक है धुवाँ ।

यो धुवांको अकारणक माना जाय तो धुवा अपने स्वभावसे जहाँ चाहे रहे, तो कही धुवा हटाया नही जा सकता। सब जगह धुआं एकदम फैल जाना चाहिये क्योंकि धुवाँ अकारणक है। फिर धुवा किसी जगह हो यह क्यो ? वह तो फिर सभी जगह हो, एक बात। दूसरी बात यह है कि यह भी निश्चय न हो सकेगा कि अग्निके होनेपर ही धुवाँ होगा। और फिर, तीसरी बात–उस धुवेको यो अकारणक मान लेगे तो जो अकारणक है, जिसका कोई कारण नही है वह तो असत् है। जैसे गधेका सीग, असत् है क्यो असत् है कि उसका कोई कारण ही नही है। न कोई उपादान कारण है न कोई निमित्त कारण है। तो जैसे गधेका सीग कभी भी नही पाया जाता इसी इसी तरह धुवा भी कभी भी नही पाया जाना चाहिये। और, पाया जाय अगर धुवां तो सब जगह सब समय सर्व आकारोसे पूरेमे फैलकर पाया जाना चाहिये क्योंकि धुवा अकारणक है। चौथी बात—कि धुवा स्वलक्षणात्मक हो गया आपकी निगाहमें, अकारणक है। शकाकार क्षणिकवादी है और क्षणिकवादी धुवांको ही क्या सारे पदार्थोंको अकारणक मानता है। जितने भी जो कुछ पदार्थ हैं वे अपने आप होते हैं, तुरन्त नष्ट हो जाते हैं, उनका कोई कारण नही है। तो धुवा एक भाव हो गया। स्वलक्षण हो गया। अब यदि स्वभाव स्वभाववान पदार्थके अभावमें भी हो जाय तो पदार्थ निःस्वभाव हो जायगा। देखिये –अब धुवा स्वलक्षणरूप माननेपर स्वभावमें आया तो पदार्थके अभावमे यदि स्वभाव होने लगे तो इसका अर्थ यह है कि पदार्थ स्वभावित हो गया। और स्वभावका सत्त्व भी नही रहा। इससे यह शका करना क्षणिकवादियोको व्यर्थ है कि दुनियामे कार्य कुछ भी नही कहलाता। क्षणिकवाद सिद्धान्तमे कारण कार्यभाव नही माना। यदि कारण भाव व्यवस्थित ढगसे मान लें तो क्षणिकता माननेमे बाधा आयगी और उनको केवल यह पड़ी है कि वस्तु क्षणिक सिद्ध हो। इसीपर उनका सिद्धान्त है। तो क्षणिक कहकर कार्यका निषेध करके ये तर्क ज्ञानको उडाना चाहते हैं कि तर्क नामका ज्ञान कुछ नही है। फिर प्रमाण किसे सिद्ध करना चाहते ?

प्रत्यक्षसे साध्यसाधनके सर्वोपसंहारकी अशक्यता - और जो यह कहा कि जो कुछ व्याप्ति समझी जाती है वह सब प्रत्यक्षसे जान ली जाती है, क्योंकि प्रत्यक्षसे देखा धुवा और धुवा माना गया है कार्य। कार्य होता है अपने धर्मको लिए हुए अर्थात् कारणके होनेपर होना यह कार्यका धर्म है। तो यह बात देखते ही जान ली गई तो व्याप्तिका ज्ञान प्रत्यक्षसे ही हो गया। यो यह बात नही कह सकते, क्योंकि प्रत्यक्षसे अगर व्याप्तिका ज्ञान मानते हो तो प्रत्यक्षसे तो एक ही जगहकी व्याप्ति बनी। जहां जहां धुवा होता है वहा वहा अग्नि होती है। इसमे तो प्रत्यक्षकी गति नही। यह तो सामने वाले पदार्थोंको ही देखेगा। तो निश्चयके समयमे जो चीज पायी जा रही है उस व्यापकके साथ ही व्याप्यकी व्याप्ति बन गई। फिर सब जगह तो न बनेगी। मान लो— प्रत्यक्षसे देखा था—रसोई घरमे जहाँ अग्नि भी थी, धुवाँ

भी था, व्याप्ति जान ली तो प्रत्यक्षसे वहींकी व्याप्ति जानी। अब वहांके धुवांके सदृश जो पर्वतमें धुवा दिख रहा उससे व्याप्ति तो न लग बैठेगी। यदि कहो कि उस धुवाके सदृश जो धुवा है उसमें व्याप्ति लग जायगी तो वह धुवां तो अपूर्व हो गया। पहिले जाना हुआ नहीं रहा, यह वही तो नहीं है तब गृहीतग्राही न रहा, गृहीतग्राही हो गया जिसे पहिले किसी अन्य प्रमाणमें न जाना था उसे जाना जा रहा अगृहीतग्राहीका तो तुम प्रमाण मानते ही हो। जो किसी प्रमाणसे न जानी गयी हो ऐसी नई चीजको जानना उसे कहते हैं अगृहीतग्राही जिसे पहिले जाना, जितने अंशमें जाना उतने अंशमें रटते रहना उसे कहते हैं गृहीतग्राही। तो जैसे पीसे हुए आटेको पीसना व्यर्थ है ऐसे ही जाने हुएको भी जानना व्यर्थ है। यदि उसका कुछ फल मिलता है तो समझना चाहिए कि हमने कुछ नये अंशोंने जाना तब फल मिला। जैसे कि पीसनेसे यदि कुछ फायदा है तो समझना चाहिये कि कुछ नया काम हुआ, वही काम नहीं हुआ। उससे और बरीक पिस गया। यदि कहो कि प्रत्यक्षसे पहिले हमने किसी जगह धुवा और अग्निको व्याप्त देखा था। मानो अग्निके होनेपर ही धुवा होता है यह व्याप्ति हमने वहां समझ रखी थी प्रत्यक्षसे, उससे फिर हम यहांके साध्यका अनुमान कर रहे हैं। पर्वतमें अग्नि है धुवा होनेसे। अब यह अनुमान कर रहे हैं ऐसा कहनेपर तो यह आपत्ति आयगी कि फिर विशेष दृष्टानुमान बने अर्थात् रसोईघरमें यदि यह देखा था कि खैरकी लकड़ाकी आगका अनुमान बनाना चाहिये क्योंकि उससे अनुमान बना रहे, लेकिन इस धुवां साधनके अन्यदेशादिकमें रहने वाले ऐसे साध्यके साथ व्याप्ति है नहीं। प्रत्यक्षसे तर्कका विषय सिद्ध नहीं होता।

स्मृति व प्रत्यभिज्ञानकी तरह तर्ककी भी प्रमाणभूतता—देखो! जैसे स्मृतिज्ञान प्रमाणभूत है। किसीका स्मरण हो तो उसमें क्या कुछ विसम्वाद भी होता है? नहीं होता। प्रत्यभिज्ञानसे जाना—यह वही देवदत्त है यह रोझ गायके समान है। यह रोझ भैंससे उल्टी है अ दिक इसमें कोई विसम्वाद होते हैं क्या किसीसे, तो वह भी प्रमाण है। तर्क मायने सम्बन्ध प्रत्यक्ति। चिन्तन करना, ऐसा न हो तो ऐसा न होगा। वकालतमें जितनी युक्तियां हैं, कानून हैं, जो कुछ है उनका तर्कसे अधिक सम्बन्ध है। तो तर्कका जो विषय है वह विषय प्रत्यक्षके द्वारा ग्रहणमें नहीं आता।

साध्य साधनकी व्याप्तिका प्रत्यक्ष और अनुमान दोनोंसे ग्रहण अशक्य—शंकाकार कह रहा है कि परिशेषसे (फलितभावसे) एक निष्कर्ष करके रसोईघरमें देखी हुई आगके समान, धुवाके समान व्यापक जो धूम है उसमें पहाड़में भी वैसी ही अग्निका अनुमान करके उस अग्निकी व्याप्ति बन जायगी। तो उत्तरमें पूछते हैं कि उस पारिशेष्यका अर्थ क्या है? क्या उस व्याप्तिको प्रत्यक्षसे जाना अथवा व्याप्तिको अनुमानसे जाना प्रत्यक्षसे तो नहीं जाना क्योंकि अन्य देशमें रहने वाला जो अनुमेय पदार्थ है उसकी प्रत्यक्षसे जानकारी नहीं होती। अगर हो जाय पर्वतमें रहने वाली

आगकी प्रत्यक्षसे जानकारी हो गयी तो अनुमान कहना अनर्थक है उसकी आवश्यकता ही नही। यदि कहो कि अनुमानसे जाना हमने उनकी व्याप्ति तो व्याप्ति जान लें तब व्याप्ति बनेगी। यो इतरेतराश्रय दोष है। यदि अन्य अनुमानमे व्याप्ति जानोगे तो उस की व्याप्ति अन्य अनुमानसे, यो अनवस्था दोष होगा। इससे यह निर्णय हुआ कि साध्य और साधनके अविनाभावका ज्ञान प्रत्यक्षसे नही होता। अग्निके होनेपर ही धुवा होता है। अग्निके न होनेपर धुवा नही होता, इस प्रकारका निर्णय प्रत्यक्षके द्वारा नही होता। तर्कके द्वारा होता है। प्रत्यक्षने तो अग्नि देखा, तो अग्नि देखा। अब प्रत्यक्षका काम खतम। इसके आगे प्रत्यक्ष और काम नही करता। धुवा देखा तो धुवां दिख गया इसके आगे प्रत्यक्षका कोई काम नही। अब उन दोनोकी व्याप्ति लेना, अविनाभाव समझना यह तो तर्क ज्ञानका काम है। प्रत्यक्षसे व्याप्ति नही जाना जाता, इसका अर्थ यह है कि साध्य और साधनके अविनाभाव सम्बन्धका ज्ञान नहीं होता, अविनाभाव। सम्बन्धका नाम व्याप्ति है। अग्नि होनेपर हो धुवेंका होना इस का नाम व्याप्ति है। एकके साथ एकका जोडना, व्यापना, रहना इसको कहते हैं व्याप्ति यो प्रत्यक्षसे व्याप्तिका ज्ञान नही बन सका।

अनुमानसे तर्कके विषयका अग्रहण—कोई कहे या यह तुम्हारा जो दूसरा विकल्प था कि तर्क ज्ञान गृहीतग्राही है क्योकि उसका ग्रहण अनुमानसे हो जाता है। दूसरे विकल्पकी बात कहोगे तो वह भी युक्त नही है क्योकि साध्य साधनका सर्व जगत्के साध्य साधनका उपसंहार करते हुए व्याप्तिको स्पष्टतया जान जायें अनुमानसे ऐसा अनुमानका विषय नही है। अनुमानका विषय तो प्रकृत पक्षमें साध्यकी सिद्धि करना है। पर्वतमे अग्नि है धुवां होनेसे, इस अनुमानका इतना विषय है कि पक्ष जो पर्वत है उसमें अग्नि सिद्ध कर देना, अनुमानका यह विषय नहीं है कि दुनियामे जहा जहा धुवा है वहाँ वहा अग्नि है या अग्निके न होनेपर धुवा नही है ऐसा ज्ञान कर लेना यह अनुमानका काम नही हैं। तब यह सिद्ध हो गया कि नही, तो न प्रत्यक्षमे सामर्थ्य है कि साध्य साधनका सर्वोपसंहार रूपसे व्याप्तिको जान जाय और न अनुमानमें सामर्थ्य है कि साध्यसाधनके अविनाभावको सर्वोपसंहाररूपसे जान जाय। देखो इस समय सामने तीन ज्ञानोका चर्चा चल रही है प्रत्यक्ष, अनुमान और तर्क। खूब निरखलो तीनोके भिन्न भिन्न विषय हैं। प्रत्यक्षका विषय है कि जो सामने है उसे तुरन्त जान जाय। अनुमानका विषय है कि पक्षमे साध्यको सिद्ध कर दे और तर्कका विषय है कि लोकमे सर्वत्र जहा जहां साधन है, साध्यका ज्ञान व्याप्ति बना दे। साध्यके न होनेपर साधनके न होनेका ज्ञान करा दे। यह बात न अनुमान कर सकता न प्रत्यक्ष कर सकता; यह तो तर्क ज्ञानसे ही सम्भव है। इससे, तर्क ज्ञान गृहीतग्राही नही है। उसका विषय अलग है। और वह बराबर प्रमाणभूत है।

योगिप्रत्यक्षसे भी व्याप्तिके ज्ञानकी अशक्यता—शङ्काकार कहता है

कि हम लोगोका प्रत्यक्ष व्याप्तिके जाननेमे सामर्थ्य नहीं रखता है सो योगियोंके प्रत्यक्षके द्वारा व्याप्तिका ज्ञान हो जाता है इस कारण व्याप्तिका ज्ञान करनेके लिए तर्क नाम का प्रमाण नही माना जाना चाहिये। उत्तर देते हैं कि यह भी कहना ठीक नहीं है क्योंकि योगियोंका भी प्रत्यक्ष आखिर प्रत्यक्ष ही तो है। प्रत्यक्ष अविचारक होता है अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञानमे विकल्प नही उठा करता है न विचार चला करते हैं। तो प्रत्यक्ष विचार वाले विकल्प वाले व्यापारोको करनेमें असमर्थ है। चाहे योगियोका प्रत्यक्ष हो चाहे हम लोगोका प्रत्यक्ष हो, प्रत्यक्षमे विचार, व्यापार करनेकी सामर्थ्य नही है। और, फिर यह बतलावो कि व्याप्तिका ज्ञान करने वाले योगियोंका प्रत्यक्ष उत्पन्न कैसे हो गया। क्या विकल्प मात्रके अभ्याससे बन गया- या अनुमानके अभ्याससे बन गया अर्थात् उन योगियोंने साध्य साधनके बारेमें विकल्पोका अभ्यास किया है इस कारणसे योगियोका प्रत्यक्ष व्याप्तिके ज्ञानको करने वाला बन गया या अनुमानका अभ्यास किया है, तब प्रत्यक्ष व्याप्तिका ज्ञान करने वाला बना। प्रथमपक्ष तो कह नही सकते क्योंकि विकल्पके अभ्याससे योगिप्रत्यक्ष बना है तो जैसे कामशोक आदिकके ज्ञान अप्रमाण, मिथ्या हैं, इसी प्रकार योगप्रत्यक्ष भी मिथ्या बन जायगा क्योकि उसने विकल्पोंका अभ्यास किया। किसी प्रभुका ज्ञान, बहुत ऊँचे योगका ज्ञान विकल्पोमे लिपटा रहे तो उस ज्ञानको प्रमाण मानोगे क्या? वह तो मिथ्या ज्ञान है। दूसरे पक्षकी बात यो युक्त नही है अर्थात् अनुमानके अभ्याससे व्याप्तिका ज्ञान करने वाले योगिप्रत्यक्षकी उत्पत्ति होती है, यह बात यो युक्त नही है कि इसमे अन्योन्याश्रय दोष होता है। व्याप्तिके विषयमे योगियोका प्रत्यक्ष बन जाय तब तो अनुमान ज्ञान बने और जब अनुमान ज्ञान बने तो अनुमानके अभ्याससे योगियोंका प्रत्यक्ष बन सके। खैर, मान लो कि योगिप्रत्यक्ष है तो भी उस प्रत्यक्षके द्वारा जो पदार्थ जान लिया, जैसे प्रकृतमे साध्य साधनकी व्याप्ति जान ली तो, जब प्रत्यक्षसे जान लिया गया तो उससे अनुमान करना व्यर्थ है। जैसे स्पष्ट जो चीज दिखती है उसमें अनुमान कौन कर सकता है? साध्य साधन विशेषमे यदि स्पष्ट ज्ञान बन गया प्रत्यक्षसे और फिर भी अनुमान करने बैठ रहे हों तो फिर सभी प्रत्यक्षोंमें अनुमान करते रहो। फिर स्वरूपाध्यक्षसे प्रान्ति ही न होगी अर्थात् प्रत्यक्षज्ञानसे फिर कोई काम ही न बनेगा। प्रत्यक्ष से जान लेनेपर भी अनुमान बनाना जरूरी हो गया।

योगिप्रत्यक्षसे परार्थानुमानकी भी व्यवस्थाका अभाव—यदि कहो कि योगियोको जो अनुमान बनाना पडता है सो अपने ज्ञानके लिए नहीं, खुद तो वह प्रत्यक्षका ही ज्ञान करता है पर दूसरोंके लिए उनका अनुमान चलता है अर्थात् योगी पुरुष दूसरोके समझानेके लिये अनुमानका प्रयोग करते हैं। तो पूछा जा रहा है कि योगी पुरुष परार्थानुमानसे दूसरोंको समझाते हैं तो किस प्रकारके दूसरे लोगोको समझाते हैं? जिन्हें समझा रहे हैं उनको व्याप्तिसे ग्रहण किया है या नही? यदि व्याप्तिको ग्रहण करने वाले लोगोंको योगी अनुमानसे समझा रहा है तो बतलावो

उन्होने व्याप्ति किस प्रमाणसे ग्रहण की? अथवा ग्रहीत व्याप्तिक बनकर यागी समझा रहे हैं या अगृहीत व्याप्तिक होकर समझा रहे हैं। ग्रहीत व्याप्तिक होकर समझाते हैं तो किस प्रमाणसे व्याप्ति ग्रहीत की गई? स्वसंवेदन ज्ञानसे तो व्याप्ति का ग्रहण किया नहीं जा सकता क्योंकि स्वसम्वेदन ज्ञानका विषय व्याप्ति है ही नहीं, स्वसम्वेदन तो निर्विकल्परूपसे अपने ज्ञानमात्र आत्माका सम्वेदन करेगा। धुवां और आगके पचडेमे पडेगा क्या? इन्द्रियजन्य ज्ञानसे भी साध्य साधनके अविनाभावका ज्ञान नही बन सकता क्योंकि इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष तो केवल उस समयकी उस वस्तुको बता देगा। बिना विचार उठाये, मनोविज्ञानसे भी व्याप्तिकी प्रत्युत्पत्ति नही होती अर्थात् प्रत्यक्षरूप मनोविज्ञान तर्करूप नही है यह वह सम्बन्ध जानता है तो तर्क बन ही जायगा। तो यो मनोविज्ञानसे भी व्याप्तिका ग्रहण नही होता और फिर योगि-प्रत्यक्षके द्वारा व्याप्तिका ग्रहण नही होता और फिर योगिप्रत्यक्षके द्वारा व्याप्ति जान लो जाय तो अनुमान व्यर्थ हो जायगा। स्पष्ट ज्ञान हो गया फिर अनुमानकी क्या आवश्यकता? यदि यह कहो कि जिस पुरुषने व्याप्तिका ग्रहण नही किया है ऐसे पुरुषको समझाया जा रहा है, तो भला जिसे व्याप्तिका ज्ञान नही है उसका समझाना बन ही नही सकता। यदि बिना व्याप्ति ग्रहण किये ही समझाने लगे कोई तो कुछसे कुछ साध्य बता दिया जायगा। व्याप्तिकी तो आवश्यकता रही नही। जैसे यहा पानी है धुवा होनेसे। तो जब व्याप्ति ग्रहण किये बिना भी अनुमान पैदा होने लगे तो कुछ से भी कुछ अनुमान कर लिया जा सकता है।

मानसप्रत्यक्षसे भी व्याप्तिके ज्ञानकी व्यवस्थाका अभाव—अब तर्क ज्ञानको न मानने वाला एक योग दार्शनिक शका कर रहा है कि साध्य साधनके अवि-नाभावरूप व्याप्तिको मानस प्रत्यक्षसे जान लिया जाता है। उत्तरमे कहते हैं कि अभी तत्त्व समझा ही नही है। तुम्हारा प्रत्यक्ष तो तब उत्पन्न हुआ करता है जब इन्द्रिय और पदार्थका सन्निकर्ष हो जाता है। योग अर्थात् नैयायिक, योग प्रत्यक्षकी उत्पत्ति सन्निकर्षसे मानते हैं। चक्षु इन्द्रिय और पदार्थ ये दोनो भिड़ गए तब उसका ज्ञान हुआ। रसना इन्द्रिय और भोजन इन दोनोंका सन्निकर्ष हुआ तब रसका ज्ञान हो सका, यो इन्द्रिय और पदार्थोंके सन्निकर्षसे प्रत्यक्षकी उत्पत्ति मानी तो भला बतलावो तो सही कि मन तो है अणुस्वभाव बराबर। जैसे एक प्रदेशी अत्यन्त सूक्ष्म अणु होता है उतना है मन नैयायिक सिद्धान्तमे, तो अणु प्रमाण मनका एक साथ जगतके समस्त पदार्थोंके साथ सम्बन्ध बन ही नही सकता। जब सन्निकर्ष न बनसका तो प्रत्यक्ष भी न बन सका। फिर व्याप्तिका ज्ञान करनेका उपाय क्या रहा? अब शकाकार कहता है कि साध्य और साधन इन दोनों धर्मोंका किसी जगह विशेषमे व्यक्ति विशेषमे प्रत्यक्ष से ही सम्बन्ध जान लिया जाता है। जैसे रसोईघरमे बैठे हुए आप भोजन कर रहे हैं, आग और धुवां बराबर देख रहे हैं और उसका सम्बन्ध भी प्रत्यक्षसे जाना जा रहा है। उत्तर देते हैं कि भले ही एक जगह साधन प्रत्यक्षसे जान लिया गया तो सर्वोप-

सहाररूपसे सकलनरूपसे साध्य साधनकी व्याप्ति तो जानी नही जा सकती क्योंकि बताओ तुमने जो रसोईघरमें धुवाँ और अग्नि देखकर जो ज्ञान किया है और सम्बन्ध बनाया है तो उतने समयमे साध्य क्या रहा ? अग्नि सामान्य साध्य है या अग्नि विशेष साध्य है या अग्नि सामान्यविशेष उभयात्मक साध्य है । जो -प्रत्यक्षमें व्याप्ति मानते हो कि धुवाँ जाना, अग्नि जाना प्रत्यक्षसे और सम्बन्ध जान लिया धुवाँ और अग्निका कि अग्निके होनेपर ही यह धुवा हुआ, तो यहाँ जो अग्नि समझा वह अग्नि सामान्य है या विशेष है या दोनो रूप है ? अग्नि सामान्यको यदि साध्यमे लेते हो तो ठीक है, अनुमानमें भी साध्य सामान्य सिद्ध किया जाता है । पर्वतमें धूम होनेसे अग्नि जो सिद्ध की जा रही वह सामान्य है चाहे किसी भी चीजकी अग्नि हो । चाहे पत्थर की चाहे लकडीकी, अग्नि सामान्य साध्य होता है क्योंकि विशेषरूपसे तो साध्य असिद्ध है । धुवाँसे खास प्रकारकी अग्नि नही जानी जा रही । यदि कहो कि अग्नि विशेष के साथ साधनका अन्वय ही नही होता । क्या ऐसी व्याप्ति कोई जानता है कि जहा धुवाँ होता है वहा खैरकी आग होती है, ऐसी तो कोई व्याप्ति नही लगाता । अग्नि विशेषके साथ साधनकी व्याप्ति नही है । कहो - सामान्य विशेष दोनो रूप साध्य है अग्नि तो उससे धूमका सम्बन्ध प्रत्यक्षसे तो सिद्ध न होगा, क्योकि सब देश सब काल मे रहने वाले धुवाँकी व्याप्ति की जा रही है । वह अग्नि सामान्य ही होगा । उस प्रकार जब साध्य साधनका सम्बन्ध सिद्ध न हो सका तो जहा जहा जिस जिस जगह धूमकी उपलब्धि है वहाँ वहाँ उस उस समय अग्निका सामान्य विशेष है, ऐसा अनुमान तो बनता नही । अग्नि सामान्यका अनुमान बनता है । अन्यथा यदि साधनसे कोई विशिष्ट साध्य सिद्ध किया जाय तो सम्बन्धका ग्रहण करना बनता नहीं, नही तो अनुमान ही उठ जायगा । इस कारण सारी बातें सोच विचारकर इस निर्णयपर आ जाइये कि व्याप्तिको ग्रहण करने वाला तर्क ज्ञान है और वह प्रमाणरूप है । जैसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष विसम्वादरहित होनेसे प्रमाणरूप है, स्मरण नामका ज्ञान परोक्ष होनेपर भी विवादरहित होनेसे प्रमाणरूप है । प्रत्यभिज्ञान भी परोक्ष होनेपर भी अपने विषयमे विवादरहित होनेसे प्रमाणभूत है । इसी प्रकार तर्क नामक ज्ञान भी अपने विषयमे प्रमाणभूत है ।

ज्ञानका फल होनेसे ज्ञानमे अप्रमाणत्वका अनियम — अब शकाकार कह रहा है कि व्याप्तिका जो ज्ञान है वह तो प्रत्यक्षका फल है । प्रत्यक्षसे देखा कि यह आग है, यह धुवाँ है । अब उसमें जो हम सम्बन्धका जो ज्ञान कर रहे हैं कि देखो ना, आग होनेपर धुवा हुआ है । इस धूमका और अग्निका परस्परमें सम्बन्ध है अविनाभाव, ऐसा जो ज्ञान किया अब वह प्रत्यक्षका फल है प्रत्यक्षसे जब जाना कि यह आग है, यह धूम है तो तुरन्त ही सम्बन्ध जाना तो सम्बन्धका जो ज्ञान है वह प्रत्यक्षका फल है और जो प्रमाणका फल होता वह अप्रमाण होगा । प्रमाण प्रमाण है । प्रमाणका फल अप्रमाण है । अब इसका उत्तर देते हैं कि पहिली बात तो यह है कि

प्रत्यक्षज्ञान सम्बन्धको ग्रहण करता ही नही है। भले ही प्रत्यक्षसे जान लिया कि यह आग है, यह धुवाँ है। पर उनके बारेमे सम्बन्धका जानना यह प्रत्यक्षका काम नही है। यह विचारका काम है, तर्कका काम है। फिर दूसरी बात यह है कि जो यह कहा है कि प्रत्यक्षका फल होनेसे अप्रमाण है तो कोई भी ज्ञान किसीका फल रूप होनेसे अप्रमाण हो ऐसा नियम नही बनता। वह यदि अप्रमाणकी योग्यता रखता है तो अप्रमाण है प्रमाण होनेकी योग्यता रखता है तो प्रमाण है। यदि फलरूप होनेसे तर्क ज्ञानको अप्रमाण कह लिया जाय तो देखो विशेषणके ज्ञान होनेका फल है विशेष ज्ञान जिसमे चेतन हो वह आत्मा है, तो यहाँ विशेषण क्या हुआ? चेतन। विशेष्य क्या हुआ? आत्मा। तो चेतनका ज्ञान करनेसे जो आत्माका ज्ञान हुआ क्या वह भी अप्रमाण बन जायगा? तुमने तो लकीर बना ली कि ज्ञानका जो फल हो सो अप्रमाण है। अब विशेषण ज्ञानका फल विशेष्य ज्ञान है। जैसे कोई यह नही जानता था कि लीची कैसी होती है उसको समझाया कि जो तेंदूके फल बराबर हो और ऊपरके छिलकापर निकट निकट उठा हुआ हिस्सा हो वह लीची है। अब सब आकार विशेषण बन गया। अब कही यह विशेषण देखकर ज्ञान कर लिया कि यह लीची है तो क्या यह ज्ञान अप्रमाण हो जायगा? होता तो नही अप्रमाण। इससे सिद्ध है कि ज्ञानका फल होनेसे कोई अप्रमाण नही हुआ करता। यदि यह कहो कि विशेषणका ज्ञान करनेसे जो विशेष्यका ज्ञान होता है उसमे कुछ लाभ है अपना। क्या? जो छोडने योग्य हो उसे छोड दिया जाता। जो ग्रहण करनेका हो उसे ग्रहण कर लिया जाता और जो उपेक्षा करने योग्य हो उसकी उपेक्षा कर दी जाती। तो ज्ञान उपमान और उपेक्षारूप बुद्धि उसका फल है विशेष्यज्ञानको भी फल है इसलिये विशेषण ज्ञान प्रमाण है। जो ज्ञानका फल हो केवल, वह प्रमाण नही माना गया है। यदि ज्ञानका फल कोई ज्ञान है और उस ज्ञानका भी कोई फल निकल आया तब तो ज्ञान प्रमाण बन गया। जैसे विशेषणका ज्ञान करनेसे विशेष्यका ज्ञान हुआ तो विशेष्यज्ञान फल हुआ ना। अब विशेष्य ज्ञान करनेसे कई द्रव्य छूट गए, कुछ अच्छी बात ग्रहण कर ली, कुछ फल पा लिया तो विशेष्य ज्ञानका फल और मिल गया तब तो विशेष्यज्ञान प्रमाण हुआ ना? यदि ऐसा कहोगे तो यह बात तर्क ज्ञानमे भी है। प्रत्यक्षसे जान कर भी उसके सम्बन्धका जानना तर्क ज्ञान है और यह प्रत्यक्षका फल है। मगर तर्क ज्ञानका भी फल है। उसमें अनुमान बनता है। जो छोड़नेकी चीज है उसे छोड सकते हैं, ग्रहण वालेको ग्रहण कर सकते हैं। इस कारण तर्क ज्ञान अलग है और वह प्रमाण भूत है। यह कहना कि गृहीतग्राही होनेसे तर्क ज्ञान अप्रमाण है यह बात सत्य नही है।

तर्क ज्ञानमे विसंवादित्वका अभाव होनेसे प्रमाणता—अब दूसरा विकल्प यदि कहते हो कि तर्क ज्ञान अप्रमाण है विसम्वादी होनेसे। प्रश्न था तर्क ज्ञान इस कारण अप्रमाण है कि वह विसम्वादी है अथवा क्या इस कारण अप्रमाण है कि वह विसम्वादी है अथवा क्या इस कारण अप्रमाण है कि वह प्रमाणके विषयका

परिशोधक है। अर्थात् प्रमाणने किसीको जो जाना उसका ही समर्थक है। इन विकल्पोंमेसे पहिले विकल्पका तो खण्डन कर दिया गया—अब दूसरे विकल्प की चर्चाकी जा रही है कि विसम्वादी होनेसे तर्क ज्ञान अप्रमाण नही होता, क्योंकि तर्क ज्ञान अपने विषयमें तो विवादरहित है। साध्य और साधनका अविनाभाव सम्बन्ध करना यह है तर्क ज्ञानका विषय। और, उस विषयमे तर्क ज्ञान विसम्वादरहित प्रसिद्ध ही है क्योंकि यदि तर्क ज्ञान अविसम्वादी न हो, सही न हो तो अनुमान कभी सही हो ही नही सकता। ऐसा कभी न हो सकेगा कि तर्क ज्ञान तो सम्वाद न रखता हो अर्थात् मिथ्या हो और अनुमान ज्ञान सही बन जाय। कभी न ऐसा हो सकेगा कि अनुमानकी उत्पत्तिमे तो तर्क ज्ञान कारण होता है। जब साध्य साधनके अविनाभाव सम्बन्धका परिज्ञान हो तब तो अनुमान प्रमाण बन सकेगा। इस कारण विसम्वादी होनेसे तर्क ज्ञान अप्रमाण है यह बात युक्त नहीं होती। शंकाकार कहता है कि तर्क ज्ञानमे निश्चित सम्वाद नही है, निःसंदेह यथार्थता नही है क्योंकि तर्क ज्ञान बहुत दूरके पदार्थको विषय करता है। दुनियामें जहां जहां भी धुवाँ है वहाँ अग्नि है—चाहे विदेह क्षेत्र हो और चाहे दूसरा द्वीप हो यह तो सारी दुनियाकी बात कह रहा है। अत्यन्त दूरके पदार्थका विषय करता है तर्क इस कारण उसमे निःसन्देह यथार्थता नही है। इतनी दूर जाकर कहा निगरानी करें जहां जहा उस तर्कका अविनाभाव बतायें। उत्तर देते हैं कि यह कहना तुम्हारा ठीक नहीं है। क्योंकि तर्क ज्ञानके सम्वादमे यदि सन्देह किया जाने लगे तो निःसन्देह अनुमानका बनाना ही नही बन सकता अनुमानका बनाना तर्क ज्ञानके आधारपर है और तर्क ज्ञानमे ही अब सन्देह है तो अनुमान निःसन्देह कैसे बनेगा? और, जब अनुमान निःसन्देह न हो सका तो तुम प्रत्यक्षको भी प्रमाण सिद्ध नही कर सकते, क्योंकि प्रत्यक्षको प्रमाण सिद्ध करनेमे तुम अनुमान ही तो बनाओगे। प्रत्यक्ष प्रमाणभूत है अविसम्वादी होनेसे। और अनुमान हो गया सो सब सन्देहयुक्त। तो तुम्हारे प्रत्यक्षका प्रमाणता भी कैसे सिद्ध होगी? इस कारण जिस किसीको निःसन्देह अनुमानकी सिद्धि करना है उसको साध्य साधन के सम्बन्धका ग्रहण करने वाला जो तर्क ज्ञान है उसे निःसन्देह प्रमाण मानना पड़ेगा, यदि तर्कसे पूर्ण प्रमाणतासे प्रमाण न मानोगे तो अनुमान भी पूर्णतया प्रमाण नही बन सकता और जब अनुमान निःसन्देह प्रमाण न बनेगा तो प्रत्यक्षको भी तुम प्रमाण सिद्ध नही कर सकते, क्योंकि प्रत्यक्षको प्रमाण सिद्ध करनेके लिये तुम कोई हेतु दोगे, उससे बनेगा अनुमान, और अनुमान तुमने निःसन्देह माना नही। तर्क ज्ञान प्रमाण है और इसलिये भी प्रमाण है कि इसमें संशय विपर्यय और अनध्यवसाय नही है। जो कोई पुरुष साध्य साधनकी व्याप्तिका ज्ञान करता है वह निःसन्देह करता है। न विपर्यय करता और न अनध्यवसाय करता तो जो समारोपका व्यवच्छेदक है संशय, विपर्यय, अनध्यवसायका निराकरण करने वाला है वह ज्ञान प्रमाण माना गया है,—जैसे प्रत्यक्ष और अनुमान। यह समारोपको दूर करता है इस कारण प्रमाण है।

तो तर्क ज्ञान भी समारोपको दूर करनेके कारण प्रमाणभूत है।

प्रमाणविषय परिशोधक होनेसे तर्क ज्ञानके प्रमाणत्वकी पुष्टि – तर्क ज्ञान अप्रमाण है इस सम्बन्धमे शकाकारने तीसरा विकल्प कहा था कि यह तर्क ज्ञान प्रमाणके विषयका परिशोधक है इस कारण अप्रमाण है। उत्तरमे कहते हैं कि प्रमाणके विषयका परिशोधक होनेसे तो ज्ञान प्रमाण कहलायेगा अप्रमाण नही। तुम उल्टा कह रहे हो कि तर्क ज्ञान प्रमाणके विषयका शोधक है, समर्थक है। उसमे और विशेषताओका ला देता है इससे अप्रमाण है यह तो उल्टी बात है। जो प्रमाण के विषयका परिशोधक हो वह तो डटकर ही प्रमाण है क्योकि 'प्रमाणके विषयका अप्रमाणसे शोधन होता ही नही है। जैसे अप्रमाण है क्योकि मिथ्याज्ञानसे प्रमाणके विषयका परिशोधन नही हुआ करता। जानना, विशेष समझना ये सब प्रमाणविषय के परिशोधन कहलाते हैं। अनुमानसे भी सिद्ध है कि तर्क ज्ञान प्रमाण है क्योकि प्रमाणके विषयका परिशोधक होनेसे। जैसे अनुमान ज्ञान। दूरसे जाना था, देखा था जो कि प्रत्यक्षका विषय बन सका उसका ज्ञान अनुमान प्रमाण है, परिशोधन आगे भी होना। किसी प्रमाणसे कुछ जान लिया। अब उस जाने हुए पदार्थमे और जानना विशेष समझना यह भी परिशोधन होता है और जो जिस किसी प्रमाणके द्वारा जाना जा सके उसके विषयको अभीसे अनुमान द्वारा ज्ञान करते हैं यह भी शोधन है। जो प्रमाण नही होता वह प्रमाणके विषयका परिशोधक नही है। जैसे कि मिथ्याज्ञान। और तर्कने जो कुछ जाना वह प्रमेय है और उसका ज्ञान प्रमाण है, इस कारण तर्क ज्ञान प्रमाण ही है।

प्रमाणका अनुग्राहक होनेसे तर्क ज्ञानके प्रमाणत्वकी पुष्टि – परोक्ष ज्ञानके भेदमें स्मृति, प्रत्यभिज्ञान तक अनुमान और आगम ऐसे जो ५ भेद किए हैं उन मे तर्क ज्ञानकी बात चल रही है। साध्यके होनेपर ही साधनका हो सकता, साध्यके होनेपर ही साधनका हो सकना, साध्यके अभावमे साधनका न हो सकना ऐसे सम्बध के ज्ञान करनेको तर्क कहते हैं। तो यह तर्क ज्ञान प्रमाण हुआ क्योकि प्रमाणोंका अनुग्राहक है। तर्क ज्ञान न बने तो अनुमान ज्ञान तो नही बन सकता। तो अनुमान ज्ञानका उपकार किया इस तर्क ज्ञानने। साध्यसाधनकी व्याप्तिको ज्ञान न हो तो अनुमान कैसे बन सकता है? तो अनुमानका उपकारक है यह तर्क ज्ञान जो प्रमाणका अनुग्राहक प्रत्यक्ष और अनुमान है। जैसे प्रवचनोसे जो कुछ समझा जाता है उसको शुद्ध रूपसे बाचा तो यह प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ अथवा उसके सम्बन्धमे युक्तिया लगायी तो अनुमान हुआ। उससे देखो प्रवचनकी प्रमाणता आ जाती है प्रवचनमे लिखा है– पदार्थ उत्पादव्यय ध्रौव्यस्वरूप है और हम प्रत्यक्षसे किसी भी पदार्थको देखते हैं– स्कध सही तो उसमे हमे उत्पादव्यय ध्रौव्य नजर आता है। तो इसमे शास्त्रकी बात की प्रमाणता और दृढ़ हो गयी ना। अथवा अनुमानसे युक्तिसे कहते है कि कोई पुरुष

पुण्य विशेष करे तो उसका फल ता मनुष्योको अधिक भोग मिलें ऐसा ही कोई होगा। कोई मनुष्य एक पुरुषको मार डालता है तो सरकार उसे फांसी देती है और जो हजारो पशुवोको, मनुष्यको मार डाले उसके दण्डकी बात सरकारके पास क्या रखी है ? एक बार फांसी लगा दी। तो ऐसे पुरुषको अनुरूप दण्ड मिलनेका कोई साधन उन्हीका नाम स्वर्ग नरक है या अन्य तरहसे युक्तियों द्वारा जब जानते हैं और बुद्धिमें स्पष्ट होता है ना ? तो तर्क ज्ञान भी इसी प्रकार प्रमाणका अनुग्राहक है। कभी तर्क ज्ञान प्रत्यभिज्ञानका भी अनुग्राहक हो जाता है कभी स्मरणका भी। और अनुमानका भी तो अनुग्राहक है ही। बिना तर्कके प्रमाण अनुमानकी सिद्धि नही है। तो जो अन्य प्रमाणोका अनुग्राहक हो, उनकी उत्पत्तिका कारण बने ऐसा ज्ञान क्या अप्रमाण होगा ? अनुमानसे क्या प्रमाणकी उत्पत्ति हो सकती है ? जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण से बहुत दूरसे रहने वाले जलका ज्ञान किया, अब उसके जब और पास गए तो जल प्रत्यक्ष और स्पष्ट हुआ ना। तो दूसरे प्रत्यक्षने पहिले प्रत्यक्षसे जाने हुये ज्ञानमे दृढता ला दी ना, अहो पानी ही है। तो जैसे जब जब प्रत्यक्षसे जाने हुए पदार्थका अन्य पदार्थसे परिज्ञान होता है क्योंकि उसमें ज्ञानकी विशेषता आयी इसी प्रकार पहिले तो प्रत्यक्ष प्रमाणसे एक देश सम्बन्ध जाना। रसोईघरमे बैठे बैठे अग्नि और धुवा देख रहे थे तत्काल वहाकी अग्नि और धुवा इनका ही सम्बन्ध जाना। अब उसके बाद लोकमे सब समयोमे उसका सम्बन्ध जाना। तो प्रमाणसे जाने हुए पदार्थको अन्य प्रमाणसे जान लेना विशेषताके साथ यह तो एक ज्ञानकी मजबूतीका ही कारण बना। इससे यह निश्चय करना कि साध्य और साधनके अविनाभावके ज्ञानका कारण तर्कज्ञान होता है।

स्मृति प्रत्यभिज्ञानकी भांति तर्कज्ञानकी भी बहुश: उपयोगिता — ये सब ज्ञान साम न्यरूपसे तो परोक्ष ज्ञान हैं। इन्द्रिय और मनके निमित्तसे और अविशद जो ज्ञान होता है वे सब परोक्ष ज्ञान हैं, तो यह लक्षण सब ज्ञानोमें घट रहा है। फिर भी उनमे और भी सूक्ष्म विशेषता बतानेके लिये भेद किये जा रहे हैं और भेद स्पष्ट समझमें आते हैं। स्मरण ज नने जाना—वह है, वह था, वह होगा, तो इसका स्मरण किया यह ज्ञान विसम्वादरहित है। ठीक मालूम पड रहा है ना, और कभी कोई पुरुष सामने आये और उसे देखकर यह ज्ञान किया कि यह वही पुरुष है जिसे हमने अमुक जगह देखा था। तो इस किस्मका भी ज्ञान होता है ना, यह प्रत्यभिज्ञान है। अचानक ही कोई अपका रिश्तेदार आ गया और आप उसे झट ठहराने लगे तो समझो उस समय आपको तुरन्त प्रत्यभिज्ञान हो चुका, किन्तु अभ्यास विशेष होनेके कारण आपने विकल्पोके रूपसे प्रत्यभिज्ञानको नही उठाया। यह अमुक ही है जो खूब हमारे साथ रहे, जिसे हम खूब जानते हैं, इस प्रकार मुद्रा नहीं बनी भेद विज्ञानने विकल्प नहीं उठाया लेकिन यह कला तुरन्त जग गयी तब आप उससे व्यवहार कर सके। तो प्रत्यभिज्ञान भी कोई व्यवस्थित अलग प्रमाण है। तर्क ज्ञान साध्य और

साधनकी व्याप्तिका जानना है। धर्मशास्त्र या दार्शनिक शास्त्रोके अध्ययनसे तब तक स्पष्टता नही आती जब तक प्रमाणके स्वरूप युक्ति और विधि न ज्ञात हो। आत्मा चेतन है यह कह देना एक साधारण सी बात हो गई, पर जो अनुमानका आश्रय लेते हैं, साध्य साधनकी व्याप्तिकी सम्हाल करते हैं उनको आत्माके चैतन्यस्वरूपका ज्ञान बहुत स्पष्ट रहता है। किसी भी पुरुषको देखकर झट उससे व्यवहार करने लगते हैं, क्योंकि इसमें चेतन है जीव है ऐसा बोध आपको कैसे हो गया कि वह चलता है, बोलता है, समझता है प्रश्नका उत्तर देता है कुछ पूछता है चर्चा करता है, तो इन बातोको देखकर आपने झट समझ लिया कि यह जीव है, तो इनमें अनुमान प्रमाण बन गया ना, उसके अनुमानकी मुद्रामे हम विकल्प नही करते हैं, न उतना समय लगाते हैं लेकिन किसी पुरुषको देखकर झट व्यवहार करने लगते। ऐसा करनेमे उस के अनुमान ज्ञान बन गया, क्योंकि यह जीव है यह प्रत्यक्षसे तो जाना नही जाता। और जो अनुमान बना है उसके पहिले तर्कज्ञान भी बन गया। जीवके होनेपर ही यह हलन-चलन व्यवहार बोल-चाल प्रश्न उत्तर बन सकते हैं। उसके अभावमें नही बन सकते हैं, उसके अभावमें नही बन सकते। ऐसा सम्बन्धका ज्ञान भी बन गया है। भले ही हम इन विकल्पोसे उस समय जान नही रहे स्पष्टरूपमें बोल बांधकर फिर भी तर्क ज्ञान बन ही गया, अनुमान ज्ञान भी हो गया तब आप उससे बोलते हैं। किसी पुरुष को देखकर एकदम झट बोलने लगते, इससे पहिले आपके तर्कज्ञान और अनुमान ज्ञान बन चुका। ज्ञान तो इतना जल्दी काम करता है कि जिसका उदाहरण न हवाकी गतिसे दे सकते और न बिजलीकी गतिसे। कोई कोई लोग कहते कि यह मनकी गति है। किसी भी बड़ी से बड़ी समस्याका हल इस ज्ञानके द्वारा क्षणभरमे ही हो जाता है। तो ज्ञानका गति इतनी सूक्ष्म और तेज है जिससे कि एक सेकेण्डमे ही अनेक विषयोंका परिज्ञान कर लेते हैं। तो स्मृतिज्ञान, प्रत्यभिज्ञान, तर्कज्ञान ये कितना जल्दी जल्दी हम आपके होते रहते हैं। उसीसे हम आप विवेकी कहलाते हैं। तो इतना तो हम उन ज्ञानोमे उलझन हैं और उनका निषेध करे कि तर्क आदि कोई ज्ञान नही है, यह कैसे विवेककी बात कही जा सकती है ?

सम्बन्ध ज्ञानरूप तर्ककी अन्य किसी सम्बन्धज्ञानसे उत्पत्तिका अभाव अब शंकाकार एक और शंका कर रहा है कि तर्क ज्ञानका नाम है साध्यसाधनके सम्बन्धको जान लेनेका। चेतनके होनेपर ही वचन व्यवहार होता है यह सम्बन्ध जान लिया ना। अग्निके होनेपर ही धुवां बन सकता है यह सम्बन्ध जान लिया ना। तो देखो—तर्क ज्ञान सम्बन्धसे होगा। फिर वह सम्बन्ध ज्ञान किसी अन्य सम्बन्ध ज्ञानसे होगा। इस तरह बहुतसे तर्क ज्ञान मानने पड़ेंगे। अनवस्था हो जायगी। इसमें तर्क ज्ञान कोई ज्ञान नही है न प्रमाणभूत है। उत्तर देते हैं कि कौन कहता है कि तर्क ज्ञान सम्बन्धके ज्ञानसे उत्पन्न होता है ? सम्बन्धके ज्ञानका ही नाम तर्क ज्ञान है न कि सम्बन्धके ज्ञानका ही नाम तर्क ज्ञान है न कि सम्बन्धके ज्ञानसे कोई भिन्न तर्क ज्ञान

है और उस तर्क ज्ञानकी उत्पत्ति सम्बन्धज्ञानसे हुई हो ? तर्ककी उत्पत्ति तो उपलम्भ और अनुपलम्भके निमित्तसे होती है अर्थात् साध्यके होनेपर ही साधनका न होना, ऐसी निश्चय पद्धतिमे तर्ककी उत्पत्ति होती है उसमे ऐसा भी नही कह सकते । तो फिर एक तर्क ज्ञान समस्त अनुमानोंको उत्पन्न करदे अग्निके होनेपर ही धुवां होता है ऐसा सम्बन्ध जानकर जो तर्क ज्ञान बनाया उस तर्क ज्ञानमे अग्निका ही अनुमान क्यो बनता है ? कही सृष्टि हुई है या जितने भी दुनियाभरमे साध्य हैं, सब क्षणिक है आदिक जो जो कुछ भी साध्य है उन सबका ज्ञान क्यों नही हो जाता ? अगर वह सम्बन्ध ज्ञानसे उत्पन्न नही होता है तो । उत्तर देते है कि यह तो जीवोंकी अपनी-अपनी योग्यता है । जिस जिस ज्ञानावरणका क्षयोपशम होता है अर्थात् उपयोग होता है, लब्धि होती है उस उस पदार्थका ज्ञान होता रहता है । प्रत्यक्षमे भी तो घट ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे घटका ज्ञान होता, पट ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे पटका ज्ञान होता तो प्रत्यक्षमे भी तो कोई यों शका कर सकता था कि आखें खुली तो यह चटाई ही क्यो दिखी, चटाई ही क्यो जानी गई ? इसमें दुनिया भरके पदार्थ क्यो नही जान लिये जाते । तो वहा भी सावरणक्षयोपशम है किन्तु लोग तदुत्पत्तिका उत्तर देते हैं कि चटाईको जानेगा । जमीनसे जो ज्ञान उत्पन्न हो वह ज्ञान जमीनको जानेगा, मगर तदुत्पत्ति सम्बन्ध नही है । पदार्थ कुछ भी न होते और ज्ञान बन जाता तो इस से सिद्ध है कि ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न नही होता । स्वय ही आत्मा यह ज्ञानस्वरूप । इसपर अभी आवरण है, उस आवरणका जितना-जितना विघटन है उतना-उतना ज्ञानका विकास है । तो अपने ज्ञानावरणके क्षयोपशम योग्यतासे और जहां जहा उपयोग चलता है उस नियमसे उस पदार्थका ज्ञान होता है । एक ज्ञानके द्वारा समस्त पदार्थोंका ज्ञान यो न हो सकेगा । तर्क ज्ञानमे भी लगा लीजिये अग्नि और धुवा के सम्बन्धके ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे तर्क ज्ञान उत्पन्न होता है और जिस-जिस विषयका क्षयोपशम है उस उस विषयकी व्याप्तिका ज्ञान कर पाता है । यो तर्क ज्ञान प्रमाण है ।

ज्ञप्तिकालमे सभी ज्ञानोकी सम्बन्ध ग्रहण निरपेक्षता—शकाकार अब फिर कहता है कि यदि तर्क ज्ञानमे अपने विषयमे अन्य सम्बन्ध ग्रहणकी अपेक्षा किये बिना अनुमान भी बन जाया करे, फिर तर्ककी जरूरत क्या रही ? यो सम्बन्ध ज्ञान का नाम तर्क है और सम्बन्ध ज्ञान बिना अब ज्ञान बनने लगे, तर्क बनने लगे तो अनुमान भी बन बैठे । फिर यदि सम्बन्ध ज्ञान बिना साध्य साधनके अविनाभावके परिज्ञान बिना अनुमान बन जाय तो कोई एक ज्ञान सब समय सबको जानने वाला बन जाय । और, दूसरी बात कि उन ज्ञानोंमे स्वय आवरणके क्षयोपशमरूपकी योग्यता है तो अपने आवरणके क्षयोपशमसे अनुमान ज्ञान होते रहेंगे । तर्क ज्ञानकी क्या जरूरत है ? उत्तर देते हैं कि प्रत्येक ज्ञान जानते समयमें सम्बन्ध ग्रहणकी अपेक्षा नही रखता जैसे आंखसे कोई पदार्थ जाना तो उस ज्ञानकी उत्पत्तिमे कारण हुई

इन्द्रियाँ, पर इन्द्रियके निमित्तसे उत्पन्न हुआ ज्ञान अपना ज्ञान करनेमे इन्द्रियकी अपेक्षा नही रखता। ज्ञप्तिकालमे किसी भी सम्बन्धकी अपेक्षा नही रखता। जैसे एक दृष्टान्त लो—मृदङ्गको कोई पुरुष बजाता है तो शब्दकी उत्पत्तिमे तो मनुष्यके हाथकी ठोकर कारण है पर शब्द उत्पन्न हो और फिर वह शब्दरूप परिणमन करे तो शब्दवर्गणाको शब्दरूप परिणमनेके लिए मनुष्यके हाथकी अपेक्षा नही रहती। बहुत मोटा दृष्टान्त लो—कोई नौकर किसी कामको करनेके लिये पहिले मालिककी आज्ञा चाहता है तो काम करनेके लिए एक खुलासी हो जाना इतनी बात तो मालिककी आज्ञाकी अपेक्षा रखता है पर आज्ञा प्राप्त हो जानेपर फिर वह नौकर अपने कामके करनेमे किसीकी अपेक्षा नही रखता। वह अपनी स्वतन्त्रतासे करता है। अनुमान ज्ञान भी उत्पत्तिमे तो तर्क ज्ञानकी अपेक्षा रखता है। साध्यसाधनके सम्बन्ध ज्ञान बिना अनुमान ज्ञान न बने तो अनुमान ज्ञान उत्पत्तिमे तो सम्बन्ध ग्रहणकी अपेक्षा रखता है पर अनुमान ज्ञान जब उत्पन्न हो रहा तो उत्पन्न होरहेके समयमे फिर सम्बन्ध ग्रहणकी अपेक्षा नही रखता किन्तु अपने विषयको पूर्णरूपसे जान लेता है। जैसे भोजन खानेके लिये पहिले भोजनके निर्माणमे तो अनेकोकी अपेक्षा होती है, पर भोजन बन चुकनेपर खाने वाला फिर कहा बनाने वालेकी अपेक्षा करता है। ज्ञानकी उत्पत्तिमे जो जो ज्ञानके साधन हैं उनकी अपेक्षा पडती है। ज्ञान होने लगे तो ज्ञानसे ज्ञप्ति होनेके सम्बन्धमे फिर किसी साधनकी अपेक्षा नही रहती।

ज्ञप्तिकालमे सम्बन्ध ग्रहण निरपेक्षतापर पुन दृष्टिपात—एक यह भी बात देख लो कि जब आत्मा स्वानुभव करता है तब अन्य किसी भी प्रकारके विकल्प नही रहते। फिर उन विकल्पोकी अपेक्षा नही रहती। अब तो स्वानुभव अपना निर्विकल्प अनुभवन किया करे। सभी ज्ञानोमे यह बात है कि ज्ञानकी उत्पत्ति के जो साधन है जब जब जिस समय जिस ढगके, तब तब उस समय वे साधन अपेक्षित होते हैं पर ज्ञानके समयमे, जाननेके समयमे फिर ज्ञानको अन्य किसी साधनकी अपेक्षा नही रहती, किन्तु वह जाननहार निरपेक्ष होकर रहता है। इसी प्रकार अनुमान ज्ञान अपने विषय अनुमेयके जाननेमे सम्बन्ध ग्रहणकी अपेक्षा नही रख रहा. किन्तु अनुमानकी उत्पत्तिमे तर्क ज्ञान अपेक्षित होता है। उत्पत्ति होनेपर फिर अनुमान ज्ञान अनुमेयको जानता है, किसी अन्य सम्बन्ध ग्रहणकी अपेक्षा नही करता। उत्पत्ति के बारेमे देख लो, कि जिस पुरुषने जो भी अनुमान बनाया, पर्वतमे अग्नि है, धुवा होनेसे, ऐसा अनुमान बनाने वाले पुरुषको अग्नि और धुवाके साध्य और साधनके सम्बन्ध ग्रहणकी अपेक्षा पडी या नही ? पडी। तर्क ज्ञानकी अपेक्षा न करके तर्क ज्ञानका प्रयोग उपयोग न करके अनुमान ज्ञान कोई नही बना सकता। अनुमान ज्ञान होनेपर फिर तर्कके विकल्प नही रहते। यदि तर्क ज्ञान बिना अनुमान ज्ञान बनने लगे, साध्य साधनका सम्बन्ध जाने बिना यदि कोई पुरुष अनुमान ज्ञान पैदा करले लगे तो कोई व्यवस्था न रहेगी कोई भी पुरुष किसी भी समय अनुमान ज्ञान उत्पन्न

गारले और सबको जान जाय या कुछ भी न जाने, कोई व्यवस्था नही रहती। इससे बात स्पष्ट होती है कि अनुमानकी उत्पत्तिमे तर्क ज्ञान करना पड़ता है।

प्रत्यक्षकी भांति तर्क ज्ञानमे सम्बन्ध ग्राहक अन्य ज्ञानकी अनपेक्षा — शकाकार कहता है कि प्रत्यक्ष तर्ककी उत्पत्तिमे तो इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्ध ज्ञान की अपेक्षा रहती है सो प्रत्येक ज्ञानोंमे सम्बन्ध ज्ञानकी अपेक्षा रहा करती है। तर्कमें भी रहेगी। जैसे प्रत्यक्षमे जाना कि यह चटाई है तो यह भी तो ज्ञान है कि आंख का और चटाईका आमना सामना हुआ है। या जो मानते हैं कि आंखसे किरणें निकलती हैं उनका चटाईसे सम्बन्ध होता है उससे ज्ञान बना कि यह चटाई है तो प्रत्यक्षसे भी तो जाना जारहा है वह भी तो सम्बन्ध ग्रहणसे जाना जा रहा है ना। उत्तर देते हैं कि नही, प्रत्यक्षकी उत्पत्ति इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्धसे नही बनती। अनेक पुरुष हैं ऐसे कि जो पदार्थका और इन्द्रिय सम्बन्धका कुछ ज्ञान नही करते और पदार्थोंको जानते रहते हैं। ये देहाती लोग अनेक लोग इन बातोंसे अपरिचित हैं कि पदार्थका और इन्द्रियका सन्निकर्ष होता है तब ज्ञान होता है। कुछ जानते ही नही हैं। तो सम्बन्ध ग्रहण किये बिना इन्द्रिय और पदार्थोंके सम्बन्धका ज्ञान किये बिना भी तो अनेक लोग बराबर प्रत्यक्षसे काम ले रहे हैं। तो प्रत्यक्षकी उत्पत्ति करण और पदार्थोंके सम्बन्धके बिना भी हुआ करता है, इसी प्रकार तर्क ज्ञानकी उत्पत्तिके लिये भी किसी अन्य ज्ञान सम्बन्ध ज्ञानकी जरूरत नही है, किन्तु तर्क ज्ञान स्वय सम्बन्धित ज्ञानरूप है। इससे तर्क ज्ञान वास्तविक प्रमाणभूत है। इस ग्रथमे प्रमाण का स्वरूप बताया है। प्रमाण होता है ज्ञानरूप। ज्ञान होते हैं दो प्रकारके। कोई स्पष्ट ज्ञान और कोई अस्पष्ट ज्ञान तो जो स्पष्ट ज्ञान है वह तो प्रत्यक्षज्ञान है और जो अस्पष्टज्ञान है वे सब परोक्ष ज्ञान हैं। उन परोक्ष ज्ञानोंमे स्मृतिज्ञान भी कितना काम किया करता है। सो हम आप सब जानते हैं स्मरण बिना क्या कर सकेंगे ? जिनमें स्मरणकी शक्ति नही रहती है उस पुरुषको फिर लोग बेकार समझ जाते हैं। इसमें तो स्मरणकी अयोग्यता है। प्रत्यभिज्ञान बिना हम आप कुछ हिला डुला भी नही सकते। तर्क ज्ञान बिना तो वस्तुके स्वरूपका निर्णय नही कर सकते। जो परस्परमें वस्तु स्वरूपपर चर्चायेंकी जाती है उसमे तर्क ज्ञानसे हम कितना अधिक काम लेते रहते हैं। तर्क ज्ञान बिना तो कुछ उत्थान ही नही है हम आप मनुष्योका। तर्क कहो, कानून, निर्णय, व्याप्तिज्ञान सम्बन्ध ज्ञान, अविनाभावी ज्ञान ये समस्त निर्णय तर्क बिना कैसे हो सकते हैं ? इससे तर्क ज्ञानको वास्तविक प्रमाणभूत ज्ञान मानना ही चाहिये। अब इस समय अनुमानका लक्षण बतानेकी इच्छासे सूत्र कहते हैं,

साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम् ॥३–१४॥

अनुमानका लक्षण और अनुमानके अङ्गभूत साधन और साध्यके स्वरूपका विवरण—साधनसे साध्यका ज्ञान करनेको अनुमान कहते हैं। साधन मायने

है।, साध्य मायने जिसको सिद्ध करना है। तो तुसे इष्ट बातको सिद्ध करनेका नाम अनुमान है। साधनमे साध्यके अभाव होनेपर साधनका अभाव होता यह नियम रहता है वही साधन साध्यको सिद्ध करता है। जिस साधनमे यह नियम पड़ा हुआ है कि साध्य न हो तो वह हेतु न होगा, साध्यके न होनेपर हेतुके न होनेरूप अविनाभाव नियम रहे जिस साधनमे वही साधन साध्यको सिद्ध करता है और उस साधनसे ऐसे ही साध्यका ज्ञान किया जा सकता है कि जो इष्ट हो, अबाधित हो और असिद्ध हो। जिस चीजको हम सिद्ध करना चाहते हैं वह चीज यदि सिद्ध करने वालेको ही अनिष्ट हैं तो वह अनुमान नहीं बनेगा। जैसे कोई बौद्ध यदि यह अनुमान बना बैठेगा कि, सब कुछ नित्य है सत होनेसे नित्य उन्हे इष्ट ही नहीं है तो साध्य इष्ट ही बनाया जायगा अनिष्ट नहीं वह सिद्ध हो सके या नहीं यह आगेकी बात है। किसे पडी है कि अपनेको अनिष्ट बातकी सिद्धि करे ? इसमे साध्य इष्ट ही होगा। किस प्रकार साध्य अबाधित होगा ? हम कोई साध्य सिद्ध करना चाहे और उसमे आ रही हो प्रत्यक्षसे बाधा तो वह तो साध्य न बन सकेगा। जैसे हम अनुमान बना दे कि अग्नि ठण्डी होती है पदार्थ होनेसे और उसका पोषण भी करदें कि जो जो भी पदार्थ होते हैं वे ठन्डे होते हैं जैसे पानी, बर्फ। लो इस अनुमानमे जब प्रत्यक्षसे ही बाधा भरी है, हाथपर रखकर देख लिया जाय, तो जो बाधित हो वह तो साध्य नहीं बन सकता इस कारण अबाधित ही साध्य होगा। जो किसी प्रमाणसे ही सिद्ध है, दोनोके लिये, वादीके लिये भी और प्रतिवादीके लिये भी। वादी को सिद्ध होता ही है किन्तु जो विरोधी पुरुषके लिये भी सिद्ध पडा है उसको सिद्ध करनेकी क्या जरूरत नहीं, इसलिए ऐसे साध्यका ही ज्ञान होता अनुमान है जो इष्ट हो, अबाधित है और असिद्ध हो। तो साधनकी विशेषता क्या है ? साध्यका अभाव होनेपर साधनका न होना। यह विशेषता है साधनमे तो वह अनुमान सम्भव हो सकता है। साध्यकी विशेषता क्या है ? जो इष्ट हो, अबाधित हो और असिद्ध हो, ऐसे ही साध्यका ज्ञान करनेके लिये अनुमान बन सकता है। साध्यके इन तीन विशेषणोमे इष्ट विशेषण तो वादीकी अपेक्षा है। जो अनुमान बना रहे उसे इष्ट होना चाहिये। अबाधित दोनोके लिये है जो किसी प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणसे बाधा न जाय और असिद्ध विशेषण विशेषतया प्रतिवादी याने विरोधीके लिए है। जैसे अग्नि गर्म है यह प्रत्यक्षसे सिद्ध है या किसी भी प्रमाणसे कोई बात सिद्ध हो चुकी हो, फिर उसका अनुमान बनाये तो अनुमान सिद्ध का नहीं बना करता। जिसको सिद्ध करना है, अभी तक सिद्ध नहीं हो सका है उस को ही तो सिद्ध किया जायगा। तो इस प्रकार साधनका मुख्य विशेषण है साध्यके अभावमे साधनका न होना। साध्यका मुख्य विशेषण है—जो इष्ट है, अबाधित है व असिद्ध है। यदि इस विशेषणोमेसे कोई कम हो जाय तो उस ज्ञानको अनुमान नहीं कहा जा सकता।

हेतुका त्रैरूप्य लक्षण माननेकी आशंका—अब शंकाकार कह रहा है कि

साधनसे साध्यका ज्ञान होना अनुमान है यह तो ठीक बात है लेकिन साधन त्रैरूप्य हुआ करता है अर्थात् साधनमें तीन रूप होते हैं -पक्ष धर्मत्व, सपक्षसत्त्व, विपक्ष व्यावृत्ति, साधनमें जो एक विशेषण दिया कि साध्यके अभावमें साधनका न होना यह पर्याप्त नहीं है। उसमें ये तीन रूप होना चाहिये। पहिला तो यह कि साधन पक्षमें रहता हो दूसरा यह कि जो सपक्ष है जिसमें साध्य पाये जाते हैं उनमें हेतु मिले सपक्षमें साधन रहा करे। तीसरी विशेषता यह चाहिये कि विपक्षमें साधन न रहे अर्थात् जिसमें साध्य नहीं रहता उसमें साधन न रहे ये तीन धर्म हों तो वह हेतु सही है। फिर उस हेतुसे साध्यका ज्ञान करना अनुमान कहलायेगा। पक्ष, सपक्ष, विपक्षके लक्षण इस प्रकार हैं कि जिसमें हम साध्य सिद्ध करना चाहते हैं, साधन दिखा रहे हैं उसे पक्ष कहते हैं। जैसे पर्वतमें अग्नि है -धुवाँ होनेसे तो यहाँ पक्ष पर्वत है जिसमें हम साधन बना रहे हैं उसे कहते हैं पक्ष और साध्य पक्षके अलावा जिन जिन जगहोंमें पाये जायें उनका नाम है सपक्ष। जैसे रसोईघर आदिक वहाँ अग्नि भी है और धुवाँ भी है सो वह कहलाता है सपक्ष सत्त्व और जिसमें साध्य नहीं हुआ करता है वह कहलाता है विपक्ष जैसे तालाब--वहाँ न अग्नि है न धुवाँ है। तो साधन पक्षमें रहे यह जरूरी है कि नहीं, और साधन सपक्षमें रहे यह भी जरूरी है और साधन विपक्षमें न रहे, यह भी जरूरी है तो इस प्रकार -पक्ष धर्मत्व, सपक्ष-सत्त्व और विपक्ष व्यावृत्ति ये तीन धर्म साधनमें होना चाहिए। तो उस साधनसे साध्यका ज्ञान होना अनुमान कहलाता है।

शंकाकार द्वारा हेतुकी त्रैरूप्यताका समर्थन- हेतुके इन तीन रूपोंमें अलग-अलग प्रयोजन भी हैं -पक्ष धर्मत्व तो असिद्धत्वके निराकरणके लिए आवश्यक है। असिद्ध उसे कहते हैं कि पक्षमें साधन न रहे। पक्ष धर्म बता दिया कि पक्षमें साधन रहे तो इससे असिद्ध नामका दोष दूर हो जाता है। सपक्ष सत्त्व होनेसे विरुद्ध नामका दोष दूर हो जाता है। हेतुका एक दोष विरुद्ध भी है, साध्यसे विरुद्धके साथ साधनकी व्याप्ति होना। जैसे कहना कि पदार्थ नित्य हैं सदा रहने वाले हैं क्योंकि वे बनाये गये हैं। तो जो बनाया गया हो उसकी व्याप्ति नित्यके साथ होगी या अनित्यके साथ? अनित्यके साथ होगी। साध्यसे विरुद्धके साथ साधनकी व्याप्ति होने का नाम है विरुद्ध दोष। तो जब हम साधनमें सपक्ष सत्त्व नामका रूप मान लेंगे तो विरुद्ध दोष नहीं रह सकता, क्योंकि साधनका सपक्षमें ही रहना यह बात तभी हो सकती है जब विरुद्धपना न हो। तीसरा विशेषण है विपक्ष व्यावृत्ति। इसके द्वारा अनैकान्तिक दोष दूर होते हैं। अनैकान्तिक कहते हैं कि हेतु सपक्षमें भी रहे तो रहे, विपक्षमें भी रहे। जो हेतु दोनों जगह रह सकता हो वह हेतु अनैकान्तिक है क्योंकि साध्यको सिद्ध करनेमें कमजोर है। साध्यसे विरुद्ध बातको भी वे हेतु सिद्ध करते हैं और साध्यके अनुकूल भी सिद्ध करते हैं। तो उस हेतुसे कैसे सिद्ध होगा। जैसे पदार्थ

नित्य शाश्वत रहता है, सत्व होनेसे। अब सत्व धर्म अनित्यके साथ भी लगता है और नित्यके साथ भी लगता है, क्योंकि जो जो सत् होते हैं वे नित्यानित्यात्मक होते हैं। तो यो तीन प्रकारके दोषोंके निराकरणके लिये भी साधनके ये, तीन रूप माने जाना चाहिये। पक्ष धर्मत्व, सपक्षसत्व और विपक्षव्यावृत्ति। यदि साधनमें ये तीन रूप नहीं मानते तो साधनमें असिद्ध विरुद्ध अनैकान्तिक इन तीन दोषोंका निराकरण नहीं कर सकते। इस प्रकार शंकाकारने साधनको त्रैरूप्य माने जानेकी आशंका की। उसके उत्तरमें सूत्र कह रहे हैं।

साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः ॥३-१५॥

त्रैरूप्यमें हेतुलक्षणत्वका अभाव और हेतुका निर्दोष स्वरूप - जो साध्यके साथ अविनाभावरूपसे निश्चित हो वही हेतु होता है। हेतुमें तीन रूप आयें तब हेतु बने ऐसा बात नहीं। तीन रूप भी रहो अथवा उनमेंसे तीन रूपोंमेंसे कुछ न रहे लेकिन साध्यके साथ अविनाभाव होना हेतुका आवश्यक है। हेतुका लक्षण बताया जा रहा है। कोई कह रहा है कि हेतुका लक्षण त्रैरूप्य है किन्तु लक्षण असलमें कैसा होना चाहिये? लक्षणका लक्षण क्या है? जो पदार्थका असाधारण स्वभाव हो उसे लक्षण कहते हैं। जो लक्षण उस पदार्थके अलावा अन्यत्र न जाय, उस ही पदार्थमें रहे और उसमें पूरेमें रहे ऐसा जो असाधारण स्वभाव है उसे पदार्थका लक्षण कहते हैं। दोनों पक्षोंको समझानेके लिये लक्षणका लक्षण यह भी कहा गया है कि बहुतसे मिले हुए पदार्थोंमेंसे जो चिन्ह किसी एक पदार्थको ही अलग जता दे उसे लक्षण कहते हैं। इस ही बातको एक शास्त्रीय परिभाषामें कहा जा रहा है कि लक्षण उसे कहते हैं जो पदार्थका असाधारण स्वभाव हो। असाधारण शब्द कहनेसे अतिव्याप्ति दोषका निराकरण हो जाता है जो अन्य किसीमें न पाया जाय उसे असाधारण कहते हैं। जिसके लक्षण किये जा रहे हैं उसके अलावा अन्यमें न जाय उस हीका नाम असाधारण है। स्वभाव कहनेसे अव्याप्ति दोषका निराकरण है। जो स्वभाव है वह पूरेमें रहेगा ही। जिस पदार्थका स्वभाव आप कह रहे हो वह स्वभाव उस पदार्थमें न रहे तो स्वभाव क्या? स्वभाव तो पदार्थमें व्यापक होकर ही रहेगा। तो असाधारण स्वभाव कहनेसे अव्याप्ति, अतिव्याप्ति ये दोनों दोष नहीं आते। और फिर असम्भवकी तो कोई संभावना ही नहीं है। असाधारण स्वभाव जिसमें सम्भव हो यह बात कहनेपर असम्भवता की बात रही कहाँ? तो लक्षणका यही लक्षण है कि असाधारण स्वभाव हो, जो पदार्थका असाधारण स्वभाव हो वह पदार्थका लक्षण है। इसमें कोई व्यभिचार नहीं आता। जैसे अग्निमें उष्णता असाधारण स्वभाव है इसलिए अग्नि भी लक्षण कहलाती है; पर तुम्हारे बताये गए हेतुके त्रैरूपमें असाधारणता नहीं पाई जाती। हेतुके लक्षण जो पक्षधर्मत्व सपक्षसत्व, विपक्षव्यावृत्ति कहा है वे असाधारण नहीं है। तो वे तीन बातें हेतुमें भी पाई जा सकती हैं और हेत्वाभासमें भी पाई जा सकती हैं। पक्षधर्मत्व हेतुमें पाया भी जाता है और कोई हेतु ऐसा है कि पक्षधर्मत्व नहीं है, जिस

अनुमानका कोई पक्ष ही न हो ऐसा भी तो अनुमान होता है जो विकल्पसिद्ध अनुमान हो जिसमे पक्ष न हुआ करे, तो उनमे क्या हेतु सिद्ध करोगे ? तो हेतुमे भी पक्षधर्मत्व मिलेगा और हेत्वाभासमे भी मिलेगा। इसी प्रकार सपक्षसत्त्व, हेतुमे भी मिलेगा और हेत्वाभासमें भी मिलेगा। इस कारण त्रैरूप्य हेतुका लक्षण नही हो सकता। जैसे कि पंचरूपता हेतुका लक्षण नही है। हेतुका त्रैरूप्य लक्षण तो मानते बौद्धजन, और हेतुका पंचरूप लक्षण मानते हैं नैयायिक। तो क्षणिकवादियोंके प्रति कहा जा रहा है कि त्रैरूप्यमे असाधारणता नही होती जैसे कि पंचरूपमे असाधारणता नही होती इस कारण हेतुका लक्षण यह ठीक ही होगा—जो साध्यके साथ अविनाभावि रूपसे निश्चित हो वह हेतु होता है।

त्रैरूप्यसामान्यमे हेतुलक्षणताका अभाव— हेतुका लक्षण कहा गया है कि जो साध्यका अविनाभावी हो। इसके विपक्षमे कोई कहते हैं कि हेतुका लक्षण त्रैरूप्य है। पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्त्व, विपक्षासत्त्व ये तीन धर्म जिसमें पाये जायें उसे हेतु कहना चाहिये। इसपर उन्हें बताया गया था कि यह त्रैरूप्य लक्षण हेतुमे भी पाया जाता है इस कारण यह लक्षण युक्त नही हो सकता। और, जो यह कहा था कि पक्षधर्मत्व तो असिद्ध दोषके निराकरणके लिए है, सपक्षसत्त्व विरुद्ध दोषके निराकरणके लिए है, विपक्षासत्त्व अनैकान्तिक दोषके निराकरणके लिए है। सो इन दोनो दोषोंका निराकरण अन्यथानुपपत्तिके नियमसे हो ही जाता है। हेतुका लक्षण है अन्यथानुपपत्ति अर्थात् साध्यके अभावमें अनुपपत्ति अर्थात् साधनका न होना। तो इस लक्षणसे ही असिद्ध दोषका भी निराकरण हो जाता। इसमे त्रैरूप्य हेतुका लक्षण नही हो सकता फिर और बतलाओ कि हेतुका लक्षण क्या त्रैरूप्यमात्र है या विशिष्ट त्रैरूप्य है ? यानि साधारणरूपसे त्रैरूप्यका होना यह हेतुका लक्षण है या कोई खासियत रखता हुआ त्रैरूप्यका होना हेतुका लक्षण है ? यदि कहोगे कि साधारणतया त्रैरूप्यका होना हेतुका लक्षण है तो जैसे पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे तो यहाँ धूम पर्वत पक्षमें पाया जानेसे पक्षधर्मत्व है, उसी प्रकार जब यह अनुमान बना देंगे कि बुद्ध असर्वज्ञ हैं वक्ता होनेसे मुसाफिरकी तरह। जैसे मुसाफिर वक्ता है, तो वह असर्वज्ञ है। इसी तरह बुद्ध भी वक्ता है, बोलने वाला है इस कारण असर्वज्ञ है सो देखो पर्वतके धूमकी तरह बुद्ध में वक्तापन भी तो पाया गया। पक्षमें साधनके होनेका नाम पक्षधर्मत्व है तो, इस अनुमानको सही नही मानते और उनकी दलील है यह कि अन्यथानुपपत्ति नही पाई जाती पक्षधर्मत्व होनेपर भी अन्यथानुपपत्ति न पाई जाय तो वह अनुमान सही नही हो सकता तब यही बात तो आई ना कि हेतुकी जान तो अन्यथानुपपत्तिमे है। पक्षधर्मत्व रहे तो न रहे तो, यदि हेतुमे अन्यथानुपपत्ति है तो वह हेतु सही है, त्रैरूप्य-लक्षण बुद्धजन मानते हैं। क्षणिकवादी लोग हेतुका त्रैरूप्य लक्षण बताते हैं सो उन हीको जो अनिष्ट है, बुद्धमे असर्वज्ञता, तो पक्षधर्मत्व होनेसे यह अनुमान उन्हे सही मान लेना चाहिये किन्तु मानते नही हैं और अन्यथानुपपत्तिका वे प्रमाण देते हैं कि इस हेतुमे अन्यथानु-

त्पत्ति नही है। तब यही सिद्ध हुआ कि जो साध्यके अविनाभावीरूपसे निश्चित हो वह हेतु हुआ करता है।

अन्यथानुपपत्तिकी ही त्रैरूप्य विशेषमें विशेषता - यदि कहो कि हम खासियत वाला त्रैरूप्य मानते हैं हेतुका लक्षण तो वह खासियत और है क्या ? सिवाय अन्यथानुपपत्तिके। तो जो परिक्षक लोग हैं, दार्शनिक विद्वान हैं उन्हे अन्यथानुपपत्ति ही हेतुका लक्षण सीधे मान लेना चाहिये क्योंकि इसमे किसी प्रकारका दोष नही आता। पक्षधर्मत्व आदिक भी न हो और अन्यथानुपपत्ति पाई जाय तो वह हेतु साध्य का गमक होता है। वह अनुमान सही है। जैसे यह अनुमान बनाया कि इसके बाद शकट नक्षत्रका उदय होगा क्योंकि कृतिकाका उदय होनेसे। अथवा बहुत व्यावहारिक अनुमान बना लीजिये। कल मगलवार होगा, आज सोमवार होनेसे। तो कल मगल वार होगा इसमे पक्ष उसे कहते हैं जिसमें साध्य रहे। तो यह पक्षका कोई स्थान नही है। इसमे पक्षधर्मत्व नही है और सपक्षसत्त्व भी नही है, इसका कोई दृष्टान्त बताओ। तो यह त्रैरूप्य न भी हो और अन्यथानुपपत्ति हो तो वह हेतु सही है उसका अनुमान सही है। तब हेतुका लक्षण अन्यथानुपपत्ति रहा, त्रैरूप्य न रहा।

सपक्षसत्त्वके बिना भी सम्यक् अनुमान होनेका एक उदाहरण— दूसरा अनुमान भी देखिये - शब्द अनित्य है श्रावण्य होनेसे, अर्थात् श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्राह्य होनेसे, इस अनुमानमे सपक्ष तो कुछ मिलेगा नही, सपक्ष उसे कहेगे कि जिस और चीजमे भी हेतु पाया जाय तो शब्दके अलावा और कौन पदार्थ है जो श्रोत्र-इन्द्रियके द्वारा ग्राह्य हुआ करता है ? तो इस अनुमानका सपक्ष कोई नही मिल रहा। तो इस सपक्षसत्त्वके बिना भी देखो यह अनुमान प्रमाण है। शब्द अनित्य है क्योंकि श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्रहणमे आता है। अब ग्रहणमे आया। पहिले सुननेमें न आया तो इसका कारण यह है कि यह शब्द पहिले न था अब उत्पन्न हुआ, और शब्द सुननेमे आकर फिर मिट गया। तो इससे सिद्ध है कि वह शब्द खतम हो गया। तो अनुमान तो सही है पर इसका सपक्ष सत्त्व नही मिल रहा, अन्यथानुपपत्तिको हेतुका लक्षण माननेपर तो अनुमान सही बैठ जायगा पर त्रैरूप्य माननेपर यह अनुमान सही नही बैठ सकता। अब इस प्रसंगमे मीमासक शका करते हैं कि हाँ ठीक है अनुमान सही नही बैठता तो न बैठे। हम शब्दको नित्य मानते हैं और आकाशका गुण मानते हैं। शब्द सदाकाल रहते हैं पर सुनाई क्यो नही देता कि उन शब्दोपर आवरण पडा है। आवरण हट जाय तो सुनाई देने लगे।

शब्दके अनित्यत्व साध्यमे दिये गये श्रावणत्व हेतुकी निर्दोषतापर प्रश्नोत्तर - अब शब्दनित्यत्व-सिद्धान्त मानने वाले कह रहे हैं कि यह श्रावणत्व हेतु जैसे सपक्षसे हटा हुआ है, शब्द अनित्य है, इसका विपक्ष क्या बनेगा ? नित्य। सपक्ष क्या बनेगा ? जो और और चीजें भी अनित्य हो, तो यह श्रावण हेतु जैसे विपक्षसे

हटा हुआ है अर्थात् नित्य आकाश आदिकमें यह श्रावणत्व हेतु नहीं पाया जाता, इसी प्रकार अनित्य जो घटपट आदिक हैं वे सपक्ष हुये, उससे भी हेतु हटा हुआ है अर्थात् घटपट आदिकमें भी श्रावणत्व हेतु नहीं पाया जाता। तब यह असाधारण हो गया। इसमें अनेकान्तिक दोष आता है अर्थात् यह अनुमान सही नहीं है। शब्द अनित्य नहीं है। इसका उत्तर देते हैं कि असाधारणपनेकी अनेकान्तिक दोषसे व्याप्ति नहीं मिलती, अर्थात् जो जो हेतु असाधारण हो वे वे अनेकान्तिक दोषसे युक्त हो यह व्याप्ति ठीक नहीं है क्योंकि असाधारणका अर्थ क्या है? क्या यह अर्थ है कि सपक्ष और विपक्ष दोनोमें हेतु असत्त्वरूपसे निश्चित हो अर्थात् हेतु सपक्षमें भी न पाया जाय, विपक्षमें भी न पाया जाय, ऐसे निश्चयका नाम असाधारण है क्या? अथवा सपक्ष विपक्ष दोनोमें हेतु पाया भी जाय, न भी पाया जाय, क्या ऐसे संशयित होनेका नाम असाधारण है? यदि कहो कि सपक्ष विपक्षमें असत्त्वरूपसे हेतुका निश्चित होना इसका नाम असाधारण है तो अनेकान्तिक दोष कहाँ आया? यह तो सही बात बन गयी। सपक्ष में हेतु न रहे किन्तु विपक्षमें तो नहीं है। विपक्षव्यावृत्तिमें बल अधिक हुआ करता है। दोनोमें न रहा हेतु, पर अनेकान्तिक तो न रहा। अनेकान्तिक दोष उसे कहते हैं कि हेतु सपक्षमें भी रहे और विपक्षमें भी, तो श्रावणत्व हेतु विपक्षमें नहीं रहता और सपक्षमें भी नहीं रहता। दोनोमें मत रहे इसमें अनेकान्तिक दोष तब बनता है कि सपक्षमें भी रहे और विपक्षमें भी रहे। जैसे अग्नि ठंडी है पदार्थ होनेसे। यद्यपि यह अनुमान प्रत्यक्ष बाधक है, पर अनेकान्तिक दोष भी आता है पदार्थपना ठंडेमें भी पाया जाता है और गर्ममें भी पाया जाता है। सपक्ष विपक्ष दोनोमें पदार्थपना पाया जाता है तो ऐसे ही जहाँ जहाँ हेतु सपक्षमें भी पाया जाय विपक्षमें भी पाया जाय उसे अनेकान्तिक कहते हैं। तो सपक्षकी तरह विपक्षमें भी हेतु न रहे ऐसा निश्चय हो तो संशय तो हो ही न सका। कैसे न हुआ संशय? कैसे नहीं हुआ अनेकान्तिक, सो सुनो।

शब्दानित्यत्वहेतु श्रावणत्वके अपहृतदोषत्वका एक विवरण :—श्रावणत्वका अर्थ क्या है? श्रोत्रइन्द्रियके द्वारा ग्राह्य होना। तो श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा जो ज्ञान बनता है वह ज्ञान शब्दसे अपने स्वरूपको बनाता हुआ शब्दका ग्राहक होता है अन्यथा नहीं। क्षणिकवादी लोग ऐसा मानते हैं प्रत्येक ज्ञानको कि जिस पदार्थसे ज्ञान उत्पन्न होता है वह ज्ञान उस पदार्थका जानने वाला होता है। जो अकारण है वह विषय नहीं बनता। तो क्षणिक शब्द न मानकर इन मीमांसकोंने शब्दको नित्य माना है और नित्य शब्द यदि ज्ञानको उत्पन्न करनेका स्वभाव रखता है तो सुननेसे पहिले भी, सुननेके उपयोगके बाद भी, शब्द रहना चाहिये। यदि शब्द नित्य है तो सदा सुनने में आना चाहिये। सदा शब्दका ज्ञान रहना चाहिये क्योंकि शब्द एक तो नित्य है, दूसरे उस शब्द नित्यमें ज्ञानको उत्पन्न करनेका स्वभाव पड़ा हुआ है। जब दोनों बातें आ गयी कि शब्द भी सदा है और शब्दमें ज्ञानको उत्पन्न करनेका स्वभाव भी सदा है फिर क्यों नहीं सदा शब्दका ज्ञान होता? कारण सब मौजूद हो फिर कार्यकी उत्पत्ति

न हो सकती यह तो नहीं हो सकता। कार्य उत्पन्न होना ही पड़ेगी। उपादान भी समर्थ है, निमित्तकारण भी सब हैं और प्रतिबन्धक कारण भी कोई नहीं है, ऐसी स्थितिमें कार्य कैसे न होगा? होना ही पड़ेगा। तो जब शब्द नित्य है, सदाकाल रहता है और शब्दमें ज्ञानको उत्पन्न करनेका सदा एक स्वभाव पड़ा हुआ है, फिर ज्ञान क्यों नहीं होता? यदि सब कुछ कारण मिलनेपर भी कार्य उत्पन्न न हो तो यह समझना चाहिये कि यह कार्य उसका नहीं है। शब्द नित्य है और शब्दमें ज्ञानको उत्पन्न करनेका स्वभाव भी मान रहे हो और फिर भी ज्ञान सदा नहीं होता, इसका अर्थ है कि शब्दका कार्य ज्ञान नहीं होता है। जैसे कुम्हार भी हाजिर है, मिट्टी चाक आदिक भी हैं, सब कुछ काम हो रहे, पर कपड़ा नहीं बन रहा, तो इसका अर्थ यह है कि कुम्हार, चाक, मिट्टी आदिक, इनका कार्य कपड़ा नहीं है। अनुमान करके देखला कि जिस जिस सम्पूर्ण कारणके होनेपर भी जो नहीं होता है वह उसका कार्य नहीं है। जैसे कि कुम्हार आदिक समस्त कारण मौजूद हों फिर भी कपड़ा नहीं हो रहा है तो कपड़ा नहीं हो रहा है तो कपड़ा कुम्हार आदिकका कार्य नहीं है। इसी प्रकार शब्दके होनेपर भी और जो कारण माना है वे सब कारण होनेपर भी पहिले और पीछे शब्दका ज्ञान नहीं होता इससे सिद्ध है कि शब्दका ज्ञान शब्दका कार्य नहीं है, कोई शब्द जाननेमें आये तो शब्दज्ञान शब्दका कार्य नहीं है।

आवरण होनेके कारण सदा शब्दज्ञान न होनेकी शंका और समाधान :—इस प्रसंगमें शंकाकार कहता है कि बात यह है कि श्रोत्र इन्द्रिय द्वारा शब्दज्ञानका उपयोग करनेसे पहिले और पीछे शब्द ज्ञानको इस कारण उत्पन्न नहीं कर सकते कि शब्दसे तो ज्ञान उत्पन्न करनेका स्वभाव है लेकिन वह आवृत्त है, ढका हुआ है, तिरोहित होनेसे। उत्तर यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि आवरण नाम है किसका? दृष्टा और दृश्य पदार्थोंके अन्तरालमें कोई वस्तु वर्तमान हो जाय उसी का नाम तो आवरण है। जैसे कमरेमें रखी हुई गड़बड़ चीजें हैं उसपर डाल दिया बहुत बड़ा चद्दर ताकि अतिथियोंको देखनेमें भद्दा न लगे तो उसका नाम आवरण हो गया किन्तु आवरण वह यों बना कि देखने वाले और दृश्य पदार्थ वे अटपट चीजें इन दोनोंके बीचमें कोई एक वस्तु आ गई। क्या आ गई? चद्दर आ गई। इसी प्रकार जानने वाले हैं श्रोत्र और जाने वाला है शब्द तो श्रोत्र और शब्द तो व्यापक माना है। शब्द नित्यत्ववादीने जैसे शब्दको नित्य व्यापक माना है इसी प्रकार श्रोत्रको भी व्यापक माना है। जैसे कोई थोड़ा अंदाज भी कर सके कि श्रोत्र नाम किसका है। कानके अन्दर जो पोल है वैसी पोल तो सर्वत्र है, तो श्रोत्र इन्द्रिय भी व्यापक है। तो शब्द व्यापक नित्य है और श्रोत्र भी व्यापक है और शब्दमें ज्ञानको उत्पन्न करनेका स्वभाव भी सदा है, श्रोत्रमें ज्ञानको फैलानेका स्वभाव भी सदा है और ये व्यापक होनेसे अत्यन्त सम्बन्धित हो गए। जैसे धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य कितने संश्लिष्ट हुए

है। आकाश द्रव्य भी उन धर्मादिक द्रव्योंसे कितना मिला मिडा हुआ है, क्या कुछ थोडा बहुत अन्तर बता सकते ? एक क्षेत्र वगाह है इससे और अधिक सम्बन्धित क्या कहोगे ? इसी प्रकार जब शब्द भी व्यापक है, श्रोत्र भी व्यापक है तो श्रोत्र और शब्द तो ऐसे भिड गए कि जिसमें कुछ अन्तर कहा ही नहीं जा सकता, फिर अन्तराल क्या आये ? जो अत्यन्त सन्निकृष्ट है उसके बीचमें तीसरी चीज क्या घुस गई ? आवरण क्या रहा ? और यदि कहो कि नहीं, शब्द और श्रावक बीचमें कोई तृतीय आवरण पड़ा हुआ है तो इसका अर्थ है कि ये दोनो व्यापक न रहे। जितनी जगहमें बीचमें आवरण पड गया उतनी ही जगहमें शब्द नहीं रहा तो तुम्हारे सिद्धांतका घात भी हो गया। इस कारणसे यह बात कहना युक्त नहीं है कि शब्द तो नित्य है और उसमें ज्ञान करनेका सामर्थ्य पडा हुआ है। लेकिन आवरण होनेसे वह ज्ञानको उत्पन्न नहीं करता, आवरण कुछ नहीं है।

साध्याविनाभावित्व होनेसे ही हेतुकी हेतुता— वास्तविकता यह है कि शब्द नहीं, सुन चुकनेके बाद भी शब्द नहीं तो इस तरह श्रावणत्व जो हेतु है, जैसे सपक्षसे हटा हुआ है। तो भी पक्षमें तो हेतु साध्यके अविनाभावीरूपसे रह रहा है। शब्द अनित्य है श्रावण होनेसे। इसका सपक्ष सत्त्व नहीं मिल रहा, हां विपक्ष व्यावृत्ति मिल रही किन्तु त्रैरूप्यका तो भंग हो गया। लेकिन अनुमान सही यों है कि श्रावणत्व हेतु अनित्यके साथ अविनाभावी सम्बन्ध रखता है। अनित्यपना न होता तो सुननेमें भी न आता। पहिले सुननेमें नहीं आ रहा था, अब सुननेमें आया, लो अब सुनना भी मिट गया, यह बात अनित्य हुए बिना हो न सकती थी इस कारण हेतुका लक्षण यही सही बैठता है कि जिसमें अन्यथानुपपत्तिका नियम हो अर्थात् साध्यके अभावमें साधनका न होना यह लक्षण जिसमें पाया जाय वह हेतु सही है। त्रैरूप्य मान करके हेतुको सम्यक् सिद्ध कर सकना कठिन है। ऐसा भी नहीं कह सकते कि जो हेतु सपक्ष और विपक्षमें नहीं रहता उसमें अन्यथानुपपत्ति नहीं घट सकती। यह यों नहीं कह सकते कि स्पष्ट यह बात है कि कोई हेतु सपक्षमें न भी रहे तो भी सही माना गया है। जैसे समस्त क्षणिक हैं सत्त्व होनेसे। स्वयं क्षणिकवादियोंने यह कहा है, तो अब यह हेतु न सपक्षमें रहता है न विपक्षमें, क्योंकि पक्षमें तो सारा जगत आ गया। अब सपक्ष सरा क्या ढूंढेंगे। यह सत्त्व हेतु केवल विपक्षमें असत्त्वरूपसे निश्चित हो सो बात नहीं क्योंकि विपक्षभूत नित्य तुम कुछ मानते। इस कारण यह ही मानना श्रेष्ठ है कि हेतुका लक्षण अन्यथानुपपत्ति है।

सपक्षविपक्ष दोनोमें हेतुके असत्त्वरूपसे निश्चितत्वको असाधारण माननेपर अन्तिम ऊहापोह— शंकाकार कहता है कि सब अनित्य है सत्त्व होनेसे, इस अनुमानमें सत्त्व हेतुका सपक्ष है ही नहीं, क्योंकि पक्षमें सारा जगत आ गया तो सपक्षमें सत्त्वका अभाव है इस निश्चयसे सत्त्व हेतु अनित्यको सिद्ध करनेमें समर्थ है,

परन्तु शब्द अनित्य है श्रावण्य होनेसे यहा श्रावण्य हेतुका साध्य है अनित्यत्व सो अनित्यत्व सपक्ष ही कुछ नही हो ऐसा नही है। घटपटादिक अनित्य पदार्थ तो हैं किन्तु शब्दके अतिरिक्त जो श्रावण्य हो स्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्राह्य हो ऐसा सपक्ष नही है। तो सपक्षके होनेपर भी अर्थात् पदार्थ तो अनित्य बहुतसे हैं लेकिन श्रावणत्व हेतु उन में नही पाया जाता है, इससे इस अनुमानके दूषित बतानेका विरोध करतेमे जो अनुमान दिया है दूसरा उससे पटतर नही बैठता है। उत्तरमे कहते हैं कि भाई यदि सपक्षमें श्रावणत्व भी होता तो उसे भी यह व्याप्त कर लेता। जैसे पक्षमे श्रावणत्व साधन है और अनित्यत्व साध्य है, इसी तरह यदि कोई सपक्षमे भी श्रावणत्व हुआ करता तो भी सिद्ध हो जाता। सपक्षके होनेपर फिर श्रावणत्व नही रह रहा इस कारण यदि दोष देते हो तो विपक्षके होनेपर धूमादिक भी असत्वरूपसे निश्चित हो तो वह भी निश्चयका कारण न बने। शकाकार कहता है कि विपक्ष हो अथवा न हो, विपक्षमें असत्वरूपसे जो हेतु निश्चित किया जा रहा वह तो साध्यका अविनाभावी होनेसे हेतु है। उत्तरमें कहते है कि तब तो फिर सपक्ष हो अथवा न हो, असत्व से निश्चित हेतु भी साध्यके अविनाभावी होनेके कारण बन जायें। शकाकार कहता है तब तो फिर सपक्षमे अथवा सपक्षके एक देशमे यदि कोई हेतु रह रहा हो तो वह हेतु हो कैसे कहलायेगा क्योंकि इस प्रसगमे जब कि सपक्षके एक देशमे हेतु रहता हो तो वह तो निश्चित रहा कि सपक्षमें न रहते हुये ही हेतु होता है। उत्तरमे कहते हैं कि इस तरह तो विपक्षमे भी हेतुके असत्वका अनवधारण हो जायगा और यह बात अयुक्त है अर्थात् हेतुका विपक्षमे असत्वका होना पूर्ण निश्चित हो तब वह हेतु सही माना जायगा। चाहे पक्ष धर्मत्वमे कमी आ जाय, सपक्ष सत्वमे कमी आ जाय पर विपक्षमे असत्व होना अनिवार्य है क्योंकि विपक्षमे असत्व होनेकी अनिवार्यता न मानी जाय तो साध्यके अविनाभावीपनका व्याघात हो जायगा। इस कारण वह प्रथम विकल्प युक्त नही ठहरता कि सपक्ष और विपक्षमें जो हेतु असत्वरूपसे निश्चित हो उसे असाधारण कहा करते हैं।

सपक्ष और विपक्षमे हेतु असत्वके सशयित होनेकी असाधारणतापर विचार—अब दूसरे विकल्पकी बात सुनिये। यदि यह मानोगे कि सपक्ष और विपक्ष मे हेतु असत्वरूपसे सशयित है, कि नही इस प्रकारका सशय उठता है तो उसे असाधारण कहेगे। उत्तरमे कहते हैं कि सपक्ष और विपक्षमे हेतुके असत्व रूपसे सशयित होनेको असाधारण कहनेपर इसी हेतुमें अनेकान्तिकताका दोष आयगा। उसपे भी संशय पड़ा रहेगा। क्या निश्चित पक्ष धर्मत्वादिक तीन बातोसे अनेकान्तिक हुआ या उन तीन बातोके सशयसे अनेकान्तिक हुआ। तब तो अनेकान्तिक बनेगा, लेकिन इस अनुमानमे कि शब्द अनित्य है श्रावण्य होनेसे, यह असाधारण दोष नही लगता, और इसी कारण न विरुद्धपना आता है। भला जो विपक्षके एक देशमे भी नही रहा है वह कैसे विपक्षमे ही रहा करे। तो इस अनुमानमे कि शब्द अनित्य है श्रावण

होनेसे, कोई दोष नहीं आता। असिद्ध दोष भी नहीं आता क्योंकि पक्षमें अग्नित्व का सत्त्व है इसका निश्चय पड़ा हुआ है, इस कारण पक्षधर्मत्व और सपक्षसत्त्व होना हेतुका लक्षण नहीं कहा जा सकता।

विपक्षव्यावृत्तित्वका साध्याविनाभावित्वमें अन्तर्भाव—बौद्धवादीने हेतु के विशेषण तीन दिये थे—पक्षधर्मत्व सपक्षसत्त्व और विपक्षासत्त्व। इन तीनोंमें पक्षधर्मत्व और सपक्षसत्त्व तो ठीक विशेषण नहीं है क्योंकि पक्षधर्मत्व न होनेपर भी अनेक हेतु और अनुमान सही हुआ करते हैं, इस प्रकार सपक्षसत्त्व न होनेपर भी अनेक अनुमान और हेतु सही रहा करते हैं। हाँ विपक्षमें हेतुका न रहना यह धर्म अवश्य ही युक्त है, लेकिन इस धर्मका हेतुके लक्षणमें अन्तर्भाव हो गया है। हेतुका जो लक्षण कहा गया है साध्यका अविनाभावी रूपसे जो निश्चित हो वह हेतु है तो साध्यका अविनाभावीपन हेतुमें तब ही रहता है जब हेतु विपक्षमें न रहे। तब हेतुका प्रधान लक्षण यह मानो। अन्य लक्षण माननेसे क्या प्रयोजन? शंकाकार कहता है कि सपक्षसत्त्व न माननेपर हेतुमें अनन्वयताका दोष आयगा। अनन्वयता उसे कहते हैं कि हेतु साध्यके साथ न जुड़ा फिरे। हेतु साध्यके साथ जुड़ा फिरे, रहा करे यह बात तब बन सकती है जब सपक्ष हो और सपक्षमें हेतु रहा करे। उत्तर देते हैं कि अन्वय का लक्षण है अन्तर्व्याप्ति, चाहे वह अन्तर्व्याप्ति पक्ष तक ही सीमित हो, चाहे सपक्षमें भी आये वह अन्तर्व्याप्ति है। यदि हेतुका कोई सपक्ष नहीं मिलता तब हेतु सपक्षमें नहीं पाया गया यह बात तो दूसरी है किन्तु सपक्ष मिले तो नियमसे हेतु उसमें भी रहे और पक्षमें तो रह ही रहा है। ऐसी व्याप्तिका अन्वय है सो यह अन्वय तथोपपत्तिरूप है जैसे कि अन्यथानुपपत्तिका व्यतिरेकसे सम्बन्ध है, इसी प्रकार तथोपपत्तिसे अन्वयका सम्बन्ध है। साध्यके होनेपर साधनके होनेका नाम तथोपपत्ति है। अब देख लो इसमें अन्वयपना आ गया है। साध्यके साथ हेतुका जुड़ना दिखा दिया गया है। और अन्यथानुपपत्तिका अर्थ यह है कि साध्यके अभावमें साधनका न होना इस दृष्टिमें व्यतिरेक दिखा दिया गया है। यह नियम नहीं बनाया जा सकता कि उदाहरणमें दृष्टान्त वाले धर्मीमें ही साधनका साध्य होना ही चाहिये। अर्थात् हेतु सपक्षमें रहा ही करे तब हेतु हुआ है सो नियम नहीं बनता।

साध्याविनाभावित्वमें सब समस्याओंका समाधान—हेतु पक्षके साध्यके साथ जुड़े ही यह तो नियम बनता कि यदि उसका सपक्ष है कोई तो उसमें भी हेतु रहे, किन्तु जिसका कोई सपक्ष ही नहीं है उसमें हेतुके बतानेकी आवश्यकता ही नहीं है। जैसे जगतमें समस्त पदार्थ अनेकान्तात्मक हैं सत्त्व होनेसे, इसमें सपक्ष न मिलेगा क्योंकि सबको ही पक्ष बना लिया। समस्त पदार्थ अनेकान्तस्वरूप हैं—सत्त्व होनेसे। कोई पूछे कि उदाहरण बतलावो तो क्या उदाहरण बतलावोगे? जब सब ही पक्षमें आ गए तो उदाहरण क्या मिलेगा? तो सपक्ष यदि हो तब तो हेतु न रहे, उसे तो

दोषी कह सकते हैं-किन्तु जिस अनुमानमें सपक्ष मिले ही नहीं उसमें हेतुके दिखानेकी क्या आवश्यकता है ? यदि इस ही हठपर डटे रहोगे कि हमें तो सपक्षसत्व मिलेगा तो हेतु भी सही मानोगे, तब फिर बतलावो कि तुम जो यह अनुमान करते हो कि सब कुछ क्षणिक है सत्व होनेसे, इसका सपक्ष बतला दो तब तो तुम्हारा हेतु भी गलत जायगा, फिर सब पदार्थ क्षणिक न कहला सकेंगे। इस कारण इन तीन बातोंसे हेतु को सही माननेकी हठ छोडो, पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्व, विपक्षव्यावृत्ति ये तीन धर्म हुए, वही हेतुका स्वरूप है ऐसा कहना युक्त नहीं है। तात्पर्य यह है कि पक्षधर्मत्व हो अथवा न हो तो भी हेतु सही हो सकता। सपक्ष सत्व हो अथवा हो तो भी हेतु सही हो सकता है। हाँ विपक्ष व्यावृत्ति अवश्य होना चाहिये। किन्तु वहां भी अनेक घटनायें ऐसी होती है कि विपक्ष भी इसका कुछ न कुछ न मिलेगा। तो व्यावृत्तिकी बात हो क्या कहोगे ? जैसे क्षणिकवादियोंकी बात क्षणिकवादियोंसे ही कही जारही है, समस्त पदार्थ क्षणिक हैं सत्व होनेसे, अब इसका विपक्ष बतावो। विपक्षके मायने हैं यह कि जो क्षणिक न हो जो नित्य हो वह बतावो। जो नित्य हो चीज और उसमें फिर सत्वकी व्यावृत्ति हो ऐसा बतला तो दो कुछ। तो तुम्हारे ये तीन विशेषण फेल हो जाते हैं पर हेतुका यह लक्षण कि जो साध्यके साथ अविनाभावी है वह हेतु हुआ करता है, इस लक्षणमें कोई दोष नहीं है। तब देखलो—यदि यह अनुमान बनाया जाय कि सब अनेकान्तस्वरूप हैं सत्व होनेसे तो अनेकान्त स्वरूपताके साथ सत्वका अविनाभाव है। जो अनेकान्तस्वरूप नहीं है वह सत् भी नहीं है—जैसे गधेके सींग, आकाशके फूल। ये कोई सत् नहीं है तो अनेकान्त भी नहीं है। तो हेतुका लक्षण यह युक्त रहा कि जो साध्यका अविनाभावी हो सो हेतु है। साध्यके अभावमें साधन न हो बस यह नियम युक्त है। अनेकान्तात्मकताके अभावमें सत्व ही नहीं रह सकता है तब यह हेतु ठीक बैठ गया।

हेतुके पाञ्चरूप्य लक्षणकी आशङ्का—अब योगसिद्धान्तवादी शङ्का करता है ठीक है, त्रैरूप्य हेतुका लक्षण नहीं हो सकता, क्योंकि हेतुका लक्षण पञ्चरूपपना है। अर्थात् तीन रूप तो उनके हैं ही, उनके अतिरिक्त दो बातें और होनी चाहियें, क्योंकि त्रैरूप्यके होनेपर भी हेतु सही बन जाता है और उसके न होनेपर भी हेतु सही बन जाता है। किन्तु दो धर्म जो हम बतावेंगे वे उन गैर सही दोनोंको शुद्ध करने वाले बतावेंगे। वे दो धर्म हैं—अबाधितविषय और असत्प्रतिपक्ष। अबाधित विषयका अर्थ यह है कि जिस साध्यके विषयमें दूसरे प्रमाणकी बाधा न आये। यदि किसी साध्यमें अन्य प्रमाणकी बाधा आती है तो वह हेतु सही नहीं है। वह बाधित विषय बन गया, इसी प्रकार यदि किसी अनुमानका विरोध करने वाला दूसरा अनुमान होगा तो वह प्रतिपक्ष बन गया। उसका प्रतिपक्ष कोई दूसरा विरोधी अनुमान आदि है। तो जहाँ बाधित विषयता न हो वह हेतु हुआ करता है, इस कारण हेतुमें पञ्चरूपता पायी जाती है। अब यहाँ देखनेकी बात है कि यदि हेतुमें पञ्चरूपता न मानोगे तो

एक अनुमान बना रहे हैं उसमें आप यह देख लेंगे कि त्रैरूप्य तो मौजूद है फिर भी अनुमान सही नहीं है। जैसे ये सारे फल पके हुये हैं क्योंकि एक शाखासे उत्पन्न होते हैं। किसी पेड़में एक शाखामें जितने लगे हुए हैं उनमें कुछ तो कच्चे ही हैं कुछ पके भी होते लेकिन यहाँ यह अनुमान बना दिया जाय कि ये सारे फल पके हुए हैं क्योंकि एक शाखामें लगे हैं, जैसे कि जो अभी एक फल हमने खाया है और वह हमें रसके स्वादसे अनुभव करके पका मालूम पड़ा है तो इसी तरहसे ये सारे फल पके हुए हैं क्योंकि एक शाखामें लगे हुए हैं। अब देखिये कि इस अनुमानमें त्रैरूप्यपना तो पूरा मौजूद है, पक्षमें भी एक शाखापना प्रभवत्व गया और सपक्ष तो जिसको हमने खा लिया उसमें भी एक शाखा प्रभवपना गया और विपक्षमें दूसरी डालीमें लगे कच्चे फल हैं उनमें एक शाखा प्रभवपना नहीं है तो त्रैरूप्य लग गए लेकिन अबाधित विषयपना नहीं है। इसका विषय बाधा जा रहा है, कैसे बाधा जा रहा कि उसी शाखाके दूसरे फल भी तोड़कर खा लो ना। तो इस प्रत्यक्षसे साध्य हेतु बाधित है इस कारणसे यह हेतु सही नहीं है। अब तो हेतुमें अबाधित विषयपना मानना पड़ा ना ? दूसरा दृष्टान्त सुनो। यदि आप प्रतिपक्ष नहीं मानते और खाली त्रैरूप्यके हिसाबको ही हेतु सही कहते हो तो एक अनुमान भी सही बन बैठेगा। क्या ? किसी देवदत्तके मान लो चार लड़के हैं, उनमेंसे किसी लड़केके बारेमें अनुमान बनाया जा रहा। मानलो एक पुत्रका नाम यज्ञदत्त भी है। यह यज्ञदत्त मूर्ख है क्योंकि देवदत्तका पुत्र होनेसे। देवदत्तके तीन लड़के तो थे मूर्ख और उनमेंसे यज्ञदत्त नामका लड़का था विद्वान, पर यहाँ अनुमान यह बनाया गया कि यह यज्ञदत्त मूर्ख है क्योंकि देवदत्तका पुत्र होनेसे। अब देखिये — इसमें पक्षधर्मत्व है सपक्षसत्त्व है, विपक्षव्यावृत्ति भी है। जो देवदत्तका लड़का विद्वान है उसे जो मूर्ख होनेका अनुमान किया जा रहा है तो क्या यह सही अनुमान है ? सही नहीं है क्योंकि वह यज्ञदत्त तो प्रदर्शन दे रहा है शास्त्र पढ़ता है। उसमें विद्वानपनके चिन्ह पाये जा रहे हैं। तो प्रतिपक्ष मिल गया इस कारण यह हेतु सही नहीं है। तो अबाधित विषय और असत् प्रतिपक्ष ये दो रूप और जोड़ दो, ५ रूप बन जायें तो हेतुका लक्षण सही बन जायगा।

हेतुके पाञ्चरूप्य लक्षणके निराकरणमें संक्षिप्त कथन। उक्त शंकाके उत्तरमें इस समय इतना ही समझ लीजिये कि हेतुका जो लक्षण कहा गया है, साध्यका अविनाभावी हो अथवा दूसरे शब्दोंमें अन्यथानुपपत्तिका जहाँ निश्चय हो वह हेतु हुआ करता है। हेतुके लक्षणमें अबाधित विषय ना आ जाता है, असत् प्रतिपक्षपना आ जाता है। विस्तारकी जरूरत नहीं है, और कहीं कहीं अबाधित विषय और असत् प्रतिपक्षमें भी आभास बच सकता है किन्तु हेतुके इस लक्षणमें दूषण नहीं आ सकता है, इस कारण हेतुका लक्षण न तो त्रैरूप्य माना जाय और न पाञ्चरूप्य माना जाय किन्तु साध्यके अभावमें साधनके न होनेको साध्य कहते हैं यही लक्षण युक्तिसंगत है, प्रकरणमें साधनकी परीक्षा की जा रही है। प्रसंग तो है अनुमानके वर्णनका, स्मृति-

ज्ञान प्रमाण है, प्रत्यभिज्ञान प्रमाण है, तर्क प्रमाण है, ये तीन बातें तो पहिले बता दो थीं अब अनुमान प्रमाण है यह बात बता रहे हैं। तो अनुमानका लक्षण कहा था कि साधनमे साध्यके ज्ञान होनेको अनुमान कहते हैं। तो सिलसिलेमें साधनकी परीक्षा की जा रही है कि साधन कहते किसे हैं। साधन कहो अथवा हेतु कहो, दोनो का एक ही भाव है। तो यहां परीक्षामे यह बात उतरी कि जो साध्यका अविनाभावी हो उसे साधन कहते हैं।

साध्याविनाभावित्वके बिना अबाधितविषयत्वादिकी असिद्धि—पंच-रूपत्व हेतु मानने वालोसे कहा जारहा है कि जो दो रूप और बढ़ाये हैं—अबाधित विषय और असत् प्रतिपक्ष, ये दो तभी प्रमाण हुए हैं जब कि वे साध्यके अविनाभावीपनका समर्थन करते हैं। इस कारण प्रधान लक्षण हेतुका यही माना जाना चाहिये कि जो साध्यके साथ अविनाभावरूपसे निश्चित हो सो हेतु है और फिर जो त्रैरूप्यका खण्डन करके पञ्चरूप्यका समर्थन किए जानेका प्रयत्न कर रहा है तो यो तो प्रमाण सिद्ध त्रैरूप्यके विषयमे कोई बाधा ही नजर न आयगी, क्योंकि त्रैरूप्य और बाधा इन दोनोका विरोध है, इसका कारण यह है कि त्रैरूप्य कहते हैं उसे कि साध्यके सद्भाव होनेपर ही हेतुका पक्षमे होना। तो तुमने एक सद्भाव बता दिया और बाधा का अर्थ यह है कि साध्यके अभावमे ही पक्षके हेतुका होना यह बाधा है। तो जब एक बार यह कह दिया कि त्रैरूप्य है अर्थात् साध्यके सद्भाव होनेपर ही हेतुका पक्षमे सद्भाव है तो यह दूसरी बात कहांसे बैठ सकेगी कि साध्यके अभावमें पक्षके हेतुका सम्भवपना है इन दोनो बातोका एक जगहमे विरोध है। त्रैरूप्यमें यही तो बताया गया है कि हेतुका पक्षमे सद्भाव होना सो तो पक्षधर्मत्व है और साध्यके सद्भाव होने पर ही हेतुका पक्षमें सद्भाव होना सो यह अन्वय है अथवा सपक्षसत्व है और साध्यके सद्भाव होनेपर ही हेतुका पक्षमें सद्भाव होना, जिसका फलित अर्थ यह है कि साध्यके अभावमे हेतुका पक्षमे न पाया जाना सो यह है विपक्षासत्व याने विपक्षव्यावृत्ति। यदि इन तीन रूपोमे एक भावकी बात कही गई है और बाधा कहलाती है अभावरूप तो भावस्वरूप त्रैरूप्यका और अभाव स्वरूप बाधाको एक अनुमानमे, एक हेतुमे विरोध कैसे हो सकता है?

अध्यक्ष व आगमके विषयबाधकतापर ऊहापोह—अब और भी अन्य बात सुनो! जो अबाधित विषयको सिद्ध करनेके लिए हेतुके विषयमे बाधकपनकी बात कही है कि प्रत्यक्ष प्रमाण अथवा आगम प्रमाण सो हेतुके विषयमे अर्थात् साध्य में बाधा आये तो वह बाधित विषय है सो यह तो बतलावो कि प्रत्यक्ष और आगम हेतुके विषयके बाधक किस कारणसे बन जाते? क्या इस कारणसे कि वे दोनो प्रमाण अपने अर्थके अव्यभिचारी हैं अर्थात् अपने विषयको निर्दोष रूपसे सिद्ध रखते हैं तो यह बात तो त्रैरूप्यमे भी बनी हुई है। त्रैरूप्य हेतुके माननेपर भी स्वार्थकी

अव्यभिचारिता है। तब फिर प्रत्यक्ष और आगम बाधक होंगे हेतुके विषयमें, यह बात न बनी, यह तो त्रैरूप्यकी ही बात है कि हेतुमें त्रैरूप्य हुआ तो वह हेतु सही है, और यदि त्रैरूप्यमें कमी है तो वह हेतु ही नहीं अतएव साध्यकी बाधा स्वयं सिद्ध हो गई। जैसे प्रत्यक्ष तो यों दिखता है कि चन्द्र और सूर्य स्थिर हैं, चलते हुए कहाँ नजर आते हैं ? तो चन्द्र और सूर्य नक्षत्र आदिककी स्थिरताको ग्रहण करने वाला प्रत्यक्ष अनुमानसे बाधित हो जाता है। तब इसके विरोधमें अनुमान बनता है कि ये चन्द्र सूर्य नक्षत्र स्थिर नहीं हैं गमन करते हैं क्योंकि कुछ समय बाद एक देशसे अन्य देशको प्राप्त हो जाते हैं। तो देखो स्थिरताको ग्रहण करने वाला प्रत्यक्ष इस अनुमानसे बाधा गया तो त्रैरूप्य मिल गया, उसने बाधा डाल दी, तब प्रत्यक्ष बाधक हुआ करे यह नियम तो नहीं बना। देखो — प्रत्यक्षसे जानी हुई चीजमें भी अनुमानसे बाधा आ गई तब प्रत्यक्ष पुष्ट हुआ कि अनुमान पुष्ट हुआ ? इस जगह तो अनुमान पुष्ट हुआ। भले ही किसी जगह प्रत्यक्ष और आगम बाधक ही होता है।

एक शाखाप्रभवत्व हेतु वाले अनुमानमें भ्रान्त होनेसे बाध्यत्वके विषयमें विचार—यदि यह कहो कि जो पहिले दृष्टान्त दिया गया था कि ये समस्त फल पके हुए हैं एक शाखामें उत्पन्न होनेसे तो इस अनुमानमें जो एक शाखा प्रभवत्व सिद्ध किया जा रहा है और उससे जो साध्य सिद्ध किया जा रहा है सो वह सब भ्रान्त है। भ्रान्त होनेसे यह अनुमान बाधा जाता है। कैसे भ्रान्तपना है सो बतलावो। उत्तरमें पूछ रहे हैं क्या प्रत्यक्ष प्रमाणसे इसमें बाधा आती है इस कारण भ्रान्त हो रहा है या त्रैरूप्यकी विकलता है पूर्व अनुमानमें इस कारण भ्रान्त बन रहा है ? यदि कहो कि प्रत्यक्ष द्वारा बाधा जा रहा है इस कारण भ्रान्त है वह अनुमान है ऐसा कहनेपर तो इतरेतराश्रय दोष होगा। जब भ्रान्तपना सिद्ध हो जाय तब प्रत्यक्षसे बाधा कहलाये और जब प्रत्यक्षसे बाधा बन जाय तब वह अनुमान भ्रान्त कहलाये। यदि कहो कि त्रैरूप्यकी विकलता होनेसे वह भ्रान्त हो गया अनुमान, तो यह बात तो यों नहीं बनती कि इस अनुमानमें उन दूसरोंने त्रैरूप्यका सद्भाव माना है और मानलो त्रैरूप्य उसमें सिद्ध न हो तो त्रैरूप्य सिद्ध न होनेसे हेतु अगमक बन गया। फिर प्रत्यक्षकी बाधासे क्या प्रयोजन रहा ? जिस अनुमानको सिद्ध करनेके लिये हेतु दिया जा रहा है वह हेतु यदि त्रैरूप्य युक्त है तब तो दूसरेको क्या बाधा आयगी और यदि उस हेतुमें त्रैरूप्य नहीं मिल रहा है तो न मिलनेसे वह हेतु साध्यका साधक न हो सका, अब उसमें प्रत्यक्षमें बाधा दिखानेकी आवश्यकता क्या रही ?

स्वसम्बन्धी निर्णयसे अबाधितविषयत्वके निश्चयका अभाव—अब कुछ अन्य बात भी सुनिये ! पंचरूप्यकी सिद्धिके लिए जो अबाधित विषयपनेकी बात कही है कि त्रैरूप्यसे अधिक दो रूप और मानना चाहिए — एक अबाधित विषय और दूसरा असत् प्रतिपक्ष। सो अबाधित विषयपनेकी बात बतावो कि वह निश्चित

है कर हेतुका लक्षण बनेगा ? या अबाधित विषयपना अनिश्चित् ही रहकर हेतुका लक्षण बन जायगा ? अनिश्चित् होकर हेतुका लक्षण बन जाय अबाधित विषय तो इसमें बड़ी आपत्तियां हैं। फिर तो पक्षधर्मत्व भी असत्त्व भी ये सब अनिश्चित् होकर हेतुके कारण बन जायेंगे, फिर वैरूप्यका खण्डन करके पञ्चरूप्यके समर्थनकी आवश्यकता क्या रही ? यह भी नहीं कह सकते कि अबाधित विषय निश्चित होकर हेतु का लक्षण बनता है क्योंकि अबाधित विषयके निश्चयका ही अभाव है। अगर अबाधित विषयका निश्चय होता है तो यह बतावो कि वह सम्बन्धी निश्चय है अथवा सर्व सम्बन्धी निश्चय है ? याने अबाधित विषयके निश्चयको केवल अनुमान करने वाला पुरुष ही जानता है या लोकके समस्त मनुष्योंमे अबाधित विषयत्वका निश्चय कर रहे है। यदि कहो कि स्वसम्बन्धी निश्चय है तो वह निश्चय तत्कालीन है या सर्वकालीन अर्थात् उस प्रसङ्गमे जो अबाधित विषयका निश्चय है, केवल उस ही समयका निश्चय है या सब समयोंमें ऐसा हुआ करता है ऐसा निर्णय है ? तो तत्कालीन निर्णय तो मिथ्या अनुमानमें भी सम्भव है। जैसे ये सब फल पके हैं, एक शाखासे उत्पन्न होनेके कारण तो यह उस समयका ही निर्णय तो है। तत्कालीन निर्णय तो झूठे अनुमानमें भी सम्भव होता है। जैसे कि तत्कालीन निर्णय विपर्ययज्ञानमे रहता है। जैसे पड़ी तो थी सीप और कोई पुरुष जान रहा कि यह चांदी ही है, तो उस समय जो चांदीका ज्ञान कर रहा है उसमें तो जरा भी सदेह नहीं है, पूर्ण निश्चय है। तो तत्कालीन निर्णयसे ज्ञानमें प्रमाणता नहीं आया करती। यदि कहो कि सर्वकालीन निर्णय है। अनुमान बनाने व लेने अबाधित विषयपनेका सर्वसमयोंके लिए निर्णय किया है, तो यह बात असिद्ध है। कालान्तरमें इस अनुमानमे कभी बाधा न आयगी, ऐसा अल्पज्ञ पुरुष तो निश्चय कर नहीं सकते।

सर्वसम्बन्धी निर्णयसे अबाधितविषयत्वके निश्चयकी अशक्यता—यदि मान लो सर्वसम्बन्धी निर्णय है अर्थात् किसी अनुमानमे किसी अन्य अनुमानके द्वारा या प्रत्यक्ष आदिकके द्वारा बाधा आती है तो वह बाधित विषय बने और किसी अन्य अनुमान आदिकसे बाधा नहीं आती तो वह अबाधित विषय बने तो ऐसे अबाधित विषयपनेका निश्चय आप कह रहे हो कि दुनियाके सारे लोग कर रहे हैं तो सर्वसम्बन्धी भी निश्चय उसका उस ही कालमें है या उत्तर कालमें भी है ? अर्थात् भविष्यमे भी यह अबाधित विषय रहेगा ऐसा भी निर्णय है ? तो ये दोनों बातें ठीक नहीं बैठती क्योंकि जो अल्पज्ञ पुरुष है वह यह निर्णय नहीं रख सकता है, सब जगहमे, सब समय में सर्व जीवोंका इस अनुमानमें कोई बाधा नजर नहीं आ रही क्योंकि सबको सब समय सब जगह बाधा नहीं है इस अनुमानके ऐसे निश्चयका कोई कारण नहीं है, क्यो कि एक पुरुष जो अनुमान कर रहा है किसीका साध्य सिद्ध करनेके लिए उसे तब यह आवश्यक हो गया कि यह निश्चित हो जाना चाहिये उस मनुष्यको कि इस अनुमानमें सब जगह तीन काल सब मनुष्योंको कोई बाधा नजर नहीं आ रही इस कारण यह

अनुमान सही है, तो ऐसा निश्चय तो कोई कर ही नहीं सकता जो प्रत्यक्ष है, और जो सर्वज्ञ है उसे अनुमान बनानेकी आवश्यकता ही क्या है ? तो ऐसे निश्चयका कोई कारण नहीं है। यदि कारण ही बताना चाहते हो तो बतलावो कि सर्वत्र सर्वदा सब जीवोंको इसमें कोई बाधा नजर आती ऐसा तुमने कैसे समझा। अनुपलम्भसे अथवा सम्वादसे। याने सब जीवोंको बाधा नजर नहीं आ रही, बाधाका अभाव है इस कारण निश्चय बना या सब जीवोंमे सम्वादज्ञान बन रहा है, इस कारण निश्चय बना। सम्वाद-ज्ञान विध्यात्मक होता है। तो ज्ञान रहे है उसमें विवाद न रहे किन्तु सही ज्ञान हो रहा हो उसका नाम सम्वाद है। तो अनुपलम्भ तो निश्चयका कारण है नहीं क्योंकि सर्व जीवोंको बाधा नहीं है, यह बात तो सिद्ध नहीं है, अनैकान्तिक भी है।

संवादसे भी सर्वसम्बन्धी निर्णयसे अबाधितविषयत्वके निश्चयकी अशक्यता—यदि कहो कि सम्वाद कारण बन जायगा अर्थात् सब जीवोंको इस अनुमानके सम्बन्धमें सम्वाद बना हुआ है तो यह बात तो तब सिद्ध हो जब पहिले अनुमान सिद्ध हो जाय। अनुमानकी प्रवृत्तिसे पहिले तो वह बात सिद्ध ही नहीं है। अनुमानके उत्तरकालमें उसकी सिद्धि हो जायगी। यदि ऐसा मानोगे तो इसमें इतरेतराश्रय दोष है। अर्थात् अनुमानसे जब साध्यकी प्रवृत्ति बन जाय तब तो सम्वादका निश्चय हो और उससे फिर अबाधित विषयकी जानकारी बने और उससे फिर अनुमानकी प्रवृत्ति हो। इसमें अबाधित विषयपनेकी बात और लादकर हेतुको सही बनानेकी बात कहना व्यर्थ है। यदि कहो कि अविनाभावके निश्चयसे हो अबाधित विषयत्वका निश्चय हो जायगा, यह पूछा जा रहा है ना कि यह हेतु अबाधित विषय है तो इस हेतुमें, इस अनुमानमें किसी भी अन्य युक्ति आगम आदिके द्वारा बाधा नहीं आ रही है यह निर्णय कैसे हो गया ? इसपर शंकाकार कह रहा है कि अविनाभावके निश्चयसे हो गया कि यह हेतु साध्यके साथ अविनाभावी रूपसे रह रहा है इस कारण इस हेतुमे कोई बाधा नहीं है। उत्तरमे कह रहे हैं—एक तो बात यह है कि पञ्चरूप्य हेतुमें यह अविनाभाव तुमने माना ही नहीं है। अविनाभावकी समाप्ति मानने वाले शंकाकार इसमे अविनाभावका निश्चय कैसे कर लेंगे ? अबाधित विषयत्वका निश्चय न किया जा सकेगा और अविनाभावी होनेके कारण अबाधित विषयपनेमें निश्चय करना मान लोगे तो अविनाभावी ही हेतुका लक्षण मानलो फिर तुम्हारा सम्वाद खोलनेकी क्या जरूरत है। तब जो जो यह अनुमान बनाया गया था कि ये सारे फल पके हैं एक शाखासे उत्पन्न होनेके कारण तब इसमें जो हेत्वाभासपना नजर आ रहा है वह बाधित विषयत्वके कारण नहीं किन्तु हेतु ही साध्यके साथ अविनाभावी नहीं बन रहा इस कारण हेत्वाभास है। प्रयोजन यह है कि हेतु सच्चा वही है जो साध्यके साथ अपना अविनाभाव रखता हो अर्थात् साध्यके न होनेपर साधन न हो। और वह साधन मिल जाय तो उससे निर्णय होता है कि यह साध्य अवश्य है पर और अबाधित विषयपना या त्रैरूप्यपना आदिक कारण युक्त नहीं है। इसमें हेतु सही न होकर हेतु तो अन्य-

थानुत्पत्तिसे सही हुआ करता है। तो अबाधित विषयपनेकी बात निर्णयकी नहीं रही।

सत्प्रतिपक्षतामे हेतुके तुल्यबलत्व व अतुल्यबलत्वके विकल्प और प्रथम विकल्पका निराकरण—अब पांचवां रूप जो बताया है कि असत् प्रतिपक्ष होनेसे हेतु सही बनता है, सो जो अनुमान गलत बनता है वह सत्प्रतिपक्ष होनेके कारण बना है सो बात नहीं, किन्तु साध्यके साथ अविनाभाव नहीं है इस कारण गलत बना है। जैसे एक अनुमान बताया था कि यह यज्ञदत्त मूर्ख है क्योंकि देवदत्तका पुत्र होने से तो इसका खण्डन किया गया था शङ्काकार द्वारा कि यह सत् प्रतिपक्ष है अर्थात् इसके विरोधमे एक दूसरा अनुमान बन जाता है कि यह यज्ञदत्त विद्वान् है, क्योंकि शास्त्रका व्याख्यान कर रहा है। जो बाधक अनुमानसे इस पूर्व अनुमानमे बाधा आये तो यह सत्प्रतिपक्ष बन गया और जो सत्प्रतिपक्ष हो वह हेतु सही नहीं है, किन्तु हेत्वाभास है। सो उस अनुमानमे जो हेत्वाभासपना आया सो वह सही है कि वह अनुमान गलत है, लेकिन सत्प्रतिपक्ष होनेसे गलत है सो बात नहीं किन्तु अविनाभावित्व न होनेसे गलत है। यदि सत्प्रतिपक्ष होनेके कारण ही इसे हेत्वाभास कहोगे तो यह तो बताओ कि इस हेतुका प्रतिपक्ष तुल्यबल वाला है या अतुल्यबल वाला है ? जो दो हेतु रखे गए है—पहिला तो रखा है देवदत्तका पुत्र होनेसे और दूसरे अनुमानमे हेतु रखा है कि शास्त्रका व्याख्यान करनेसे तो इन दो हेतुवोमें जिनसे अनुमान बने तो ये दोनो बराबरका बल रखते हैं या कम–बढ बल रखते हैं ? जब दो व्यक्ति साथ लडते हैं तो उनमे हर एक कोई जानना चाहता है कि इसमे बली कौन है ? निर्बल कौन है ? यदि कहो कि वे दोनो हेतु तुल्यबल वाले हैं तो यह तो बतलावो कि जब दोनो एकसा बल रखते हैं उनमे यह निर्णय कैसे बन सकता है कि यह तो बाध्य है और यह बाधक है। यह तो बाधा डालने वाला है, काम बिगाडने वाला है और इसका काम बिगडा जा रहा है ये दोनो बातें एक समान बल माननेपर कैसे घटित हो सकती हैं ? यह भेद तो नहीं सिद्ध हो सकता। यदि कहो कि विशेषता है, उन दोनो के बीच भेद है कि एक हेतुमें तो पक्षधर्मत्वका अभाव है अर्थात् वे जो हेतु कहे गए सत्पुरुषत्व और शास्त्रव्याख्यान इसमे तत्पुरुषत्व जो हेतु है उसमे पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्व विपक्षव्यावृत्ति नहीं पायी जाती, यह भेद पडा हुआ है। कहते है कि यह बात ठीक नहीं क्योंकि त्रैरूप्यका अभाव नहीं है यह बात तो उसने नहीं मानी और मान लीजाय तो इस ही से एक हेतु सदोष बन गया। फिर दूसरा अनुमान देकर बाधा डालनेकी क्या जरूरत है ? याने पहिले अनुमानमे पक्षधर्मत्व आदिक नहीं पाये जाते हैं, इस कारण दूसरा हेतु बाधा डाल देता है। तो भाई पक्षधर्मत्व आदिक नहीं पाये जाते इसमे ही बाधा आयी। उसमे बाधा बतानेके लिए अन्य अनुमानकी जरूरत नहीं है।

अतुल्यबल हेतु होनेसे सत्प्रतिपक्षताके निर्णयकी असिद्धि--यदि कहो कि वे दो हेतु बराबरका फल नहीं रखते, कम बढ बल वाले हैं तो यह बतलावो कि

उन दोनो हेतुवोमे कम बढ़ बल किस कारणसे आया ? क्या पक्षधर्मत्व आदिक होने से बल बढ़ गया ? और जिसमें पक्षधर्मत्व नही आया, उसका बल कम हो गया इस तरह उनमें बलकी कमी बढ़ती है या अनुमान बाधासे उनमें बलकी कमी बढ़ती है ? पहिली बात तो यह है कि ऐसा माना ही नही है कि उसमे पक्षधर्मत्व आदिक नही है, पक्षधर्मत्व आदिक तो दोनोमें पाये जा रहे हैं । तत्पुत्रत्व हेतुमें भी और शास्त्र व्याख्यान हेतुमे भी, तब कम बढ़ बल कैसे सिद्ध कर दाेगे ? यदि कहो कि अनुमान बाधासे उनमें बलकी कमी बेशी उत्पन्न हुई है तो वह बात यों अयुक्त है कि विवाद तो उसीका चल रहा है, यह विषय तो अब तक भी विवादास्पद है । यह व्यवस्था नही बनायी जा सकती है कि उन दोनो हेतुवोमें तुल्यता होनेपर भी तो त्रैरूप्य उसमें भी है । त्रैरूप्य दूसरे हेतुमे भी है । यों समानता है फिर भी एक तो बाधा बने और दूसरा बाधक बने यह व्यवस्था नही बन सकती । अगर यों अटपट व्यवस्था बन जाय तो जिस चाहे अनुमानमे बाधा बतादी जाने लगे, और फिर इसमे तो इतरेतराश्रय दोष है । जब यह सिद्ध हो जाय कि यह तुल्य बल वाला नही है तब तो अनुमान बाधा बने और जब अनुमान बाधा बने तो यह सिद्ध हो सकेगा कि यह तुल्य बल वाला नही है । इस कारण सत्प्रतिपक्षपना सिद्ध नही किया जा सकता । तो सत्प्रतिपक्ष होनेसे हेतु हेत्वाभास है यह भी बात सही नही है किन्तु जिस हेतुका साध्यके साथ अविनाभाव हो वह हेतु सही है । जिस हेतुका साध्यके साथ अविनाभाव हो वह हेतु सही है । जिस हेतुका साध्यके साथ अविनाभाव कुछ नही है वह हेतु मिथ्या है यह सिद्ध हुआ ।

प्रकरणसमके निराकरणकी आड लेकर हेतुके पाञ्चरूप्यका समर्थन— शंकाकार कह रहा है कि हेतुका पाञ्चरूप्य य लक्षण माननेपर प्रकरणसम नामके हेत्वाभासको हम अहेतु बता सकते हैं क्योंकि उसमे असत् प्रतिपक्षपना नही है । प्रकरणसम उसे कहते है कि जिस प्रसङ्गमे एक वादी कोई अपना अनुमान कह रहा है, अपने साध्यको सिद्ध कर रहा है उन ही शब्दोमें एक अन्तर करके उस हीके प्रतिरूप विरुद्ध हेतु देकर प्रतिवादी अपना साध्य सिद्ध करे तो जहाँ वादी और प्रतिवादी दोनो अपने पक्षोको साध्यरूपसे सिद्ध कर बैठें जिन हेतुवो द्वारा उन हेतुवोकी जो चिन्ता है, उनका एक विसम्वाद है उसको प्रकरणसम कहा करते हैं । जो पक्ष वादीने निश्चित् किया है वह प्रतिवादीके द्वारा अनिश्चित् कर दिया जाता है और जो प्रतिवादीके द्वारा निश्चित् किया गया है वह वादीके द्वारा अनिश्चित् कर दिया जाता है । ऐसा परस्परमे जो विसम्वाद चलता है उसे प्रकरणसम कहते हैं और यह आलोचना संशयसे लेकर निश्चयसे पहिले तक चलती रहती है । तो ऐसे प्रसङ्गमें जो प्रकरणसम दोष लगता है अर्थात् अपने-अपने साध्योके निश्चय करनेके लिये जो हेतु प्रयुक्त किया जाता है वह प्रकरणसम है, अर्थात् दोनोके पक्षमे सपक्षसत्त्व होना अन्वय होना आदिक समान हैं अर्थात् अनुमानको सही करनेके लिये जो मोटे उपाय कहे गये हैं वे सब वादी प्रतिवादी दोनोके समान हैं, इसलिये वह विवादका स्थल होता है । उस

प्रकरणसममे तो असत् प्रतिपक्षपनेका अभाव होना यह ही दे सकता है. जैसे वादीने एक अनुमान बनाया, शब्द अनित्य है क्योकि नित्यधर्मकी अनुपलब्धि है। जैसे घटपट आदिका इसमे नित्यत्व धर्म नही पाया जाता है। तो यह अनित्य है और जो पदार्थ नित्य हुआ करते हैं उनमे नित्यत्व पाया जाता। जैसे आत्मा आदिक योगने नैयायिक आदिकने नित्यधर्मकी उपलब्धि होनेसे अनित्य सिद्ध किया है तो इतनेमें दूसरा मीमांसक बोलता है कि यदि इस प्रकारसे तुम शब्दको अनित्य सिद्ध करोगे तो हम उसको सिद्ध करनेके लिये इस ही प्रकारका अनुमान बनायेंगे। किस तरह ? शब्द नित्य है अनित्यधर्मकी अनुपलब्धि होने से। जैसे कि आत्मा! आत्मामे अनित्यधर्म नही पाया जाता इस कारण नित्य है। जो नित्य नही होता उसमे अनुपलभ्यमान अनित्यधर्मता नही रहती। इस अनुमानमे क्या बताया गया है ? यह अनित्य है क्योकि अनित्य धर्म नही पाया जाता। तो यह कोई हेतुमे हेतु हुआ! जैसे कि पक्ष है उस हीके अनुरूप एक हेतु रख दिया तो जैसे यह प्रकरणसम है इसमे निर्णय नही, हेत्वाभास है। सही अनुमान नही बन सकता तो उसको सदोष बनानेका साधन यह है कि इसमे असत् प्रतिपक्ष नही है अर्थात् वादीने जो अनुमान बनाया उसका विरोधी अनुमान प्रतिवादीके पास है और प्रतिवादीने जो अनुमान बनाया उसका विरोधी अनुमान वादी के पास है। इस कारण यह सत्प्रतिपक्ष है और जो सत्प्रतिपक्ष होगा वह सही हेतु नही है। तो दोनो प्रकरणसम दोषोको मिटानेमे समर्थ यह हमारा ५ वाँ हेतु है असत्प्रतिपक्ष। इससे यह मानना चाहिये कि हेतुका पाञ्चरूप्य लक्षण है।

असत्प्रतिपक्षके अभावसे प्रकरणसम हेतुके हेत्वाभासपना सिद्ध करनेकी आशंकाका समाधान – अब उक्त शकाका उत्तर देते है कि प्रकरणसमका जो उत्तर दिया है कि शब्द अनित्य है अनुपलभ्यमान नित्य धर्मक होनेसे। वहाँ हम यह पूछते हैं कि नित्यधर्मपना नही पाया जा रहा है शब्दमे, तो क्या वास्तवमे शब्दमें नित्य धर्म नही पाया जाता रूप हेतु अप्रसिद्ध है अथवा नही ? अर्थात् यह हेतु पक्षमे पाया नही जाता है या पाया जाता है ? यदि कहो कि अनुपलभ्यमान नित्य धर्मकत्व शब्दमें नही पाया जाता तो इसका स्पष्ट भाव हुआ कि यहाँ पक्षधर्मत्व नही है हेतु पक्षमे पाया ही नही जा रहा है। तो अपने आप असिद्ध हो गया। पक्षधर्मत्व जहाँ न हो वहाँ असिद्ध दोष आया करता है। असिद्धत्व दोषके निराकरणके लिए ही तो पक्षधर्मत्व बताया गया है। यदि द्वितीय पक्ष लोगे अर्थात् शब्दमे नित्य धर्मका न पाया जाना यह हेतु सिद्ध है अर्थात् हेतु पक्षमे रह रहा है तो यह बतलावो कि साध्यधर्मयुक्त पक्षमे हेतु प्रसिद्ध है या साध्य धर्मरहित पक्षमे हेतु प्रसिद्ध है ? याने जिस पक्षमे साध्य धर्म पाया जा रहा है उस पक्षमे हेतु सिद्ध है या जिस पक्षमे साध्य नही पाया जा रहा उसमे हेतु लग रहा है। यदि कहो कि साध्य वाले धर्मीमें ही इस हेतुका सद्भाव है तब तो हेतु सही हो गया। हेतु झूठा कैसे हुआ। यह तो साध्यका गमक है, क्योकि हेतुका अविनाभावीपन यही कहलाता है कि साध्य वाले ही धर्मीमे हेतुका पाया जाना हो। तो इस

प्रकार यह अनुमान सही हुआ उस हेतुके प्रसादसे, जैसा कि लक्षण माना गया है कि जो साध्यके अभावमे न हो साध्यके अविनाभावी रूपमे निश्चित हो वह हेतु है और ऐसा हेतुपना अर्थात् साध्यके अभावमे साधनका न होना यह बात जब यहाँ पायी जा रही है तो वह हेतु साध्यका साधक ही है। कैसे साधक न होगा, क्योंकि हेतु साध्यको सिद्ध करदे इसका कारण है अविनाभाव। साध्यके साथ जिस हेतुका अविनाभाव हो वह हेतु साध्यका गमक होता है। यदि कहोगे कि साध्य धर्मरहित पक्षमे हेतुकी प्रसिद्धि है अर्थात् अनित्यपना रहित शब्दमे अनुपलभ्यमान नित्य धर्मत्वकी सिद्धि है। तो यह तो विरुद्ध दोष हो गया क्योंकि विरुद्ध दोष उसे कहते हैं कि साध्यधर्मसे रहित धर्मीमें जो हेतु जाय, वह विपक्षमे रहा जो हेतु केवल विपक्षमें ही रहे उसे विरुद्ध कहते हैं। जैसे कोई कहे कि शब्द नित्य है कृतक होनेसे, घडा अनित्य है किया जाने वाला होनेसे। अरे तो किया जाने वाला धर्म तो अनित्यके साथ व्याप्ति रखता है और तुम विरुद्ध साध्यके साथ व्याप्ति बना रहे हो। अनित्य धर्मरहित शब्दमे नित्यत्वके अभावकी प्रसिद्धि बता रहे हो तो यह विरुद्ध दोष है। और यदि सदेह वाले साध्यधर्म मे हेतुकी प्रसिद्धि बतावोगे तो वह अनैकान्तिक दोष हो गया। तात्पर्य यह है कि पक्ष धर्मत्व, सपक्षसत्व, विपक्ष व्यावृत्ति जिस हेतुमे न पाये जायें वह हेतु सही है तो इस अविनाभावके कारण ही तो सही है। उसमे अब असत्प्रतिपक्ष लगाना और उसके कारण हेतु सही बताना झूठा बताना, इस प्रयास करनेकी आवश्यकता नही है। हेतु के लक्षणसे ही यह सब घटित हो जाता है कि यह हेतु अनुमानको सही बना देता है या नही।

संदिग्धविपक्ष व्यावृत्तिकी आलोचना —अब शंकाकार कह रहा है कि यदि सन्देह वाले साध्य धर्मसे युक्त पक्ष वाले हेतुमे जानेमे अनेकान्तिक कहा जाय तो सारे हेतु अनेकान्तिक बन बैठेंगे क्योंकि साध्यको सिद्धि करनेसे पहिले साध्य विशिष्ट धर्मीके यह सदेह होता ही है कि साध्यधर्म यहाँ है अथवा नही, जैसे कि यह अनुमान बनाया कि इस पर्वतमे अग्नि है धुवा होनेसे तो यह अनुमान बनानेकी आवश्यकता क्यो हुई ? यो कि वहाँ अग्निके बारेमें कुछ सन्देह है, तब तो अनुमान बनाना पडा कि पर्वतमे अग्नि है। तो साध्य सिद्ध करनेसे पहले पक्षमे साध्यका सदेह तो होता ही है और सदिग्ध साध्यधर्म वाले धर्मीमे हेतुके बतानेको अनैकान्तिक कहते हैं। फिर तो सारे हेतु अनेकान्तिक हो जायेंगे। इसमे अनेकान्तिकका यह लक्षण मानो कि अनुमेय को छोडकर अर्थात् जिस पक्षमे हम साध्य सिद्ध करना चाहते हैं उस पक्ष स्थानको छोडकर अन्य पक्षोमें अर्थात् सपक्षोमे, साध्यधर्म वाले अन्य स्थानोमे यदि साध्यके अभावमे हेतु लगे तो अनैकान्तिक कहलाये। शंकाकारका अभिप्राय यह है कि अनेकान्तिक दोष उसे कहना चाहिये कि जो साध्य धर्म वाले अन्य धर्मीमे साध्यके अभाव मे हेतु जुड सके उसे अनेकान्तिक कहना चाहिये। साध्यके अभाव वाले ही मे पक्ष धर्मत्व दिखानेपर तो वह विरुद्ध दोष कहलायेगा, अनैकान्तिक न कहलायेगा। विरुद्ध

दोष उसे कहते है कि जो हेतु साध्यरहित पक्षमे पाया जाय सो विरुद्ध है परन्तु जो हेतु विपक्षमे तो हटा हुआ हो और सपक्षमे जा रहा हो ऐसा हेतु तो अपने साध्यको सिद्ध करेगा ही इस शंकाका उत्तर देते हैं कि यदि साध्य विशिष्ट धर्मीके सिवाय अन्य धर्मीमे सपक्षमे हेतुका अर्थात् साध्यके साथ सम्बन्ध मानते हो तो साध्य विशिष्ट धर्मीमे दिये हुये हेतुमे साध्यको कैसे सिद्ध करोगे ? शंकाकारका यह आशय था कि जिसका एक प्रसिद्ध अनुमान भी किया जाय कि पर्वतमे अग्नि है धुवाँ होनेसे, अर्थात् यहाँ धुवाँका अग्निके साथ जो अविनाभाव है वह रसोईघर आदिककी घटनामे साध्यके साथ हेतुका अविनाभाव हो तो वह हेतु पक्षमे साध्यको कैसे सिद्ध करेगा ? वहाँ दृष्टान्तमे ही सिद्ध करेगा। जिस हेतुका साध्यके साथ अविनाभाव दृष्टान्तसे है पक्षमे नही मानते तो ऐसा हेतु दृष्टान्तमे साध्य सिद्ध करेगा या पक्षमे ? जहाँ अविनाभाव माना वहा हेतु साध्यको सिद्ध करेगा क्योकि पक्षमे तो प्रकृतमे तो साध्यके बिना भी हेतुका सद्भाव मान लिया और साध्य विशिष्टधर्मीको छोडकर अन्य धर्मीमे सपक्षमे, दृष्टान्तोमे जैसे रसोईघरमे हेतुका साध्यके साथ सम्बन्ध माना है—पूर्वविदित साध्यविशिष्ट धर्म्यन्तरमे ही हेतुका सम्बन्ध है ऐसा मानने वाले धुवा हेतुके द्वारा रसोईमे अग्नि सिद्ध करले, पर पर्वतमे कैसे करेंगे ? यह नही हो सकता कि अन्य जगह तो साध्यके अविनाभावीरूपसे निश्चित हेतु हो और जगह साध्यको सिद्ध करे याने धुवेंका रसोईघरमे अग्निके साथ अविनाभाव माने और पर्वतमे उस हेतुके द्वारा अग्निको सिद्ध करे यह न कर सकेंगे। क्योकि यदि अन्य जगह अविनाभाव वाले हेतुसे अन्य जगह साध्यकी सिद्धिको जानी लगे तो इसमे बडे दोष होगे। जैसे कि काठ लोहलेख्य होता है अर्थात् काठमे लोहकी लकीरें खींच दें तो काठमे लोहसे लकीर खिच जानेका सम्बन्ध है कि नही ? अब उस सम्बन्धसे हम वज्रमे लोहसे लकीरका कर देना मान बैठेंगे। क्योकि अब तो अटपट मत कर लिया है जिस जगह हेतु पाया जानेसे साध्य सिद्ध हो रहा है उस हेतुसे हम अन्य जगह साध्य सिद्ध कर देंगे। इससे साध्य विशिष्टधर्मीमे ही हेतुकी व्याप्ति मान लेना चाहिये।

हेतुकी समीचीनता सिद्ध करनेके उपायोंकी साध्याविनाभावित्व हेतुलक्षण ही प्रमाणता —देखिये ! विस्ताररूपमें दो बातें आपको आवश्यक माननी होंगी। एक तो यह कि पक्षमे अर्थात् जिसका अनुमान बना रहे हैं उसमे साध्यके साथ हेतुका अविनाभाव हो, चाहे सपक्षसत्त्व मिले अथवा न मिले और दूसरी बात यह है कि विपक्षमे हेतु जाना न हो तो वह बात सही बैठती है लेकिन ये दोनो बातें हेतुके एक लक्षणमे आ जाती हैं। जो साध्यके साथ अविनाभावीरूपसे निश्चित हो उसे हेतु कहते हैं। इसमें वे सब खासियतें आ गई जो विशेषोसे विशिष्ट हेतु साध्यको सिद्ध कर रहे हैं। उस साध्यधर्मसे सहित पक्षमे हेतु पाया जा रहा है वैसे साध्यके साथ हेतुका अविनाभाव है तो वह अनुमान सही बन जाता है। इसपर शंकाकार कह रहा है कि पक्षमे यह जान लिया कि इसमे यह हेतु साध्यधर्मसे अविनाभाव रखता है अथवा

यह जान लिया गया कि यह साध्य विशिष्टधर्मी है, यह पर्वत अग्नि वाला है। यदि यह बात अनुमान प्रमाण देनेसे पहिले ही जान ली गई तो जब साध्यका बोध पक्षसे पहिले ही हो रहा है तो पक्षधर्मत्वका ग्रहण करना अनर्थक है अथवा अनुमान बनाने की भी आवश्यकता कुछ नही रही। अनुमान तो तब बनाया जाता है कि जब पक्षमे साध्यका सन्देह हो अथवा अज्ञान हो और फिर उस साध्यको सिद्ध करनेकी आवश्यकता हो तब तो अनुमान बनाया जाता है किन्तु यहा साध्यको पक्षमे पहिलेसे ही सिद्ध मान रहे हो तो पक्ष धर्मत्व बताना व्यर्थ है। उत्तर देते हैं कि सम्बन्धको सिद्ध करने वाला प्रमाण है तर्क। उस तर्कके द्वारा एक सर्वके उपसहाररूपसे सम्बन्ध जाना गया है, जैसे कि साध्यके अभावमे साधन कहीं भी न होना। जब यह सामान्य से प्रतिबन्ध जान लिया गया और अब हम किसी पक्षमे साध्यको सिद्ध करने चल रहे हैं तो वहाँ पक्षधर्मत्व बताना होता है कि जिस ही धर्मीमे यह हेतु पाया जा रहा है उस हीमे अब साध्यको सिद्ध किया जा रहा है तो पक्षधर्मत्व का ग्रहण विशेष विषय को परिज्ञानका कारण होनेसे अनुमान व्यर्थ नही हुआ। हेतुका साध्यके साथ सम्बन्ध है यह तो तर्क ज्ञानने सामान्यरूपसे जाना था। अब उसके सहारे यहाँ प्रकृतमें पक्षमे साध्यमें हेतुसे सिद्ध किया जा रहा है, इसलिए न पक्षधर्मत्व बताना गलत है और न अनुमान व्यर्थ है। जिस चाहे प्रकारसे आप विस्तार बनायें, सबमे आपको यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जो साध्यके साथ अविनाभावी रूपसे निश्चित हो वही हेतु हो सकता है। जिसमे साध्यके साथ अविनाभाव न पाया जाय वह हेत्वाभास हुआ करता है। अब उसके विस्तारके लिए चाहे आप कितने ही धर्म मानलें, पर मूल बात यह सबमें माननी पड़ेगी इस कारण हेतुका लक्षण न त्रैरूप्य मानो न पाचरूप्य मानो, किन्तु जो साध्यके साथ अविनाभावरूपमें रहता हो वह हेतु कहलाता है।

हेतुका अविनाभावित्वसे भिन्न लक्षण माननेपर प्राकरणिक प्रश्नोत्तर

शकाकार कहता है कि जैसा हमको यह दोष देते हो कि साध्य धर्मसे रहित अन्य धर्मी में अपने साध्यके साथ हेतुका सबध ग्रहण करना माननेपर साध्ययुक्त धर्मीमे साध्यधर्म के बिना भी हेतुका सद्भाव होनेसे साध्यका साधक नही हो सकता है, तो यही दोष आपके भी आ सकता है कि सम्बन्धको सिद्ध करने वाले तर्क नामक प्रमाणसे सामान्य से ही अविनाभावका परिज्ञान किया गया है और उस परिज्ञानसे विशिष्ट धर्मीमे जहाँ का अनुमानमे पक्ष बनाया जा रहा वहाँ पाये गये हेतुका उस धर्मीमे साध्यके बिना उपपत्ति सम्भव है, हेतुका रहना सम्भव है। तो आपके यहाँ भी वह हेतु साध्यका गमक नही हो सकता। उत्तर देते हैं कि विशिष्ट धर्मीमे पाया जाने वाला हेतु उस धर्मीमे प्राप्त हुए साध्यके बिना उत्पन्न नही हो सकता है क्योकि यदि विशिष्ट धर्मीमें प्राप्त साध्यके बिना हेतु उत्पन्न होने लगे तो सभी जगह हेतुका साध्यके साथ व्याप्तिका अभाव बन बैठेगा। और प्रकृतमे तो तुम्हारा जो अनुमान है कि शब्द अनित्य है नित्य धर्म न पाया जानेसे और मुकाबलेमे प्रतिवादीका अनुमान है कि शब्द नित्य है अनित्य

धर्म न पाया जानेसे तो इस हीसे यहाँ यह बात सिद्ध होती है कि जिसका सम्बन्ध जान लिया गया ऐसा एक हेतुका सद्भाव जहाँ पाया जाता है ऐसे धर्मीमे विपरीत साध्य को सिद्ध करने वाले अन्य हेतुका सद्भाव नही होता, अन्यथा अर्थात् दोनोका सद्भाव होने लगे तो इन दोनो हेतुवोका साध्यके साथ अविनाभाव बन बैठेगा लेकिन एकान्तवादियोके मतमे तो एक जगह एक समय नित्यत्व और अनित्यत्वका विरोध है, या तो नित्यत्व धर्म रहेगा या अनित्यत्व। तो विरोध होनेसे उन हेतुवोकी उत्पत्ति सभव नही। और मान लो कि उत्पत्ति हो जाय, वह हेतु व्यवस्थापक बन जाय तो इसका अर्थ यह हुआ कि अपने साध्यके साथ अविनाभावी हैं वे दोनो हेतु और उन दोनो हेतुवोके पाये जानेसे शब्दकी नित्यानित्यात्मकताकी सिद्धि हो जाती है। जब एकमे नित्यपना साध्य सिद्ध हो गया और अनित्यपना साध्य सिद्ध हो गया तो इसका अर्थ है कि वह शब्द कथचित् नित्य है और कथचित् अनित्य है। तब यहाँ प्रकरणसम नाम का दोष ही क्या आया? अथवा तुम्हारे एकान्तकी सिद्धि कैसे हुई न केवल अनित्य रहा शब्द, न केवल नित्य रहा शब्द। यदि यह कहो कि इस अनुमानमे किसी भी एक हेतुके अपने साध्यके साथ अविनाभाव रखे इस गुणकी कमी है अर्थात् हेतु साध्यके साथ अविनाभावसे विकल है याने अविनाभाव नही है। तो उत्तरमे कहते हैं—फिर तो अविनाभाव न होनेसे ही हेतु साधक नही बन सका फिर प्रकरणसम बनाना, असत् प्रतिपक्ष बताना, पचरूप्य बताना ऐसे प्रमाणसे क्या लाभ है? हेतुका एक लक्षण है कि अपने साध्यके साथ अविनाभावीरूपसे निश्चित हो वही लक्षण अनुमान को सही बनानेमे और यह लक्षण न पाया जाय तो उन हेत्वाभासोसे अनुमानके गलत हो जानेमे बात बन जायगी।

प्रकरणसम हेतुकी प्रसज्यप्रतिषेधरूप या पर्युदासरूप दोनो विकल्पोमे अनुपपत्ति -अच्छा अब यह बतलावो कि शब्दको अनित्य सिद्ध करनेमे जो नित्यधर्म की अनुपलब्धिरूप हेतु दिया है उस नित्य धर्मकी अनुपलब्धि रूप हेतुका क्या अर्थ है? क्या उसका अर्थ प्रसज्यप्रतिषेधरूप है? अर्थात् नित्यत्व धर्मका अभाव करना मात्र है, उसके एवजमे और कुछ नही है, किन्तु एक तुच्छ अभाव, इतना मात्र अर्थ है अथवा पर्युदासरूप अर्थ है। नित्य धर्मकी अनुपलब्धिका यह अर्थ है क्या कि अनित्य धर्मकी उपलब्धि हो रही है? किस अर्थ वाले हेतुसे आप शब्दको अनित्यत्व सिद्ध कर रहे हो? पहिला पक्ष तो युक्त नहीं है क्योकि तुच्छाभाव साध्यका साधक नही बन सकता। जो कुछ भी नही है, असत् रूप है ऐसा तुच्छ अभाव साध्यकी क्या सिद्धि करेगा? और, तुच्छाभाव कोई चीज होती भी नही है, क्योकि अभाव किसी अन्यके सद्भावरूप रहता है। जिस पदार्थको निरखकर-जिस पदार्थके आधारमे कोई वस्तु न दीखे, जिसकी मनमे कल्पना उठी तो उस वस्तुका अभाव उस वस्तुके सद्भावरूप बनता है। यदि कहो कि नित्यधर्ममे अनुपलब्धिका अर्थ हम पर्युदासरूप मानते हैं अर्थात् अनित्यधर्मकी उपलब्धि ही हेतु है तो यह बतलावो कि अनित्यत्वधर्मरूप हेतु

शब्दमें यदि सिद्ध हो गया तो उससे फिर शब्द अनित्य कैसे सिद्ध न होगा ? यदि कहो कि उस सम्बन्धमें तो चिन्तन चल रहा था। पक्ष प्रतिपक्ष देकर परस्पर विरुद्ध साध्य सिद्ध किया जा रहा था। वहाँ कोई पुरुष इस हेतुका प्रयोग करता है इससे शब्दरूप धर्मीमें हेतु असिद्ध है। उत्तरमे कहते हैं कि तब तो यह बात आई कि वह हेतुवादीके प्रति भी सदिग्ध है उस सम्बन्धमे वादीका भी सन्देह है और प्रतिवादीने तो इसे माना ही नही। उसके लिये तो स्वरूपासिद्ध है तब तो प्रतिवादी उसके मुकाबलेमे नवीन अनुमान उपस्थित कर रहा है। नित्यधर्मकी उपलब्धि होना वहाँ उस को इष्ट है तो जो कोई जो भी अनुमान दे, शब्द नित्यत्ववादी नित्य सिद्ध करनेका अनुमान दे, वह अनुपलब्धिके इन विकल्पोमें कुछ भी निर्णय न कर सकेगा। इससे हेतुका लक्षण पचरूप्यपना नही घटित होता, क्योकि अबाधित विषय और असत् प्रतिपक्षके सम्बन्धमे जब युक्ति सहित विचार किया जाता है तो ये दोनो हेतुके नियमित नही बनते। और बनता भी है तो हेतुका साध्यके साथ अविनाभाव होना अन्यथानुत्पत्तिकी बात है तो वह बनता है अन्यथा नही ? तो जैसे पञ्चरूप्यवादीने त्रैरूप्यके विरोधमे पञ्चधर्मत्व आदिकको खण्डन किया, इसी प्रकार ये दो धर्म भी खण्डित हो जाते हैं।

एक हेतुको अनेकधर्मात्मक माननेपर एकान्तवादियोके अनिष्ट प्रसग

यदि कहो कि हम एम एक हेतुके पक्ष धर्मत्व सपक्षसत्त्व विपक्षव्यावृत्ति अबाधित विषय असत्प्रतिपक्ष हम अनेक धर्म मानते हैं, हेतुको अनेक धर्मात्मक स्वीकार करते हैं। यदि ऐसा कहो तो अनेकान्तिका आश्रय लिया गया समझिये। हेतुपक्ष धर्मत्वसे भी सहित है, सपक्षसत्त्वसे भी सहित है ऐसे ऐसे पञ्चरूप्यकर युक्त है, तो यह तो अनेकान्तात्मक सिद्ध करनेकी बात है। यह भी नहीं कह सकते कि जो पक्षधर्मका अर्थात् हेतुको समक्षमें सत्त्व होना बताया है वही समस्त विपक्षोसे असत्त्व होना कहलाता है, याने सपक्ष सत्त्वका ही दूसरा नाम विपक्षासत्त्व है, यह बात यों नही कह सकते कि सपक्ष सत्त्व तो है अन्वयरूप और विपक्ष व्यावृत्ति है व्यतिरेक रूप। अन्वय है भावरूप और व्यतिरेक है अभावरूप सो अभाव रूप व भावरूपका सर्वथा तादात्म्य बन नही सकता अर्थात् यह कहना कि सपक्षसत्त्वका ही दूसरा नाम है विपक्षासत्त्व' अथवा जो सपक्षसत्त्व है वही विपक्षासत्त्व है। यो तादात्म्य कैसे बन सकेगा ? और, मान लो बन जाय तादात्म्य तो सारे हेतु या तो रह गए केवलान्वयी या रह गए केवलव्यतिरेकी। जब भाव स्वरूप या अभावस्वरूप अन्वय और व्यतिरेकका तादात्म्य मान लिया, सपक्षसत्त्व और विपक्षव्यावृत्तिका तादात्म्य मान लिया गया तो इसका अर्थ है कि कुछ एक रहा कुछ एक वह यदि अन्वय रहा तो केवल अन्वयी ही हेतु रहा दूसरा और कुछ नही, यदि एक वह व्यतिरेक रहा तो केवल व्यतिरेकी हेतु रहा अन्य और कुछ नही। यो हेतुके लक्षण अनेक सिद्ध न हो सके और हेतु तीन रूप वाला है, पञ्चरूप्यवाला है, ऐसी उसमे नाना विधता भी सिद्ध न हो सकी।

सर्वथा अभावरूपके वल व्यतिरेकी-हेतुकी अनुपपत्ति - अब अन्य बात सुनो, केवलव्यतिरेकी ही सारे हेतु यदि रहगए तो व्यतिरेक तो होता है अभाव रूप अभावरूप हेतुसे जो चीज तद्रूप है जो साध्यसिद्ध होता है या अन्य जो बात बनती है वह सब अभाव रूप ही होगा। हेतु भी अभावरूप होगा, किन्तु अभाव है तुच्छरूप। जो लोग अभाव प्रमाण मानते हैं वे अभावको तुच्छाभाव मानते हैं, किसी अन्य पदार्थके सद्भावरूप नही मानते। तो जब तुच्छाभावरूप रहा तो अपने साध्यके साथ और धर्मीके साथ उस हेतुका सम्बन्ध नही बन सकता, क्योकि तुमने तो अभावरूप मान लिया, हेतुको तुच्छाभावरूप मान लिया और यदि सपक्षमे सत्व होनेका ही नाम विपक्षासत्व है तो फिर वही इसका असाधारण कैसे हो सकता है क्योकि वस्तुभूत अन्य प्रथक् अभावके हुये बिना प्रतिनियत इस हेतुका पक्षमे होना असम्भव है। यदि कहो कि वह उस साध्य अथवा धर्मी। अन्य धर्मरूप है तब तो एक अनेक धर्मात्मक बन गया ऐसे हेतुसे कैसा साध्य सिद्ध होगा ? जो अनेक धर्मात्मक हो। अनेक धर्मात्मक साध्यके साथ अविनाभावीरूपसे निश्चित बन गया उस हेतुसे तो अनेकान्तात्मक पदार्थ सिद्ध होगा फिर इन एकान्तवादियोके द्वारा दिए गए हेतुमे विरुद्धता कैसे न आयगी ? वहाँ सिद्धान्त है एकान्त और यह सिद्ध हो जाता है अनेकान्त क्योकि वह हेतु अब एकान्तसे विरुद्ध है जो अनेकान्त उसके साथ व्याप्त हो गया।

एकान्तवादियो द्वारा दिये गये हेतुकी सामान्यरूपताकी अनुपपत्ति—अब यह बतलावो कि दूसरे लोगोने जो कुछ भी हेतु दिया, जैसे इस प्रकरणसमके प्रकरणमे, शब्द अनित्य है नित्यत्व धर्मकी अनुपलब्धि होनेसे अथवा दूसरेने अनुमान बनाया कि शब्द नित्य है क्योंकि अनित्यत्व धर्मकी अनुपलब्धि होनेसे तो जो कुछ भी हेतु दिया जा रहा है वह हेतु सामान्यरूप है या विशेषरूप है अथवा उभयरूप है या अनुभयरूप। इन चार विकल्पोमेसे किस विकल्प वाला आप हेतु मानते हैं ? यदि कहो कि सामान्यरूप हेतु कहते हैं तो वह सामान्यरूप हेतु व्यक्तियोंसे, विशेषोंसे भिन्न है अथवा अभिन्न है। सामान्यरूप हेतु विशिष्ट व्यक्तिसे भिन्न है यह बात तो यो नहीं बनती कि विशेषसे भिन्न सामान्य कुछ भी परिचयमे नही आ रहा है है हीं नही। इसलिए वह असिद्ध है। विशेषरहित सामान्य लोकमे कुछ भी नहीं है। सामान्यरहित विशेष भी लोकमे कुछ नही है। जैसे किसी भी पदार्थको जाना गया तो सामान्य विशेषात्मकको ही जाना गया, केवल सामान्य भी अवस्तु केवल विशेष भी है, अवस्तु है। यदि कहो कि सामान्यरूप हेतु व्यक्तियोंसे अभिन्न है तो वह सामान्य रूप हेतु व्यक्तियोंसे कथचित् अभिन्न है या सर्वथा अभिन्न है सामान्य और विशेष, सर्व प्रकारसे एक रूप है तो देखो जब व्यक्ति अर्थात् विशेष सामान्य ये दोनों एक हो गए, व्यक्तिसे जुदा सामान्य कुछ रहा नही। तो जैसे व्यक्तिका स्वरूप दूसरे व्यक्तिमे तो नहीं जाता इसी प्रकार यह भी सामान्यरूप कहीं भी न जा सकेगा सो दूसरेके द्वारा माना गया सामान्य सामान्यरूपताको प्राप्त नही हो सकता। अर्थात् वह सामान्य नही रह सकता, क्योकि अन्य

व्यक्तियोमे न जानेसे। जो अन्य व्यक्तियोंमें नही जाये तो वह सामान्य भी नही रहेगा जैसे यह व्यक्ति यह विशेष यह अन्य व्यक्तियोमें नही जाता। मनुष्य क्या गायमे चला गया ? गाय क्या मनुष्यमे गई ? कोई भी व्यक्ति, कोई भी विशेष दूसरे विशेषमे नही अनुगत होता। तो वह विशेष सामान्य रूप तो न हुआ। तो यहाँ यह सर्वथा अभिन्न मान लिया गया सामान्यरूप हेतु उन व्यक्तियोंकी तरह किसी भी अन्य व्यक्ति में जा ही न सकेगा तो अब सामान्यरूप ही का लक्षण न बन सका। यदि कहो कि सामान्यरूप हेतु विशेषोंसे कथचित अभिन्न है तो ऐसा तुमने माना ही नही। कथंचित् अभिन्नपना एकान्तवादमें माना नही गया है। इससे सामान्यरूप हेतु साधक नहीं बन सकता। यदि कहो कि व्यक्तिरूप हेतु मानोगे तो व्यक्ति तो असाधारण होता है। जो अन्य जगह न जाय, अन्य व्यक्तिमे न जाय वही स्वय व्यक्ति है उसका अन्यत्र दाखिला नही है तो वह व्यक्तिरूप हेतु असाधारण होनेसे साध्यका गमक हो ही नही सकता।

एकान्तवादियो द्वारा दिये गए हेतुकी उभय (सामान्य विशेष) रूपता व अनुभयरूपताकी अनुपपत्ति - इसी प्रकार उभय रूप भी हेतु नही बन सकता। एक दूसरेसे बँधे हुए न होकर स्वतन्त्र स्वतन्त्र रहने वाले सामान्य विशेष कहीं उभयरूप बन जाय यह बात नही बन सकती। क्योंकि उभयपक्षमें भी वे दोनो दोष आ जाते हैं, जो सामान्य और विशेष पक्षमे दिये गये थे। यदि कहो कि हम अनुभय हेतु मानते हैं। न सामान्यरूप न विशेषरूप, तो यह बात भी ठीक नही है कि एक दूसरेका विरोध करने वालेका ऐसा नियम है कि उनमें यदि एकका अभाव हो तो दूसरेको उपस्थित होना पड़ेगा। तो अनुभयता तो कभी रही नही। यदि सामान्यपना नही है तो सामान्य आ गया, क्योंकि वे दोनो परस्पर प्रतिपक्षी हैं। तो यह अवसर कब हो सकता है कि हेतु न सामान्यरूप ही रहे और न विशेषरूप ही रहे। इस कारण से ऐसा हेतुका हेतुत्व मानना चाहिये कि जो अन्य पदार्थोंमें अनुवृत्त रहता है और अन्य पदार्थोंसे व्यावृत्त रहता है, यों अपने स्वरूपको धारण किए हुए है, ऐसा कुछ एक ही अर्थ स्वरूपको जानने वालेके भेदज्ञान और अभेदज्ञानका कारण बन जाता है। जैसे अनुमान किया कि पर्वतमे अग्नि है धूम होनेसे। तो वह धूम अन्य धूमोंमें तो अनुवृत्त है। जैसे पर्वतमे पाया जाने वाला धूम है इस ही जातिका धूम रसोईघर आदिकमे है तो वह धूम अन्य धूमोंसे सदृश रहा और धूमको छोडकर अन्य जो पदार्थ है वहाँसे अलग रहा सो ऐसे अनेकान्तात्मक हेतुसे जो साध्य सिद्ध होगा वह भी अनेकान्तात्मक साध्यसिद्ध होगा। पर्वतमें जैसे अग्निकी सिद्धि करना चाह रहे वह अग्नि अन्यत्र पाई जाने वाली अग्निसे तो सदृश है, अनुवृत्त है अन्वयरूप है और अग्निको छोडकर अन्य पदार्थोंसे जुदा है।

एकान्तवादीके द्वारा कहे गये हेतुसे साध्य साध्यकी चारो विकल्पोमे अनुपपत्ति -- अब इस प्रकरणमे एक आखरी बात और सुनो। एकान्तवादियोंने

जो हेतु दिया है उस हेतुसे तुम साध्य कैसे सिद्ध करना चाह रहे ? क्या वह साध्य सामान्यरूप है या विशेषरूप है अथवा उभयरूप है या अनुभयरूप है, सामान्यरूप तो यों नहीं कह सकते कि केवल सामान्य तो होता नहीं। केवल सामान्य अर्थ क्रिया भी नहीं कर सकता। तो सामान्यसाध्य तो बन न सकेगा। विशेषसाध्यको कहनेकी बात यों युक्त नहीं है कि जो विशेष है वह सब जगह अनुयायी नहीं बन सकता। कोई भी व्यक्ति अन्य व्यक्तियोंमे नहीं पाया जा सकता। तब अन्य हेतुवोंमे वह व्यापक न रहा, जैसे धुवा विशेष अन्य सब जगहके धुवोंसे सम्बन्ध न रख सका, अनुयायी न बन सका, उनमे न व्याप सका। ऐसे हेतुसे साध्य क्या सिद्ध हो सकता है. ऐसा विशेष सिद्ध नहीं किया जा सकता। यदि कहो कि यह साध्य सामान्य और विशेषरूप है तो इसमें दोनो प्रकारके दोष आते हैं। उभयरूप कहनेमे जो सामान्यमे दोष दिया वह दोष आया, जो विशेषमे दोष दिया वह दोष आया। यदि कहो कि साध्य अनुभयरूप है तो यह यों नहीं बनता कि अनुभय तो अमरत् है वह हेतुमे व्यापक कैसे हो सकता है ? हेतुसे अविनाभाव कैसे रख सकते ? तो अनुभयसाध्यमे साध्यत्व आ ही नहीं सकता। यों प्रकरणसम अविनाभाव न होनेसे सदोष है। सभी अनुमान यदि अविनाभावी हेतु उनमे नहीं हैं तो वहां असिद्धत्व है, उनमे पचरूपता की बातसे वह हेतु गमक हो ऐसी बात नहीं है। तो हेतुका न त्रैरूप्य लक्षण है, न पचरूप्य, किन्तु साध्यके साथ अविनाभावीरूपसे जो निश्चित हो वह हेतु है, यही समीचीन हो सकता है।

पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतोदृष्ट अनुमानकी कल्पनामे केवलान्वयीकी सिद्धि अनुमानके सम्बन्धमे न्यायसूत्रोंमे जो यह कहा गया कि प्रत्यक्ष पूर्वक तीन प्रकारके अनुमान होते हैं पूर्ववत् शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट। और, उसकी व्याख्यामे बताया है कि उन तीनोंमेसे पूर्ववत् और शेषवत् तो केवलान्वयी हेतु होता है जैसे कि अनुमान किया गया कि सत् असत् वर्ग किसीके एक ज्ञानके आलम्बन हैं— अनेक होनेसे। जैसे ५ अगुलिया। ५ अगुलिया अनेक हैं तो किसी एकके सहारे रहती हैं तो इस अनुमानमे पूर्ववत् कहते उसे हैं कि जिसमे पक्ष पाया जाय। पूर्व नाम है पक्षका। समस्त अनुमानोंके अवयवोंमे सबसे आदिमे पूर्वमे प्रयोग किया गया है पक्ष, इसलिये पक्षको पूर्व कहते हैं और पूर्व जिस हेतुका हुआ अर्थात् जिस हेतुका पक्ष मिले उसे कहते हैं पूर्ववत्। चाहे पूर्ववत् शब्द कहो चाहे पक्षधर्म शब्द कहो बात एक ही है। शेषवत्का अर्थ है— शेष मायने दृष्टान्त। जिस हेतुका शेष हो अर्थात् दृष्टान्त हो उसे कहते हैं शेषवत् अर्थात् जो हेतु सपक्षमें रहे तो शेषवत् कहो या सपक्षसत् कहो एक ही बात है। सामान्यतोदृष्टका अर्थ है—साधन सामान्यकी साध्य सामान्यसे व्याप्ति होना। और, सामान्यसे जो अदृष्ट हो वह है सामान्यतोदृष्ट। अर्थात् व्यतिरेक दृष्टान्तवाला जो सामान्यसे न देखा गया हो, अन्वयरूपसे जो न पाया जाता हो ऐसा कुछ होता है विपक्ष, व्यतिरेक। तो जहां व्यतिरेक दृष्टान्त मिले वह सामान्यतोदृष्ट कहलाता है तो यहां पूर्ववत्का जो उदाहरण दिया वही उदाहरण शेषवत्का भी हो

जाना है कि सत् असत् वर्ग किस हीके एक ज्ञानमे आया करते हैं, क्योंकि अनेक होने से जैसे ५ अगुलियां। तो इस अनुमानमें ५ अगुलियोको छोडकर बाकी जितने सत् असत् पदार्थोंका समूह है वह सब पक्षमें आ गया इस कारण तो होगया पूर्ववत् पक्ष धर्म वाला और ५ अगुलियां दृष्टान्तमें आ गई सो मिल गया सपक्षसत्त्व तो इस अनुमानका नाम शेषवत् हो गया। तो यो पूर्ववत् और शेषवत् केवलान्वयी होता है और इस अनुमानमे विपक्ष कुछ नही मिल रहा क्योंकि जितने सत् असत् वर्ग हैं वे सब पक्ष मे ले लिए गये। पञ्चागुली दृष्टान्तमें रखनेके लिए सपक्षमें आ गया। अब सत् असत् को छोडकर दुनियामें और कुछ है ही नही। तो विपक्ष कैसे बने ? तो इस अनुमानमें विपक्ष नही रहा इस कारण व्यतिरेकका अभाव है सो पूर्ववत्, शेषवत्, केवलान्वयी होता है।

पूर्ववदाद्यनुमानत्रैविध्यमे केवलव्यतिरेकी व अन्वयव्यतिरेकीकी खोज

केवलव्यतिरेकी हुआ पूर्ववत् सामान्यतोऽदृष्ट इसका उभय केवलव्यतिरेकी होता है। जैसे अनुमान किया—जीवत् शरीर आत्मक है क्योंकि प्राणादि वाला होनेसे। तो जितने भी जीवत् शरीर हैं वे सब पक्षमे आ गए। तब सपक्ष कुछ मिल नही रहा। हा विपक्ष है। जो आत्मक नही है ऐसे घट पट आदिक विपक्ष हैं। विपक्षमे प्राणादि मत्त्व भी नही हैं और आत्मा भी नही है इस कारण विपक्षव्यावृत्ति तो हो गई। इस कारणसे इसका नाम है केवलव्यतिरेकी। अब जो पूर्ववत्, शेषवत् सामान्यतोऽदृष्ट इन तीन धर्मोंसे युक्त है वह होता है अन्वयव्यतिरेकी। जैसे ये शरीर, इन्द्रियलोक आदिक किसी एक बुद्धिमान् ईश्वरके कारणसे बने हैं क्योंकि कार्य होनेसे। जैसे घटपटादिक। तो इस अनुमानमे अन्वय दृष्टान्त भी मिलता है, व्यतिरेकी दृष्टान्त भी मिलता है। जो जो कार्य होते है वे किसी बुद्धिमानके द्वारा रचे गये हुए हैं। जैसे घट आदिक ये कार्य हैं और किसी एक बुद्धिमानके द्वारा रचे गए हैं, यो अन्वय दृष्टान्त मिल गया। अब व्यतिरेक व्याप्ति बनाकर व्यतिरेक दृष्टान्त भी मिल जायगा। जो जो पदार्थ किसी बुद्धिमानके द्वारा रचे गए नही हैं वे कार्यत्वधर्मके आधार भी नही अर्थात् कार्य भी नही हैं। जैसे आत्मा आदिक। यह हुआ व्यतिरेक दृष्टान्त। तो जो पूर्ववत् शेषवत्, सामान्यतोदृष्ट होता है वह अन्वयव्यतिरेकी होता है।

अन्यथानुपपन्नत्व वाले हेतुसे अनुमानसिद्धि होनेसे पूर्ववदादिकल्पना का वैयर्थ्य

इस प्रकार न्यायसूत्रोंमें जो अनुमानकी विविधता बतायी है वह सब बताये गये हेतुके लक्षणके कारण निराकृत हो जाती है। हेतुका एक लक्षण सही मान लेनेपर फिर न त्रैरूप्यकी जरूरत है न पाचरूप्य की आवश्यकता है और न वहा अनुमानकी त्रिविधता माननेकी आवश्यकता है। जो हेतु साध्यके साथ अविनाभाव रखता हो वह समीचीन हेतु है। जहा ऐसा हेतु पाया जाय वहां साध्यकी सिद्धि है। जहां ऐसा हेतु न मिले वहां साध्यकी सिद्धि नही है सब जगह अन्यथानुपपत्तिसे ही हेतुका

लक्षण बताता है, क्योंकि अन्यथानुपपन्नत्व होनेपर ही हेतु साध्यका गमक बनता है। जैसे कि शंकाकार लोग बतायें कि केवलान्वयीमें अन्यथानुपपन्नत्व प्रमाण निश्चित है अथवा नहीं। यदि प्रमाण निश्चित नहीं है तो हेतु भी सदोष और अनुमान भी सदोष हुआ। यदि प्रमाण निश्चित है अन्यथानुपपन्नत्व तो इस ही से अनुमान सही बन गया फिर अन्वयके कहनेका क्या प्रयोजन? पूर्ववत् शेषवत् आदिक बतानेसे फिर प्रयोजन ही क्या रहा? यदि कहो कि अन्वयके अभावमे अन्यथानुत्पत्तिका भी अभाव अथवा अन्यथानुपपत्तिका भी अनिश्चय रहता है। जब हम अन्वय समझ लेंगे कि साध्यके होनेपर साधन हो-तब तो अन्यथानुपपत्ति भी कहेंगे कि साध्यके अभावमे साधन नहीं होता तो अन्वयके अभावमे अन्यथानुपपन्नत्वका भी अभाव अथवा उसका अनिश्चय रहेगा इस कारणसे अन्वय कहना आवश्यक हो जाता है। उत्तर देते हैं कि यह बात तुम्हारी तब मानी जा सकती है जब कि अविनाभाव अन्वयसे व्याप्त होवे, पर अनेक जगह अन्वय भी रहे और अविनाभाव न रहे। तो जब अविनाभाव अन्वयके साथ व्यापक नहीं है तो व्यापककी निवृत्तिमे अन्वयकी निवृत्ति कैसे मानी जाय? अगर मान भी लें तो उसमे बडी आपत्तियां आयेंगी। घट न रहे तो पट भी न रहे, क्योंकि अव्यापकके हटनेसे अव्याप्य भी हटनेसे लगा, मान लो। यदि कहो कि अविनाभाव अन्वयसे व्याप्त है तो प्राणादिकमे अन्वयकी-निवृत्ति होनेपर अविनाभावकी भी निवृत्ति हो जायगी, फिर प्राणादिमत्व हेतु स चकताका गमक कैसे होगा, जो केवल व्यतिरेकका दृष्टान्त दिया है कि जीवच्छरीर-सात्मक है प्राणादिमान होनेसे तो इस अनुमानमे अन्वय नहीं माना गया। इसे भी व्यतिरेकी मानते हैं तो मानें। अविनाभाव तो तुम मानना चाहते और अन्वय यहा है नहीं, तो जब अन्वयका और अविनाभावका व्याप्य व्यापक सम्बन्ध मान लिया तो अन्वयकी निवृत्ति होनेपर अविनाभावकी भी निवृत्ति हो जायगी। फिर ये प्राणादिमत्व हेतु साध्यको सिद्ध न कर सकेगा, क्योंकि जो जिसका व्यापक है वह उसके अभावमे नहीं हो सकता। जैसे वृक्षपना तो व्यापक है, सीसम होना व्याप्य है, तो जो सीसम है वह तो नियमसे वृक्ष है ही, किन्तु जो जो वृक्ष हैं वे सीसम हुआ करें यह बात नहीं है। तो जो थोडी जगह रहे वह व्याप्य है। जो बहुत जगह रहे वह व्यापक है। तो वृक्ष हुआ व्यापक और सीसम हुआ व्याप्य। अब व्यापककी निवृत्ति होनेपर व्याप्यकी निवृत्ति हुआ करती ना? जैसे वृक्ष कुछ न हो तो सीसम कहांसे आयगा? तो यह नहीं हो सकता कि जो जिसका व्यापक है वह उसके अभावमे हो जाय। यदि व्याप्यके अभावमे व्यापक हो जाय तो उसके अन्वयसे फिर व्याप्ति नहीं कहा जा सकता है। जिसके अभावमे जो उसके अन्वयसे फिर व्याप्ति नहीं कहा जा सकता है। जिसके अभावमे जो होता है वह उससे व्याप्त नहीं हुआ करता। जैसे गधाके अभावमे धुवां हो जाया करता है तो गधा और धुवांकी व्याप्ति न हो जायगी कि गधाके होनेपर धुवां हो और न होनेपर न हो। तो जो जिसके अभावमे हो जाता उसकी उससे व्याप्ति नहीं कही जा

सकता। अब यहाँ अन्वयके अभावमें अविनाभावका होना मान लिया तो अन्वयकी और अविनाभावकी व्याप्ति तो न हो सकी। प्रयोजन यह है कि केवलान्वयीका जो तुमने उदाहरण दिया है उसमें यह तो विचार लो कि अन्यथानुपपन्नत्व वहाँ है कि नही हेतुमे। यदि अन्यथानुपपन्नत्व है तो इस ही अन्यथानुपपत्तिके कारण यह अनुमान प्रमाण बन गया। पूर्ववत्, शेषवत् आदिककी कल्पना करके फिर हेतुका सही मानना यह परिश्रम क्यो किया जा रहा है?

असद्वर्गको ज्ञानविषय माननेपर विडम्बना—अब अन्य बात पूछी जा रही है कि तुम्हारे अनुमानमे सत् असत् वर्ग किसी एक ज्ञानके आलम्बनभूत हैं क्योंकि अनेक होनेसे। तो इसमें जो अनेकत्व हेतु दिया है और उसको केवलान्वयी बताया है सो कैसे बताया है? क्या व्यतिरेकका अभाव होनेसे केवलान्वयी कहलाता है? यदि व्यतिरेकके अभावसे हेतुको केवलान्वयी कह दिया जाय तो व्यतिरेकका अभाव भी कैसे होगा? उसका कारण क्या है? यदि कहो कि, व्यतिरेकका जो विषय है विपक्ष उसका अभाव होनेसे व्यतिरेकका भी अभाव है तब तो यह बतलावो कि विपक्षका अभाव, इसका क्या अर्थ? क्या पक्ष सपक्षका ही नाम विपक्षका अभाव है या निवृत्ति मात्रका नाम, न होना, तुच्छाभावका नाम विपक्षाभाव है। यदि कहो कि पक्षसपक्ष होनेका नाम विपक्षाभाव है। यदि कहो कि पक्षसपक्ष होनेका नाम विपक्षाभाव है तो इसमें तो अनेकान्तमत आ गया क्योंकि स्याद्वादसिद्धान्तमें अभावको अन्य पदार्थोंके सद्भावरूप माना सो यहाँ तुमने विपक्षके अभावको पक्षसपक्षरूप मान लिया, अभाव का भावान्तर स्वभाव स्वीकार कर लिया। यदि कहो कि निवृत्तिमात्र है विपक्षाभाव, विपक्ष नहीं। और न कुछ कहना न अन्य वस्तुका सद्भाव जानना, किन्तु विपक्ष नही ऐसी निवृत्तिमात्र विपक्षाभाव मानोगे तो यह तो बतलावो कि निवृत्तिमात्ररूपसे वह विपक्षाभाव समझा गया कि नही? नही समझा ऐसा तो कह नही सकते, क्योंकि फिर तो विपक्षके अभावमे भी सन्देह हो गया। निवृत्तिमात्र विपक्षाभाव तो जाना नही गया तो इसका अर्थ है कि विपक्षाभावमे सन्देह आ गया। तब व्यतिरेकका अभाव भी सदिग्ध बन गया। जब विपक्षका अभाव सन्देहस्वरूप है तो व्यतिरेकका अभाव भी सदिग्ध हो गया। तब फिर केवलान्वय भी सदिग्ध बन गया। केवलान्वयी हेतु फिर सिद्ध नही होता।

निवृत्तिमात्र विपक्षाभाव माननेसे सिद्धान्तकी अनुपपत्ति—यदि कहो कि निवृत्तिमात्र विपक्षको अभाव हमने समझ लिया तो वह यदि साध्यकी निवृत्तिसे साधनकी निवृत्तिका आधारभूत जान लिया तो उसीका नाम विपक्ष है। विपक्षका अभाव कैसे हुआ? और, जब विपक्षका अभाव न हो तो व्यतिरेकका भी अभाव नही होता, क्योंकि विपक्ष वही कहलाता जो साध्य साधनके अभावका आधार हो। इस ही रूपसे जो समझा गया हो उसे विपक्ष कहते हैं। तो साध्य साधनकी निवृत्तिका आधार

रूपसे जो निश्चित हो जैसे कि यहाँ अभावको ही मान लिया तो वह विरुद्ध न होगा अर्थात् विपक्ष मान लिया जायगा। जैसे भावसे सपक्षको मान लिया जाता इसी प्रकार अभावसे विपक्ष भी बन गया अन्यथा अर्थात् निवृत्तिमात्र भी विपक्ष है समझा नहीं गया अथवा उसे तुम विपक्ष नहीं मानते। तो तुम्हारे इस केवलान्वयीके अनुमानमे जो कहा गया कि सत् असत् वर्ग किसीके एक ज्ञानका आलम्बन करता है तो यहाँ सत् तो ठीक है। जो जो सत् पदार्थ हैं वे किसी ज्ञानमे आते हैं। पर असत् तो अभावरूप है। अब असत् अभावरूप पक्ष मान लिया तो निवृत्तिमात्रका अभावको तुम विपक्ष क्यों नहीं मान लेते ? असत् तो पक्ष बन जाय किन्तु असत् अर्थात् अभाव विपक्ष न बने ऐसा विभाग कैसे होगा ? तात्पर्य यह है कि सत् असत् वर्ग किसीके एक ज्ञानमे आते हैं अनेक होनेसे इस अनुमानमे केवलान्वयी तो बना दिया, केवल व्यतिरेकी नहीं कहते आप लोग और उसका कारण बतलाते हो यहाँ विपक्षका अभाव है, विपक्ष न माननेपर इस ही अनुमानमे स्वयं अभावको पक्षमें डाल दिया। सत् पदार्थ और असत् पदार्थ किसीके ज्ञानमे आते हैं तो असत्के मायने क्या है ? अभाव। उसे तो पक्षकी कोटिमे ले लिया और यहां अभावको विपक्षमे नहीं लेते। अगर अभावमात्र, निवृत्तिमात्र विपक्ष स्वीकार कर लिया जाय तो केवलान्वयी हेतु नहीं रहता।

शङ्काकाराभिमत सदसद्वर्गकी व्यवस्था व अनिष्ट प्रसङ्ग—अब शङ्काकार कहता है कि हम असत् वर्ग इस शब्दसे सामान्य समवाय और अन्त्यविशेष इनका ही ग्रहण करते हैं अभावका ग्रहण नहीं करते। नैयायिकोके सिद्धान्तमे सत् उन्हें माना है जो सत्ताके सम्बन्धसे सत् हुए हैं और असत् उन्हे माना है जो स्वत ही सत् हैं। सत्ताके सम्बन्धकी आवश्यकता नहीं है, तो ऐसा सामान्य समवाय और अन्त्यविशेष यह स्वतः सत् है इसमे सत्ताका सम्बन्ध नहीं है। तो असत् शब्दसे सामान्य समवाय और अन्त्यविशेष कहा गया है अभाव नहीं कहा गया है। इसका उत्तर दिया जा रहा है — तब तो अभाव विषयक ज्ञान किसीके भी न बन सकेगा। और, यह जो हेतु दिया है अनेक होनेसे। किसीके एक ज्ञानमे आता है तो अभाव तो नहीं आया, क्योंकि अभाव न सत् वर्गमे रहा न असत् वर्गमें रहा। तब फिर आपके ईश्वर का समस्त कार्योंके कारण समूहोका परिज्ञान होना बडा व्यवस्थित बन गया अर्थात् नहीं बन सका। जब एक अभावका ज्ञान न बन सका तो अधूरा ही ज्ञान रहा और फिर जब किसी कार्यके प्रागभावका ज्ञान नहीं है तो कार्यका भी ज्ञान नहीं है। जैसे घट बनता है मृतपिण्डसे और मृतपिण्डकी हालतमे घटका प्रागभाव है। जब मिट्टीका लौंदा है उससे बनेगा घट ना तो घट आगे बनेगा। जब तक वह मिट्टीका लौंदा है तब तक तो घटका अभाव है। वह घटका अभाव क्या ? प्रागभाव। घट बननेमे पहिले उपादानमे घटका अभाव रहना अब प्रागभाव आदिक किसी भी अभावका ज्ञान तो माना नहीं, जिसको प्रागभावका ज्ञान नहीं है वह कुछ कार्य भी नहीं कर सकता। जैसे आटेकी लोईसे रोटी बनायी जाती है तो जब तक आटेकी लोई है तब तक रोटी

पर्यायका अभाव है, तो रोटीका प्रागभाव लोई है यह बात चाहे एक शास्त्र पद्धतिसे न मालूम हो बनाने वालेको, किन्तु उसके ज्ञानमे बराबर है कि यह लोई रोटीका प्राग-भाव है। ऐसा ज्ञान है तभी तो झट लोईसे रोटी बना लेते हैं। उन्हें मालूम है कि इसमे रोटी अभी नहीं है मगर इसके बाद ही रोटी बन लेगी। अब ईश्वरको अभाव का ज्ञान तो माना नही, प्रागभावका ज्ञान नही है तो कार्य कैसे बना सकेगा ?

शकाकारकी व्याख्यासे असद्वर्गमे अभाव न आनेसे ईश्वरकर्तृ त्वकी असिद्धि अब अन्य बात सुनो कि यह जो तुम्हारा अभाव है प्रागभाव आदिक या इस वर्तमान हेतुमे विपक्षका अभाव भी निवृत्तिमात्र यह पक्ष सपक्षसे यदि बहिर्भूत है कोई अलग चीज है तो इस ही से अनेकत्वात् यह हेतु अनैकान्तिक बन गया, क्योंकि देखो—बातें तो अनेक हो गई, सत् वर्ग भी है अ त् वर्ग भी है और उसके अतिरिक्त कोई अभाव भी है लेकिन अभाव तो ज्ञानमें माना नही, तो अनेक होनेपर भी किसीके एक ज्ञानका आलम्बनपना अब यहाँ माना नही गया तब यह हेतु ही अनैकान्तिक दोष से दूषित हो गया और यदि मान लिया जाय तो फिर अभाव पक्ष कैसे नही रहा। और इसी प्रकार अभाव विपक्ष भी हो गया। जब व्यतिरेक मिल गया तो पूर्ववत्, शेषवत् अनुमानको तुम केवलान्वयी कैसे कहोगे ? विपक्ष है और विपक्षमे हेतुकी व्यावृत्ति है तो यह व्यतिरेकी भी बन गया। शकाकार कहता है कि इस तरह विपक्षका अभाव भी यदि ज्ञानका आलम्बन है तो वह भी पक्ष रहा आये फिर भी, विपक्षका अभाव ही रह गया। वह पक्षमे सामिल हो गया। तो उत्तर देते हैं तो इस तरह फिर भी प्रश्न तो करना शेष रह गया कि विपक्षका अभाव किसका नाम है। यदि पक्ष सपक्षका ही नाम विपक्षका अभाव है तो भावसे भिन्न अभिन्न तो कुछ नही रहा। तो अनेक भेद बनाकर अनुमान सही करना यह युक्त नही है किन्तु हेतुका सही लक्षण मान लो, साध्यका अविनाभावी मानलें तो सब व्यवस्थित हो जाता है।

तुच्छ विपक्षनिवृत्तिको विपक्षाभाव माननेका आलोचन —यदि कहो कि तुच्छ निवृत्तिका नाम विपक्षाभाव है तो यह बतलावो कि वह भी क्या अप्रतिपन्न है अर्थात् न जाना हुआ है। यदि वह भी न जाना हुआ है तो संदिग्ध होगया विपक्षाभाव और उसका संदेह होनेपर फिर व्यतिरेकका भी अभाव संदिग्ध हो गया। तब फिर केवलान्वयी निश्चित् नही रह सका। इस ही प्रकारका फिर बारबार अनवस्था बढती जानेसे चक्रक दोष आया। अनवस्था तो होता है दोकी अनवस्थामे और चक्रक होता है तीन अथवा अधिककी अनवस्थामें इस कारणसे केवलान्वयी रूपसे माने गए हेतुका विपक्षाभाव ही तुच्छ विपक्ष है और उससे साध्यनिवृत्तिके द्वारा साधननिवृत्ति हुई तब फिर क्यो न व्यतिरेक हुआ। तो यों व्यतिरेकका सद्भाव होनेसे ही अविनाभावका और उसके परिज्ञानका प्राणादिमत्त्वकी तरह सद्भाव हो जानेसे अनेकत्वादि हेतुवोमे माने गये अन्वयसे क्या प्रयोजन रहा ? यदि कहो कि विपक्षाभावके कोई

अपादानपना नही है इस कारण उनसे साध्य साधनकी व्यावृत्ति नहीं होती है तो यह बात यो युक्त नही कि यो तो "प्रागभाव आदिकसे भाव भिन्न है और प्रागभाव आदिक परस्पर एक दूसरेसे भिन्न हैं।" इत्यादिक स्थलोमे भी फिर अपादानत्वका अभाव हो जायगा। इस कारण भाव अभावोका प्रागभावादिकोका साकर्य हो जायगा, बिल्कुल एकमेक हो जायगा।

त्रिविध व्याप्तियोमे वहिर्व्याप्तिकी साध्यसिद्धिमे अनुपपत्ति – अब अन्य बात कही जा रही है कि अन्वयका अर्थ है व्याप्ति। व्याप्ति होती है तीन प्रकार की बहिर्व्याप्ति, साकल्यव्याप्ति और अन्तर्व्याप्ति। उनमेसे बहिर्व्याप्तिमे अनुमान जैसे बनाया कि फूटे घडेके अतिरिक्त सब कुछ क्षणिक है सत्व होनेसे अथवा कृतक होनेसे फूटे घडेकी तरह। अथवा ये समस्त ज्ञान निरावलम्बन होते हैं, किसी धर्मीका आधार नही रखते है ज्ञानरूप होनेसे। जैसे स्वप्न सबधी ज्ञान। अथवा ईश्वर अल्पज्ञ है व रागादिमान है वक्ता होनेसे मुसाफिरोकी तरह। ये सारे अनुमान फिर साध्यके गमक याने साधक हो जायेंगे क्योकि केवलान्वय इन सब अनुमानोमे सुलभ है। जैसे पहिले अनुमानमे सत्त्व और कृतकत्व हेतुका अन्वय क्षणिकत्वके साथ हो गया और उसका दृष्टान्त मिलता है फूटा घडा। ये समस्त ज्ञान निरालम्बन है ज्ञानरूप होनेसे। इसमे ज्ञानरूपताका निरालम्बनताके साथ अन्वय है और उसका दृष्टान्त मिल गया स्वप्न ज्ञान। तीसरे अनुमानमे वक्तृत्वका रागादिमान् और अल्पज्ञके साथ व्याप्ति है और उसका दृष्टान्त मिल गया मुसाफिर। शकाकार दोष परिहारमे कह रहा है कि समस्त सत्त्व क्षणिकके साथ व्याप्ति नही है क्योकि आत्मादिकमे सत्त्व तो है पर क्षणिकत्व नही पाया जाता। उत्तर देते हैं कि यदि आत्मादिकमे क्षणिकत्व किसी भी प्रकार न हो तो उसमे अर्थ क्रिया भी नही बन सकती। तब फिर वे पदार्थ भी न रहेगे। और फिर घट आदिकके दृष्टान्तमे सत्त्वादिक क्षणक्षयादिके होनेपर देखा गया होनेपर भी यदि कही किसी और जगह क्षणक्षयके अभावमे भी सत्त्वादिक हो जायें तो फिर बहिर्व्याप्ति रूप अन्वय तो नही रहा क्योकि सत्वादिक हेतुमे बहिर्व्याप्तिरूप अन्वयके बाधा आ गई याने आत्मा आदिक क्षणिक न होनेपर भी सत् हैं ऐसी जब बाधा आ गयी तो उसका लक्षण ही दूषित हो गया। इससे बहिर्व्याप्तिको अन्वय मानकर केवलान्वयी सिद्ध न कर सकेगे।

सकलव्याप्तिरूप अन्वयकी अनुपपत्ति— यदि कहोगे कि सकल व्याप्ति का नाम अन्वय है याने साधन सामान्यका साध्यसामान्यके साथ सम्बन्ध होनेका नाम सकल व्याप्ति है और वही अन्वय है तो यह बतलावो कि सकलव्याप्तिका लक्ष्य क्या दृष्टान्त वाले धर्मीकी तरह साध्य सहित पक्षमे और अन्यत्र व्यक्तियोमे साध्यके साथ साधनकी व्याप्ति होनेका नाम सकल व्याप्ति है ना ? याने सर्वत्र साधनकी साध्यसे व्याप्ति होनेका नाम सकल व्याप्ति है तो वह कैसे जानी गयी ? क्या सकल व्याप्ति

प्रत्यक्षमे जान ली गई या अनुमानसे ? यदि कहो कि प्रत्यक्षसे या मानसिक प्रत्यक्षमे जान ली गई है तो क्या इन्द्रिय प्रत्यक्ष ? इन्द्रिय प्रत्यक्षसे तो बन नही सकती क्योकि चक्षु आदिक इन्द्रियका समस्त साध्यसाधनभूत पदार्थोमे सन्निकर्ष नही बन सकता और इसी कारण इन्द्रिय प्रत्यक्ष नही हो सकता । शकाकारके सिद्धान्तमे इन्द्रिय प्रत्यक्ष तब बनता है जब इन्द्रियका और पदार्थका सन्निकर्ष हो जाय । तो सकल व्याप्तिमे लोक भरके साधन और समस्त साध्य इनके साथ व्याप्ति होनेकी बात है तो ये सारे साध्य, सारे साधनोके साथ चक्षु आदिक इन्द्रियोका सन्निकर्ष सम्भव ही नही । तो इन्द्रिय प्रत्यक्षसे सकल व्याप्ति नही जानी जा सकती । सन्निकर्ष न हो और इन्द्रिय प्रत्यक्ष हो जाय ऐसा तो शकाकारके सिद्धान्तने माना ही नही । और, यदि समस्त साध्य और साधनोके साथ चक्षु आदिक इन्द्रियका सन्निकर्ष हो जाय तो इसके मायने यह हुआ कि हम आप जैसे सभी साधारण लोग फिर सर्वज्ञ बन गए । फिर ईश्वरमे विशेषता क्या रही ? जैसे ईश्वरने प्रत्यक्षमे समस्त पदार्थोको जान लिया इसी प्रकार यहाँके लोगोने समस्त साध्य साधनके रूपमे लोकके समस्त पदार्थोंको जान लिया ।

साध्यसाधनका सर्वोपसहारसे ग्रहणरूप सकल व्याप्तिपर प्रश्नोत्तर— अब शकाकार कहता है कि साध्य और साधनका सर्वोपसहार रूपसे ग्रहणका नाम है सकल व्याप्ति ग्रहणसाध्य है, अग्नि सामान्य, साधन है, धूम सामान्य तो सामान्यरूप धुवाँका पूर्णरूपसे सबको एक ही अनुमानमे सामस्त्यरूपसे ग्रहण हो जाता है परन्तु विशेषका जो ज्ञान है अर्थात् इस पर्वतमे अग्नि है पक्ष विशेषण लगाकर किसी आधार मे साध्यको सिद्ध करनेकी बात यह पक्षधर्मत्व बलसे हो जायगा । हेतुमे पक्षधर्मता पाई जाती है इस कारण पक्षमे साध्य और साधनका ज्ञान हो जायगा । उत्तर देते हैं कि इस तरहसे तो क्षणिकत्व आदिक भी साध्य हो गए और सत्त्व आदिक साधन हैं और उन दोनोका अन्वयरूपसे, निरशरूपसे दीपक आदिकमे एक साथ साध्यसाधनका देखा जाना बन गया तो उनसे फिर सकलव्याप्तिका ग्रहण क्यो न हो जायगा ? इससे इन्द्रिय प्रत्यक्षके द्वारा साध्यसाधनका सर्वोपसहाररूपसे ग्रहण करना युक्त नही बनता ।

मानस प्रत्यक्ष तथा अनुमानसे भी सकलव्याप्तिका अग्रहण यदि कहो कि मानस प्रत्यक्षसे सकलव्याप्तिका ग्रहण हो जायगा तो उसके भी यही दोष है । जो इन्द्रिय प्रत्यक्षमें बात कही वही मानस प्रत्यक्षमे है । इससे प्रत्यक्षके द्वारा सकल व्याप्तिका ग्रहण नही बनता । अनुमानसे भी ग्रहण नही बनता सकलव्याप्तिका, क्योकि उसमें अनवस्था दोष आता है । अनुमानमे सकलव्याप्ति जानो और सकलव्याप्तिको जानेगे अन्य अनुमानसे, वह अनुमान अन्य सकलव्याप्तिमे जाना जायगा, इस तरह न सकलव्याप्ति सिद्ध हो सकती और न अनुमान बन सकता । इस प्रसङ्गमे यह भी एक बात है कि यदि सामान्यको ही साध्य बना रहे हो तो फिर साधन करना, अनुमान करना विफल है क्योकि सामान्यसाध्यमे कोई विवाद नही है । और जिस समयमें

व्याप्तिका ग्रहण किया है उस ही समयमे साध्य सामान्य प्रसिद्ध हो गया । यदि व्याप्तिके ग्रहणके सम्बन्धमे साध्यसामान्यकी सिद्धि नहीं है तो सामान्य साध्य साधनो का सामस्त्य रूपमे व्याप्ति कैसे निर्णीत हो सकेगी । जैसे कि अनुमान बनाया कि पर्वत मे अग्नि है धूवा हु नेसे, तो इस अनुमान बनानेसे पहिले जो चित्तमे व्याप्ति हुई जहाँ जहाँ धुवाँ होता वहाँ वहाँ अग्नि होती, इस व्याप्तिके द्वारा ही अग्नि सामान्य जान ली गई । अब अनुमान बनानेकी क्या आवश्यकता हुई ?

साध्यत्वके स्वरूपकी असत्करण व सज्ज्ञापन इन दो विकल्पोमे असिद्धि

अच्छा, अब यह बतलावो कि साध्यपनेका अर्थ क्या है ? क्या असत्का उत्पादन करने का नाम साध्यपना है ? या जो सद्भूत है उसको हेतुकेद्वारा जता देनेका नाम साध्यत्व है ? जैसे कि पर्वतमे अग्नि सिद्ध कर रहे हैं, अग्नि साध्य बना रहे हैं तो वहा साध्य सिद्ध करनेका अर्थ क्या है ? क्या अग्निको पैदा कर देना अथवा अग्नि थी, उसका ज्ञान करा देना ? यदि कहो कि असत्को उत्पन्न करनेका नाम साध्यपना है तो देखलो ! अब साध्य सामान्य भी उत्पन्न किया जाने लगा । तो सामान्य फिर अनित्य हो गया और अव्यापक हो गया । शङ्काकारके सिद्धान्तमे सामान्य नित्य है और व्यापक है, सदाकाल रहता है और लोकमे सर्वत्र फैला हुआ है । लेकिन अब जब कि साध्यका अर्थ यह किया जाने लगा कि जो असत् हो उसे उत्पन्न करना सो साध्य है और साध्य माना यह सामान्यरूप तो साध्यको उत्पन्न किया, इसका अर्थ है सामान्यको उत्पन्न किया । और जो उत्पन्न होता है वह अनित्य होता है और व्यापक भी नहीं होता । इससे असत्को उत्पन्न करनेका नाम साध्यपना है यह बात नही बनती । यदि कहो कि सत्पदार्थका ज्ञान करा देना साध्यपना है तो यहाँ साध्यसामान्य दृश्य होनेपर धर्मीकी तरह प्रत्यक्ष हो जाता है, यह बात किसके द्वारा जनाई गई ? सत् पदार्थके जना देनेका नाम यदि साध्य है तो जैसे कि पक्ष प्रत्यक्षसे विदित हो रहा है यो हो साध्य भी विदित होने लग रहा तो यह बतलावो कि किस हेतुके द्वारा वह साध्य जाना गया । अन्यथा अर्थात् प्रत्यक्ष भी किसी हेतुके द्वारा ज्ञापित किया जाय तो धूम सामान्य भी अग्नि सामान्य द्वारा ज्ञापित की जाने लगे । यदि कहो कि धूम विशेषकी सहायतासे धूम सामान्य ही प्रत्यक्ष हो रहा, अग्नि सामान्य नहीं इस कारण यह दोष न आयगा तो यह बात यो ठीक नही है कि सामान्य किसीकी सहायताकी अपेक्षा नही रखता । धूम सामान्य धूमविशेषकी सहायता पहिले पाये फिर प्रत्यक्ष बने यह बात नही होती । इस कारण साध्यपनेका कोई अर्थ न निकल सका, न यह ही अर्थ निकला कि सत्को जना देनेका नाम साध्य है ।

पक्षधर्मत्वके बलसे विशेषप्रतिपत्ति माननेपर प्रश्नोत्तर—जो तुमने कहा कि विशेष प्रतिपत्ति पक्ष धर्मत्वके बलसे ही होता है तो पक्षधर्मत्वके बलसे ही हो रहा है या धूम सामान्यका हो रहा है ? यदि पहिला पक्ष मानते तो असगत है

क्योंकि विशेषरूपसे व्याप्तिकी प्रतिपत्ति न होनेसे व्याप्तिका परिज्ञान न होनेसे विशिष्ट धूम साध्यका गमक नहीं बन सकता। यदि कहो कि धूम सामान्यके साथ अग्नि सामान्य व्याप्त है पर उस धूमसे अग्नि विशेषकी याने पर्वतस्थ अग्निकी सिद्धि तो नहीं हुई क्योंकि धूम सामान्यके द्वारा विशिष्ट अग्नि व्याप्त नहीं है। यदि कहो कि साधन सामान्यसे साध्य सामान्यका परिज्ञान हुआ। फिर उससे ही अग्नि विशेषका ज्ञान बन जाता है क्योंकि सामान्य विशेषनिष्ठ होता है। सामान्य विशेषमें पाया जाता है तो पहिले सामान्यका परिज्ञान होने तो दो बहुत ही शीघ्र तुरन्त विशेषका भी परिज्ञान हो जायगा। तो यहा अनुमानमे पहिले धूमसामान्यका ज्ञान हो लेने दो पश्चात् यह ज्ञान होगा कि यह अग्नि विशेष है तो उत्तरमे कहते हैं कि फिर तो सामान्य भी विशेषमात्रसे व्याप्त होता हुआ विशेषको ही जनावे फिर सामान्यको न जनावे। धूमके द्वारा एकदम विशिष्ट अग्निका ज्ञान होना चाहिये अग्नि सामान्यका नहीं। यदि कहो कि विशिष्ट जाना जाय विशेषके आधार रहने वाला साधन सामान्य जैसे कि पर्वतमें रहने वाले साध्य सामान्यका गमक हो जाता है याने विशिष्ट विशेषके आधारमे रहने वाले साधनसे विशिष्ट साध्यको जान लिया जाता है जैसे कि पहिले पर्वतमे रहने वाला धुवां है यो जाना, फिर उससे यो जाना जायगा कि पर्वतमे रहने वाली अग्नि है। यह भी कहना कथनमात्र है, क्योंकि इसकी कोई व्याप्ति नहीं मिलती कि जहा जहा आगे रहने वाले पर्वतमे रहने वाला धूम है वहा वहा अग्नि है। याने विशिष्ट विशेषके आधारमे रहने वाले साधनका विशिष्ट विशेषमे आधारमे रहने वाले साध्य सामान्यका अविनाभाव नहीं है। व्याप्ति नहीं बना करती। यदि कहो कि विपक्षमे सद्भावका बाधक अनुपलम्भ प्रमाण पाया जा रहा है उससे व्याप्तिकी सिद्धि हो जायगी तो कहते हैं कि ठीक है फिर तो अविनाभाव ही पर्याप्त रहा। अविनाभाव ही अवस्था रही। फिर व्यर्थ बनाकर अनुमानको नियमित सही सिद्ध करनेकी चेष्टा क्यो? इस कारण अन्तर्व्याप्ति कहना भी खण्डित हो जाती है। सकल व्याप्ति जैसे सिद्ध नहीं हुई उसी प्रकार अन्तर्व्याप्ति भी सिद्ध नहीं हो सकती। उसे भी सिद्ध करने वाला प्रत्यक्ष आदिक कोई प्रमाण नहीं है। इससे यह कहना कि पूर्ववत् शेषवत् केवलान्वयी होता है यह बात युक्त नहीं है। साध्यके साथ अविनाभावी रूपसे निश्चित जो हेतु है वह साध्यको सिद्ध करता है और उससे अनुमान बनता है। पूर्ववत् आदिक अनुमानकी कल्पना करना व्यर्थ है।

पूर्ववत् सामान्यतोऽदृष्टसे केवल व्यतिरेकी हेतु सिद्ध करनेके सम्बन्धमे चर्चा समाधान— शकाकार कहता है कि दूसरी प्रकारका अनुमान बनानेके लिये जो पूर्ववत् सामान्यतोऽदृष्ट च इस प्रकार जो च शब्द कहा गया है उस च शब्दका भिन्न क्रम वाला हुआ ही करता है तब अर्थ यह हुआ कि पूर्ववत् सामान्यता च अदृष्ट। अर्थात् जो पूर्ववत् है पक्ष धर्म है और सामान्यसे नहीं देखा गया, किन्तु विशेषरूपसे विपक्षमे न देखा गया हो वह अनुमान सही है, इसमे केवल व्यतिरेकी हेतु बताया गया

है। जीवत् शरीर सात्मक है प्राणादि वाला होनेसे, इसमें वह केवल व्यतिरेकी हेतु घट जाता है, क्योंकि साध्य है सात्मक और जो सात्मक नहीं है ऐसे जो घट पट आदिक हैं उनमें जीवत् शरीरका अभाव और प्राणादिमत्वका अभाव पाया जाता है। इससे यह द्वितीय प्रकारका अनुमान जिसे पूर्ववतसामान्यतोदृष्ट कहते हैं वह केवल व्यतिरेकी हुआ। उत्तर देते हैं कि यह बात भी ठीक नहीं है, क्योंकि प्राणादिकका अन्वय दृष्टान्त नहीं है। तो अविनाभाव सम्बन्ध कैसे कहा जावे। यदि कहो कि व्यतिरेकसे जान लिया जा सकता। जैसे कि व्यतिरेक यहाँ बनेगा कि घट आदिकसे सात्मकपना निवृत्त होता है और प्राणादिक भी नियमसे निवृत्त होते है इस कारण सात्मकत्वका अभाव प्राणादिके अभावोसे व्याप्त है जैसे कि अग्निका अभाव धूमके अभावसे व्याप्त है। जीवत् शरीरमें प्राणादिकके अभावका विरोध है अर्थात् वहाँ प्राणादिकका सद्भाव जाना जा रहा है सो प्राणादिकके अभावको निवृत्त कर देता है। और वह निवृत्त होता हुआ अपने द्वारा व्याप्त सात्मकपनेका अभावको लेकर निवृत्त होता है इस तरह सात्मकताकी सिद्धि हो जाती है। अर्थात् जहा प्राणादिमत्व नहीं है वहा सात्मकपना भी नहीं है। तो अर्थ हुआ कि जहां प्राणादि हैं वहां सात्मकता है उत्तर मे कहते हैं कि यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि अन्य अनुमानोंमें भी उस प्रकारका अविनाभाव बराबर प्रसिद्ध है तो सारे अनुमान केवल व्यतिरेकी ही कहलायेंगे और केवल व्यतिरेकपना होना यह अनुमानकी समीचीनता प्रबल प्रमाण है। अन्वयमात्रमें साध्यकी सिद्धि होनेपर कही अन्य अनुमान तो नहीं बन रहा। इससे अविनाभावको पक्का करना यह तो हेतुके लक्षणकी बात होगी। आखिर बात यह आयी कि जो साध्यके साथ अविनाभावी रूपसे निश्चित हो उसे हेतु कहते हैं।

व्यतिरेककी असिद्धि और पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतोदृष्टसे अन्वयव्यतिरेकी अनुमानकी अनुपपत्ति अब कुछ और विचार कीजिये। साध्यकी निवृत्तिसे साधनकी निवृत्तिको व्यतिरेक कहते है। तो वह व्यतिरेक कभी किसी समय होता है या सर्वत्र सर्वदा होता है? यदि कहो कि किसी समय कही होता है तो ऐसा व्यतिरेक जो कभी हो, कही हो वह तो साधनाभासमे भी सम्भव है यह तो निर्णायक नहीं हुआ। यदि कहो कि सब जगह सब समय व्यतिरेक होता है तो सामस्त्यरूपका व्यतिरेकसे ज्ञान प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोसे नहीं हो सकेगा। तो इससे व्यतिरेककी सिद्धि ही न हो सकेगी। इस प्रकार पूर्ववत्, शेषवत्, सामान्यतोदृष्ट ये तीन अन्वयव्यतिरेकी बनाते हैं। यह बात भी निराकृत हुई क्योंकि तुम्हारे दो प्रकारसे हेतु तीन प्रकारके थे -पहिला (१) पूर्ववत् शेषवत् (२) दूसरा था पूर्ववत् सामान्यतोऽदृष्ट (३) तीसरा बनाया पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतोऽदृष्ट। पूर्ववत् शेषवत् तो हुआ केवलान्वयीको सिद्ध करने वाला, पूर्ववत्सामान्यतोदृष्ट हुआ केवलव्यतिरेकीको सिद्ध करने वाला और पूर्ववत्शेषवत्सामान्यतोदृष्ट हुआ अन्वयव्यतिरेकीको अनुमान बनाने वाला, सो जो दोष उन दोनो पक्षोंमें दिये गये थे केवलान्वयी और केवलव्यतिरेकी सिद्ध

करने वालेके हेतुमे ये दोनों दोष यहा भी उपस्थित होते हैं क्योकि यहा अन्वय और व्यतिरेक दोनों माने और पूर्वमे एक जगह केवल अन्वय माना, दूसरी जगह केवल व्यतिरेक माना, बात वही हुई। जो दोष इन दोनोमे था वह दोष इस अन्वयव्यतिरेक मे लिया जायगा और फिर जो तुमने उदाहरण दिया था कि यह सारा ससार इन्द्रिय लोक आदिक सारा विश्व किसी बुद्धिमान् ईश्वरके द्वारा बनाया गया है क्योकि कार्य रूप होनेसे घटपट आदिककी तरह। यह भी अयुक्त है। यह ईश्वरके निराकरणके प्रकरणमे विशेषतया दोष देनेसे अयुक्त ईश्वरवादके प्रसङ्गमें बता ही दिया गया।

अविनाभाव माने विना कारण कार्य अनुभय अर्थवाले पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतोदृष्टकी अनुपपत्ति—अब शकाकार कह रहा है कि पूर्ववत्का तो अर्थ है कारणसे कार्यका अनुमान करना क्योकि पूर्व नाम है कारणका। कारण और कार्य मे सबसे पहिले कारण हुआ करता है। तो कारण ही जिस अनुमानका लिङ्ग हो, साधन हो उसे कहते हैं पूर्ववत् अर्थात् कारणरूप साधनके द्वारा उत्पन्न हुआ अनुमान, शेषवत्का अर्थ है कार्यसे कारणका अनुमान बनना। शेषका अर्थ है कार्य। और कार्य है लिङ्ग जिस अनुमानका उसका नाम है शेषवत् अर्थात् कार्यसे कारणका अनुमान करना, जैसे यह पुरुष रूप आदिकके ज्ञान वाला है, क्योकि चक्षु आदिक वाला होनेसे इसी प्रकार सामान्यतोदृष्ट उसे कहते हैं कि जो न कार्य है और न कारण है अर्थात् अकार्यकारणसे अकार्यकारणका अनुमान करना कि जो न कार्य है और न कारण है उसे कहते हैं सामान्यतोऽदृष्ट अर्थात् अकार्यकारणसे अकार्यकारणका अनुमान करना, क्योकि वह अविनाभाव मात्र सामान्यसे हो जाता है। उत्तर देते हैं कि ऐसी भी व्याख्या करना यो सङ्गत नही होती कि अविनाभाव नियमका निश्चय करानेवाला प्रमाण है तर्क, सो वे तर्क प्रमाण मानते नही, इससे यह बात बनती नही। इस व्याख्यानमें समस्त ऊहापोह है, कारणसे कार्यका अनुमान सामान्यसे सामान्यका अनुमान अविनाभावरूप नियम अनुमानमे हो तब तो यह बनता है। कोई कार्य ऐसा होता है कि कारणके अभावमे होते ही नहीं, कोई कारण ऐसे होते हैं कि कार्यके अभावमे होते ही नही, अन्य भी जितने साधन साध्य हैं जो कि अनुमानको प्रमाण सिद्ध करते हैं, उनमे भी अविनाभाव है तो अविनाभावके नियमको मानना और उसका अवगम हुआ तर्कज्ञान उसे माने तो तो यह बात युक्त है और जो लोग मानते हैं तर्कज्ञानको जैसे स्याद्वादी लोग उनके यहा यह बात युक्त होती है। ये तीन तरहके अनुमान बनाना उनके यहा सम्भव है।

शकाकारकी पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतोदृष्टके सम्बन्धमे अन्तिम व्याख्या—शकाकार कहता है कि हमारे इन तीन हेतुवोकी व्याख्या अब दूसरी सुनो, पूर्ववत् कहते हैं उस अनुमानको जिस अनुमानमे साधन साध्यका सम्बन्ध पहिले निश्चित किया गया। तो साध्य साधनके सम्बन्धके पहिले निश्चय करनेके बाद जो अनुमान

बनता है उसे पूर्ववत् हेतु कहते हैं। याने सबसे पहिले साध्य साधनके सम्बन्धका निर्णय हुआ करता है। जैसे यह पर्वत अग्नि वाला है धूमवाला होनेसे तो यहां अग्नि और धूमके सम्बन्धका ज्ञान सर्वप्रथम हुआ है। तब वह अनुमान बन सका। तो पूर्व मे साध्य साधनका सम्बन्ध निश्चय किया जाता है और जिस अनुमानमे साध्यसाधन का सम्बन्ध पहिले निश्चित हो तो उस अनुमानके हेतुको पूर्ववत् कहा करते हैं। दूसरा है शेषवत्। शेष नाम है परिशेषका अर्थात् जो अनिष्ट है साध्यके विरुद्ध है उसका निषेध करके जो कुछ बचता है उसका जो अनुमान करता है, सिद्ध करता है उसे कहते हैं शेषवत् तीसरा है सामान्यतोदृष्ट अर्थात् सामान्यसे देखा गया हेतु याने विशिष्ट व्यक्तियोमे सम्बन्धका ग्रहण नही हुआ करता। सम्बन्ध बनता है सामान्यसे। यो नही बनता कि जहाँ जहा रसोई वाली धूम है या जहाँ जहाँ धूम है वहाँ वहाँ रसोई वाली अग्नि है ऐसा कोई विशिष्ट आधार सहित सम्बन्ध नही बना करता। वह सामान्यसे ही दृष्ट हुआ करता है। जैसे अनुमान बना कि सूर्य गति वाला है। एक देशसे अन्य देशको प्राप्त होनेसे। देवदत्तकी तरह। तो यहाँ सामान्यसे ही देखा गया हेतु जो एक देशसे दूसरे देशको प्राप्त हो जाय वह गति वाला होता है। तो यो ये अलग-अलग हैं पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतोदृष्ट और इनके भाव न्यारे-न्यारे हैं।

शङ्काकारके समस्त हेतुवोंका पूर्ववत्मे अन्तर्भाव हो सकनेसे त्रैविध्य असिद्धि—अब पूर्ववत् आदिका नई व्याख्या। उत्तरमे कहते हैं कि यह व्याख्या भी निराकृत हो जाती है क्योंकि युक्त प्रकारके जो भी तुमने अनुमान बनाये है हेतु दिया है, पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतोदृष्ट, यो वह अहा प्रमाणसे सिद्ध होता है। उनका अविनाभाव तर्क ज्ञानसे हो सो तर्क ज्ञानसे जानकर फिर अनुमानको सिद्ध करनेकी पद्धति वही हुआ करती है जहा हेतुका लक्षण यह माना जा रहा हो कि जो साध्यके साथ अविनाभावी रूपसे निश्चित हो उसे हेतु कहते हैं। और, फिर एक मोटीसी बात यह है कि ये तीन भेदकर देना, लिंगलिंगी सम्बन्ध वाला अनुमान, प्रसक्तका प्रतिषेध होने पर शेष बचे हुएका ज्ञान और सामान्यसे देखे गये अविनाभाव हुयेका अनुमान, ये भेद घटित नही होते, क्योकि जैसे कि इन तीनके लक्षणोमे कहा गया है अभी शङ्काकार द्वारा वे सब लक्षण सबमे घटित हो जाते हैं। समस्त हेतु पूर्ववत् ही मान लो क्योकि सब हेतुवोमे चाहे वह शेषवत् हो अथवा सामान्यदृष्ट हो, साध्य साधनका सम्बन्ध बराबर सिद्ध है। जैसे शेषवतके अनुमानमे आप देख सकेंगे कि यह पूर्ववत् सिद्ध है क्योकि प्रसक्तके प्रतिषेधकी परिशिष्टका प्रतिपत्तिके साथ कही अविनाभाव है तो जब प्रसक्त प्रतिषेधका परिशिष्टके साथ कही अविनाभाव निश्चित हो तब ना उपस्थित किए गए परिशिष्टका ज्ञान होता है। तो इससे सिद्ध हुआ कि वहा भी लिंगलिंगीके सम्बन्धका बराबर प्रयोग है तो वह पूर्ववत् हो गया। जैसे शेषवत्मे उदाहरण दिया गया था कि शब्द किसी पदार्थके आश्रित हैं क्योकि गुण होनेसे रूपकी तरह। जैसे रूप गुण है तो किसी न किसीके आश्रय तो रह रहा, इसी प्रकार शब्द भी गुण है

तो शब्द भी किसी के आश्रय रह रहा तो यहा प्रसक्त था अनाश्रितपना, जिसमे विवाद था या विरुद्ध रूपसे दूसरा कोई मान रहा था वह हुआ प्रसक्त । उस प्रसक्तका प्रतिषेध करके जो शेष बचा उसका अनुमान बने तो उसमे आप देख लो कि प्रसक्त प्रतिषेधकी प्रतिपत्तिके साथ अविनाभावका निश्चय है, सो पूर्ववत्‌मे और करते ही क्या थे । साध्य साधनके अविनाभावका निश्चय कर रहे थे । यह शपवत भी पूर्ववत् बता है । सामान्यतोदृष्टका जैसे उदाहरण दिया था कि सूर्यगतिमान है एक देशसे अन्य देशको प्राप्त हो जानेके कारण । तो यहा अविनाभाव ही तो जाना गया एक देश से देशान्तरको प्राप्त हो जाने रूप साधनका गतिसत्त्वके साथ अविनाभाव हुआ है तब सामान्यतोदृष्टमे वह बल आया कि साध्यको सिद्ध कर सके अन्यथा तो साध्य साधन के सम्बन्धका निश्चय न मानोगे तो वह अनुमान भी नही बन सकता । तो इस प्रकार शेषवत् सामान्यतोदृष्ट इन तीनोको न्यारा-न्यारा कहना युक्त नही है । ये सभीके सभी पूर्ववत् प्रतीयमान होते हैं ।

शङ्काकारके समस्त हेतुवोका शेषवत्‌मे अन्तर्भाव होनेसे त्रैविध्यकी असिद्धि—अथवा सभीके सभी परिशेषानुमान प्रतीत होते हैं, शेषवत् विदित होते हैं जैसे पूर्ववत्‌का अनुमान दिया जाता है कि पर्वतमे अग्नि है धूम होनेसे तो यहा अग्नि का अर्थ यह हुआ कि अग्निमे ऐसा जो कोई समझ रहे थे या प्रसक्त हो रहे थे, उस प्रकारकी बुद्धि बन रही थी उसका प्रतिषेध हुआ अर्थात् अग्निका प्रतिषेध करके फिर उसकी प्रवृत्ति हुई क्योंकि उस अनुमानमे जहा धूम हेतु सिद्ध कर रहे हैं, यदि अग्निकी प्राप्ति न हो तो विवाद ही नही बन सकता, फिर अनुमान भी व्यर्थ हो जाता । कोई पुरुष कोई अनुमान कर रहा है कि इस पर्वतमे अग्नि है धुवाँ होनेसे यो अनुमान कर रहा है यो बता रहा है दूसरेकी बुद्धिमे यह ज्ञान नही हो रहा था कि पर्वतमे अग्नि है उसकी बुद्धि अग्निमे समाई हुई थी । तो जो अग्निका वहाँ ज्ञान नही रख रहे थे, अनग्नि जैसे सन्तोषसे रह रहे थे, वहा प्रशक्ति थी ना अग्निकी उसका प्रतिषेध किया गया है अर्थात् अग्नि सिद्ध की गई है । तो पूर्ववत् भी तो शेषवत् अनुमान बन गया । इसी प्रकार सामान्यतोदृष्ट भी शेषवत बन जाता है क्योंकि सभी अनुमानोमे प्रसक्तका प्रतिषेध पाया जाता है । अनुमान इसलिए बनाया ही जाता कि जिस बातको दूसरा नही जानता, जिससे विपरीत दूसरेके ज्ञानका वातावरण बना है उसका निषेध करें । तो इस अनुमानमे भी अगतिमान प्रसक्त था । अनेक लोग यो समझ रहे थे कि सूर्य कहा चलता है, वह देखो ना अभी १० मिनटसे जहाका जहा ही दिख रहा है, ऐसी सूर्यमे अगतिमानकी प्रसक्ति थी, उसका प्रतिषेध किया गया, सूर्य अगतिमान नही किंतु गतिमान है तो प्रसक्त प्रतिषेधसे सामान्यतोदृष्टकी उत्पत्ति हुई है इससे सामान्यतोदृष्ट भी शेषवत् बन गया अर्थात तीनोके तीनो शेषवत मानलो या पूर्ववत मानलो ।

शङ्काकारके समस्त हेतुवोका सामान्यतोदृष्टमे अन्तर्भाव होनेसे

त्रैविध्यकी असिद्धि—अब और देखिये कि ये तीनोके तीनो सामान्यतोदृष्ट ही विदित हो रहे हैं, क्योंकि सामान्यतोदृष्टका यह अर्थ है कि सामान्यसे ही साध्य साधन के सम्बन्धका ज्ञान हुआ, फिर उससे अनुमान बना, क्योकि विशेषरूपसे साध्य साधन का सम्बन्ध जाना नही जा सकता है। पहिले तो सब जगहके, सब समयके साध्य साधनके सम्बन्धका परिज्ञान होना ही अशक्य है और फिर किसी विशेष आधारमे रहते हुए साध्यके साथ साधनका सम्बन्ध बनाना भी उचित नही है। इससे पूर्ववत् हो अथवा शेषवत् हो या सामान्यतोदृष्ट हो, वे सबके सब सामान्यतोदृष्ट बन जायेंगे। अत जो अनुमानके भेदको चाहता है उसको हेतुका प्रधान लक्षण पहिले अविनाभाव मान ही लेना चाहिये।

हेतुका साध्यविनाभावित्व लक्षण माननेपर अनुमान प्रमाणकी सम्यक् व्यवस्था—हेतुके सही लक्षणको माने बिना तो बहुत बहुत जगह बुद्धि भ्रमेगी। नाना अनुमान बनाने आदिकी व्यवस्थायें करनी पड़ेगी। और, एक हेतुका सही लक्षण मान लिया जाय तो फिर बुद्धि न भ्रमानी पड़ेगी। हेतुका लक्षण है जो साध्यके बिना न हो, और होवे कही हेतु, ऐसा मिल जाय साधन तो जरूर साध्यको सिद्ध कर देगा क्योकि हेतुमे यह नियम बन गया कि हेतु वही होता है जो साध्यके बिना कभी भी सम्भव नही है। यह बात होती है तर्क प्रमाणसे, क्योकि प्रत्यक्ष हो, अनुमान हो, प्रत्यभिज्ञान हो, सभी प्रमाणोमे एक सीधी गति है, तर्कणापूर्वक गति नही। नियम बनाकर। कानून करके, ऊहापोह करके उन प्रमाणोमें गति नही है और अनुमान प्रमाण ऐसा होता है कि जिस किसीका भी अनुमान किया जाय उसके सम्बन्धमे पहिले ऊहापोह होकर साध्य साधनके अविनाभावका निर्णय हो चुकना चाहिये अन्यथा अनुमान बन ही नही सकता। तो अनुमानका यह लक्षण कि साधनसे साध्यके ज्ञान होनेको अनुमान कहते हैं। उसमे साध्य तो हुआ करता है इष्ट अबाधित्व और असिद्ध और साधन हुआ करता है वह जो साध्यके साथ अविनाभाव रूपसे निश्चित होता हो। अब चाहे अनुमानोके कितने ही भेद कर दिये जायें पर सब अनुमानोमे हेतुका लक्षण केवल एक यही पाया जायगा। तभी वे हेतु अपने अपने साध्य सिद्ध कर सकेंगे। इस प्रकार यह निर्विवाद सिद्ध हुआ कि साधनका लक्षण यह मानना होगा जो साध्यके बिना न हुआ करता हो, ऐसा जिसमे निर्णय पड़ा हो वह साधन हुआ करता है और अनुमान सही जाननेके लिये हेतुकी यह यथार्थता जान लेना भर आवश्यक है। अनुमान यथार्थ कहलाने लगेगा। और उसके अंगो पांगोका समर्थन करके अनुमानको सही बनानेका प्रयत्न करें और हेतुका यह लक्षण इस हेतुमें पाया न जाय तो वह अनुमान सही नही बन सकता है, इससे केवल हेतुका लक्षण सही मान लो तो सारी व्यवस्था युक्त हो जायगी।

अविनाभावके स्वरूपके सम्बन्धमे जिज्ञासा—अब एक जिज्ञासु कहता है

कि हेतुका प्रधान लक्षण अविनाभाव है यह बात युक्त जंच रही है साध्यके साथ अविनाभाव रूपसे जिसका निश्चय हो ऐसा हेतु मिलनेपर साध्यकी अवश्य सिद्धि होती है। किन्तु अविनाभावका स्वयका क्या स्वरूप है वह तो प्रसिद्धिमें आना ही चाहिये क्योंकि लक्ष्यका लक्षण अतिप्रसिद्ध न हो तो वह लक्षण क्या बन सकता है। फिर तो लक्षण के जाननेके लिये दूसरा लक्षण बनावें और यों अप्रसिद्ध लक्षण रहा करे तो लक्षणों की पहिचानके लिये लक्षणोंके बनाये जानेका ही काम रहेगा, प्रकृत बात कुछ बन न सकेगी। व्यवहारमे भी जिसका परिचय नहीं होता उसका परिचय करानेके लिये ऐसा मोटा लक्षण बताते हैं जो एकदम समझमे आये जैसे बहुतसे आदमी बैठे थे। उनमें एक सेठ भी था। सेठ ही केवल पगड़ी बांधे था व किसीने बताया कि जो पगड़ी बांधे है वह सेठ है। अब कोई पगड़ी ही न समझता हो तो सेठको पहिचाने क्या? सो पगड़ी प्रायः समझते हैं सब सो पहिचान हो जाती लक्षण तो एकदम प्रसिद्ध हुआ करता है। तो हेतुका लक्षण जो अविनाभाव कहा है वह तो युक्त है, परन्तु अविनाभावका स्वरूप क्या है। वह एकदम प्रसिद्ध है या नहीं? या उसको भी समझनेके लिये बहुतसे ग्रन्थोंकी रचना करनी होगी। ऐसा जिज्ञासु जाननेकी इच्छासे जो पूछ रहा है और उसके उत्तरमे आचार्यदेव अविनाभावका स्वरूप बतला रहे हैं।

सहक्रमभावनियमोऽविनाभावः ॥ ३-१६ ॥

अविनाभावका स्वरूप व प्रकार—सहभावके व नियम क्रमभावके नियमको अविनाभाव कहते हैं अर्थात् साध्य साधन एक साथ रहे तो उनमे एकके रहनेसे दूसरे का ज्ञान हो जाता है क्योंकि उनमे अविनाभाव है। एकके बिना दूसरा नहीं रह सकता है। यद्यपि इस सद्भाव नियममें भी थोड़ासा अन्तर है उसे अब अगले सूत्र की व्याख्याके समय बतावेंगे लेकिन अविनाभाव कहलाता है कि साध्यके बिना साधन का हो। क्रमभावनियम उसे कहते हैं कि जिसमे क्रमसे होनेका नियम हो। साध्य साधन ये क्रमसे जहां हुआ करते हो वहां एकको देखकर दूसरेका निश्चय कर दिया जाता है। क्रमभावके नियमोंके अन्दरमें कुछ भेद रहता है जिसको अब अगले सूत्रकी व्याख्यामें कहेंगे। पर अविनाभावमें या तो सद्भाव नियम होता है या क्रमभाव नियम होता है। किसका तो सद्भाव नियम होता और किसका क्रमभाव नियम होता, ऐसी जिज्ञासा होना प्राकृतिक है। उसका प्रतिबोध करनेके लिये कहते हैं—

सहचारिणो व्याप्यव्यापकयोश्च सहभावः ॥ ३-१७ ॥

सहभावनियम अविनाभावका विवरण सहचारी साध्य साधनका भी सद्भाव नियम होता है और व्याप्य व्यापक भाव वालेका भी सद्भाव नियम होता है। इस प्रकार सद्भाव नियमके दो आधार बतानेका मर्म यह निकला कि कुछ तो ऐसे सद्भावी होते हैं कि जिनमेंसे एक कोई भी पाया जायगा। जैसे कोई अनुमान करना

है कि इस ग्राममे रस है रूप होनेसे तो कोई यह भी अनुमान कर सकता है कि इस ग्राममे रूप है रस होनेसे। जैसे रात्रिके समयमे कोई आम चूस रहा है तो उसे रस का तो परिज्ञान हो रहा, वह तो प्रत्यक्ष है पर उसके साथ उसे रूपका भी ज्ञान हो रहा तो वह अनुमानसे जाना जा रहा है। इस ग्राममे रूप है रस होनेसे। और जब कभी दिनमे बाजारमे देखते हैं ग्रामको तो उसका रूप दिखता है, उसे चूस तो नही रहे, पर उसका वहाँ यह अनुमान बनता है कि इसमे रस है रूप होनेसे। तो रूप, रस, गंध, स्पर्श ये सब एक साथ होते हैं। इनमेंसे कोई एक हो तो शेषके तीन अवश्य होते हैं। एक तो ऐसा सद्भावी होता है उसमे सद्भाव नियम दोनो तरहसे आ गया, पर कोई सद्भाव नियम ऐसा होता है कि इन दोमेसे एक तो ऐसा है जो दूसरेके बिना हो ही न सके और दूसरा ऐसा है कि जो उस एकके बिना हो सकता है। ऐसे सद्भाव नियममे साधन एक ओरसे होगा, दोनो ओरसे नही हो सकता। इसे कहते हैं व्याप्य व्यापक भावका नियम। जैसे उदाहरण है कि यह वृक्ष है सीसम होनेसे। तो यद्यपि ये दोनो एक साथ रह रहे हैं, ऐसा नही है कि वृक्षपना पहिले होता है और सीसमपना बादमें रहता है या सीसमपना पहिले रहे वृक्षपना बादमे रहे। दोनों ही बातें एक साथ हैं, किन्तु व्याप्य व्यापकका सम्बन्ध है। सीसम तो वृक्षपनेके बिना कभी हो ही नही सकता, किन्तु वृक्षपना सीसमके बिना भी रह सकता है क्योंकि सीसम भी एक वृक्ष है और नीम आम आदिक अनेक और भी वृक्ष हैं। तो इसमे व्याप्य हुआ सीसम। जो कम स्थलोमे रहे वह व्याप्य है, जैसे यहाँ सीसमपना और जो बहुत स्थलों मे रहे वह है व्यापक जैसे व्यापक हुआ वृक्षपना। तो यहाँ व्याप्य हेतु बन सकता है, व्यापक हेतु नही बन सकता। तो एक सहभावमे दोनो ओरसे नियम बनता है हेतुपन बनता है और इस व्याप्य व्यापक भावके सहभावमे व्याप्य हेतु बनता है और व्यापक साध्य बनता है। हैं दोनो जगह सहभाव। एक ही साथ वे दोनो हैं। अब क्रम भाव नियमकी बात सुनो।

पूर्वोत्तरचारिणोः कार्यकारणयोश्च सहभावः ॥ ३-१८ ॥

क्रमभावनियम अविनाभावका विवरण—जो पूर्वचारी है अथवा उत्तरचारी है उसमे क्रमभाव नियमसे होगा और जो कार्यकारणरूप हैं उनमे क्रमभाव नियमसे होगा। इसमे आप दो प्रकारकी बात देखेंगे कि एकमे तो आदिसे अन्त तक क्रम है अनिवार्य क्रम है और दूसरेमे उत्पत्तिसे पहिले तो क्रम है, उत्पत्तिके बाद फिर वे एक साथ भी रह सकते हैं। जैसे पूर्वचारी हेतुका अनुमान है कि कल गुरुवार होगा आज बुधवार होनेसे तो यहाँ सर्वथा क्रममें है, बुध समाप्त होनेपर गुरु आयगा। बुध और गुरु किसी भी समय एक साथ न रह सकेंगे। यही बात उत्तरचारीमे है। जैसे कहा कि कल मंगलवार था, आज बुधवार होनेसे तो ये मंगल बुध भी पूरे क्रममें रह रहे हैं। मंगलवारकी समाप्ति होनेपर ही बुधवार आया तो पूर्वचारी और उत्तरचारी

हेतुमे साध्यके सद्भावका काल अलग है हेतुके सद्भावका काल अलग है लेकिन इसका ज्ञान किया जा रहा है। यह क्रमभाव नियम वाला है। कार्यकारण भावमे हम देखेंगे कि यद्यपि कारण पहिले होता है, कार्य बादमे होता है पर कार्यके उत्पन्न होनेके समय भी कारणका सद्भाव रहता। जैसे अग्निसे धूमकी उत्पत्ति होती, पर धूमके रहनेके कालमे भी अग्निका सद्भाव पाया जाता है लेकिन कारण कार्यपनेकी जो बात है वह क्रमसे रही हुई है और उस ही क्रमको बतानेका इस प्रसङ्गमे भाव है, इस कारण कार्यभावमे क्रमभाव नियम बनता है। अब ये दोनों प्रकारके अविनाभाव किस ज्ञानसे जाने जाते हैं उसका प्रतिपादन करते हैं।

तर्कात्तन्निर्णय ॥ ३-१६ ॥

तर्कज्ञानसे अविनाभावका निर्णय—तर्कज्ञानसे उस अविनाभावका निर्णय होता है। अविनाभावका निर्णय न प्रत्यक्ष ज्ञानसे हो सकता न अनुमानज्ञानसे हो सकता। प्रत्यक्ष तो हेतुको देख रहा है, जान रहा है इतना ही मात्र काम कर रहा है, उसमें ऊहापोह करना, अविनाभावका निरीक्षण करना, यह बात नही बनती। अनुमान तो तर्कज्ञान पूर्वक होता है। यदि अनुमानसे अविनाभावका निर्णय होने लगे तो या अनवस्था दोष आयगा या इतरेतराश्रय दोष आ पायगा। दोनो अविनाभावका निर्णय तर्क प्रमाणसे ही हो सकता है। और इस तर्कज्ञानका किसी भी ज्ञानमे अन्तर्भाव नही बनता। जैसे प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणका स्वरूप उनका उनमे है, अन्य प्रमाणों से निराला है, इसी प्रकार तर्क ज्ञानका स्वरूप उसका उसमें है और अन्य प्रमाणोंसे निराला है। इसी बातको इस सूत्रमे सिद्ध किया है कि सहभाव नियमरूप अविनाभाव और क्रमभाव नियमरूप अविनाभाव ये सब तर्कसे ही निर्णीत किये जाते हैं—यहाँ तक साधनके विषयमें विवरण चला। यह प्रकरण है अनुमान ज्ञानका। अनुमानज्ञान का लक्षण किया गया है—साधनसे साध्यके ज्ञान होनेको अनुमान कहते हैं। तो उस साधनकी विशेषता बतानेमे इतने सूत्र कहे गए। अब साध्यकी विशेषता बतानेके लिए सूत्र करते है जिसमे बतायेंगे कि साध्य कैसा हुआ करता है।

इष्टमबाधितमसिद्ध साध्यम् ॥ ३-२० ॥

साध्यका लक्षण—साध्य वही हो सकता है जो इष्ट हो, अबाधित हो और असिद्ध हो। इष्टका अर्थ यह है कि जिसमे साध्य बनानेका अभिप्राय हो। अनुमान प्रयोग करने वाला पुरुष जिस तत्त्वको साध्य बनाना चाह रहा हो। जिसकी वह सिद्धि करना चाहता है उसको कहते हैं इष्ट। साध्यको इष्ट होना अत्यन्त आवश्यक है। कौन पुरुष ऐसा है जो अपने अनिष्ट तत्त्वको सिद्ध करनेके लिए प्रमाण खोजे और अपने अनिष्ट तत्त्वकी सिद्धि करे। सभी लोग अपने इष्टकी ही सिद्धि करना चाहते हैं। तो अनुमान प्रमाणमे साध्य वही हो सकता है जो प्रयोक्ताको इष्ट हो। इसी प्रकार साध्य

अबाधित होना चाहिये। साध्य तो कह दिया, पर उसमे एकदम प्रत्यक्षसे भी बाधा आ रही तो उसे कौन मान लेगा ? वह साध्य सही नही है। जैसे कोई यह बतानेका साहस करे कि अग्नि ठडी होती है, इसे सिद्ध करनेके लिये कितने ही हेतु देवे, कैसी ही युक्तियाँ लगाये पर अग्नि तो प्रत्यक्ष विदित है कि गर्म हुआ करती है। सब लोग जानते हैं। वह कैसे साध्य बन सकता है ? तो जो अबाधित है वही साध्य है। जिसमे किसी प्रमाणसे बाधा आये वह साध्य नही हो सकता इसी प्रकार साध्य असिद्ध होना चाहिये। जिसको समझा रहे हैं उसे साध्य पहिलेसे ही सिद्ध है तो फिर समझानेकी आवश्यकता क्या रही ? अनुमान प्रमाण तो तब बनाया जाता है जब कि प्रतिपाद्य को साध्य असिद्ध हो और उसे सिद्ध करना आवश्यक हो तब अनुमान किया जाता है। तो साध्य वही ठीक है जो इष्ट है, अबाधित है और असिद्ध है। अब इन तीन् विशेषणोंकी सूत्रो द्वारा भी समर्थित करेंगे जिसमें पहिले असिद्ध विशेषणको सिद्ध करनेके लिये सूत्र कहते हैं।

सदिग्धविपर्यस्ताव्युत्पन्नाना साध्यत्व यथा स्यादित्यसिद्ध पदम्। ३-२१।

साध्यके असिद्ध विशेषणकी सार्थकता—जो साध्य सदिग्ध हो अथवा विपर्यस्त हो या अव्युत्पन्न हो उनको ही साध्यपना होवे इस प्रयोजनसे साध्यके लक्षण वाले सूत्रमे असिद्ध पद दिया गया है। जैसे जिसे वस्तुके बारेमे सदेह हो रहा है कि यह ठूठ है या पुरुष है कुछ अंधेरेमे उजेले सवेरेके समय घूमने जा रहे थे। किसी नये रास्तेसे घूमने चले तो कुछ दूरपर एक कोई ठूठ खडा था वह उतना ही ऊँचा था और उतना ही मोटा और कुछ ऊपर दो शाखाओकी थोडी ठूठी भी रही थी, उसे देखकर उसे सदेह हो गया कि यह ठूठ है या पुरुष है। अब यहाँ देखिये—चलितज्ञान हो रहा ना। क्या है क्या नही, ऐसा जो जाननेमे आ रहा पदार्थ वह सदिग्ध पदार्थ होता है। उसमेसे एकका निर्णय करनेके लिए जो अनुमान बनता है वह ठीक है, क्योकि असिद्ध को सिद्ध किया जा रहा है। यह तो ठूठ ही है, क्योकि जरा भी चलता हिलता डुलता नही है। आदिक जो कुछ भी हेतु दिया उससे ठूठ सिद्ध करना यह असिद्धको सिद्ध करनेकी बात है। और एकदम सामने सबको स्पष्ट जानकारी हो रही हो, खूब उजेला है, पास हमें ठूठ खडा है। सिद्ध है सबको, उसे कौन अनुमान प्रमाणसे सिद्ध करनेका श्रम करेगा ? तो सदिग्ध पदार्थका साध्यपना बन इसलिये असिद्ध शब्द है। इसी प्रकार कुछ पदार्थ विपर्यस्त होते हैं जैसे पडी तो थी सीप और जान लिया चाँदी तो यह विपरीत परिज्ञान हुआ ना। अब ऐसा विपरीत परिज्ञान हुआ ना। अब ऐसा विपरीत परिज्ञान होनेपर कोई जानकार पुरुष समझाता है उसी स्थलका निवासी कि यह तो सीप है क्योकि सीप जैसा ही थोडा गोल आकार होनेसे अथवा एक ओरका रङ्ग रूखा होनेसे आदिक जो कुछ भी हेतु देकर समझा रहा है तो वहा अनुमान करना यो ठीक है कि पदार्थका विपरीत ज्ञान हो रहा था तो विपर्यस्त पदार्थमे साध्यपना हो

इसके लिये साध्यके लक्षण वाले सूत्रमें असिद्ध पद दिया है। इसी प्रकार कुछ पदार्थ अव्युत्पन्न होते हैं, अनिश्चित होते हैं। चाहे पहिले उस पदार्थको जाना हो अथवा न जाना हो, वर्तमानमें जिसके बारेमें वह यथावत् स्वरूप निश्चित नहीं हो रहा है, उस पदार्थको अव्युत्पन्न कहते हैं। तो जिस पदार्थके सम्बन्धमें अनध्यवसाय है वह पदार्थ अनिश्चित है। ऐसे पदार्थमें साध्यपना हो इस प्रयोजनके लिये असिद्ध पद दिया है साध्यके लक्षणमें जैसे कि सन्दिग्ध पदार्थ असिद्ध था, विपर्यस्त पदार्थ असिद्ध था इसी प्रकार अनध्यवसायके विषयभूत अव्युत्पन्न पदार्थ जिसके बारेमें थोड़ा सामान्यरूपसे कुछ जानकारी हो पायी फिर एकदम चित्तसे उतरने लगा। उसके बारेमें कुछ निश्चय ही नहीं किया जा सके रहा। ऐसा पदार्थ साध्य बन सके इस प्रयोजनके लिये साध्यके लक्षण वाले सूत्रमें असिद्ध पद दिया है। जो सन्दिग्ध हो, विपर्यस्त हो, अव्युत्पन्न हो ऐसे ही साध्यकी सिद्धि करनेमें साधनकी सामर्थ्य है। अनिष्टका साधन कोई न बनाये, बाधितको साधन बनानेसे कोई फायदा नहीं और पूर्ण निश्चयको सिद्ध करनेके लिये अनुमानका भी कोई प्रयास नहीं करता, इस कारण साध्यके लक्षणमें जो तीन विशेषण दिये वे पूर्णतया युक्ति संगत हैं। अब सूत्र रूपसे असिद्ध पदका प्रयोजन तो बता चुके। अब इष्ट और अबाधित इन दो शब्दोंका प्रयोजन बतलानेके लिये सूत्र कह रहे हैं।

अनिष्टाध्यक्षादिबाधितयोः साध्यत्वं माभूदितीष्टाबाधितवचनम् ॥३-२२॥

साध्यके अनिष्ट और अबाधित विशेषणकी सार्थकता— अनिष्ट तत्त्वको और प्रत्यक्षादि बाधित तत्त्वको साध्यपना न बन जाय इस प्रयोजनसे इष्ट और अबाधित शब्दसे साध्यको विशेषित किया गया है। जैसे जैन लोग शब्दको सर्वथा नित्य नहीं मानते और वे ही जैन शब्दको सर्वथा नित्य सिद्ध करनेका हेतु देने लगे तो इसमें उनके ही सिद्धान्तका घात हुआ। इसका फल प्रतिवादीने पाया और वादीका स्वयं घात हुआ। जो कोई भी सिद्धान्तवादी जो कुछ भी इष्ट सिद्धान्त करते हैं उनके खिलाफ अनिष्ट तत्त्वको सिद्ध करनेका प्रयास स्वयं तो नहीं करते। कोई करे तो मूढ़ता है। सो जो अनिष्ट कभी साध्य नहीं बनाया जाता है। इसी प्रकार जो बात प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंसे बाधित हो उसे भी साध्य नहीं बनाया जा सकता। जैसे कोई कहने लगे कि शब्द कानोंसे सुनाई नहीं दिया करता, हेतु कुछ भी देने लगे। तो यहाँ अश्रावणत्व अर्थात् कानोंसे सुनाई न देने वाली यह बात तो प्रत्यक्ष बाधित है। सबको शब्द कानोंसे सुनाई देते हैं फिर उसकी विपरीत सिद्धि कैसे की जा सकती है? यह तो हुआ प्रत्यक्षबाधित। इसी प्रकार अनुमान बाधित, स्ववचन बाधित, लोकबाधित भी हुआ करते हैं। उनको भी कोई साध्य बनाये तो वह अनुमान युक्त नहीं है। जैसे कोई यह सिद्ध करने लगे कि धर्म मरनेके बाद बड़ा दुःख देता है, तो यह आगम बाधित है। आगम इसे स्वीकार करता ही नहीं। और आगम प्रामाण्यसे इतना निरस्त है पुरुष

कि ऐसा सुनना भी कोई पसद नही करता कि धर्म दुःखोंका देने वाला होता है । और वह भी मरेके बाद कह रहे । कुछ लोग तो ऐसे हैं कि जो यही देखते हैं कि धर्म इस जीवनमे दुःख देता है, कैसी उनकी मोटी बुद्धि है । धर्म, उपवास, नियम व्रत आदि करनेमे तत्काल कष्ट मालूम होता है । सो भी मरेके बादकी बातें कह रहे हैं । वह एकदम आगमसे बाधित है और वह आगम बाधित यथार्थ सम्वेदन ज्ञानसे ही बाधित हो रहा है, ऐसा साध्य नही बनाया जा सकता । कोई अनुमान बनाये कि मेरी माता बंध्या है और हेतु कुछ दे तो उसके कहनेसे ही विरोध आ रहा है । मेरी माता । माता भी बताता है और बंध्या भी कहता है तो ऐसी स्ववचनबाधित है । ऐसे बाधित पदार्थमे साध्यपना न हो जाय इसलिये अबाधित शब्द दिया है । कोई अनुमान बनाये कि मनुष्यकी खोपडी पवित्र होती है प्राणीका अग होनेसे । जैसे शख, सीप, मोती कौडी आदिक ये पवित्र हैं, प्राणीके अग हैं तो मरे हुए मनुष्यकी खोपडी भी प्राणीका अग है इस कारण पवित्र होना चाहिये, किन्तु यह बात लोकबाधित है । भले ही प्राणीके अंगमे समता है लेकिन शख सीप आदि तो लोकमे पवित्र माने गए हैं और मनुष्यकी खोपडी अपवित्र मानी गई है । थोडा इसमे यह अन्तर भी है कि शख सीप आदिक तो ये उन कीडोके ऊपरके देहका खोल हैं । चामके भीतर रहने वाली हड्डी नही है, किन्तु मनुष्यकी खोपडी तो चामके भीतर रहने वाली है । यों भी उनमें अन्तर है इससे लोकमे सीप आदि अशुचि नही माने गये । मनुष्यके सिर कपाल को पवित्र सिद्ध करने लगे तो वह लोकबाधित है । इसका साध्यपना नही हुआ, कस्ता यों जितने भी बाधित हैं वे साध्य नही बन सकते । न अनिष्ट पदार्थको साध्य बताया जा सकता है और न बाधितको साध्य बनाया जा सकता है । सो इन दोनोमे साध्यपना न हो जाय इस कारण साध्यके लक्षण वाले सूत्रमे इष्ट और अबाधित शब्द दिया गया है इससे साध्यका लक्षण यह युक्त बैठ गया कि जो इष्ट हो अबाधित हो और असिद्ध हो उसे साध्य कहते हैं ।

वादी प्रतिवादी सबके लिये इष्टको साध्य माननेकी आशङ्का—अब यहां शङ्काकार कहता है कि साध्यके लक्षणमे जो विशेषण दिये हैं वे सब विशेषण सामान्यरूपसे हैं और वे सभीमें घटना चाहिये । जैसे इष्ट शब्द है तो वादीको भी इष्ट हो, प्रतिवादीको भी इष्ट हो । जैसे कि शब्द कथचित् नित्य है यह जैनोको इष्ट है तो इसमें अनित्यत्व साध्य है तो अन्य लोगोको वैशेषिक आदिकोको शब्द सर्वथा नित्य और आकाशका गुण है ऐसा इष्ट है । सो सर्वथा अनित्यपना और आकाशका गुण होना यह भी इष्ट बन जाना चाहिये । यह भी साध्य हो जाय, क्योकि ऐसा नियम नही बनाया जा सकता कि जो वादीका इष्ट हो वही साध्य हो सकता है, यह तो सामान्य कथन है । इष्ट जो हो साध्य है, चाहे वादीको इष्ट हो चाहे प्रतिवादीको । इस तरह शकाकारका यह अभिप्राय है कि जो बात विरोधी चाहता है वह भी साध्य बन जाना चाहिये । अब इस शकाका निवारण करनेके लिए सूत्र कहते हैं ।

न चासिद्धवदिष्ट प्रतिवादिन ॥ ३-२३ ॥

अनुमानमे वादीके लिये ही इष्ट साध्यकी साध्यता असिद्धकी तरह इष्ट विशेषण प्रतिवादीके लिए नही है जैसेकि असिद्धपना, प्रतिवादीके लिए ही है वादीके लिए नही, जो अनुमान बना रहा है और दूसरेको समझा रहा है तो स्वार्थानुभवसे तो इस वादीने निर्णय कर ही लिया है अथवा व्याप्ति द्वारा सामान्यतया इसकी सिद्धि हो ही गई है तब यह अनुमान बना रहा और दूसरेको समझा रहा तो असिद्ध पद तो प्रतिवादीके लिए ठीक है पर इष्ट विशेषण प्रतिवादीके लिए नहीं लग सकता क्योकि सर्व विशेषण सबकी अपेक्षा नही होते, विशेषण विशेष्य भाव प्रतिनियत हुआ करता है। जो विशेषण जिस विशेष्यमे कब सकता है वह वहीं लगाया जाता है। तो इष्ट और असिद्ध विशेषण तो प्रतिवादीकी अपेक्षा है। वादीकी अपेक्षासे नही, क्योकि वादी तो अर्थके स्वरूपका प्रतिपादन करने वाला है। जो हेतु बनाया जा रहा है उसमे जो साध्य सिद्ध किया जा रहा है, उसके स्वरूपका प्रतिपादक है वादी। यदि वादी को अर्थके स्वरूपका परिज्ञान नही हुआ, जिसको कि साध्य बनाया जा रहा। तो वह प्रतिपादक बन नही सकता। समझाये फिर क्या वह जब व्याप्तिका भी ज्ञान नही, साध्यका भी उसे निश्चय नही, तो दूसरेको समझायेगा कैसे ? तो वादी चूंकि अर्थका प्रतिपादक है जो सिद्ध किया जा रहा है, उसको समझाने वाला है इस कारण वादी के लिये असिद्ध नही है साध्य, किन्तु प्रतिवादी के लिये असिद्ध है। क्योकि वह प्रतिवादी प्रतिपाद्य है उसे समझाया जा रहा है। जिस स्वरूपको समझा नही है प्रतिवादी ने उस स्वरूपको समझाया तो जायगा उसकी अपेक्षा तो है असिद्ध विशेषण और इष्ट यह विशेषण है वादीकी अपेक्षा। क्योकि जो वादीको इष्ट होगा वही साध्य है। जो सबको इष्ट है वही साध्य नही, जब इष्ट है सबको तो अनुमानकी जरूरत क्या रहती है ? तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि जो इष्ट होनेपर भी प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे बाधा न जाय वही साध्य हो सकता है, क्योकि ऐसे साध्यका ज्ञान करानेमे ही साधन का सामर्थ्य है। अब इस ही बातका समर्थन करते हुए सूत्र कहते हैं।

प्रत्यायनाय हीच्छा वक्तुरेव ॥ ३-२४ ॥

वादीके लिये ही साध्यकी साध्यताका कारण—इष्ट विशेषण वादीके लिए ही क्यो है ? इस प्रश्नका उत्तर इस सूत्रमें दिया है। इष्ट कहते हैं उसे जो इच्छा के द्वारा विषय किया गया हो अर्थात् जिसे चाहा गया हो उसे इष्ट कहते हैं। अपने अभिप्रायमें आये हुए अर्थको वस्तुको प्रतिपादन करनेके लिए इच्छा वक्ताके ही तो होती है। जो प्रथम बोलने वाला है, वादी है अथवा प्रतिवादी भी हो हो, तो जो वह अपनी उसमें अभिप्राय समझाना चाहता है उसको अपने अनुमानके लिये वह इष्ट हुआ तो जिसको चाहा गया है उसे इष्ट कहते हैं। वक्ता जिसे चाहे सो इष्ट है। कभी वादी ने कोई अनुमान किया तो वादीके अनुमानमे साध्य वादीको इष्ट होगा और उसके

विरोधमे प्रतिवादीने अनुमान किया तो प्रतिवादीके अनुमानमे साध्य प्रतिवादीको, इष्ट होगा। जो भी वक्ता हो वह अपने प्रसगमे वादी है उसे जो इष्ट है वह साध्य होता है। इष्ट शब्दका ही अर्थ यह है कि जो इच्छामे आये जिसकी चाह हो उसे इष्ट कहते हैं। तो यह सिद्ध हुआ कि इष्ट अनबाधित असिद्ध ये जो साध्यके तीन विशेषण दिये गए हैं उनमें इष्ट तो वादीकी अपेक्षा है असिद्ध प्रतिवादीकी अपेक्षा और अबाधित एक सामान्य कथन है। वादीके निर्णयमे वह अबाधित हो और प्रतिवादी भी माना जाय कि हाँ अबाधित है तो वह अनुमान सही होता है। अब साध्यके हेतुके साथ जो व्याप्ति का प्रयोग किया जाता है तो प्रयोग कालकी अपेक्षासे साध्य क्या होता है उसका भेद दिखानेके लिये सूत्र कहते हैं।

साध्य धर्म क्वचित्तद्विशिष्ठो वा धर्मी ॥-२५॥

अनुमान प्रयोगमे साध्यविशिष्टधर्मीकी साध्यता व व्याप्तिमे केवल साध्यधर्मकी साध्यता चू कि कहीं तो साध्य ऐसा आता है कि जिसको किसी आधारमे सिद्ध किया जा रहा है। और कोई साध्य ऐसा आता है कि जिसको किसी आधारमे सिद्ध नहीं किया जा रहा किन्तु उसके ही अस्तित्व नास्तित्वकी सिद्धि करना है. अथवा कोई साध्य ऐसा होता है कि पक्ष आधारसहित साध्यका प्रयोग किया जाता है। कोई साध्य ऐसा होता है कि पक्षके बिना प्रयोग कर दिया जाता है। जैसे कोई यह अनुमान बनाये कि इस पर्वतमे अग्नि है धुवाँ होनेसे, तो इसमें केवल अग्नि साध्य हुआ, पर्वत तो एक आधार है और वह साध्यमे न आये, किन्तु इस तरह अनुमान कोई बनाये कि यह पर्वत अग्नि वाला है धूम वाला होनेसे, तो अग्नि वाला यह जो साध्य किया गया है वह धर्मधर्मी दोनोको मिलाकर किया गया है। कुछ साध्य ऐसे होते कि जिसमे केवल हां और ना की सिद्धि की जाती है। जैसे सर्वज्ञ है, क्योंकि उसमे कोई प्रमाण बाधक नही है अथवा गधेका सींग नही है, क्योंकि उसमे बाधक प्रमाण है। तो यहां है और ना साध्य बन गया। सर्वज्ञ है इसका कोई आधार तो नहीं कहा जा रहा। गधेके सींग नही हैं इसमे ना सिद्ध किया है, इसका कोई आधार तो नही बताया जा रहा। यो अनेक प्रकारके साध्य हुआ करते है। तो यहां यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि साध्य वस्तुत: किस ढङ्गसे हुआ करता है उसीके उत्तरमे यह सूत्र कहा गया है। कही उस व्याप्तिके कालमें साध्यधर्म होता है और उस धर्मके साथ ही हेतुकी व्याप्ति सम्भव है पर प्रयोग कालमे कभी साधनरूप धर्मसे युक्त धर्मी साध्य होता है, क्योंकि प्रयोगके समयमे जिसे साध्य कर्म बनाया जा रहा है उससे विशिष्ट होनेके कारण धर्मी सिद्ध किया जाना इष्ट हो रहा है इसलिए व्याप्तिकालमे तो धर्म ही साध्य होता है पर प्रयोग कालमें साध्ययुक्त धर्मी साध्य होता है। यहाँ इतनी बात और जानना चाहिये कि गुणप्रयोगके प्रयोगसे प्रयोगकालमे भी धर्म ही साध्य होता है व्याप्तिके सम्बन्धमे तो साध्यधर्म ही होता है। जैसे अग्नि और धूमकी व्याप्ति लगेगी

तो केवल धर्मके साथ लगेगी। जहाँ-जहाँ अग्नि नहीं है वहाँ वहाँ धूम नहीं है। अथवा जहाँ जहाँ धुंवा है वहाँ वहाँ अग्नि है। इस तरह साध्यके साथ ही हेतुकी व्याप्ति चलेगी। व्याप्तिके समयमें तो यह पूर्ण निश्चित बात है वहाँ साध्य विशिष्ट धर्मी साध्य न बनेगा क्योंकि यह व्याप्ति कभी न बन सकेगी। जहाँ धुवाँ होता है वहाँ अग्नि वाला पर्वत होता है। या जहाँ अग्नि वाला पर्वत नहीं है वहाँ धुवाँ भी नहीं होता ऐसा मान तो नहीं सकता कोई तो व्याप्तिके समयमें जहाँ कि अविनाभाव दिखाया जा रहा है उस समय तो साध्य केवल धर्म होता है। परन्तु जब कभी प्रयोगका समय है, कोई घटना बतानेका समय है वहाँ साध्यधर्म सहित धर्मी साध्य होता है, क्योंकि वहाँ सिद्ध तो यही करना है कि ये पदार्थ इस साध्यसे युक्त है। अब साध्य विशिष्ट धर्मीका दूसरा नाम भी क्या हो सकता है उसको सूत्रमें कहते हैं।

पक्ष इति यावत् ॥३-२६॥

साध्यधर्मविशिष्ट धर्मीका नाम पक्ष अथवा प्रतिज्ञा -पक्ष यह भी एक पर्याय नाम हो सकता है। शंकाकार पूछता है कि धर्मी पक्ष कैसे हो जायगा क्योंकि धर्म और धर्मीके समुदायको पक्ष कहा गया है। उत्तर कहते हैं कि साध्य धर्म विशेषणसे युक्त होनेके कारण चूंकि धर्मीसे ही साध्य सिद्ध करना इष्ट हो रहा है इस कारण धर्मीको पक्ष नामसे कहनेमें किसी प्रकारका दोष नहीं है। अथवा इसको नाम है प्रतिज्ञा। पक्ष और साध्य दोनोंको मिलाकर जो प्रयोग होता है उसे प्रतिज्ञा कहते हैं। जैसे यह पर्वत अग्नि वाला है यह प्रतिज्ञा हुई। इसमें अलग अलग समझनेके लिए जब यह कहा जायगा कि इस पर्वतमें अग्नि है तो 'पर्वतमें' यह पक्ष हुआ, "अग्नि है" यह साध्य हुआ और दोनोंका जो समुदाय है, प्रयोग है वह प्रतिज्ञा हुई। यहाँ मुख्य कहनेका प्रयोजन यह है कि व्याप्तिके समयमें तो सिर्फ धर्मसाध्य होता है किन्तु प्रयोगके समयमें अनुमान करनेके समयमें साध्य सहित पक्ष साध्य बन जाता है। उसे पक्षरूपसे माना ही गया है।

प्रसिद्धो धर्मी ॥ ३-२७॥

धर्मीकी प्रसिद्धता - जो प्रसिद्ध हो सो धर्मी है। जब पक्ष प्रसिद्ध होता है तो वादी भी अनुमान बनाता है तो वादीके अनुमानमें जो पक्ष है वह तो प्रसिद्ध होना ही चाहिये। इसमें तो विवाद न वादीका है और न प्रतिवादीका है। किन्तु साध्यसे सहित पक्ष मे इसका विवाद है प्रतिवादीको। उसे समझानेके लिए फिर प्रतिज्ञा की जाती है और हेतु देकर उसे सिद्ध किया जाता है। जैसे अनुमान बनाया कि पर्वतमें अग्नि है धुवाँ होनेसे तो पर्वत पक्ष है यह तो सबको प्रसिद्ध है। वादी प्रतिवादी दोनोंको आंखोंसे दिख रहा है कि यह पर्वत है। तो धर्मी प्रसिद्ध हुआ करता है। अब उसकी प्रसिद्धि कहीं तो विकल्पोंसे होती है, कहीं अनुमानमें प्रत्यक्ष आदिकसे

होती है, किसी अनुमानमें प्रत्यक्ष और विकल्प दोनोसे होती है। यहा बात यह बतायी गई है कि जो धर्म साध्य बनाया जा रहा वह साध्य कही कही तो प्रमाणसे प्रसिद्ध है। जैसे पर्वतमें अग्नि है तो यहा पर्वत प्रमाण प्रसिद्ध है। प्रत्यक्षसे आंखो दिख रहा है और सर्वज्ञ है, यह अब हम सिद्ध करते हैं तो सर्वज्ञ प्रत्यक्ष प्रमाणसे कहाँ सिद्ध है। उसीके बारेमे तो सिद्ध किया जा रहा है। तो यह विकल्प सिद्ध होता है। जो प्रत्यक्ष सिद्ध ही धर्मी हो जाय ऐसा एकान्त नही है। उस एकान्तका निराकरण करनेके लिये सूत्र कहते हैं।

विकल्पसिद्धे तस्मिन् सत्तेतरे साध्ये ॥ ३-२८ ॥

विकल्पसिद्ध धर्मीमे सत्ता व असत्ताकी साध्यता—जो विकल्पसिद्ध धर्मी हो उसमें या तो सत्ता साध्य है या असत्ता साध्य है। विकल्पसिद्धका अर्थ यह है कि हमारे अभिप्रायमे वह सिद्ध है और दूसरेके अभिप्रायमे हम उसे जमाना चाहते हैं, उसका कोई पक्ष प्रकट नही है। जैसे पर्वतमें अग्नि है यहां पक्ष अलगसे है, इस तरह सर्वज्ञ है ऐसा अनुमान करनेमे कोई पक्ष अलगसे नही है सो यह विकल्पसिद्ध है, इसमे सत्तासाध्य है, या कोई कहे कि सर्वज्ञ नही है अनुमान हेतु देकर तो उसके लिए असत्ता साध्य है। तो विकल्पसिद्ध भी धर्मी हुआ करता है प्रमाणसिद्ध ही नही। सो उसीके बारेमें उदाहरण बतानेके लिए सूत्र कहते हैं।

अस्ति सर्वज्ञः नास्ति खरविषाणमिति ॥ ३-२९ ॥

विकल्पसिद्ध धर्मीके साध्यका उदाहरण—जो विकल्पसे सिद्ध है—विकल्प मायने ऐसा शब्द ज्ञान जहां विवाद और सम्वाद चल रहा है अस्तित्वके बारेमे, ऐसा विकल्पसिद्ध कोई धर्मी हो उसमें या तो सत्तासाध्य मिलेगा या असत्तासाध्य। जैसे अनुमान बना कि सर्वज्ञ है क्योंकि इसमें बाधक प्रमाण असम्भव है, उसमे बाधा देने वाला कोई प्रमाण नही आता। अब बाधा देने वाला कोई प्रमाण नही आता, यह कैसे सिद्ध हुआ? दूसरा आदमी बाधा देनेका प्रमाण उपस्थित करे और उसमे फिर यह सिद्ध करे कि इन प्रमाणोंमेसे इसमे बाधा नही आती, बाधाके लिये दिया गया यह प्रमाण दूषित है। तो जो विकल्पसिद्ध है, जिसके बारेमे अस्तित्व और नास्तित्वका सम्वाद विसम्वाद चल रहा है, उसमे तो सत्ता ही साध्य हो सकती है अथवा असत्ता ही, अन्य बात नही। जैसे पर्वतमें अग्नि है तो यहां अग्नि वस्तुसाध्य है ऐसा विकल्प सिद्धमें नही होता अथवा अनुमान बनाया कि गधेके सींग नही हैं, क्योंकि उस में बाधक प्रमाण मौजूद है। क्या मौजूद है कि प्रत्यक्षसे ही नही दिखाई देता। तो यहां जो दो अनुमान बनाये गए हैं उनमे जो दो धर्मी हैं—सर्वज्ञ और गधेके सींग। इन दोनोंमे या तो सत्ता साध्य हो या असत्ता साध्य हो, इन विकल्पोंको छोड़कर अन्य प्रकार साध्यकी सिद्धि नही होती, क्योंकि इसमे इन्द्रिय व्यापारका अभाव है सर्वज्ञ है

ऐसा समझनेमें इन्द्रियां क्या व्यापार करें ? शङ्काकार कहता है कि इन्द्रियके द्वारा जाने हुए अर्थमें ही मनके विकल्प जुड़ा करते हैं। तो जिसमें हमने इन्द्रियोंके द्वारा जाना नहीं, जिसमें इन्द्रियोंका व्यापार चल सकता नहीं, उसमें विकल्प कैसे उठ हो जायेंगे ? शङ्काकारका कहना कुछ इन्द्रियोंसे सो ठीक बैठ रहा कि लोग प्राय उनके विकल्प किया करते जिसको इन्द्रियोंसे जान सकते हैं। जैसे हम इन्द्रिय द्वारा ज्ञात कर सकते हैं, उसमें ही तो मनके विकल्प चलते हैं, मन जो कुछ सोचता है, वह उस ही बातको सोचता है जो कानोंसे सुना जा सकता है, आंखोंसे देखा जा सकता है, नाकसे सूंघा जा सकता है, जो रसनासे चखा जा सकता है और स्पर्शन इन्द्रियसे छुवा जा सकता है उसमें ही तो मनके विकल्प चलते हैं। तो सर्वज्ञमें गधेके सींगमें कभी इन्द्रिय व्यापार होता ही नहीं तो उसके सम्बन्धमें मनके विकल्प कैसे चल उठेंगे ? उत्तरमें कहते हैं कि यदि ऐसी हठ करोगे कि जिन वस्तुवोंमें इन्द्रियका व्यापार चलता है उनमें ही मनके विकल्प उठ सकते हैं तो धर्म धर्मी पुण्य पाप इनमें तो इन्द्रियका व्यापार नहीं चल रहा। इसे कौन इन्द्रियसे स्पष्ट जान रहा। फिर तो इसके सम्बन्धमें मनके विकल्प न चलना चाहिये। यदि कहो कि आगमकी सामर्थ्यसे धर्म अधर्मका ज्ञान बन जाता है इसलिए इसके सम्बन्धमें मनके विकल्प चलते हैं तो उत्तर देते हैं कि वही बात प्रकृतमें भी मान लो सर्वज्ञ और गधेके सम्बन्धमें, चूंकि आगमका भी सामर्थ्य है और इतना तो प्रत्यक्षसे भी लोग जानते हैं कि गधा होता है व होते हैं। अब उसमें यह सिद्ध किया जा रहा कि गधेके सींग नहीं है तो यह अन्य प्रकारसे भी ज्ञात हो रहा तो इसमें भी मनके विकल्प चले क्योंकि आगम नाम कहा ही है शब्दका। शब्द गम्य हो ही रहे हैं। सर्वज्ञ भी शब्द गम्य है गधेका सींग भी। और उनकी सत्ता और असत्ताका उसमें निराकरण किया जा रहा है। तो जितने भी विकल्प सिद्ध धर्म होते हैं उनमें या तो सत्ता साध्य होता या असत्ता साध्य होता लेकिन जो विकल्प सिद्ध नहीं है उनमें क्या साध्य होता है। तो सूत्रमें कहते हैं।

प्रमाणोभयसिद्धे तु साध्यधर्मविशिष्टता ॥ ३-३० ॥

प्रमाणसिद्ध उभयसिद्धमें साध्यधर्मविशिष्ट धर्मीकी साध्यता — जो धर्मी प्रमाण सिद्ध है अथवा उभयसिद्ध है। प्रमाणसे भी सिद्ध है, विकल्पसे भी सिद्ध है उसमें साध्यधर्मसे युक्त होना यह साध्य बन जाता है। जैसे पक्ष, पर्वत प्रमाणसे सिद्ध है तो उसमें यह पर्वत अग्नि वाला है यों साध्य विशिष्ट पक्ष पूराका पूरा साध्य बना दिया गया है अनुमानमें। ऐसा अनुमान करनेपर भी व्याप्ति बनेगी तो केवल धर्म साध्य रहेगा। जहाँ जहाँ धुवा होता वहाँ वहाँ अग्नि होती। पर्वत छोड़ दिया जायगा व्याप्तिके समय, व्याप्तिके साध्यमें पर्वतको भी घसीट दे तो वह व्याप्ति गलत हो जायगी जहाँ जहाँ धुवा होता है वहाँ आग लगा पर्वत होता है यह कोई अनुमान है क्या इस की व्याप्ति असिद्ध है ? तो जो प्रमाण सिद्ध हो अथवा प्रमाण विकल्प दोनोंसे सिद्ध हो

तो, वहाँ पर साध्य धर्मसे युक्त धर्मी साध्य होता है। उभय सिद्धके मायने यह है कि प्रमाणसे भी सिद्ध हो रहा है और उसमे जो कुछ सिद्ध किया जा रहा है वह कभी प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोसे सिद्ध नही होता किन्तु विकल्पमे सिद्ध होता है। तो जहाँ पक्ष प्रमाण-सिद्ध हैं। साध्य विकल्प सिद्ध है तो यह उभय सिद्ध कहलाता है अथवा अन्य देश कालमे जो पक्ष सिद्ध नही, वर्तमानमे ही है वह उभय सिद्ध है और जहा साध्यका प्रमाण सिद्ध बन सकेगा और पक्ष तो है ही, वह प्रमाण सिद्ध कहलाता है। इन दोनो स्थितियोमे साध्ययुक्त धर्मी साध्य होता है।

अग्निमानयं देशः परिणामी शब्द इति यथा ॥ ३-३१ ॥

प्रमाणसिद्ध और उभयसिद्ध साध्यके दृष्टान्त – प्रमाणसिद्ध पक्षमें तो साध्यधर्म विशिष्ट धर्मी साध्य होता है और इसी प्रकार उभय सिद्धमे भी साध्यधर्म विशिष्ट धर्मी साध्य होता है, किन्तु विकल्पसिद्धमे सत्ता अथवा असत्ता साध्य होता है। विकल्पसिद्धके साध्यका उदाहरण बतलाते हैं। प्रमाण सिद्धका उदाहरण बतलाते हैं। प्रमाण सिद्धका उदाहरण है –जैसे यह पर्वत अग्नि वाला है धूम वाला होनेसे तो यह जो आधार है पर्वत –वह प्रत्यक्ष सिद्ध है। तो यह पक्ष प्रमाण सिद्ध हो गया, जिसका पक्ष प्रमाणसिद्ध हो उसमें साध्य विशिष्ट धर्मी होता है। क्या सिद्ध करना है यह अग्नि वाला पर्वत है यह सिद्ध करना है, तो पूरी प्रतिज्ञा ही साध्य बन जाती है। उभय सिद्धका दृष्टान्त है शब्द परिणामी है तो यहाँ शब्द बहुत कुछ अंशोमे प्रमाण सिद्ध तो हैं ही। सुनाई देते हैं, और उसमे साध्य सिद्ध किया जा रहा है परिणमित वह आखोसे नही दिखाई देता, वह मनसे समझा जाता है। तो जिसका साध्य इन्द्रियगम्य नही है, पर पक्ष इन्द्रिय गम्य है तो वह उभयसिद्ध बन जाता है। जैसे अग्निमान यह पर्वत है तो यहा धर्मी रूपसे कहा गया पर्वत प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध है ना किन्तु दूसरे दृष्टान्तमे शब्द परिणामी है। यहा पर शब्द केवल प्रत्यक्षसे ही सिद्ध नहीं, अथवा प्रत्यक्षसे ही तो उसकी सिद्धि नही बन पाती, किन्तु प्रमाणसे भी, युक्तिसे भी सिद्धि कर पाते हैं। तो जो पक्ष कुछ प्रत्यक्ष जैसा लगता हो उसकी सिद्धि कहलाता है। कोई बहुत दूरका शब्द है बहुत समय भूत कालका शब्द है उसमे तो प्रत्यक्ष की प्रवृत्ति नही होती। केवल जब सुन रहे हैं उस ही कालमे शब्दकी और बहुत अन्तरित दूर देशके शब्दकी पकड की प्रवृत्ति हो पाती है मानसिक विकल्पके द्वारा हम विदेह क्षेत्रके शब्दको भी कह सकते हैं कि वहां भी जो लोग बोल रहे हैं वे शब्द परिणामी हैं अथवा राम रावण आदिकने जो शब्द बोले थे, वे सब भी परिणामी हैं तो उन शब्दोंमे विकल्पकी गति हुई इसलिये वे उभय सिद्ध कहलाते हैं। जो पक्ष कही तो प्रत्यक्ष सिद्ध हो और कही प्रत्यक्ष सिद्ध न हो, केवल युक्ति विकल्पोसे ही जाना जाय उसे कहते हैं उभयसिद्ध।

शब्दवत् पर्वतादि सभी पक्षोकी असिद्धताकी शकाकार द्वारा आशंका

शंकाकार कह रहा कि इस तरह तो जैसे कि शब्दको सिद्ध किया है कि यह सारा प्रत्यक्षसे सिद्ध नही हो रहा तो इसी तरह पर्वत भी सारा प्रत्यक्षसे सिद्ध कहाँ है। अग्नित्व साध्यमे जो पक्ष बताया है देश पर्वत वे तो प्रत्यक्ष कैसे सिद्ध है क्योंकि उस पर्वतमें जो भाग दिख रहा है वहा तो तुम अग्नि सिद्ध कर नही रहे क्योंकि वह तो प्रत्यक्ष सिद्ध है और अग्नि वहां अगर है तो जैसे जो पर्वतका भाग प्रत्यक्षसे दिख रहा तो अग्नि भी प्रत्यक्षसे दिखेगी और प्रत्यक्षमें देखी जाने वाली अग्निका सिद्ध करनेका अनुमान क्या बने। वह तो सिद्ध साधन हो बैठेगा। तो जो दृश्यमान भाग है उसमे अगर अग्नि सत्त्व सिद्ध कर रहे हो तो प्रत्यक्ष बाधित है। वहाँ अग्नि है ही नहीं। वहा यदि है अग्नि तो सिद्ध साधन दोष है। वहाँ हेतु सही नही और अनुमान प्रमाण भी ठीक नही। वह तो प्रत्यक्ष सिद्ध है और जो भाग दिख ही नहीं रहा। पक्ष तो प्रमाणसिद्ध है ही नहीं, तुम साध्य क्या सिद्ध करोगे। याने पर्वतको जो भाग दिख रहा उसमे तो अनुमान व्यर्थ है। जो भाग प्रत्यक्षसे नही दिख रहा उसमें साध्यकी सिद्धि करोगे तो लो पक्ष ही प्रमाण सिद्ध नहीं, पक्ष ही असिद्ध न रहा तो फिर अनुमान कैसे लेवेंगे ?

अवयवी द्रव्यकी अपेक्षा पक्षकी सिद्धताका समाधान— उक्त शंकाका उत्तर देते हैं कि तुम्हारा यह कथन समीचीन नही है, क्योंकि अवयवी द्रव्यकी अपेक्षा से पर्वतको सांव्यवहारिक प्रत्यक्षसे प्रसिद्ध माना है अर्थात् पर्वतके सारे भाग हमे दिखें ऐसा मतव्य नही है। एक अवयवी सामान्य एक पर्वत दिख गया, हिस्सा दिख गया। कुछ नही दीखा पर वह प्रसिद्ध हुआ। और ऐसा यदि अत्यन्त सूक्ष्मदृष्टिसे तुम विचार करोगे तो कोई और भी प्रत्यक्ष न कहलायेगा। तुम्हें घडी दिखी तो घडीके भीतर क्या अथवा घडीके पीछे क्या, यह तो न दिखा। तो यह भी प्रत्यक्ष न रहा। यदि कहो कि अवयवी द्रव्यकी अपेक्षा सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है मानो घडी पिण्ड अवयवी हमको दिख गई। अब यह जरूरी नही कि उसके भीतरका भी भाग दिखे। एक चीज दिख गई चाहे कितने ही हिस्सेमें दिखी हो। वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष होगा। तो मान लीजिये इसी तरह यह पर्वत भी प्रत्यक्ष है। अवयवी द्रव्यकी अपेक्षा वहाँ भी यह जरूरी न बनना चाहिये कि पर्वतके एक एक पेड़ एक एक कंकड़ दिखने चाहिये। मोटे रूपसे वह एक पूरा पर्वत है वह हमें दिख गया। उसका ही कोई भाग दीखा तो पर्वत ही कहलाया दिखानेमें, अन्यथा अर्थात् ऐसी सूक्ष्म दृष्टि देखनेकी बात करोगे तो फिर कुछ प्रत्यक्ष न होगा, क्योंकि हम लोगोंका प्रत्यक्ष बाहरमे भीतरमें सब प्रकारसे पदार्थका साक्षात्कार करनेमे समर्थ नही है, किन्तु ऐसा समर्थ तो सर्वज्ञ प्रत्यक्ष है। इससे अवयवी द्रव्य प्रत्यक्षसे विदित हो गया सामान्य और से तो वह सामान्य प्रत्यक्ष सिद्ध कहा जायगा, इसी प्रकार प्रमाणसिद्धमे और विकल्प सिद्धमें साध्य धर्म विशिष्ट धर्मी होता है।

व्याप्तौ तु साध्य धर्म एव ॥ ३-३२ ॥

व्याप्तिमे साध्यधर्मकी ही साध्यता – जैसे कि प्रयोग कालमे साध्य साध्य धर्म विशिष्ट धर्मी होता है यो व्याप्ति कालमे भी साध्य विशिष्ट धर्मी क्यो नही साध्य हो जाता ? अर्थात् जैसे व्याप्तिके समयमे ऐसी व्याप्ति बनाते हैं कि जहां जहां अग्नि नही होती वहां वहा धूम नही होता और जहा जहा धूम होता वहां वहा अग्नि होती यों व्याप्ति एक खालिस धर्म धर्मीकी लगाते । वहाँ प्रयोग कालकी तरह साध्य विशिष्ट धर्मीके साथ क्यो नही व्याप्ति लगाते । इस जिज्ञासाके समाधानमे यह सूत्र कहा गया है कि व्याप्तिमें साध्य धर्म ही होता है । धर्मवाला साध्य नही होता, क्योंकि प्रयोग कालकी तरह यदि हम व्याप्तिमें साध्यधर्म विशिष्ट धर्मीको साध्य करने लगे तो उसमे बडी आपत्ति आती है । घटित ही न होगा । जैसे व्याप्ति बना दी – जहा जहा अग्नि वाला पर्वत नही होता वहां धुआ भी नही होता । तो यह व्याप्ति घट जायगी क्या सब जगह ? साध्य विशिष्ट धर्मीके साथ साधनकी व्याप्ति नहीं बन सकती । कैसे नही बन सकती । उसके उत्तरमें कहते हैं ।

अन्यथा तदघटनात् ॥ ३-३३ ॥

व्याप्तिमे साध्यधर्मविशिष्ट धर्मीके साध्य बनानेपर व्याप्तिका अघटन साध्य विशिष्ट धर्मीके साथ साधनकी व्याप्ति यदि बना लागे साधनसे साध्य विशिष्ट धर्मी को सिद्ध किया जाने लगेगा तो इसमे बड आपत्ति है । घटित ही नही होता है, फिर कहीं कुछ जान ही न सकेंगे । साध्य विशिष्ट धर्मीके साथ हेतुका अन्वय सिद्ध नही है । जहा जहाँ धुवा होता है वहां वहां अग्नि वाला पर्वत होना है यह बात सही हो गयी क्या ? धुवां तो रसोईघरमें है, वहा पर्वत धरा है क्या ? अथवा जैसे उभय सिद्धका अनुमान देते कि शब्द अनित्य है कृतक होनेसे तो क्या इस कृतकपने साधनकी व्याप्ति अनित्य शब्दके साथ लग जायगी कि जहा जहां कृतक पना है वहा वहा अनित्य शब्द है यह व्याप्ति तो नही लगती । कृतकपना तो घट पट आदिकमे भी है पर वहां अनित्य शब्द तो नही सिद्ध किया जा सकता ।

पक्ष प्रयोगकी अनावश्यकता और अनुचितताकी शका- अब यह क्षणिकवादी शकाकार शका कर रहा है कि प्रसिद्धो धर्मी इस प्रकारसे पक्षका लक्षण करना युक्त नही है, अर्थात् जो प्रसिद्ध हो वह धर्मी होता है, साध्य धर्मका आधारभूत प्रसिद्ध ही हुआ करता है ऐसा पक्षका लक्षण करना सही नही है क्योंकि सर्वज्ञ है आदिक अनुमान प्रयोगमे पक्षका प्रयोग ही असम्भव है । क्योंकि वह तो अर्थापन्न है । स्वय सिद्ध है । अर्थसे ही बोलनेके साथ ही सिद्ध होनेको कहनेमे पुनरुक्त दोष होता है और फिर पक्षका प्रयोग करनेपर भी हेतु आदिकके कहे बिना साध्य तो सिद्ध नही होता तो हेतुवचनसे ही साध्यकी सिद्धि हो जाती है इसलिए पक्षका प्रयोग करना व्यर्थ

है। इस शकाकारका अभिप्राय यह है कि किसी भी अनुमानमें पक्षका प्रयोग भी कर दिया जाय पर वहाँ पर हेतु न कहा जाय तो साध्य सिद्ध हो जायगा क्या ? तो अनुमानमे सार्थकता तो हेतुकी है और कही पक्ष नहीं भी रहा, वहा हेतुके बोलनेसे साध्य सिद्ध हो जाता है। पक्षके बिना भी साध्य सिद्ध होता है, पर हेतुके बिना साध्य सिद्ध नही हो सकता। जैसे यही सर्वज्ञ है बाधक प्रमाण न होनेसे तो यहाँ पक्ष क्या बताया ? कुछ भी पक्ष नही। विकल्प सिद्ध मान रहे ना तुम। जहाँ पक्ष न हो प्रमाण सिद्ध न हो वहाँ साध्य सत्ता या असत्ता होता है, तो यहा पक्षके बिना भी काम चल गया पर कोई भी अनुमान ऐसा है कि हेतुके बिना बन सके ऐसा कोई अनुमान हो ही नही सकता। इसलिये साध्यकी सिद्धि केवल हेतुसे होती है। तब पक्षका प्रयोग करना व्यर्थ है, ऐसी आशका पर उत्तर देते हैं।

साध्यधर्माधारसंदेहापनोदाय गम्यमानस्यापि पक्षस्य वचनम् ॥ ३-३४ ॥

पक्षप्रयोगकी आवश्यकताका वर्णन—साध्यरूप धर्मके आधारका सदेह मिटानेके लिये गम्यमान भी पक्षका कथन किया जाता है। जैसे साध्य धर्म हैं अस्तित्व आदिक, उसका आधार जहाँ पर पाया जाय उसे कहते हैं साध्यधर्मी। तो जैसे विकल्प सिद्ध अनुमानमें कहा गया कि सर्वज्ञ है तो वहाँ पर भी है की सिद्धिकी जा रही है तो वह अस्तित्व कहा सिद्ध किया जा रहा। सर्वज्ञमें सिद्ध किया जा रहा था, सुख आदिकमें सिद्ध किया जा रहा। तो पक्ष तो वहा भी मिल गया। सर्वज्ञ है बाधक प्रमाण न होनेसे तो यहा यह स्पष्टरूपसे पक्ष विदित नहीं हो रहा, यो नही हो रहा कि सर्वज्ञ कोई यहा प्रत्यक्ष सिद्ध नही है लेकिन सिद्ध किया जा रहा है सर्वज्ञमें। तो इस तरहसे सर्वज्ञ पक्ष बन गया और अस्तित्व साध्य बन गया। सर्वज्ञ है ऐसा कहनेमे सर्वज्ञ कहनेकी खास जरूरत रही कि नही रही ? ऐसा अनुमान तो न बना दोगे कि है बाधक प्रमाण होनेसे। क्या है- उसका आधार तो कुछ कहा ही नही। तो जैसे सामान्य अनुमानोमे भी साध्य धर्मका आधार पाया जाता है उस आधारका सदेह दूर करनेके लिये पक्ष कहा जाता है। तो ऐसे ही सर्वज्ञ धर्मके आधारका सन्देह दूर करनेके लिए पक्ष कहा जाता है। कोई कहे—अरे अग्नि है धुवा होनेसे तो इसमें क्या समझा वह ? किसमें अग्नि है इसकी तो जिज्ञासा रहेगी ना। और जब तक उस साध्यके आधारका परिज्ञान न होगा तब तक हेतुका हाँ हाँ हूँ हूँ है। तो जैसे सर्वज्ञ है इस अनुमानमें अस्तित्वके आधारभूत सर्वज्ञ सिद्ध कहना आवश्यक हो गया है। इसी प्रकार सर्वत्र अनुमानोमें साध्य धर्मका आधार बनाना आवश्यक होता है। इसी बातको उदाहरण देकर खुलासा करते हैं।

साध्यधर्मिणि साधनधर्मावबोधनाय पक्षधर्मोपसंहारवत् ॥ ३-३५ ॥

पक्षप्रयोगकी आवश्यकताका समर्थन एव पक्षप्रयोगके अनौचित्यके दो

विकल्पोमेसे प्रथम विकल्पका निराकरण - जैसे साधनधर्मीमे साधनधर्म समझाने के लिये पक्ष धर्मका उपसहार किया जाता है अर्थात् उपनयका प्रयोग होता है उसी प्रकार साध्यधर्मके आधारका सदेह दूर करनेके लिए आधार बतानेके लिये पक्षका भी कथन किया जाता है। अन्यथा यह बतलावो कि पक्षका प्रयोग क्यो न करना चाहिये, जिस आधारमे साध्यका सिद्ध करना है उस आधारका प्रयोग क्यो न करना चाहिये, क्या इसलिये न करना चाहिये कि पक्षका प्रयोग साध्यकी सिद्धिमे बाधा डालता है अथवा इसलिए न करना चाहिये कि उसका कोई प्रयोजन नही है। न दो विकल्पो का खुलासा यह है कि जैसे कहते कि पर्वतमे अग्नि है धुवा होने से तो शङ्काकार यह कह रहा है कि पर्वतमे इतना शब्द न बोलना चाहिये। तो पूछ रहे कि क्यो न बोलना चाहिये ? क्या 'पर्वतमे" ऐसा कहनेसे अग्निको सिद्ध करनेमे बाधा आ जाती है। अर्थात् 'पर्वतमे' अगर कह दे तो अग्नि सिद्ध न होगी क्या, ऐसी नौबत आती है अथवा 'पर्वतमे" क्या इतना शब्द कहनेका कोई प्रयोजन नही है इसलिये यह पक्ष न कहना चाहिये तो इन दो विकल्पोमेसे पहिला विकल्प तो अयुक्त है अर्थात् पक्षका प्रयोग करनेसे साध्यकी सिद्धिमे बाधा आती है या वह साध्यको सिद्ध करने ही न देगा, यह बात तो अयुक्त है क्योकि वादीके द्वारा जो अपना पक्ष प्रस्तुत किया गया है उस पक्षमे साध्य सिद्ध करना जो प्रयुक्त किया गया है जिसका कि साध्यके साथ अविनाभावरूप नियम पाना जाना ऐसा हेतु मिल रहा है तो वह तो बाधक न होगा। प्रतिज्ञाका प्रयोग बाधक नही होता बल्कि पक्ष प्रयोगसे साध्यको अच्छी तरह समझने मे मदद मिलती है। जैसे सर्वज्ञ है ऐसा जो पक्ष सिद्ध कर रहे हो उसमे तो और स्पष्टता आती है कि हम क्या सिद्ध कर रहे हैं ? पक्षके बोलनेसे तो घटना स्पष्ट समझमे आती है। 'पर्वतमे' यह बोल देनेसे बात प्रकरणकी ठीक समझमे आ गयी कि यहा क्या सिद्ध करना चाहते हैं ? पक्षके प्रयोग बिना तो साध्यकी सिद्धि व्याप्तिसे ही सिद्ध हो रही थी फिर अनुमान क्या बने ? पक्षके प्रयोग बिना प्रतिज्ञाके कहे बिना अनुमानका रूप ही नही बन सकता। वह तो व्याप्तिका विषय है, तर्कज्ञानका विषय है कि पक्ष बोले बिना साध्यका साध्यसाधनसे सम्बन्ध बनाना इससे यह कहना अयुक्त है कि पक्षका प्रयोग करनेसे साध्यकी सिद्धिमे रुकावट हो जाती है।

पक्षप्रयोगके अनौचित्यके द्वितीय विकल्पका खण्डन दूसरा पक्ष भी अयुक्त है अर्थात् यह कहना कि पक्षका प्रयोग यो न करना चाहिये कि उसका प्रयोग करनेका कोई प्रयोजन ही नही है। यह विकल्प क्यो अयुक्त है ? यो कि पक्षका प्रयोग करनेपर प्रतिपाद्य शिष्यको जो बात समझायी जा रही है वह ज्ञान विशेष अच्छी तरह समझमे आता है, यह प्रयोजन मौजूद है और फिर पीछे आग जल रही है और धुवा दिख रहा है कुछ आगे सो वहा अनुमान करें कि देखो यहा कही आग जल रही है क्योकि धुवा उठ रहा है। अब 'यही कही" यह तो हुआ पक्ष और उसका प्रयोग करते हैं, अन्यथा इसका फल क्या होगा कि फिर तो उस अग्निसे बच कर भी न

निकल सकेगा वह आग बढ़कर आयगी और खुदको जला देगी। तो पक्षको कहनेका प्रयोजन रहता ही है, उसमें ज्ञान विशेष होता है और किसमें साध्य सिद्ध किया जा रहा है? वह तो मूल प्रयोजन है ही सो प्रयोजन होनेसे पक्षका प्रयोग करना चाहिये। पक्षका अगर प्रयोग न करें तो जो कोई मंद बुद्धि वाले लोग है उनको प्रासंगिक अर्थ का ज्ञान हो ही न सकेगा। साध्यधर्मका आधार न बोला जाय जैसे "पर्वतमें" इतने शब्द न बोले जायें अग्नि है धुवा होनेसे, इससे कोई क्या समझे और उसका प्रयोजन क्या निकले? हां जो पुरुष पक्षके प्रयोग बिना भी प्रकृत अर्थको समझ सकते हैं उनके प्रति पक्षका प्रयोग न करें तो यह बन सकता है क्योंकि प्रयोग करनेकी जो परिपाटी है कुछ बोलनेकी जो परम्परा है वह प्रतिपाद्य पुरुषके अनुरोधसे होती है। जैसे प्रतिपाद्य पुरुष हो, जिसको समझाया जा रहा है वह जिस योग्यताका हो उसके अनुसार वचनोंका प्रयोग हुआ करता है।

गम्यमान होनेपर भी पक्षप्रयोगकी आवश्यकता — सो प्रयोजन होनेसे पक्षका प्रयोग उचित ही है। यद्यपि पक्ष गम्यमान है, प्रमाण सिद्ध है, प्रत्यक्ष सिद्ध है प्रसिद्ध है तो भी उसका प्रयोग करना युक्त है अन्यथा यदि गम्यमान भी पक्षका प्रयोग न किया जाय तो शास्त्र आदिकमे भी प्रतिज्ञाका प्रयोग कैसे बनेगा? शास्त्रमे, नियत कथामे गोष्ठमे "प्रतिज्ञा" नही कही जाती ऐसा बात नही है क्योंकि यहां अग्नि है धुवा होनेसे यह वृक्ष है शीशम होनेसे आदिक अनेक जगहोमें पक्षका प्रयोग किया ही जाता है। यदि कहो कि दूसरेको करुणासे लगे हुए शास्त्रकार होते हैं तो उन्हें समझाना है शिष्योंको, सो शिष्योंके समझानेके आधीन उनकी बुद्धि हुई है याने जिस प्रकार कुछ शिष्य समझ सकें उस प्रकारकी बुद्धि शास्त्रकारोंको बनानी पड़ती है इसलिये शास्त्रके आदिमे प्रतिज्ञाका प्रयोग करना सही है उपयोगी है। तो कहते हैं कि यही बात वादमे है अनुमानमे है कि वहां भी जो दूसरेको समझाया जा रहा है। वह जिस प्रकार समझ ले उस ही प्रकार तो बोलना पड़ेगा। तो समझनेके लिये साध्यके आधारका बोलना आवश्यक है, इस कारण गम्यमान पक्षका भी कथन करना जरूरी है, क्योंकि उससे ही साध्यधर्मके आधारका संदेह दूर होता है और शिष्य समझ जाता है कि इस अनुमानमे यह बात कही गई है।

को वा त्रिधा हेतुमुक्त्वा समर्थयमानो न पक्षयति ॥ ३८ ॥

पक्षधर्मत्वादी हेतुप्रकार मानने वालोके मतमे पक्षप्रयोगकी अनिवार्य सिद्धि—प्रकरण यह चल रहा है कि क्षणिकवादी यह कह रहे हैं कि अनुमानके प्रयोगमे पक्षके कहनेकी कुछ जरूरत नही है। जैसे अनुमान बना करता है कि पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे तो 'पर्वतमे' इतने शब्द पक्ष कहलाता है। शंकाकारका कहना है कि पक्षको कहनेकी आवश्यकता ही नही है। केवल हेतुसे साध्यकी सिद्धि हुआ करती

है । उसके प्रति कहा जा रहा है कि ये क्षणिकवादी हेतुको तीन प्रकारके मानते हैं, अथवा त्रैरूप्य कहते हैं पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्त्व विपक्षव्यावृत्ति । हेतुको तीन रूपोसे मान लिया जिसमे पक्षधर्मत्वका अर्थ यह है कि पक्षमे साधनका होना । सपक्षसत्त्वका अर्थ है सपक्षमें साध्य साधनका होना, विपक्षव्यावृत्तिका अर्थ है कि जो पक्ष नही उनमे साध्य साधनका न होना तो हेतुके इस त्रैरूप्यमे पक्षकी बात मानी जा रही है पर प्रकट रूपमे पक्षको नही स्वीकार करते । अथवा उन्होने हेतुको भी तीन प्रकारका माना है । कार्य, स्वभाव और अनुपलब्धि । कोई हेतु कार्यरूप है तो किसका कार्य है, किसमे कार्य है यह समझे बिना तो कार्यका स्वरूप नही जाना जाता । तो इसीको ही पक्षका स्वरूप मान लिया, स्वभावरूप हेतु माना । स्वभाव किसका, स्वभाव किसमे है केवल माने बिना स्वभाव तो नही बनता तो पक्ष मान ही लिया । जहाँ अनुपलब्धि हेतु माना है न पाया जाय, कहा न पाया जाय यह तो समझना ही पडेगा तो यो पक्ष माना जा रहा है पर एक नियमसे पक्षका अङ्गीकरण नही करते । इन क्षणिकवादियो ने कहा है कि दोष तीन प्रकारके होते हैं हेतुमे—असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक । जो हेतु सिद्ध नही है पक्षमे पाया हो न जाय उसे कहते हैं असिद्ध । जो हेतु साध्यसे विरुद्ध बनता हो उसे कहते हैं विरुद्ध और जो हेतु पक्षमे भी जाय सपक्षमे भी जाय विपक्षमें भी जाय उस हेतुका क्या महत्त्व है ? वही अनैकान्तिक दोष है । तो इन तीन प्रकारके दोषोके वर्णनमे भी पक्ष मान लिया । दोषके परिहार द्वारा जो भी समर्थन करेगे उसमें पक्ष मान लिया, पर यहा नियमसे उसे अङ्ग नहीं मान रहे । तो जैसे पक्ष का प्रयोग किये बिना पक्षका समर्थन करते जा रहे हैं, ये क्षणिकवादी तो हेतुको माने बिना हेतुका समर्थन करते जावे हेतुको भी अग क्यो मानते हो ? यदि कहो कि समर्थन नही हो सकता माने बिना और समर्थन हुए बिना साध्यकी सिद्धि नही हो सकती तो यही बात यहा है, यहा भी पक्षका समर्थन करना और पक्षको कहना आवश्यक है. शङ्काकार कहता है कि हेतुको यदि न कहोगे तो समर्थन किसका । उत्तर देते है कि पक्षको भी न कहोगे तो हेतु कहाँ रहेगा, यह भी तो स्पष्ट नही होता । यदि कहो कि जो प्रत्यक्षसिद्ध है, प्रतिज्ञाका विषय है उसमे रह जायगा हेतु तो यो प्रत्यक्षसिद्ध हेतु आदिकका भी समर्थन बन जाय तो इस कारण जैसे कि गम्यमान भी हेतुका कथन करना पडता है । प्रत्यक्षसे जाने हुयेको भी साधनका कथन करना पडता है । मद बुद्धियोके समझानेके लिये इस ही प्रकार प्रतिज्ञाका भी वचन मद बुद्धियोके समझाने के लिए करना चाहिये । इससे जो साध्यका ज्ञान चाहते हैं उन्हे जैसे हेतुका बोलना आवश्यक जच रहा है इसी प्रकार पक्षका बोलना भी आवश्यक समझना चाहिये । यहाँ तक ही अनुमानके खास अग है । क्या ? प्रतिज्ञा और हेतु । पूर्वपे तो आ गया वह पक्ष जहाँ साध्य सम्मिलित है और इस ही विषयको कभी पक्ष नामसे भी कह दिया जाता है । तो दो ही अनुमानके अग है, उसको सूत्र रूपमे कहते हैं ।

एतदद्वयमेवानुमानाङ्गं नोदाहरणम् ।। ३७ ।।

शंकाकार द्वारा उदाहरणको अनुमानका तृतीय अङ्ग माननेका कथन

प्रतिज्ञा और हेतु अथवा कहो पक्ष और हेतु ये दो ही अनुमानके अंग हैं। उदाहरण अनुमानका अवयव नहीं है। अवयव वह कहलाता है कि जिसके बिना अवयवी हीं न रहे। वैसे उदाहरण आदिक कुछ कुछ उसमे मदद देते हैं मंद बुद्धियोको समझानेके लिये लेकिन यह खोज करें कि यह न रहे तो क्या अनुमान बन नहीं सकता? तो जिसके रहनेसे अनुमान बन ही न सके, अंग तो वही कहलावेगा? अन्य तो फालतू मदद हैं। इसपर शंकाकार कहता है कि वाह अनुमानके अवयव तो ५ हैं —पक्ष, हेतु दृष्टान्त, उपनय और निगमन। दृष्टान्त आदिक भी तो अनुमानके अंग हो सकते हैं। फिर यह कहना कि केवल प्रतिज्ञा और हेतु अर्थात् पक्ष और हेतु यही अनुमानके अंग है यह ठीक नहीं हैं। देखिये —प्रतिज्ञा है एक आगम। आगमके मायने एक विषेय शब्द रचना। क्या कहना है उसका नाम है प्रतिज्ञा। पर्वत अग्नि वाला है यह सिद्ध करना है तो इस वचनका नाम है प्रतिज्ञा। तो प्रतिज्ञा कहलाया आगम। आगमके मायने यहाँ यह न समझना कि कोई भगवत् प्रणीत शास्त्र कहा जा रहा हो, किन्तु जो शब्द रचना है जिस शब्दको सुनकर अवबोध होता है उसका ही नाम आगम है तो प्रतिज्ञा आगम है और हेतु अनुमान है, क्योंकि प्रतिज्ञा किए हुए अर्थका हेतुसे ही अनुमान किया जाता है। तो यो कारणमे कार्यका उपचार करके कहा गया है कि वह हेतु ही अनुमान है। यहाँ यह बतला रहे हैं कि अनुमानके जो ५ अवयव कह रहे हैं वे सब प्रमाणरूप हैं अप्रमाण नहीं है। तभी कह रहे ना कि पक्ष तो आगम है और हेतु अनुमान है और उदाहरण प्रत्यक्ष है। क्योंकि जो भी उदाहरण दिया जायगा वह वादी और प्रतिवादी दोनोमे सम्मत होता है। तब उदाहरण काम देगा। पक्षमें साध्य तो वादीको ही इष्ट है मगर उदाहरण जो उसका दिया जायगा उसे वादी भी मानता है और प्रतिवादी भी। तब उदाहरण है। तो वादी प्रतिवादीकी बुद्धिमे जो समान रूपसे रहे उदाहरण वही हो सकता है। इससे सिद्ध हुआ कि उदाहरण प्रत्यक्ष है उपनय उपमान है। उपमान प्रमाण उसे कहते हैं कि किसीमे दूसरेसे सदृशता दी जाय। इसका मुख चन्द्रमाके समान है। यह गाय रोझके सदृश है, यह सब उपमान कहलाता है तो उपनयमे क्या किया गया कि दृष्टान्त विशिष्टधर्मी और साध्य विशिष्ट धर्मी इन दोनोमे सदृशता बतायी गई है। जैसे पर्वत अग्नि वाला है धूम होते है, जैसे रसोईघर। तो अग्नि वाले पर्वतकी उपमा दी गई है रसोईघरसे। रसोईघर भी अग्नि वाला है तो यह पर्वत भी अग्नि वाला है। ऐसी उपमा देनेसे उपनय उपमान कहलाता है। उपनयमे क्या किया जाता है और यह भी धूम वाला है यह उपनय है। तो ऐसा कहनेमे दोनोकी समानता आ गई। तो यह उपमान प्रमाण हुआ और निगमन तो इन सब अवयवोका एक विषयरूप फल बताता है उसका नाम निगमन है। जैसे इस कारण पर्वत अग्नि वाला है निगमनकी बात समाप्त हो जाती है तो इन सब प्रमाणोके द्वारा जो निर्णय किया गया है वह तो ठीक ही होता है, प्रमाणभूत है, इस

तरह अनुमानके जो ५ अवयव हैं वे साक्षात् प्रमाणभूत हैं। ऐसे प्रामाणिक अवयवोंका तुम कैसे निराकरण करते हो ?

उदाहरणको अनुमानका अंग माननेका निराकरण—शंकाकारने अनुमानके अवयवके ५ अवयव बतानेके लिये कैसी युक्ति दी है कि वे अवयव स्वयं प्रमाणभूत है। प्रमाणभूतको मना कौन कर सकता है ? प्रतिज्ञा है आगम। हेतु है अनुमान उदाहरण है प्रत्यक्ष, उपनय है उपमान और निगमन है सबका फल। तो ये ५ अवयव सही है। तुम उदाहरणको अनुमानका अंग बताना चाहते यह बात अयुक्त है ऐसी आशंका होनेपर उत्तर दिया जा रहा है कि उदाहरण अनुमानका अंग नहीं हैं। इसको अगले सूत्रमे कहेंगे, पर प्रकृतमे यह कहा जा रहा है कि उदाहरण अनुमानका खास अवयव नही है। कुछ भी अनुमान करें, उदाहरण बिना भी तो समझ आती है। अरे यहाँ आग है, धुवाँ उठ रहा है इतनेसे ही समझ गया सबको, अब उसमे दृष्टान्त देना यह तो मंद बुद्धि वालोके लिये है। यह अनुमानका अंग न बना। यदि उदाहरणको अनुमानका अंग कह रहे हो तो यह तो बतलावो कि उदाहरण किस लिये दिया जाता है, उदाहरण किस काममे आता है ? ऐसा कौन सा काम है कि जिसका उदाहरणके बिना स्पष्टीकरण न हो। क्या इसलिये उदाहरण कहा जाता है कि साक्षात् साध्यका ज्ञान हो जाय ? उदाहरण देनेसे साक्षात् साध्यका ज्ञान हो जाय यह मन्तव्य है ? अथवा क्या उदाहरणका यह प्रयोजन है हेतुके साध्यके साथ अविनाभाव रख रहा है अर्थात् साध्यके बिना यह हेतु नही हो सकता। यह निर्णय करानेके लिये उदाहरण दिया जाता है क्या ? अथवा व्याप्तिका स्मरण करानेके लिये उदाहरण दिया जाता है ये तीन विकल्प किये गए कि उदाहरणकी आवश्यकता क्यो है और उदाहरणसे काम क्या निकलना है। अब इन तीन विकल्पोका निराकरण सूत्रकार स्वयं क्रमशः सूत्रोमे कह रहे हैं।

न हि तत्साध्यप्रतिपत्त्यङ्गं तत्र यथोक्तहेतोरेव व्यापारात् ।। ३–३८ ।।

उदाहरणमे साध्यकी प्रतिपत्तिके अंगपनेका अभाव—पहिला विकल्प था कि उदाहरण साध्यकी प्रतिपत्तिके लिये दिया जाता है। तो कहते हैं कि उदाहरण साध्यकी प्रतिपत्तिका अंग नहीं है। उदाहरण न दिया जाय तो साध्यका ज्ञान न हो ऐसा नहीं है। जैसे यहाँ अग्नि है धुवाँ होनेसे। अब इसके बाद यदि उदाहरण न दिया जाय तो कोई अटक नही है। समझ जायगा सब इसलिये उदाहरण अनुमानका अङ्ग नहीं बन सकता। यहाँ तो लोगोने अविनाभाव वाले हेतुके कहनेसे ही सब समझ लिया अग्निके बिना धुवा नही होता और धुवा यहां दिख रहा है तो अपने आप सब समझा गया कि अग्नि होनी चाहिये। तो अविनाभाव नियमरूप जो हेतु है, - जो साध्यके बिना नही हो सकता, अग्निके बिना नही हो सकता तो उस धूमके कहने

मात्रसे ही वहा अग्निका परिज्ञान लोगोने कर लिया तो साध्यकी प्रतिपत्तिका अग तो हेतु है जिस चीजको हम सिद्ध कर रहे हैं उसके सिद्ध करनेका कारण तो मूल हेतु है। हेतुसे ही उसकी सिद्धि हो जायगी, वहा उदाहरणकी जरूरत नही है।

तदविनाभावनिश्चयार्थं वा विपक्षे बाधकादेव तत्सिद्धे ॥ ३६ ॥

अविनाभावके निश्चयके लिए उदाहरण प्रयोगकी निरर्थकता :- अब जो दूसरा विकल्प किया गया था कि उदाहरण किस लिये दिया जा रहा। क्या साध्य के साथ हेतुका अविनाभाव निश्चित होनेके लिये उदाहरण दिया जा रहा है ? तो यो भी नही है। साध्यके साथ अविनाभाव बतानेके लिय भी उदाहरण नही दिया जा रहा, क्योंकि उसका अविनाभाव तो विपक्षमे बाधक प्रमाणसे ही सिद्ध हो जाता है। अर्थात् धुवा और अग्निका विपक्ष है तालाब। तालाबमे न अग्न है न धुवा है। साध्य जहा न हो उसे विपक्ष कहते हैं। तो वहा विपक्षमे बाधक प्रमाण है। प्रत्यक्ष सिद्ध है, धुवा नही है, तो विपक्षमे बाधक प्रमाण आया, उससे साध्यके साथ हेतुका अविनाभाव निर्धारित हो जाता है। वहा उदाहरण कहनेकी कोई जरूरत नही। इससे स्पष्ट है कि अविनाभावके निश्चयमे उदाहरण अनुमानका अग नही है। कोई कहते कि व्याप्ति तो सपक्षमे सत्त्व बतानेसे सिद्ध होती है, यहाँ क्या कहा जा रहा था कि विपक्षमें बाधक होनेसे, उदाहरण विपक्षमे साध्य साधन न पाये जानेसे अनुमानकी सिद्धि हो जाती है। यहा शकाकार कह रहा है कि नहीं, सपक्षमें सत्त्व दिखानेसे व्याप्ति सिद्ध होती है। जैसे जहाँ जहा धुवाँ होता है वहा वहां अग्नि होती है। जैसे रसोईघर। तो रसोईघर हुआ सपक्ष और उसमे धूम आदिकका बताया गया सत्त्व तो व्याप्ति बने ना ? उत्तर देते हैं कि यह व्याप्ति कही गलत भी हो सकती है। सपक्ष सत्त्वसे हेतुका अविनाभाव मान लेना यह कहीं गलत भी हो सकता है। जैसे— एक अनुमान बनाया। देवदत्तका वह लडका काला है क्योकि देवदत्तका लडका होने से। अन्य पुत्रोकी तरह। मानलो देवदत्तके ५ लडके थे जिनमेसे चार तो थे काले और एक था गोरा। अब कोई यह अनुमान बनाये कि जो गोरा था उसके प्रति कि वह तो काला है क्योकि देवदत्तका पुत्र होनेसे, जैसे बाकीके चार पुत्र। तो अब देखो सपक्ष सत्त्व पाया गया या नहीं ? देवदत्तका वे पुत्र भी है हेतु मिल गया और काले भी है साध्य मिल गया मगर यह अनुमान क्या सही है ? यह सही नहीं है क्योंकि वह तो गौर है सो हेतु हेत्वाभास बन गया। तो सपक्षसत्त्व दिखने मात्रसे व्याप्ति नही बनती किन्तु विपक्षमे हेतु साध्य न रहे उससे व्याप्ति बनती है शकाकार कहता है कि सामस्त्यरूपसे साध्यकी निवृत्ति होनेपर साधनकी निवृत्ति यहा असम्भव है, क्योंकि दूसरा जो गौर देवदत्तका पुत्र है उसमे देवदत्तकी पुत्रता तो मौजूद है पर साध्य निवृत्तिसे साधन निवृत्ति नही बन रही इसलिये व्याप्ति न होगी। तो उत्तर देते कि यही तो हम कह रहे हैं। सर्वरूपसे जहां साध्य न रहे वहा साधन भी न रहे ऐसा

जहाँ निश्चय हो वही तो अविनाभाव है। उसीका नाम विपक्षमे बाधा आना है। तो विपक्षमें बाधक हेतु होनेमें अविनाभावका भी निश्चय होता है। उदाहरण देनेसे इस अविनाभावका निश्चय नही होता, इस कारण जो दूसरा विकल्प था याने उदाहरण इसलिये दिये जाता है कि उससे हेतुका साध्यके साथ अविनाभाव निश्चित हो जाय, सो बात युक्त नही है। और भी देखिये।

व्यक्तिरूप च निदर्शन सामान्येन तु व्याप्ति तत्रापि तद्विप्रतिपत्तावनस्थान स्यात् दृष्टान्तरापेक्षणात् ॥४०॥

उदाहरणसे अविनाभावके अनिश्चयका विवरण और उदाहरणकी अङ्गतामे दोष—शङ्काकारका यह कहना है कि अनुमान प्रमाणमे उदाहरण देना जरूरी है। उदाहरण दिये बिना हेतुमे साध्यके साथ अविनाभाव नही जाना जाता लेकिन यहा बात और ही मिल रही है। उदाहरण हाता है व्यक्तिरूप विशेषरूप और व्यक्ति होती है सामान्यसे। कोई ऐसी व्याप्ति तो न ठर सकेगा कि जहाँ जहाँ धुवा होता है वहा वहा अग्नि वाला पर्वत होता है। यह व्याप्ति घटित ही नही होगी क्योकि वह विशिष्ट ले लिया। इसी तरह उदाहरण भी जो दिया जायगा वह भी विशिष्ट होगा तो व्यक्तिरूप होता है उदाहरण उससे भी व्यक्ति नही जमती कि जहा जहा धुवा हो वहाँ वहा आग वाला रसोईघर होता है। तो व्यक्तिरूप होता है उदाहरण और सामान्यसे की जाती है व्याप्ति। दूसरी बात यह है कि उस उदाहरणमे भी यदि विवाद हो व्याप्तिका तो उसके लिए दूसरा व्यक्ति बनेगी, उसके लिए फिर उदाहरण दिया जायगा, यो विवाद होगा। तो यो उदाहरणकी परम्परा लग जायगी, अनवस्था दोष हो जायगा। दृष्टान्त हुआ करता है वह जो वादीको भी मान्य हो और प्रतिवादीको भी। साध्य वह होता है जो केवल वादीको मान्य हो प्रतिवादीको नही तभी तो प्रतिवादीको समझानेके लिए अनुमान बनाया जाता है, पर दृष्टान्त वह दिया जाता है जो वादीको भी मान्य है और प्रतिवादी भी मान ले। जैसे अग्निका साध्य सिद्ध करनेमे रसोईघर आदि दृष्टान्त दिये जाते है। कहा कि जहा धुवा होता है वहा आग होती है, जैसे रसोईघर! तो दूसरेने भी मान लिया कि हा बात ठीक है और कहने वाले मान ही रहे थे। तो उदाहरण होता है सर्वसम्मत वह होता है व्यक्तिरूप। तो वह व्यक्तिरूप उदाहरण साध्य और हेतुके अविनाभावके निश्चयके लिए कैसे बन सकता है? क्या यह अविनाभाव बन जाता है। जहा धुवा होता है वहा आग वाला रसोईघर है प्रतिनियत व्यक्तिमे किसी खास जगहमे व्याप्तिका निश्चय नही किया जा सकता व्याप्ति जब बनती है तो खालिस धर्म धर्मके साथ बनती है। जो किया हुआ होता है वह अनित्य होता है जो अनित्य नही होता है वह किया हुआ नही होता। यह तो सामान्यसे व्याप्ति बन जायगी पर जहा शब्दमे अनित्य सिद्ध कर रहे है कि शब्द अनित्य है, विनाशीक है, क्योकि किया हुआ होनेसे तो वहा यह व्याप्ति लगा देगा कोई कि जो

किया हुआ होता है वह अनित्य शब्द होता है या इसके दृष्टान्तमे, घट पट, आदिक दिया तो क्या यह व्याप्ति लगा दी जायगी कि जो किया हुआ होता है वह अनित्य घट पट होता है। खास व्यक्तिमे व्याप्ति नही चलती। व्याप्ति चलती है सामान्यरूपसे। जिसका देश नियत न हो, जिसका काल नियत न किया जाय, जिसका आकार नियत न किया जाय, ऐसे सामान्य से अगर मेल बैठा लेगे तो व्याप्ति बनेगी अन्यथा नही। विशेषके साथ व्याप्ति नही होती, सामान्यके साथ व्याप्ति होती है। यदि सामान्यसे व्याप्ति न हो जाय तो अन्य विशिष्टके साथ लगाई गई व्याप्ति अन्य विशिष्टमें कैसे साध्यको सिद्ध कर दे। व्याप्ति तो यह लगा बैठे कि जहा धुवा होता है वहा आगवाला रसोईघर होता है और सिद्ध करें हम पर्वतमे तो कैसे सिद्ध कर देंगे ? यदि वहा भी दृष्टान्तमे भी उस व्याप्तिमे विवाद हो जाय तो फिर अन्य दृष्टान्त देने पड़ेंगे। तो यो अनवस्था दोष होता है। इससे यह मान लेना चाहिये कि हेतुका साध्य के साथ अविनाभाव निश्चित करनेके लिए भी उदाहरण अग नही बन सकता। उसका निश्चय तो तर्क प्रमाण द्वारा होता है। इसलिये द्वितीय विकल्प भी ठीक नही है।

तापि व्याप्ति स्मरणार्थं तथाविधहेतुप्रयोगादेव तत्स्मृते ॥ ४१ ॥

व्याप्तिस्मरणके लिये भी उदाहरणकी अनुमानागताका अभाव—तीसरा विकल्प था कि व्याप्तिके स्मरणके लिये उदाहरण अग बनता है, सो भी बात नही, क्योकि जिस हेतुका साध्यके साथ अविनाभाव बना ऐसे हेतुके कहने मात्रमे ही व्याप्ति का स्मरण हो जाता है। व्याप्तिके स्मरणके लिये दृष्टान्तोका देना युक्त नही है वह तो हेतुसे तुरन्त सिद्ध हो जाता है। समझाये जाने वाले हेतुके प्रयोगसे ही जान जाते है हैं कि यह साध्यके साथ अविनाभाव रखने वाला हेतु है। जो वाद विवादके स्थल होते हैं उनमे विद्वानोंका ही तो अधिकार है। वे जरा-जरा सी बातोको सिद्ध करनेके लिये दृष्टान्त देते रहे तो यह तो उनके समयका दुरुपयोग हैं और बुद्धिमानीका सूचक नही है और खास कर अनुमान जैसा प्रमाण उपस्थित करनेमे उदाहरण दें तो उनकी वह विद्वता भी नही है। यह कहीं शिष्यको समझानेका प्रसग नही है। वह तो वाद विवादका प्रसग है तो वादमें उदाहरण अग नही बन सकती है। इसी प्रकार तीसरा जो विकल्प किया गया था कि व्याप्तिके स्मरणके लिये उदाहरण दिया जाता है। वह भी ठीक नहीं है। तो उदाहरण प्रयोजन रहित हो गया। उदाहरणका कोई प्रयोजन नही रहा। तब अनुमानके अग केवल दो ही सिद्ध हुये—प्रतिज्ञा और हेतु।

तत्परमभिधीयमान साध्यधर्मिणि साध्यसाधने सन्देहयति ॥ ४२ ॥

केवल अभिधीयमान उदाहरणसे साध्यधर्मीमे साध्यसाधनका सन्देह प्रकरण यह चल रहा था कि शकाकारका मतव्य है कि पक्षका प्रयोग करना व्यर्थ है। पक्ष कोई अनुमान अग नही है। उसके उत्तरमे तो अभी प्रकरण निकल चुका है।

उसके सिलसिलेमे शकाकार अब यह कह रहा है कि, उदाहरण भी अनुमानका एक खास और अत्यन्त आवश्यक अग है इसलिये अनुमानके प्रयोगमे उदाहरणको अवश्य कहना चाहिये। इसके उत्त मे काफी विवेचना चली। और यह सिद्ध किया कि उदाहरण अनुमानका अग नही है। न तो उदाहरण साध्यके ज्ञानका प्रमुख अग है और न उदाहरण-हेतुके साध्यके साथ अविनाभाव निश्चय करनेके लिये अगभूत है, और न व्याप्तिके स्मरणके लिये उदाहरणको कहा जाता है, इसलिये उदाहरण अनुमानका अग नही हो सकता। अब इस सूत्रमे यह कह रहे हैं कि उदाहरण अनुमान का अग तो है नही, बल्कि केवल उदाहरण ही कहा जाय तो साध्य विशिष्ट धर्मीमे साध्य और साधनका सदेह और हो जाता है। जैसे कुछ अनुमान बोलकर झट उदाहरण दे-दे तो उदाहरणके सुननेसे अभी साध्य और साधनके बारेमें खुलासा नही हो पाया सो बात व्यर्थ बन जाती है। आखिर इसके निष्कर्षमे बात क्या आती है और कहाँ साध्य साधनको सिद्ध करना है, कोई पूछे कि यह सदेह कैसे हो सकता है तो उसके उत्तरमे सूत्र कहते हैं।

कुतोऽन्यथोपनयनिगमने ॥ ४३ ॥

केवल उदाहरणसे साध्य साधनमे सदेह होनेका युक्तिपूर्वक समर्थन—केवल कहा गया उदाहरण साध्य विशिष्ट धर्मीमे साध्य साधनको सदिग्ध कर देता है यदि ऐसे सदेहका अवसर न आता होता तो फिर उपनय और निगमनके कहनेकी आवश्यकता ही क्या थी ? अनुमानको समझानेके लिये पूरा रूप यह बनाया गया है जैसे कि इस पर्वतमे अग्नि है धूम होनेसे। जहाँ जहा धूम होता है वहा वहा अग्नि होती है, जैसे रसोईघर। जहा अग्नि नही होती वहाँ धूम नहीं होता है। जैसे तालाब और, इस पर्वतमे धूम है इस कारण पर्वतमे अग्नि होनी ही चाहिये। इस प्रयोगमे जो इतना अश है कि और, इस पर्वतमे धूम है, यह तो उपनयका अश है इस कारण पर्वतमे अग्नि होनी ही चाहिये यह निगमनका अश है। तो उदाहरण प्रयोगके बाद यदि समस्या पूर्ण सुलझ गई होती समाधान पूरा हो चुका होता, तो, उपनय और निगमन कहनेकी क्या जरूरत था ? उपनय और निगमनका प्रयोग यह सिद्ध करता है कि अभी साध्यकी सिद्धिमे कुछ कमजोरी है। उस कमजोरीको टालनेके लिए उपनय और निगमनका प्रयोग किया गया है। इससे यह सिद्ध है कि दृष्टान्त अनुमानका अग नही हो सकता है। अब शकाकार कहता है कि दृष्टान्त अनुमानका अग नहीं होता तो न सही पर उपनय और निगमन तो अनुमानके अग होगे ही, क्योकि आखिर फैसला तो देना ही पडेगा। इसके उत्तरमे कहते है—

न च ते तदगे साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययोर्वचनादेवाऽसशयात् ॥ ४४ ॥

उपनय और निगमनमे भी अनुमानाङ्गका अभाव—उपनय और निग-

मन अनुमानके अग नही हैं, क्योंकि साध्यविशिष्टधर्मीमें हेतु और साध्य दोनोंके कहने मात्रसे हेतु और साध्यके ज्ञानमें सशय नही रहता है अर्थात् उपनयका प्रयोजन क्या था ? यह सिद्ध कर देना कि इस पर्वतमे भी धूम है अर्थात् इस पर्वतमे साधन है सो पक्षमे साधन है, यह तो पक्षमें साधन बताने ही सिद्ध हो जाता है और निगमनका प्रयोजन यह है कि पक्षमे साध्यको बता दे। जैसे यह कहा गया कि इस पर्वतमें भी अग्नि है तो पक्षमें साध्यको सिद्ध करनेका प्रयोजन है निगमनका सो जब पक्षमे साध्य का कथन कर दिया शुरूमें ही तो उससे ही साध्यकी सिद्धि होजाती है। जो बुद्धिमान लोग हैं वे प्रतिज्ञा और हेतु इन दोनोके कहने मात्रसे ही अनुमानमे साध्यकी सिद्धि समझ लेते हैं पर्वत अग्नि वाला है धुवाँ होनेसे इतना कहने मात्रसे पूर्णज्ञान होजाता है। अग वही कहलाता है जिसके प्रयोग बिना किसी भी अगीकी सिद्धि न हो। तो ऐसे केवल दो ही अग हैं प्रतिज्ञा और हेतु जिनके कहे बिना अनुमान नही बनता। जैसे सिर्फ इतना ही कोई कहदे - धूम होनेसे, तो क्या कुछ अनुमान बना ? या कोई इतना भी कह दे कि पर्वत अग्नि वाला है तो क्या यह कोई अनुमानकी शकल है ? अनुमानके प्रयोगमें प्रतिज्ञा और हेतु इन दोका बोलना आवश्यक है। अत ये दो ही अग अनुमानके कहे जा सकते हैं। उदाहरण, उपनय, निगमन ये तीन अनुमानके अग नही हैं। तो इस प्रकार दो अग सिद्ध हुए —प्रतिज्ञा और हेतु। इतना सिद्ध होनेपर भी यदि यह हठ करते हो कि दृष्टान्त आदिक तो अनुमानके अवयव हैं ही। अथवा दृष्टान्त उपनय और निगमन इन तीनका प्रयोग ही तो हेतुरूप है, तो उसके उत्तरमें कहते हैं।

समर्थन वा वर हेतुरूपमनुमानावयवो वास्तु साध्ये तदुपयोगात् ।३-४५।

अनुमानके अवयव बनानेके आग्रहमे एक समर्थन इतना सब कुछ निस्सार होनेपर भी यदि दृष्टान्त उपनय इन तीनको अनुमानके अवयव बनानेका ही आग्रह है तब तो फिर सीधी बात है कि एक समर्थन ही मान लो। वही रूप हुआ, अनुमानका अवयव हुआ क्योंकि साध्यके सिद्ध करनेमें समर्थनका उपयोग हो रहा है। अर्थात् हेतु साध्यको सिद्ध करे ऐसे प्रयत्नके लिये दृष्टान्त उदाहरण उपनय सब कुछ बोल बोलकर क्या किया गया है ? एक समर्थनमे भी जिस जिस आशयका आश्रय किया गया है वे वे सब तुम्हारे हेतुरूप बन रहे हैं। उपनय क्या चीज है ? पक्षमे हेतु का दुहराना निगमन क्या चीज है ? पक्षमें साध्यको दुहराना। और, हेतुके प्रयोगमें भी क्या किया जाता ? पक्षमें हेतुका दुहराना। निगमन क्या चीज है ? पक्षमें साध्य को दुहराना। और, हेतुके प्रयोगमें भी क्या किया जाता ? पक्षमे हेतुका बतलाना। तो यह सारा हेतुरूप ही हुआ। अनुमानमें और क्या किया जाता ? पक्षमे साध्यका बतलाना। यही अनुमानका अवयव कह लीजिये। समर्थनमें हेतुकी असिद्ध विरुद्ध अनैकान्तिक दोषका निराकरण करके अपने साध्यके साथ अविनाभावका कथन किया

जाता है। तो फिर साध्यके प्रति हेतु साधक बन जाय इस कार्यमें समर्थनका ही उपयोग है अन्य किसीका नही है। यो समर्थन हो समर्थन रह गया और सब बातें समाप्त हो जायेंगी। इससे यहाँ सदा स्पष्ट मान लेना चाहिये कि अनुमानके अंग प्रतिज्ञा और हेतु हैं। जो कुछ भी कहा जाता है इसके बाद वह सब शिष्योको, बालकोको समझानेके लिये भी उसका विवरण मात्र है। अब शंकाकार कहता है कि जो लोग बुद्धिमान हैं, जिनकी प्रज्ञा पूर्ण निष्पन्न है ऐसे पुरुषोको जो दृष्टान्त उपनय, निगमन कहना अनर्थक रहा आया क्योकि यदि विद्वान पुरुषने साध्य विशिष्ट धर्ममे हेतु और साध्य बता दिया इतने ही मात्रसे उनको संशय नही रहता और वे साध्यको सिद्ध कर लेते हैं उन्हे अर्थका परिज्ञान हो जाता है। लेकिन जिनकी बुद्धि निष्पन्न नही है, अव्युत्पन्न पुरुष है बालक है उनको समझानेके लिये तो दृष्टान्त उपनय और निगमन कहना ही पडेगा। उनके प्रति तो अनर्थक नही है ना, दृष्टान्त उपनय निगमनका बोलना। इसके सूत्रमे कहते हैं।

बालव्युत्पत्त्यर्थं तत्त्रयोपगमे शास्त्रएवासौ न वादेऽनुपयोगात् । ३-४६ ।

बच्चे और अव्युत्पन्नके लिए दृष्टान्त—उपनय और निगमन इन तीनकी मान लेनेपर यो कहा जा सकता है कि ये शास्त्रोमें ही उपयोगी हैं। अर्थात् शिष्योको समझानेके लिये जो शास्त्र लिखे जाते हैं उनमें दृष्टान्त, उपनय निगमनका प्रयोग किया जा सकता है तथा कक्षाओंके विद्यार्थियोको समझानेके लिये जो व्याख्यान चलता है, पढाई चलती है उस मौकेपर भी दृष्टान्त उपनय और निगमन इनका प्रयोग उपयोगी हो सकता है, परन्तु वाद विवादके प्रसगमे शास्त्रार्थके समय इन तीनका प्रयोग नही है। इसका कारण यह है कि वाद विवादके समय कोई शिष्य गुरुका नाता नही रहता कि कोई पढा रहा है और दूसरे शिष्य समझ रहे हैं, क्योकि जिनकी प्रज्ञा निष्पन्न है उनका ही वादमे अधिकार है, शास्त्रार्थ करनेमे अधिकार है। जो बडे विद्वान हैं, अनेक शास्त्रोके पारगामी है, युक्तियोंके प्रेमी हैं तो ऐसे विद्वानोके साथ वाद विवाद होनेके प्रकरणमे दृष्टान्त, उपनय, निगमन अनर्थक हैं क्योकि उन विद्वानोको तो प्रतिज्ञा और हेतु यानि पक्षमे हेतु और साध्यका बता देना इतना ही मात्र पर्याप्त होता है। शास्त्रमे जो उदाहरण आदिक दिये जाते हैं उसमे उस समय जो प्रतिपाद्य सामने है, शिष्य सामने है, उन्हे जिस प्रकारसे समझाया जाना चाहिये उसके प्रयोगसे ही तो समझाया जायगा। शास्त्रकालमे अथवा अध्यापन कालमे शिष्योको एक कोमल रीति से समझाया जायगा, विवरण बताया जायगा। किन्तु वादविवादके समय उन विद्वानोको एक संक्षिप्त वाक्योंको बोलकर ही बताया जायगा। और उसमे ही विद्वताकी छाप रहती है। जो कुछ भी व्याख्यान किया जाता है, जिसके लिये किया जा रहा है उसके अनुरोधसे उसके अनुरूप किया जाता है ऐसा सभी लोग मानते हैं। तब इस प्रकार अब अन्तमे यह भी सिद्ध कर दिया गया कि यद्यपि अनुमानके अंग दो ही हैं—

प्रतिज्ञा और हेतु किन्तु शिष्योंको समझानेके लिये अनुमानके प्रयोगमें अवसरपर उदाहरण उपनय और निगमनका भी प्रयोग किया जा सकता है। अब शिष्योंको समझानेके लिये दृष्टान्त उपनय और निगमनका जो प्रयोग करना बता दिया है उनका स्वरूप कहा जायगा। उनमें सबसे प्रथम दृष्टान्तका स्वरूप और दृष्टान्तके भेद बतलाते हैं।

दृष्टान्तो द्वेधाऽन्वयव्यतिरेकभेदात् ॥ ४७ ॥

दृष्टान्तके अर्थ और दृष्टान्तके प्रकार—दृष्टान्त दो प्रकारका है—अन्वय और व्यतिरेक दृष्टान्त, इस सूत्रमें दृष्टान्तका स्वरूप स्पष्ट नहीं बताया गया किन्तु भेद के कहनेसे ही दृष्टान्तका स्वरूप कुछ कुछ विदित हो ही जाता है। दृष्टान्त दो तरहके होते हैं—एक अन्वय दृष्टान्त और दूसरा व्यतिरेक दृष्टान्त। तो इससे यह सिद्ध हो गया कि अन्वय व्याप्ति करके जो दृष्टान्त बताया जाय वह अन्वय दृष्टान्त है। व्यतिरेक व्याप्ति करके जो दृष्टान्त बताया जाय वह व्यतिरेक दृष्टान्त है। दृष्टान्त शब्दका शब्दार्थ क्या है ? इसमें दो शब्द हैं दृष्ट और अन्त। अन्त मायने हैं धर्म, जैसे अनेकान्त। अनेक हैं अन्त मायने धर्म, जिनके। अन्त शब्दका अर्थ धर्म होता है और इस प्रकरणमें धर्म हैं दो, साध्य और साधन। तो दिखाया गया है साध्य साधन रूप धर्म जहाँपर उसे कहते हैं दृष्टान्त। दृष्ट अन्त यत्र स दृष्टान्तः। अब उसकी व्याख्या यह समझ लीजिये कि विधि और निषेधरूपसे वादी और प्रतिवादियोंके द्वारा निर्विवाद रूपसे जाना गया साध्य साधन धर्म जहाँ मिले उसे दृष्टान्त कहते हैं। इस दृष्टान्तको विशेषतया समझनेके लिये आगे दो सूत्रोंमें स्वरूप बतायेंगे उससे यह स्पष्ट हो जायगा।

साध्यव्याप्तं साधनं यत्र प्रदर्श्यते सोऽन्वयदृष्टान्तः ॥ ४८ ॥

अन्वय दृष्टान्तका स्वरूप—साध्यसे व्याप्त साधन जहाँ दिखाया जाता है वह अन्वय दृष्टान्त है। जैसे अग्नि—साध्यमें व्याप्त धूम जहाँ बताया गया है जैसे रसोईघर आदिक, वह अन्वय दृष्टान्त है। जहाँ जहाँ धुवाँ होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है। जैसे रसोईघर। तो यहाँ अन्वय व्याप्तिपूर्वक दृष्टान्त दिया गया है इस अन्वय व्याप्तिके कहनेके दो रूप होते हैं—एक तो यों कहना कि जहाँ जहाँ धुवाँ होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है दूसरे इस प्रकारसे कहना कि अग्निके होनेपर ही धुवाँ होता है। ये दोनों अन्वय व्याप्ति बतानेके ढंग हैं। अन्वय व्याप्ति पूर्वक जो दृष्टान्त कहा जाता है उसे अन्वय दृष्टान्त कहते हैं। साध्य साधनका अन्वय बता दिया अर्थात् साधन साध्य के पीछे पीछे चलता है। जो पीछे चले अनुरूप कहे उसे कहते हैं अन्वय। जब श्लोक का अन्वय करो—यह कहा जाता है तो उस अन्वयका अर्थ यह है कि जो अर्थके अनुकूल चले और जिस प्रकार शब्दोंको रखकर बोलना इसका नाम अन्वय है। यह है अनुमानका प्रकरण सो अन्वयका अर्थ यह होगा कि साध्यके अनुरूप साधन चले अर्थात्

साध्यके होनेपर ही साधनका रहना बने उसे कहते है अन्वय व्याप्ति, ऐसी व्याप्ति दिखाकर जो दृष्टान्त दिया जाता है उसे अन्वय दृष्टान्त कहते है।

साध्याभावे साधनव्यतिरेको यत्र कथ्यते स व्यतिरेक दृष्टान्त ।। ३-४९ ।।

व्यतिरेकदृष्टान्तका स्वरूप —साध्यके अभावमे साधनका अभाव जहा बताया जाता है उसे व्यतिरेक दृष्टान्त कहते हैं। व्यतिरेक व्याप्तिमे अभाव होनेपर अभाव बताया जाता है। साध्यके अभाव होनेपर साधनका अभाव होना यह व्यतिरेक व्याप्ति है। व्यतिरेक व्याप्ति एक मजबूत व्याप्ति है। साध्यके बिना साधन नही हो सकता है। फिर साधन मिले वह तो नियमसे साध्यको सिद्ध करेगा। उदाहरणमे जैसे कहा गया कि जहा जहां अग्नि नही होती है वहा वहां धुवां भी नही होता, जैसे तालाब। अग्नि है साध्य धुवां है साधन। साध्यके अभावमे साधनका अभाव दिखाया गया है इस तालाब दृष्टान्तमे। यह व्यतिरेक दृष्टान्त हो गया। यो ये दृष्टान्त बच्चो को समझानेके लिए उपयोगी होते हैं। सो यह दृष्टान्त दो रूपोमे बताया जाता है— अन्वय दृष्टान्तके रूपमे और व्यतिरेक दृष्टान्तके रूपमें। इस प्रकार दृष्टान्तका वर्णन करके उपनयका वर्णन करेंगे।

हेतोरुपसंहार उपनय ।। ३-५० ।

उपनयका स्वरूप—साध्यके अविनाभावी रूपसे सहित साध्य विशिष्ट धर्मी मे जिसके द्वारा हेतु दिखाया जाय उसे उपनय कहते हैं। तो पक्षमे हेतुके पुन देहराने को उपनय कहते हैं। हेतुको पक्षमे अनुमान प्रयोगमे दिखाया ही गया था और वह अनुमानका अंग ही है। दो अग बताये गए थे, प्रतिज्ञा और हेतु। प्रतिज्ञामे आता है पक्ष और साध्य, तो हेतु पक्षमे दिखाया ही गया था। अब उसे और विवरण कर के पक्षकी व्युत्पत्तिके लिये शास्त्र निबद्धके रूपमे समझानेके लिये जो और कुछ विवरण किया गया है। जैसे प्रतिज्ञा और हेतुके कहनेके बाद व्याप्ति कह कर दृष्टान्त देते है जिसका कि वर्णन अभी अभी हो चुका है। उसके बाद फिर हेतुको पक्षमे दुहराना इसे कहते हैं उपनय। जैसे कि पहिले भी सकेत किया गया था कि दृष्टान्त अनुमानका अग नही है क्योकि दृष्टान्तके कहनेपर तो कभी कभी संदेह हो जाता है और उस सदिग्ध अवस्थाको दूर करनेके लिये उपनय और निगमनका प्रयोग किया जाता है तो इसी दृष्टिसे यह उपनय कुछ अज्ञानमे आयी हुई कमजोरीको दूर करनेके लिये कहा जाता है। इसलिये पहिली बातका ही दुहराना इसमे आया करता है।

प्रतिज्ञायास्तुनिगमनम् ।। ५१ ।।

निगमनका स्वरूप—प्रतिज्ञाके दुहरानेको निगमन कहते हैं। जैसे उपनय

की व्युत्पत्ति है—उपनियते इति उपनय: । जो पक्षके समीप पक्षमे ले जाया जाय । अर्थात् पक्षमे हेतुके ले जाये जानेको उपनय कहते हैं। तो निगमनका अर्थ है कि जिस ज्ञानके द्वारा, जिस प्रयोगके द्वारा प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण और उपनयमे साध्यको सिद्ध करनेके एक मात्र प्रयोजनसे निगमित किया जाय, सम्बंधित किया जाय उसे निगमन कहते हैं। निगम्यते इति निगमन अर्थात् प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण और उपनय इन सबका प्रयोग कर चुकनेके बाद निष्कर्षरूपसे जो बताया जाता है उनका सम्बन्ध कराया जाता है, प्रतिज्ञा दुहराई जाती है उसे निगमन कहते हैं। "इस कारण पर्वत मे अग्नि अवश्य है" तो इसमे सब कुछ सम्बन्धित कर दिया गया है पक्षमे साध्य। लेकिन इसकी झांकीमे सब चीजें दुहरानेको आ जायेंगी। इस प्रयोगके बाद जैसे कि पर्वतमें अग्नि है धुवा होनेसे, जहां जहां धुवा है वहां वहां अग्नि है जैसे रसोईघर। जहा अग्नि नही वहां धुवां नही। जैसे तालाब। और, इस पर्वतमें धुवां है इस कारण अग्नि है। तो निगमनका रूप छोटा सा है, कहा कि 'इस कारण यहां अग्नि है। लेकिन इसका सम्बन्ध सबसे हो गया। जितना जो कुछ भी प्रयोग किया गया था, र की सफलता बता रहा है यह, इससे इसका नाम निगमन पडा।

तदनुमान द्वेधा ॥ ३-५२ ॥

अनुमानके प्रकार—मुख्य तो यह प्रकरण अनुमानका है और अनुमानको बतानेके लिये उसके अंगोका विवरण भी चला है, तो अंगोंका विवरण करनेके बाद अब अनुमानके प्रकार बताये जा रहे हैं। किसीने अनुमान दो तरहके माने थे किन्हीं अन्य रूपोमें, किसीने तीन तरहके माने थे, किसीने ५ तरहके माने थे, ऐसे भिन्न भिन्न प्रकारसे माने जानेपर कुछ अव्याप्ति और अतिव्याप्ति आते थे इसलिये उसके सही प्रकार बतानेके लिये यह सूत्र कहा गया है। वह अनुमान दो प्रकारका है। वह कहनेसे कुछ सूत्रकी याद आती है जो इस प्रकरणमें सर्वप्रथम कहा गया था कि साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम्। साधनसे साध्यका ज्ञान होना अनुमान है, जिस अनुमानको युक्तियोसे, अगोसे, प्रकारोसे सिद्ध किया गया है, वह अनुमान दो प्रकारका है। वह किस तरह दो प्रकारका है सो बतावेंगे।

स्वार्थपरार्थभेदात् ॥ ३-५३ ॥

अनुमानके प्रकारोंके नाम—उस अनुमानके दो प्रकार ये हैं—एक तो स्वार्थानुमान और दूसरा परार्थानुमान। इन शब्दोसे भी इसके भेद व्यक्त हो जाते हैं—स्व अर्थ अनुमान। जो ज्ञान अनुमान प्रमाण वाला ज्ञान स्वके लिये होता है वह स्वार्थानुमान कहलाता है। अनुमानसे जो जाना है स्वयंके लिए प्रतिबोधके लिए जाना है। इसमें परका सम्पर्क नही और इसी कारण इस जानकारीमे कोई वचन प्रयोग भी नही देखा और समझ गये। साधन देखा और साध्य जान गये। इस शैलीसे ज्ञान होनेका

नाम है स्वार्थानुमान। परार्थानुमानका अर्थ है –इसमे तीन शब्द हैं—पर अर्थ अनुमान। जो अनुमानज्ञान दूसरेके लिए होता है उसको परार्थानुमान कहते हैं। अब शब्दसे यद्यपि इसका अर्थ ध्वनित हो गया, फिर भी सूत्ररूपमे इसका लक्षण कहते हैं।

स्वार्थमुक्तलक्षणम् ॥ ३–५४ ॥

स्वार्थानुमानका लक्षण - जो स्वार्थानुमान है वह तो उक्त लक्षण वाला है, जो सर्वप्रथम अनुमानका लक्षण किया गया था। साधनसे साध्यका विज्ञान होना सो अनुमान है। साधन देखा और साध्यका ज्ञान हो गया। धुवां देखा और अग्निका ज्ञान हो गया। अग्नि दिख नही रही थी फिर भी धुवांके दिखनेसे ज्ञान हो गया कि यहाँ अग्नि है। ऐसा बोले बिना, दूसरेको बताये बिना अपने आप साधनको निरखकर जो साध्यका ज्ञान होता है वह स्वार्थानुमान कहलाता है यह अनुमान स्मृति प्रत्यभिज्ञान आदिककी तरह व्यर्थ ही है। देखो साधन और साध्यका परिज्ञान हो गया, ऐसा स्वार्थानुमान प्राय मनुष्योंके बहुत बहुत बार हुआ करता है। कुछ तो विशेष अभ्यास होनेके कारण उसे अनुमानकी श्रेणीमें नही डालते, पर है वह अनुमानका ही रूप। जैसे रसोईघरसे दूर धुवां और अग्नि सहित दिखती रहे, उसी जगह धुवा नजर आये तो देखकर तुरन्त अग्निका ज्ञान होता पर इतने अभ्यास वाला वह अनुमान प्रमाण है कि उसमे अनुमान जैसी बात नही समझते और समझते हैं स्पष्ट। जैसे मान लो अग्नि प्रत्यक्ष हो गयी हो तो अनेक स्वार्थानुमान इस तरहके हैं कि जो होते रहते हैं पर प्रत्यक्षके कारण हम उसे अनुमान जैसी बोलकर सकल नही देते ऐसा स्वार्थानुमान हुआ करता है। अब परार्थानुमान किसे कहते हैं ? उसे एक सूत्र द्वारा बतलाते हैं।

परार्थं तु तदर्थं परामर्शिवचनाज्जातम् ॥ ५५ ॥

परार्थानुमानका लक्षण –जो स्वार्थानुमानके साध्य साधनको प्रकट करने वाले वचनोसे ज्ञात होना है वह परार्थानुमान कहा जाता है। स्वार्थानुमानसे पहिले जाना फिर स्वार्थानुमानसे समझा। उस साध्यको जब हम दूसरेको समझानेके लिये बोलते हैं तो वह परार्थानुमान कहलाता है। तो परार्थानुमान स्वार्थानुमानके बाद होता है। कोई भी पुरुष जो भी दूसरेको समझायेगा तो वह पहिले समझ जायगा। इस अनुमानको भी सब कोई यदि पहिले समझ लेंगे तब कहेंगे। उसे कहते हैं परार्थानुमान। जो दूसरेके प्रतिबोधके लिये वचनोके द्वारा समझाया गया है परार्थानुमान वह ज्ञान है जैसा कि स्वार्थानुमानका ज्ञान था। प्रमाण ज्ञान ही हुआ करता है। वचन कहीं परार्थानुमान नही हैं। उन वचनोसे जो ज्ञान होता है वह परार्थानुमान है। लेकिन कुछ कुछ प्रसिद्धि यह भी है कि परार्थानुमान तो वचनात्मक होता है और स्वार्थानुमान ज्ञानात्मक होता है। तो वचनात्मक जो साध्यका विज्ञान है या वचनोसे उत्पन्न हुआ तो साध्यका विज्ञान होता है उसे परार्थानुमान कहते हैं, ऐसा वर्णन करने

मे वचनात्मक परार्थानुमान तो पाया नही, ऐसी शका की जा सकती है। उसके उत्तर मे एक सूत्र कहते हैं।

तद्वचनमपि तद्धेतुत्वात् ॥ ५६ ॥

अनुमानकी भी उपचारसे अनुमानरूपता—यद्यपि परार्थानुमान भी ज्ञान रूप ही है। किसीने वचनोसे समझाया, युक्ति देकर कोई साध्यकी सिद्धि की तो उस अवस्थामे, उस घटनामें जो दूसरेने समझा वह है अनुमान ज्ञान परार्थानुमान लेकिन उसके कारणभूत जो वचन हैं, वचनोंको सुनकर दूसरेने समझा तो वे वचन भी अनुमान कहलाते हैं, क्योंकि अनुमान ज्ञानमे वह हेतु पडता है। तो मुख्य तो ज्ञानरूप अनुमान है, लेकिन ज्ञानरूप अनुमानमें कारण पडते हैं वे वचन इस कारण उपचारसे उन वचनोको भी परार्थानुमान कहा जाता है उसमे उपचारका निमित्तपना क्यो होता, क्यो वे उपचारमे कारण बने, इसका कारण यह है कि एक तो है समझाने वाला दूसरा है समझने वाला तो समझने वाला और समझाने वाला इन दोनोमे जो सम्बन्ध जुटा है वह तो वचनोसे जुटा है, इसलिये उस अनुमान रूप कार्यमे कारणपना होनेसे उपचार कहा गया है। तो समझाने वालेका जो ज्ञान है वह अनुमान। तो वचन उस वचनका कारण याने उस अनुमानका कार्य हैं वचन और समझने वाले शिष्यका जो ज्ञान बना उस ज्ञानरूप अनुमानका कारण हुआ वह वचन, इस कारणसे वचनमे भी अनुमानपनेका उपचार किया गया कि यह वचन एक अनुमानका तो कार्य है और एक अनुमानका कारण है। जिसके स्वार्थानुमान किया था उस स्वार्थ ज्ञान वालेका तो वचन कार्य हुआ क्योंकि जाना था और उसके अनुरूप वचन निकले तो यह वचन जो प्रतिपादक और प्रतिपाद्यके बीचमे एक सम्बन्ध जोड रहा है वह प्रतिपादकके स्वार्थानुमानका तो कार्य है वचन और जो समझाया जा रहा है उसके अनुमान ज्ञानका कारण है वचन। तो जो वचन एक अनुमानका कार्य है, दूसरे अनुमानका कारण है, उसमें यदि अनुमानपनेका उपचार किया जाय तो यह कुछ अव्यवहारी नहीं है। हां मुख्यरूपसे देखा जाय तो ज्ञान ही प्रमाण है। चाहे स्वार्थानुमान है, वह तो वचनोसे रहित था ही और चाहे परार्थानुमान है वह भी एक ज्ञानरूपसे प्रमाण है, क्योंकि दूसरेकी अपेक्षा न रखकर पदार्थका प्रकाश किया है। अब जिस तरह अनुमानको २ प्रकारका बताया इसी प्रकार हेतु भी दो प्रकारका होता है, यह दिखानेके लिये सूत्र कहते हैं।

स हेतुर्द्वेधा उपलब्ध्यनुपलब्धिभेदात् ॥ ५७ ॥

हेतुके दो प्रकार—वह हेतु दो प्रकारका है जिस हेतुसे साध्यकी सिद्धि की जाती है। जो साध्यके अविनाभाव रूपसे जानता है जिसका कि लक्षण पहिले विवरणके साथ बता दिया गया है वह हेतु दो प्रकारसे पाया जाता है। एक अनुपलब्धि

हेतु दूसरा अनुपलब्धि हेतु कुछ अनुमानोंमें हेतुका प्रयोग निषेधरूपसे होता है और कुछ में प्रसग सम्बन्धित, उसी बारेमे चर्चा चल रही है, हेतुका काम साध्य सिद्ध करना है साध्य सिद्ध करनेके लिए जो हेतुके प्रकार बताये गए हैं उनसे कोई यह समझले कि जो विधिरूप हेतु होता है वह विधिरूप साध्यको ही सिद्ध करता है और जो निषेधरूप हेतु होता है वह निषेधरूप साध्यको सिद्ध करता है, सो बात ठीक नही है। ऐसा कोई समझ न ले उसके प्रतिषेधके लिए सूत्र कहते हैं।

उपलब्धिर्विधिप्रतिषेधयोरनुपलब्धिश्च ॥ ३-५८ ॥

दोनो हेतुओंकी विधि और प्रतिषेध सिद्ध करनेमें क्षमता - चूंकि साध्य और साधनमे गम्य गमक भाव होता है और वह अविनाभावसे सम्बन्ध रखता है, अर्थात् साधनसे साध्यका ज्ञान होता है। और उस साध्यके साथ उसका अविनाभाव होता है। तो किसी हेतुका जो कि विधिरूपसे उपस्थित किया है, हो सकता है कि किसीका निषेध करने रूप साध्य सिद्ध करदे और अस्तित्वको सिद्ध करे, यह तो सभी लोग एक दम समझ जाते हैं। और जो अनुपलब्धिरूप हेतु है, निषेधरूप ऐसा न होनेसे इस प्रकारका जो हेतु है वह साध्यकी विधिको सिद्ध करे और प्रतिबोधरूप साध्यको भी सिद्ध करे। दोनो तरह सम्भव है। जैसे पर्वतमे अग्नि है धुवाँ होनेसे अर्थात् इसमे हेतु भी विधिरूप है और साध्य भी विधिरूप है। और ऐसा कहे कोई कि अब इस शरीरमे प्राण नही है क्योंकि पूर्ण स्थिर होनेसे निष्कम्प होनेसे तो यहा साध्य निषेधरूप आ गया। कही हेतु तो हो निषेधरूप और साध्य हो जाय विधिरूप यह भी सम्भव है। जैसे यहाँ तलघरमे ठंढा होगा, यहाँ लू न आनेसे, तो हेतु तो दिया गया निषेधरूप और सिद्ध किया गया विधिरूप ये सब बाते बडे विवरण सहि- दृष्टान्त पूर्वक आगे कही जायेंगी। इस सूत्रमे यह बताया गया कि जैसे उपलब्धिरूप हेतु विधिरूप साध्यके अविनाभावको रखता है और इसी कारण वह साधन साध्यका सिद्ध होता है इसी तरह उपाधिरूप हेतु कही प्रतिषेधरूप साध्यके साथ अविनाभाव रखता है और वह उपलम्भ हेतु प्रतिषेध साध्य को सिद्ध करता है इसी प्रकार अनुपलब्धिरूप हेतु जैसे कि प्रतिषेध साध्यमे आया करता है और उसे जनाता है इसी प्रकार अनुमानरूप हेतु विधिरूप साध्यमे भी गमक होता है। तो अब हेतुके चार भेद हो गए। मूल भेद तो दो हैं— उपलब्धि विधिको सिद्ध करे तो इसका अर्थ यह है कि उसने अविरुद्धको सिद्ध किया। तो उस हेतुका नाम हुआ अविरुद्धोपलब्धि। इसी प्रकार जो प्रतिषेधको सिद्ध करे तो वह हेतु उस प्रतिषेध को सिद्ध करे तो वह हेतु उस - प्रतिषेधको सिद्ध कर सकता है जिसका कि प्रतिषेध किया गया है, उससे विरुद्ध हेतु है सो इसका नाम होगा विरुद्धोपलब्धि। इसी प्रकार प्रतिषेधको ही प्रतिषेध द्वारा सिद्ध करे तो उसका नाम है अविरुद्धानुपलब्धि। और, जो अनुमान रूप हेतु विधिको सिद्ध करे तो उसका नाम है विरुद्ध उपलब्धि। तंन ४

प्रकारके हेतुवोंमेंसे इस समय अविरुद्धोपलब्धि हेतुके प्रकार कहे जा रहे हैं।

अविरुद्धोपलब्धिर्विधौ षोढा व्याप्यकार्यकारणपूर्वोत्तरसहचरभेदात् ।३-५६।

अविरुद्धोपलब्धि हेतुके प्रकार—साध्यसे अविरुद्ध व्याप्य (स्वभाव) कारणकार्य आदिककी जो उपलब्धि है उसे कहते हैं अविरुद्धोपलब्धि, जो हेतु अपने अपने अविरुद्ध साध्यको सिद्ध करे, साध्यसे अविरुद्ध हेतु हो जैसे अग्निसे अविरुद्ध है धूम। सो जो हेतु विधिरूप साध्यको सिद्ध करे अर्थात् साध्यके साथ अविरुद्ध हो हेतु उसे अविरुद्धोपलब्धि कहते हैं। और वह उसे सिद्ध करनेमें कुशल है। उसकी छह प्रकारसे विधि होती है। अविरुद्धव्याप्योपलब्धि, अविरुद्ध कार्योपलब्धि अविरुद्ध कारणोपलब्धि, अविरुद्ध पूर्वचरोपलब्धि, अविरुद्ध उत्तरचरोपलब्धि, अविरुद्धसहचरोपलब्धि। इस तरह हेतु ६ प्रकारके परिणत होते हैं। इनके उदाहरण बताये जायेंगे और उनसे बहुत स्पष्ट होगा कि अविरुद्ध व्याप्योपलब्धि आदिक हेतुवों का भाव क्या है।

क्षणिकवादमें कारणको अहेतु माननेकी आशंका व समाधान—इस प्रसंगमें क्षणिकवादी जन शंकाकर रहे हैं कि लोकमें कार्यकारणभाव तो किसी भी प्रमाणसे सिद्ध नहीं हैं। फिर कोई कारणका कार्य हो अथवा कोई कार्यका गमक हो, कारण हो यह बात कैसे सिद्ध होगी? क्षणिकवादमें प्रत्येक वस्तुका क्षण क्षणमें होना मिटना माना गया है। जो जब वस्तु उत्पन्न हुई और तत्काल नष्ट हो गई तो वह वस्तु फिर किसका कारण बनेगी? ऐसी मनमें शंका रखकर क्षणिकवादी यह सिद्धान्त बना लेते हैं कि लोकमें कोई भी किसीका कारण नहीं है। और न कोई कारण है। यह बात तो पहिले परिच्छेदमें ही निराकृत कर दी गई थी कि कार्य कारण सम्बन्ध होता तो है यह कहकर और आगे भी कहा जायगा और लोग भी समझ रहे हैं कि कार्यकारणका परस्परमें सम्बन्ध होता ही है। अग्निसे रोटी पकती है, सभी लोग जानते हैं तो झट उसमें परिणति भी तो करते हैं। कारणकार्यका विज्ञान तो सभी व्यवहारियोंको हो ही रहा है। कार्यकारणका निषेध करना किसी प्रकार योग्य नहीं है। शंकाकार कहता है कि कार्यकारणभाव प्रसिद्ध भी हो तो भी कार्य ही कारणका गमक हो सकता है याने कार्यसे कारणका परिज्ञान हो जायगा क्योंकि कार्यका कारणसे ही अविनाभाव है। किन्तु कारण कार्यका गमक नहीं बन सकता। जैसे कई जगह कारण पड़े हैं और कार्य नहीं हो पा रहे तो कारणसे कार्य भी सिद्ध नहीं हो सकता। पर कहीं कार्य हुआ दिखे तो वहाँ यह निश्चय है कि उस का कारण था या है तो यों कार्य ही कारणका गमक होगा पर कारण कार्यका गमक नहीं हो सकता। उत्तर देते हैं कि यह बात अयुक्त है। कार्यके अविनाभावरूपसे जो जो निश्चित होता है और अनुमानकालमें प्राप्त होता है ऐसा कारण कार्यका अनुमापक होता ही है। जैसे कोई यदि छाता लिये हुए होता है तो उससे यह अनुमान तो

किया ही जा सकता है कि यहाँ छाया है क्योंकि छत्ता होनेसे जहाँ छत्ता लगा हुआ है वहा छाया भी है। तो जैसे कार्यके साथ कारणका अविनाभाव है। छाता है तो उसकी छाया भी वही है इस कारण कार्यका अनुमापक सुप्रसिद्ध है।

अविनाभावकी स्थितिके बिना अन्त्यक्षण प्राप्त कारणकी अलिङ्गता—यह कहो कि *अनुकुल और अन्तिम क्षणमे प्राप्त कारण ही लिंग होता है*, अर्थात् जैसे कपड़ा बुना जाता है तो ताना कर लिया, सब चीजें बनादी अब जो अंतिम तंतुका संयोग है वह कहलाता है अंतिम क्षणमे प्राप्त कारण। जिसके बाद कार्य हो ही जाना चाहिये। कारणका अंतिम संयोग। जिसे समर्थ कारणके रूपमे कहा जा सकता है। समर्थ कारण उसे कहते हैं कि जन कारणोकी उपस्थितिमे कार्य बन सकता है वे सारे कारण मिल जायें तो कार्य होगा। तो सारे कारण मिल जायें इसको इस शब्द मे कहते हैं कोई दार्शनिक कि अंतिम क्षणमें जो कारण मिलता है वह लिंग होता है। तो ऐसा नही कह सकते कि अंतिम क्षणमे प्राप्त ही कारण लिंग कहलाता है, क्योंकि मान लो प्रतिबंधक कारण भी सामने हैं तो कार्य कैसे हो जायगा? कारण भी हो गया। जितने कारणोके मेलसे कार्य बनते हैं उतने सारे कारण भी मिल गए लेकिन प्रतिबंधक कारण सामने है जो कार्यका तिरोभाव करता है तब तो कार्य न बन सका, लिंग व्यभिचारी हो जायगा। अथवा पहिलेके कारणोंमे कोई कारण नही है तो भी आपका लिंग व्यभिचारी हो जायगा। आपने कहा कि अंतिम क्षणमे जो कारणका संयोग होता है वह कारण कार्यका अनुमापक होता है तो अंतिम कार्यको करने वाला कारण मिल गया और पहिले वालेसे कोई कम रहा अथवा कोई प्रतिबन्धक कारण सामने आ गया तब तो कार्य नही हो सकता। जैसे अग्नि जल रही है और अग्नि के सामने प्रतिबंधक मणि रखे तो वह अग्नि अपना काम नही कर सकती। कोई दोनाके नीचे चूना और नौसादर लगा दिया जावे, तो उसपर दाल पकाई जा सकती अग्नि उस दोनेको नही जला सकती क्योंकि उसके पास प्रतिबन्धक कारण लगा हुआ है। अत: अन्त्यक्षणप्राप्त कारणको लिंग नही कहा जा सकता और द्वितीय क्षणमे जब कार्य प्रत्यक्ष हो गया तब अनुमान अनर्थक हो जायगा याने जब कार्यसे कारणका अनुमान करना व्यर्थ हो गया। प्रयोजन यह है कि कार्य भी कारणका अनुमापक होता है और कारण भी कार्यका अनुमापक होता है। अब इसी बातको कि कारण कार्यका अनुमापक होता है शङ्काकारके ही सिद्धान्तका एक उदाहरण देकर कहते हैं।

रसादेकसामग्र्यनुमानेन रूपानुमानमिच्छद्भिरिष्टमेव किञ्चित्कारणं हेतुर्यत्र सामर्थ्याप्रतिबंधकारणान्तरावैकल्ये ॥ ३-६० ॥

क्षणिकवादमें भी कारणोपलब्धि हेतु माने गयेका कथन—शङ्काकारके सिद्धान्तमें कोई अंधेरेमे आम चूसा जा रहा है और आम चूसकर जो रूपका अनुमान

होता है वह किस तरह सो सुनो। स्वादमें आया हुआ जो रस है उस रससे तो रसके उत्पन्न करने वाली सामग्रीका अनुमान होता है। जो रसके सहकारी कारण हैं अथवा यहां वह पिण्डरूप फल आम उसका अनुमान होता है। उसके बाद फिर उस सामग्रीके अनुमानसे रूपका अनुमान होता है,—एक बात। दूसरी बात—शङ्काकारके सिद्धान्त में यह बताया कि सजातीयरूप क्षणको उत्पन्न करता हुआ पहिले रूप क्षण विजातीय रस आदिक क्षणान्तरोंकी उत्पत्तिमें समर्थ होता है अन्य प्रकार नहीं। याने जैसे आम में जो रूप है इस समय वह रूप क्या करेगा कि अगले समयके रूपको उत्पन्न करेगा और उस रूपको उत्पन्न करते हुए ही वे पुराने रूप रस आदिक क्षणान्तरोंको उत्पन्न करनेमें समर्थ होते हैं। तो इन दोनों बातोंमें मान तो लिया कारण। एक सामग्रीके अनुमानके द्वारा जो रूपका अनुमान चाहते हैं उन्होंने कोई विशिष्ट कारण मान लिया ना! जहाँ कि सामर्थ्यका प्रतिबन्धक कारण न हो और अन्य कारणोंकी विकलता न हो। अर्थात् जितने कारण होते हैं वे सब कारण मिलें और उसकी सामर्थ्यका रोकने वाला कारण न आये तो वह कारण बनता है। तो मान तो लिया कि कारणसे कार्य होता है और एक कारण कार्यका अनुमापक बनता है। तो कारण नामका हेतु रूपका अनुमान चाहने वाले शङ्काकारने भी मान लिया। अभी जो अविरुद्धोपलब्धि हेतुके ६ भेद किये गये थे—व्याप्य, कार्य, कारण, पूर्वचर, उत्तरचर, सहचर इन छह भेदोंमेंसे क्षणिकवादी शङ्काकार दो हेतुवोंको तो मान रहा था व्याप्य और कारण। व्याप्यका अर्थ है कार्य। शेष हेतुवोंको नहीं मान रहा था। तीसरा मान रहा है अनुपलब्धिको सो अनुपलब्धिका यह प्रकरण है नहीं, सो शङ्काकारके सिद्धान्तने भी सिद्ध कर दिया कि कारण नामका भी हेतु होता है। अब पूर्वचर और उत्तरचर हेतुवोंको सिद्ध करनेके लिए सूत्र कहते हैं।

न च पूर्वोत्तकालवर्तिनोस्तादात्म्य तदुत्पत्तिर्वा कालव्यवधाने, तदनुपलब्धेः ॥ ३-६१ ॥

पूर्वचर और उत्तरचर हेतुओंकी अनुमान सिद्धि—पूर्वचर हेतुमें पूर्व रहने वाले पदार्थसे उत्तरमें आगे आने वाले पदार्थका अनुमान किया जाता है। जैसे कल बुधवार होगा आज मंगलवार होनेसे। तो इस पूर्वचरके अनुमानमें मंगल और बुधमें तादात्म्य सम्बन्ध तो नहीं। ना इनमें मंगल दूसरा तदुत्पत्ति सम्बन्ध नहीं है कि मंगलने बुधको पैदा किया हो। यह एक हिसाब है मंगलके बाद बुध आता है, ऐसी ही बात उत्तरचरमें लगाओ। आगे होने वाले हेतु पूर्वमें होने वाले साध्यको सिद्ध करे तो वह उत्तरचर हेतु होता है। जैसे कल सोमवार था आज मंगलवार होनेसे तो यहां भी सोमवार और मंगलवारमें न तो तादात्म्य सम्बन्ध है और न तदुत्पत्ति सम्बन्ध है। क्यों नहीं कि ये दोनों साध्य साधन पूर्वचर और उत्तरचरमें भिन्न-भिन्न कालमें पाये जाते हैं। इस निराकरणका अब प्रयोग बनाइये। जो जिस कालमें व अनन्तर

नही होता है उसके साथ उसका तादात्म्य अथवा तदुत्पत्ति सम्बन्ध नही होता । जैसे भविष्यत्कालमे जो होने वाले चक्रवर्ती हैं जैसे कि भविष्यमें शंख नामका चक्रवर्ती होगा तो उसके कालमे अनन्तर रावण आदिकका तादात्म्य तो नही है । अथवा जिस समय शकट नक्षत्रका उदय हो रहा है उस कालमें कृतिकाका उदय तो नही है । शकट कहलाता है रोहणी तो रोहिणीका उदय बादमें होता है कृतिकाका उदय पहिले होता है। तो एक कालमे न होनेसे तादात्म्य सम्बन्ध नही है अनन्तर न होनेसे तदुत्पत्ति सम्बन्ध नही होता। दूसरे इसमे एक दूसरेमे व्यवधान न हो तो तदुत्पत्ति सम्बन्ध होता है। कालका व्यवधान होनेपर भी उनमे तदुत्पत्ति मानोगे तो इसमे अतिप्रसंग दोष होता है। इससे यह सिद्ध किया है कि पूर्वचर और उत्तरचर हेतुवोसे जो साध्य सिद्ध किया जाता है उसका सम्बन्ध तादात्म्यसे नही है जिससे कि वह स्वभावरूप हेतु बन जाय और तदुत्पत्ति भी सम्बन्ध नही है जिससे कि कार्यरूप हेतु बन जाय। शंकाकारके सिद्धान्तमें केवल दो ही हेतु उपलब्धि रूप माने गए हैं स्वभाव और कार्य। स्वभाव होता है तादात्म्य सम्बन्धमें और कार्य होता है तदुत्पत्ति सम्बन्धमें सो पूर्वचर और उत्तरचरमें जो साध्य साधन कहा जाता है उनका न तादात्म्य सम्बन्ध है और न तदुत्पत्ति सम्बन्ध है इस कारण उन दोनों हेतुवोसे भिन्न हेतु है यह पूर्वचर और उत्तरचर।

भावी घटनाका कार्य पूर्ववर्ती माननेकी आशका—अब शंकाकार कहता है कि जो कि भावीको कारण मानता है एक प्रभाकर नामका दार्शनिक है जिसका सिद्धान्त है कि कार्य पहिले होता है कारण भविष्यकालमे होता है। जैसे असगुन पहिले होता है और मरण आदिक भविष्यकालमें होते हैं। तो मरण आदिक असगुन को बनाता है, क्योकि भविष्यकालमे मरण न हो तो असगुन कैसे बने ? इसलिए भविष्यकालका मरण तो है कारण और आज जो असगुन हो रहा है यह कार्य है तो ऐसा भाव कारणको मानने वाला क्षणिकवादी शकाकार कह रहा कि भविष्यमें जो रोहणीका उदय होगा उसका कार्यरूपसे कृतिकाके उदयकी सिद्धि होती है। तब फिर वह कार्य हेतुमे कैसे अन्तर्भाव न होगा ? जैसे बुधवारके उदयका कार्य है मगलवारका होना क्योंकि हमेशा बुधसे पहिले हुआ करता है। अगर बुध न होना होता तो मगलवार कहांसे होता इसलिए बुधवार तो कारण है और मंगलवार होना कार्य है। तो इस हेतुमें कार्य हेतु बना, कारण हेतु नही बना। तो उत्तरचर हेतुका कार्य हेतुमे अन्तर्भाव होगा। और, पूर्वचर हेतुका भी कार्य हेतुमे अन्तर्भाव होगा।

भावी घटनाका कार्य पूर्ववर्ती माननेकी आशकाका समाधान—अब उक्त शकाके उत्तरमे कहते हैं—तो फिर पहिले जो भरणीका उदय हुआ कृतिकाके उदय होनेसे यह अनुमान कैसे बनेगा ? ऐसे ही सोमवार गुजर चुका मगलवार होनेसे यह अनुमान कैसे बनेगा ? यदि कहो कि भरणीका उदय भी कृतिकाके उदयका कारण

है तो कार्य न कारण है तो कायने-कारणको जता दिया इस कारण दोष नहीं है, याने मंगलवारके उदयका कारण सोमवारका उदय है इस कारण यहाँ भी कार्य हेतु रहा। तो उत्तर देते हैं कि जिस स्वभावसे कृत्तिकाके उदयसे रोहिणीका उदय हो गया उसी स्वभावसे कृत्तिकाके उदयसे भरणीका उदय हुआ या अन्य स्वभावसे ? इसमें दो बातें पूछी गयी हैं। शंकाकारके अभिप्रायसे केवल सोमवार था मंगलवार होनेसे, तो यहाँ मंगलवार कार्य है, सोमवार कारण है। इसी प्रकार कल बुधवार होगा मंगलवार होनेसे; तो यहा मंगलवार कार्य है और बुधवार कारण है, तो कहते हैं कि मंगलवारमे दोनोंकी कार्यता आ गयी। सोमवारका भी कार्य मान लिया, और मंगलका भी कार्य मान लिया तो मंगलमे जो कार्य स्वभाव सोमवारको सिद्ध करता है क्या उसी स्वभावसे मंगलवार बुधवारको सिद्ध करेगा या अन्य स्वभावसे सिद्ध करेगा तब तो गडबड हो गया। कहो सोमवारकी जगह बुधवार कहना पड़ेगा। कल बुधवार था, आज मंगलवार होनेसे; कल सोमवार होगा मंगलवार होनेसे। तो यों आगे पीछे किसी भी जगह आगे पीछे उन साध्योको रख दिया जायगा। कोई समाधान नहीं बन सकता। यदि कहो कि अतीत और भविष्यत दोनोमें एक जगह कार्यका व्यापार होता है तो स्वादमे आया हुआ रसका अतीत रस और भावीरूप हेतु बन जायगा। इससे फिर वर्तमान रूप या अतीत रूपमे प्रतीति नहीं हो सकती। इससे यह कार्य कारण व्यवस्था ठीक नही, इससे आगे कार्य बनेगा वह कारण है और पहिले कारण था। उसका भी यह कार्य है। ये दोनो बातें एक साथ नही बन सकती कि बुधवार होनेका कार्य मंगलवार है और सोमवार होनेका भी कार्य मंगलवार है ऐसी बात नही बन सकती। उसमे किसी एककी ही प्रतीति हो सकती है अब शंकाकार कहता है कि अपनी सत्ताके समवायके पहिले मरण आदिक तो हैं नहीं और असगुन आदिक कार्यों को पैदा कर देते हैं इससे तुम्हारा हेतु अनेकान्त हो गया, उसके उत्तरमे सूत्र कहते हैं।

भाव्यतीतयोर्मरणजाग्रद्बोधयोरपि नारिष्टोद्बोधौ प्रति हेतुत्वम्। ३-६२।
तद्व्यापाराश्रितं हि तद्भावभावित्वम्॥ ३-६३॥

भावी मरणादिककी पूर्वभूत असगुनमे हेतुत्वका अभाव — भविष्यत कालमे होने वाला मरण वर्तमानके सुगनका कारण नही हो सकता और इसी तरह अतीतकालमे हुआ जागृत बोध सोकर उठे हुए उद्बोधका कारण नही हो सकता। शंकाकार जिस प्रकार यह मानता है कि मरण तो होगा छह माह बाद, और उसका सगुन असगुन सूचना हो गया अभी अब सो अभी जो अरिस्ट हुआ है वह भावी मरण का कार्य है। न होता भावी मरण तो अरिष्ट कैसे होता। कार्यको पहिचाननेका सही तो उपाय है कि न होता यह तो यह कैसे हो जाता जैसे न होती अग्नि तो धुवां कैसे हो जाता ? तो इससे यह सिद्ध हुआ ना कि धुवा कार्य है। इसी प्रकार न होवेगा मरण तो अरिष्ट कैसे जाना ? तो भावी मरणका कार्य है अरिष्ट; इसी प्रकार एक

बात और भी मानता शङ्काकार कि कोई मनुष्य सो गया तो सोनेसे पहिले उसको ज्ञान था और सोनेमे अब ज्ञान न रहा। अब जगेगा तब ज्ञान हो जायगा। तो जगनेके बाद जो भी ज्ञान हुआ इस ज्ञानका कारण है सोयेसे पहिले जगे हुएका ज्ञान ? उत्तरमे कहते हैं कि ये दोनो ही बातें सही नही हैं। कारण यह है कि कारणके व्यापारके आश्रित हो कारणके सद्भावका होना कहलाता है। ऐसा नही है कि पहिले उत्पन्न हो अरिष्ट भावी कालके मरणके व्यापारकी अपेक्षा रखते हुए जो इस समय असगुन हो रहा हो। जैसे सूखे वृक्षपर कौवा बैठकर चिल्लाये या जो भी असगुन माने गए हैं इन असगुनोने अपना अस्तित्व बनानेके लिये छह महीने बाद होने वाले मरणके व्यापारकी अपेक्षा नही की। वह मरण तो असत् है। उसकी अपेक्षा क्या करेगा आजका असगुन। अथवा जैसे हाथकी रेखासे भविष्यमे यह राजा होगा इसको बताना है तो शङ्काकारका कहना यह है कि भविष्य कालमे जो राज्य पद मिलेगा इसका कार्य है यह हाथकी रेखा। यदि न होना भविष्यमे राजा तो यह हाथमे रेखा कहासे आती ? तो उत्तरमे कह रहे हैं कि हाथकी रेखाने भविष्यकालमे होने वाले राज्यादिकके व्यापारकी अपेक्षा नही की कि उस राज्यकी अपेक्षा करके वे रेखायें अपना अस्तित्व बना लें क्योकि वे रेखायें अभी उत्पन्न हुई और यह अरिष्ट अब उत्पन्न हुआ मरण व राज्य होगा बादमे। तो यह कैसे बन जायगा ? शङ्काकार कहता है कि अरिष्टकी उत्पत्ति मरण आदिक धर्मकी अपेक्षा करता है। जो यह असगुन है उसकी उत्पत्ति भविष्यमे होने वाले मरण आदिकने किया है तो कहते हैं कि यह बात युक्त नही है। क्योकि भावी कालमें जो कुछ हुआ है वह तो यद्यपि असत् है जिस समय ये अस्तित्व आदिक हो रहे हैं तो गधेके सींगकी तरह उनमें कर्तृत्वका सम्बन्ध नही हो सकता।

वर्तमान प्रसङ्गका प्रकरणसे सम्बन्ध—इस प्रकरणमे प्रयोजन यह है कि अविरुद्धोपलब्धि नामका हेतु छः प्रकारका माना गया है। व्याप्यरूप जो व्यापकको सिद्ध करे, कार्यरूप जो कारणको सिद्ध करे, कारणरूप जो कार्यको सिद्ध करे, पूर्वचर जो उसके बाद होने वाली वस्तुको बताये, उत्तरचर जो पूर्वमे हुए साध्यको बताये और सहचर जो एक साथ ही रहने वाले साध्यको सिद्ध करे। इन ६ प्रकारोमेंसे शङ्काकार दोको तो मान रहा है व्याप्य और कार्य, स्वभाव और कार्य। शेष हेतुवोको नही मान रहा। उसके प्रति कारणरूप हेतुको तो सिद्ध किया ही है। अब यहां पूर्वचर और उत्तरचर हेतुवोंको सिद्ध किया जा रहा है। तो शङ्काकार इन हेतुओंको सिद्ध न करने देनेके लिये कार्य हेतु बना रहा है कि वे भी सब कार्य हैं और कार्यहेतु बननेकी चेष्टामे यह अरिष्ट और भावी मरण आदिक, इनका सम्बन्ध इस तरह बतला रहे हैं कि जिससे हेतु कार्यरूप सिद्ध हो जाय।

उत्तरमरणको पूर्व अरिष्टका कारण माननेमे प्रथम विकल्पका

निराकरण—शङ्काकार कहता है कि मरणका कार्य है अरिष्ट। सो अरिष्टरूप कार्य के कालमें मरणका सत्त्व है इस कारण दोष न आ सकेगा। तो इसके उत्तरमें विकल्पों द्वारा पूछते हैं, कि भावीकालमें जो मरण आदिक होने वाला है उसका स्वकालमें जो सत्त्व है सो क्या वह मरण आदिकसे पहिले सत्त्व है या अरिष्ट आदिकसे भी पहिले सत्त्व है ? यदि कहो कि भावी मरणका पहिले सत्त्व है तो पीछे हुए अरिष्ट आदिक तो पाश्चात्य रहे न कि पहिले होने वाले। तब यह कहना गलत रहा कि पहिले मरण आदिक नहीं भी हैं तो भी मरण आदिक अरिष्ट अर्थात् असगुन आदिक कार्यके करने वाले हैं। यह कथन अयुक्त है क्योंकि इसने इस विकल्पमें उस मरणका सत्त्व पहिले भी मान लिया और अरिष्ट हुआ बादमें। यदि कहो कि दूसरा जो भावी मरण है उसकी अपेक्षा अरिष्ट आदिक पहिला कहा जाता है तो उत्तर देते हैं कि वह भी भावी मरण आदिक स्वकालमें इस तरह सत् है तो वह भी पहिले ही हो गया तो भी अरिष्ट आदिक पीछे हुए कहे जायेंगे। यदि अन्य भावी मरणकी अपेक्षा उस अरिष्ट आदिकको पूर्ववर्ती बतावोगे तो अनवस्था दोष होगा, इस कारण इस विकल्पसे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि अरिष्टके कालमें भावी मरण आदिक भी सत्‌रूप हैं।

उत्तरमरणको पूर्वअरिष्टका कारण माननेमें द्वितीय विकल्पका निराकरण – यदि द्वितीय विकल्प कहोगे कि पहिले अरिष्ट आदिक अपने कालमें हैं पीछे भावी मरण आदिक स्वकाल नियत हो जायगा तो पहिले अरिष्ट निष्पन्न हो गया तो जो निष्पन्न हो जाता है, वह निराकांक्ष रहता है, उसे फिर किसी परकी अपेक्षा नहीं रहती है। तो पीछे उत्पन्न होने वाले मरण आदिकके द्वारा ये अरिष्ट आदिक कैसे किये गए ? अथवा जब मरण आदिक हैं तो कारण कैसे बना ? और फिर जो किया जा चुका है, निष्पन्न हो चुका है उसको फिर करना बतानेकी आवश्यकता ही क्या है ? क्योंकि फिर किये हुएको करनेका सम्बन्ध नहीं होता अन्यथा अर्थात् किया हुआ भी करनेमें आने लगे तो फिर किसी भी कार्यमें, किसी भी कारणका कभी भी उपरक नहीं हो सकता, सदा वही वही कार्य किया जानेसे, अब तो कुछ न बन पायगा। क्योंकि किये हुएका करण बार बार होगा अब तो किये हुएमें भी कार्यका सम्बन्ध बना दिया गया है। यदि यह कहोगे कि निष्पन्न जो अरिष्ट आदिक हैं उनका भी कोई रूप ऐसा रह जाता है जो कि अनिष्पन्न है। उस अनिष्पन्न रूपको करनेसे अरिष्ट आदिकका कारण मरण आदिक माना जा रहा है। यदि ऐसा कहते हो तो यह बतावो कि वह अनिष्पन्न रूप निष्पन्नरूपसे भिन्न है या अभिन्न है ? वह यदि उससे अभिन्न है तो वह ही वह रहा, अनिष्पन्न निष्पन्न ही रहा उसका करना क्या ? यदि भिन्न है तो अनिष्पन्नरूप ही निष्पन्नके द्वारा अरिष्ट आदिक नहीं किया गया। मरण और अरिष्टसे कोई सम्बन्ध ही नहीं रह सकता, अनिष्पन्नसे अरिष्टका कोई सम्बन्ध ही न रहा। यदि कहो कि सम्बन्ध है अरिष्टके व मरणके साथ अनिष्पन्नका, अतः अनिष्पन्नके करनेसे अरिष्ट किया गया तो कहते हैं कि भिन्न भिन्न पदार्थोंमें कार्यकारणभाव

के सिवाय और कोई सम्बन्ध नही होता । अब यह बतलावो फिर वहाँ अरिष्ट आदिकके द्वारा किया गया अनिष्पन्न रूप था, अनिष्पन्न रूपके द्वारा अरिष्ट किया गया, यदि कहो कि अरिष्ट आदिकके द्वारा अनिष्पन्नरूप किया गया तो अरिष्ट आदिक ही अनिष्पन्नरूपकी निष्पत्ति होनेसे मरणादिक अकिञ्चित्कर हो गया, क्योंकि किसी भी कार्य मरणादिकका उपयोग न रहा । जो मूलमे लक्ष्य लेकर चले थे कि मरण आदिक कारण है और अरिष्ट आदिक कार्य हैं तो अब ये मरण आदिक द्वारा अरिष्ट आदिक का अनिष्पन्न रूप ही नही किया गया तो क्या किया गया । इस कारण अरिष्टादिके कारणमे पूर्वनिष्पन्नका पीछे उपज्जयमान मरणादिके द्वारा क्या किया गया । निष्पन्न का कोई क्या करेगा । यदि अनिष्पन्न कुछ है तो वहाँपर भी पहिलेकी तरह चर्चा आ गयी । अनवस्था दोष हो जायगा ।

अविनाभावके कारण साधनसे साध्यका अनुमान — शंकाकार कहता है कि यदि यहाँ कार्यकारण भाव नही है । तो फिर किसी एकके दिखनेसे अन्यका अनुमान हो जाता है ? सो वह अनुमान कैसे हो जायगा, अथवा किसी भी कारणको देखकर कार्यका अनुमान होता, कार्यको देखकर कारणका अनुमान होना यह कैसे बन सकेगा ? कैसे बनेगा - अविनाभावसे बन जायगा तादात्म्य तदुत्पत्तिरूप सम्बन्ध होनेपर भी एक दूसरेके जो गमक होते है वे अविनाभावके द्वारा ही गमक होते हैं, अन्य प्रकारसे नही । क्योकि, यदि अविनाभाव नही है तो जिसका तादात्म्य और तदुत्पत्ति सम्बन्ध भी जुड गया हो तो भी साध्यकी सिद्धि नही होती । जैसे कोई पुरुष सर्वज्ञ नही है वक्ता होनेसे । तो देखिये यहाँ तादात्म्य सम्बन्ध बता दिया गया फिर भी साध्यका गमक नही माना गया और एक अनुमान किया गया कि देवदत्तका यह पुत्र काला है देवदत्तका पुत्र होनेसे । अन्य पुत्रोकी तरह तो यहाँ तदुत्पत्ति सम्बन्ध तो बराबर है लेकिन साध्यका गमक नही है । क्यो गमक नही है कि उसमे अविनाभाव का सम्बन्ध नही है और फिर कही तादात्म्य और तदुत्पत्तिका सम्बन्ध भी हो और अविनाभाव मौजूद हो तो वहा वह हेतु अपने साध्यका गमक हो जाता है । जैसे कृत्तिकाका उदय होनेसे रोहिणीका भावी उदय आया । इसमें न तादात्म्य सम्बन्ध है न तदुत्पत्ति सम्बन्ध है फिर भी यह सही अनुमान है । अथवा जैसे चन्द्रका उदय होनेसे सामसमय समुद्र वृद्धि होना, इसमे न तादात्म्य सम्बन्ध है न तदुत्पत्ति सम्बन्ध है किन्तु अविनाभाव सम्बन्ध है सो साध्यके गमक हैं । इसी तरह कीडी अडोको लेकर ऊपर चढ रही हो तो उसमे वर्षा होनेकी सम्भावना ज्ञात हो जाती है । तो इसमे न तादात्म्य सम्बन्ध है न तदुत्पत्ति फिर भी साध्यके गमक हैं आदिक अनेक साध्यसाधन इस तरहके है कि जिनका न तादात्म्य सम्बन्ध है न तदुत्पत्ति सम्बन्ध है । केवल एक नियम रह गया, अविनाभाव मिल गया तो उससे उनकी सिद्धि हो जाती है ।

इस प्रसंगके बनानेका कारण — तो इस प्रकरणसे यह सिद्ध होता है कि

शरीरको रचने वाले जो अदृष्ट आदि कारण हैं, भाग्य, आत्माके परिणाम, कर्मोंके उदय, वे भावी मरण आदिकके अनुमापक हैं। शरीरके रचने वाले जो अदृष्ट आदि कारण हैं उनसे भावी रचना आदिक मिलेगी, ऐसा अनुमान बनता है। जागृत दशा का ज्ञान प्रबुद्ध धर्मके ज्ञानका कारण होना तो पहिले निराकृत कर दिया और स्पष्ट कारण यह है कि अंतरालमें जो ५-६ घंटा समय निकलेगा वह पहलेका जो जागृत दशाका ज्ञान है अब वह उठनेके समयके ज्ञानका कारण बन जायगा क्या? और फिर ऐसा तो नहीं कि सोये हुए की दशामें ज्ञान न हो, ज्ञान तो निरन्तर चल रहा; इस लिये उत्तर क्षणका ज्ञान परिणमनका कारण पूर्वक्षणका ज्ञान परिणमन है यह सिद्ध किया है। शंकाकार तीन प्रकारके हेतुवोंको मान रहा है व्याप्य हेतु कार्य हेतु और अनुपलब्धि हेतु। यह उपलब्धि हेतुका प्रकरण है जिनके छह भेद किये गये। व्याप्य, कार्य, कारण पूर्वचर, उत्तरचर, सहचर इनमेंसे केवल दो ही हेतु शंकाकारको मान्य हैं—व्याप्य और कार्य हेतु। कारण हेतुको नहीं मान रहा मरण हेतुमें अनेकान्तिकता का दोष देनेके लिये उनका यह उदाहरण था। अरिष्ट मरणका कार्य है और जागृत बोध पहिले उद्बोधका कार्य है। इस उदाहरणको देकर कारण हेतुको अनेकान्तिक सिद्ध करना चाहता था। तो यहाँ उत्तर दिया गया कि न तो भावी मरण अरिष्टकी वृत्तिका कारण है और न अतीत जागृति बोधका कारण है, जिन्हें कि इन दोनोंके द्वारा हेतुसे अनेकान्तिक कर दिया जाय। यहाँ तक कारण हेतु पूर्वचर और उत्तरचर हेतुको युक्तियोंसे सिद्ध किया। अब अंतिम जो सहचर हेतु है वह भी मानना ही चाहिये। उसकी आवश्यकता बतला रहे हैं कि सहचारी हेतुका व्याप्य और कार्य हेतुमें अन्तर्भाव नहीं होता अतः वह भी ठीक है।

सहचारिणोरपि परस्परपरिहारेणावस्थानात्सहोत्पादाच्च । ३-६४ ।

अविरुद्धसहचारोपलब्धि हेतुकी सिद्धि—सहचारी हेतुवोंमें साध्य साधन में भी तादात्म्य नहीं है और तदुत्पत्ति नहीं है। तादात्म्य तो यों नहीं है कि वे सहचारी दोनों परस्पर एक दूसरेके परिहार पूर्वक रहा करते हैं। और, तदुत्पत्ति यों नहीं है कि उन सहचारियोंका एक साथ उत्पाद हुआ है। जिन पदार्थोंका परस्पर परिहार पूर्वक अवस्थान रहता है उनमें तादात्म्य सम्बन्ध नहीं होता। जैसे घटपटका परस्पर परिहारसे अवस्थान है तो उनका तादात्म्य भी नहीं है इसी प्रकार सहचारियों को भी परस्पर परिहारसे अवस्थान है इस कारण तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है। अर्थात् एक साथ रहने वाले दो पदार्थ यदि परस्पर एक दूसरेके स्वभावसे अलग न हों उनकी सत्ता जुदा जुदा न हो तो वह सहचारी नहीं कहला सकता। यदि उनमें तादात्म्य सम्बन्ध हो तो इसका अर्थ यह है कि वे दो नहीं रहे उनमेंसे एक रहा, फिर सहचारी कैसे रहेंगे। एक साथ रहने वाले तो वे ही कहला सकते हैं जिनका परस्पर परिहारसे अवस्थान है। तो जब तादात्म्य सम्बन्ध न रहा सहचारियोंमें तो वह व्याप्य अथवा

स्वभावमे गर्भित नही हो सकता, उनसे यह अलग ही है। इसी तरह सहचारी चू कि एक ही कालमे पाये जाते हैं इस कारण तदुत्पत्ति सम्बन्ध नहीं है। जिनमे एक कालपना पाया जाय उनमे तदुत्पत्ति सम्बन्ध नही होता। जैसे बछड़ेके दाहिने बायें दोनो सीग। क्या कोई यह कह सकता है कि दाहिने सीगने बायेंको पैदा किया या बाये सीगने दाहिनेको पैदा किया ? वे एक कालमे हैं इसलिये उनमे तदुत्पत्ति सम्बन्ध नही, अर्थात् जब न तादात्म्य सम्बन्ध है न तदुत्पत्ति-सम्बन्ध है तो इसका अर्थ है कि सहचर हेतु युक्तियुक्त है। शकाकार कहता है कि देखो जिसका स्वाद लिया जा रहा है, ऐसे रससे तो किया सामग्रीका अनुमान और सामग्रीके अनुमानमे किया रूपका अनुमान। तो ये अनुमित अनुमानसे सहचारी अलग हेतुमे न आयेंगे। उत्तर देते हैं कि इस तरहसे तो व्यवहार कोई नही करता कि पहिले रससे करे सामग्रीका अनुमान, फिर सामग्रीसे करे रूपका अनुमान। आस्वाद्यमान रससे व्यवहार सामग्रीका अनुमान नही करता, रसके स्वादके समय ही रूपका अनुमान झट हो जाता है। जैसे व्यवहार होता है उस प्रकारसे प्रामाण्य माना जाता है। सामग्रीसे करे रूपका अनुमान तो वहा अर्थ यह हुआ कि कारणसे कार्यका अनुमान बन गया तब तो कारण अनुमान और सिद्ध हो गया। फिर तो तीन प्रकारके हेतु न रहे। जिसे मानता है शकाकार कि व्याप्य कारण और अनुपलब्धि ये तीन हेतु हुये। अब तो यह कारणका हेतु हो गया इस कारण अविरुद्धोपलब्धि हेतु ६ प्रकारके होते हैं। उसमे कोई विरोध नही है। अब उन छह हेतुवोमेसे क्रमसे एक एक उदाहरण दे दें जिससे जन साधारणको शीघ्र ज्ञान हो। उनमेसे पहिले व्याप्य हेतु बतला रहे।

परिणामी शब्दः कृतकत्वात्, य एव स एवं दृष्टः, यथा घटः, कृतकश्चायं तस्मात्परिणामीति ॥ ३-६५ ॥

अविरुद्धव्याप्योपलब्धि हेतुका उदाहरण—शब्द परिणामी होते हैं अर्थात् अनित्य होते हैं, कृतक होनेसे। जो जो कृतक होते हैं वे सब अनित्य होते हैं जैसे घडा, और कृतक है शब्द इस कारण शब्द भी परिणामी है। यह तो व्याप्य हेतुका अन्वय दृष्टान्त बताया है, अब इसी व्याप्य हेतुको व्यतिरेक दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं—जो अपरिणामी नहीं होता वह कृतक नही होता जैसे वन्ध्यापुत्र। वन्ध्यापुत्र कोई अनित्य नित्य वाला कोई वस्तु ही नही है तो वह कृतक नही हैं और कृतक है शब्द इस कारण शब्द परिणामी है। तो यहा यह बात जाननी चाहिये कि कृतकपना अनित्यत्वके साथ व्याप्त है अर्थात् जो किया गया होता है वह अनित्य होता है इसमे कोई सन्देह नही। कोई अनित्य ऐसे भी होते कि जो किये हुए नही होते, किन्तु जो किये हुए होते हैं वे तो अनित्य होते ही हैं। पूर्व आकारका तो परित्याग करे और उत्तर आकारकी प्राप्ति करे और दोनो आकारोके बीच उनकी स्थिति रहे इसीको ही कहते हैं परिणाम। परिणामका मोटा अर्थ तो अनित्यपना है लेकिन सर्वथा अनित्य कुछ न होकर जो

अनित्य हुआ करता है तो वस्तुकी पर्याय होती हैं उन वस्तुमें जब देखा जाता है तो उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनों धर्म पाये जाते हैं तो ऐसे परिणामसे रहित हो कोई सर्वथा नित्य अथवा सर्वथा क्षणिक हो कोई शब्द तो उसमें कृतकपना नहीं बनता। परिणामोंके कहनेमें सर्वथा अनित्य भी नहीं ग्रहण करता, क्योंकि सर्वथा अनित्य कुछ वस्तु ही नहीं होती। इस तरह इस दृष्टान्तमे बताया है कि कृतकत्व परिणामोंके साथ व्याप्य है तो कृतकत्व हेतु व्याप्य हेतु हो गया। अविरुद्धव्याप्योपलब्धिका वर्णन करके अब अविरुद्धकार्योपलब्धि हेतुका वर्णन करते हैं।

अस्त्यत्र शरीरे बुद्धिर्व्याहारादेः ॥३-६६॥

अविरुद्धकार्योपलब्धि हेतुका उदाहरण—इस शरीरमें आत्मा है क्योंकि व्यवहार, वचनालाप, व्यापार आकार विशेष आदिक होनेसे। यहां वचनालाप आदिक कार्य हेतु बताये गए हैं। आत्मा हो तो वचनालाप किया जा सकता है इस कारण साध्य तो है यहाँ कारण रूप और साधन है कार्य रूप। यहाँ शंकाकार कहता है कि शब्दकी उपलब्धि तो तालु आदिकके अन्वय व्यतिरेकसे हुआ करती है। तालु ओठ वगैरह चलें तो उससे शब्दकी उपलब्धि हो जाती है। तब वचनालापको आत्मा का कार्य कैसे कहा जा सकता है? और फिर वचनालाप आदिक हेतु देकर आत्माके अस्तित्वकी सिद्धि कैसे की जा सकती है? शंकाकार वचनालापको तालु ओठ आदिक व्यापारका कार्य बताकर आत्मा साध्यको उड़ाना चाहता है। शंकाकार और भी कह रहा है कि आत्मा यदि विद्यमान भी हो और कहनेकी इच्छा भी उसी तीव्रतासे हो रही हो और कफ आदिक दोष कोई कंठमें हो जायें और कंठ आदिकका व्यापार न हो सके तो वचन तो नहीं निकलते। इससे यह कहना कि वचन निकलना आत्माका कार्य है यह कैसे बना? जब आत्माके मौजूद होनेपर भी रोगी पुरुष जिसके कंठमें कफ बहुत अड़ गया है तो अब वचन तो नहीं निकलते, इससे वचनका उत्पन्न होना तालु आदिकके व्यापारका कार्य है न कि आत्माका। उत्तर देते हैं कि यह कहना असार है। शब्दकी उत्पत्तिमें तालु कंठ आदिक सहाय हैं और उस तात्वादिककी सहायता रखते हुए आत्माका व्यापार माना गया है। जैसे कि मिट्टीसे घड़ा आदिक बनाये जाते हैं तो उसमें चक्र दण्ड आदि सहायक होते हैं। किन्तु उनके सहायक युक्त कुम्हार का व्यापार मुख्य है। तो जैसे घड़ा आदिककी उत्पत्तिमें कोई मनुष्य कारण होता है और जो सहायक साधन हैं, उनकी सहायता लेकर वह कार्य करता है, इस ही प्रकार वचनालाप होनेसे मूल कारण तो आत्माका सद्भाव है और फिर वह आत्मा तालु कंठ आदिकके व्यापारकी सहायता लेकर शब्दोंको उत्पन्न कर सकता है, पर वचनालाप होनेसे आत्माके अस्तित्वका सभी लोग ज्ञान करते हैं। उन वचनालापोंमें मूल कारण आत्मा है। तात्वादिमें अन्वय व्यतिरेकका सम्बन्ध रखने वाला होनेसे यदि तालु आदिकका ही कार्य शब्दको माना जाय तो घट आदिकको भी आत्माका ही

कार्य मान लिया जाय। अथवा कुम्हार आदिकके व्यापारके बिना चक्रादिकका ही कार्य मान लिया जाय। और, फिर जो कार्यका कार्य है ऐसा हेतु आये तो उस का अन्तर्भाव कार्य हेतुमें ही होता है। जैसे कहे कि मृतपिण्ड ... हो चुका है घडा बन जानेसे तो व्यवस्था तो यों है कि पहिले चक्रपर मृतपिण्ड लाया जाता है, फिर उसको लम्बा करके एक पिण्डी जैसी परिणति बनती है, फिर उसमे पोल करके एक कसूल जैसी परिणति बनती है। उसके बाद घडा बनता है। तो मृतपिण्डका कार्य है पिण्डा, उसका कार्य है कसूल और उसका कार्य है घडा। तो कार्योंके कार्यके कार्य देखकर पुराने कारण परिणतिको सिद्ध करना यह कार्य हेतुमें सामिल हो जाता है। कार्यलिंगका वर्णन करके अब कारण हेतुका वर्णन करते हैं।

अस्त्यत्र छाया छत्रात् ॥ ३-६७ ॥

अविरुद्धकारणोपलब्धिका उदाहरण — यहांपर छाया है छत्र होनेसे। तो छाया तो है कार्य। और छत्र है कारण। तो कारणको देखकर कार्यका अनुमान किया जा रहा है। छत्रको बताकर छायाकी बात अनुमानमे लायी जा रही है। तो यहां साध्य है छाया। उससे अविरुद्ध कारण है छत्र। जहा छत्र होता है या ऐसा कुछ भी जाना वहा उसकी छाया होती है तो कारणसे अविरुद्ध कार्यकी सिद्धि की गई है अत. इस अनुमानमे छत्रहेतु अविरुद्ध कारणोपलब्धि नामका हेतु है। यदि कोई अनुमान ऐसा हो कि जिसमें कारणके कारणका हेतु बताया जाय तो वह कारण हेतुमें ही सामिल होता है। वह भिन्न हेतु नही माना जाता। जैसे कोई अनुमान बनाया कि यहा रहने वाले लोगोके कठको रुधने वाली स्थिति है क्योंकि धुवा वाली अग्नि होनेसे। तो कठादिकमें जो विच्छेद होता है उसका कारण है धूम और धूमका कारण है अग्नि तो कारण दिखाकर कार्यधूम और धूमका कार्य कठका रुधना सिद्ध किया गया है। तो कारणका कारण दिखाकर साध्यकी सिद्धि करना यह कारण उपाधिमें ही सामिल हो जाता है। अब अविरुद्धकारणोपलब्धि नामक हेतुको कहकर अविरुद्ध पूर्वचर हेतुको कहते हैं।

उदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयात् ॥ ३-६८ ॥

अविरुद्धपूर्वचरोपलब्धि हेतुका उदाहरण — रोहिणी नक्षत्रका उदय हो गया कृत्तिकाका उदय होनेसे यहां कार्य है रोहिणीका उदय। उससे पूर्वमे होने वाली है कृत्तिका। नक्षत्र क्रमसे अस्वनी, भरनी कृत्तिका रोहिणी आदिक जो क्रम कथन है उसमे कृत्तिका है तृतीय नम्बरका नक्षत्र और रोहिणी है चौथे नम्बरका नक्षत्र। तो रोहिणीसे पहिले आता है कृत्तिका। तो कृत्तिकाका जब उदय चल रहा है तो उसके उदयसे रोहिणीके उदय होनेकी सिद्धि करना यह पूर्वचर हेतुमे सामिल है। कोई पूवचर भी हुआ करता है। तो वे सब इस पूर्वचरमे ही अन्तर्भूत कर लेना

चाहिये। जैसे कोई कहे कि मृगसराका नक्षत्र आगे होगा क्योंकि कृतिकाका उदय होनेसे। तो मृगसिरा नक्षत्र है ५ वें नम्बरका, कृतिका है तीसरे नम्बरका पाँचवेंसे पूर्व है चौथा चौथेसे पूर्व है तीसरा तो तृतीय नक्षत्रको साधन बताकर ५ वें नक्षत्रके भविष्यकालमे उदय बताना यह पूर्वचर हेतुमे सामिल हो जाता है। अब पूर्वचर लिङ्गका वर्णन करके उत्तरचर लिङ्गका वर्णन करते हैं।

उदगाद्भरणिः प्राक् तत एव ॥ ३-६९ ॥

अविरुद्ध उत्तरचरोपलब्धि हेतुका उदाहरण—भरणीका उदय हो चुका कृत्तिकाका उदय होनेसे। भरणी नक्षत्र है द्वितीय नम्बरका और कृत्तिका है तृतीय नम्बरका। तो जब कृत्तिकाका उदय चल रहा है तो उस साधनसे भरणीका उदय हो चुका यह साध्य सिद्ध करते हैं। उत्तरचर लिंगका काम है। यदि कोई उत्तरोत्तर चरलिंग हो तो उसका भी अन्तर्भाव उत्तरचर लिंगमे करना चाहिये। जैसे कोई अनुमान करे तो भरणीका उदय हो चुका रोहिणीका उदय होनेसे। तो भरणी है द्वितीय नम्बरका नक्षत्र और रोहिणी है चतुर्थ नम्बरका। तो रोहिणी नक्षत्रका उदय है तो उसमें भरणीका उदय हो चुका यह सिद्ध हो ही जाता है। तो भरणीका उत्तर है कृत्तिका और कृत्तिकाके बाद आता है रोहिणी तो उत्तरचर हेतुसे बहुत पहिलेका नक्षत्र उदित हो चुकना सिद्ध करना यह तो उत्तरोत्तर चरलिंगका अनुमान है। अब उत्तरचर हेतुका वर्णन करके सहचर हेतुका वर्णन करते हैं।

अस्त्यत्र मातुलिङ्गे रूपं रसात् ॥ ३-७० ॥

अविरुद्धसहचरोपलब्धि हेतुका उदाहरण—इस बैंगनमे रूप है रस होनेसे। तो रूप और रस दोनों एक साथ हुआ करते हैं। उनमेसे जिस रसका स्वाद लिया जा रहा है। प्रत्यक्ष किया जा रहा है उस रस साधनसे रूप साध्यका सिद्ध करना यह सहचर लिंग साध्य अनुमान है। अब जो संयोगी हेतु होता है अथवा एक ही पदार्थमे सम्वाय सम्बन्धसे रहने वाला हेतु होता है जो साध्यके समान सम्बन्धमे ही रहा करता है उनका अन्तर्भाव इस सहचर हेतुमें कर लिया जाता है। जैसे यह कहना कि इसमे आत्माका अस्तित्व है क्योंकि जो मन आदिक विशिष्ट शरीर होनेसे तो ये दोनों सहचर हैं। विशिष्ट ज्योतिरूप देह है और आत्मा भी वही है तो यह सहचर लिंगमे सामिल हो जाता है। इसी प्रकार जो एक ही अर्थमें समवाय सम्बन्ध रहता है—जैसे रूप रस गंध स्पर्शादिक एक पदार्थमे रह रहे हैं तो वे एक दूसरेको सिद्ध कर देते हैं। ये सब सहचर लिंग कहलाते हैं। इस प्रकार अविरुद्धोपलब्धिके जो छह हेतु कहे गये थे उनके छहों उदाहरण बता दिये गए हैं। यह सब उदाहरण विधि साध्य वाली है। अब विधि साध्य होनेपर जो अविरुद्धोपलब्धि हेतु होते हैं उनका उदाहरण देकर विरुद्धोपलब्धि हेतुका उदाहरण देनेके लिये पहिले विरुद्धोपलब्धि

हेतुके साध्यके सम्बन्धमे सूत्र कहते हैं। इस हीमे विरुद्धोपलब्धिके भेद भी बताये जायेंगे।

विरुद्धतदुपलब्धिः प्रतिषेधे तथेति ॥ ३-७१ ॥

प्रतिषेध साध्य होनेपर विरुद्धोपलब्धिके प्रकार—विरुद्ध जो व्याप्य कारण आदिक है उनकी उपलब्धि होना इस हेतुसे प्रतिबोध साध्य किया जाता है। इसी प्रकार विरुद्धोपलब्धि हेतु भी छह प्रकारके होते हैं। विरुद्ध व्याप्योपलब्धि, विरुद्ध कार्योपलब्धि, विरुद्ध कारणोपलब्धि, विरुद्ध पूर्वचर, विरुद्ध उत्तरचर, विरुद्ध सहचर। साध्यका इसमें नास्तित्व सिद्ध किया जायगा। तो जिसका प्रतिषेध किया जा रहा है ऐसे साध्यसे जो विरुद्ध है पदार्थ उससे सम्बन्ध रखने वाले व्याप्यादिककी यहां उपलब्धि होती है। तो जहां विरुद्ध हेतु पाया जायगा उससे विरुद्धका निषेध ही तो किया जायगा। ये सब बातें उदाहरणके समय स्पष्ट हो जायेंगी। इनमेसे अब प्रथम विरुद्ध व्याप्योपलब्धिका उदाहरण देते हैं।

नास्त्यत्र शीतस्पर्श औष्ण्यात् ॥ ३-७२ ॥

विरुद्धव्याप्योपलब्धिका उदाहरण—उसका उदाहरण दे रहे हैं कि यहा शीत स्पर्श नही है गर्मी होनेसे। तो गर्मी यह तो हेतु बताया गया है और गर्मी होती है और अग्निसे विरुद्ध है शीतस्पर्श। जहा अग्नि है वहा ठडा स्पर्श कहासे होगा? तो ठडे स्पर्शका निषेध करना यह है उष्ण हेतुका साध्य। तो यह विरुद्ध व्याप्योपलब्धि हो गयी। अथवा कहो व्याप्यविरुद्धोपलब्धि। यहां प्रतिषेध साध्य है और जितने प्रतिषेध किये जा रहे हैं उनसे विरुद्ध व्याप्यकी उपलब्धि हो रही है। अब विरुद्ध व्याप्यहेतुका वर्णन करके विरुद्ध कार्यका वर्णन करते हैं।

नास्त्यत्र शीतस्पर्शो धूमात् ॥ ३-७३ ॥

विरुद्धकार्योपलब्धि हेतुका उदाहरण—यहां शीतस्पर्श नही है धुवां होनेसे। तो साध्य बनाया है शीतस्पर्शका अभाव, जिसका प्रतिषेध किया जा रहा है। उस शीतस्पर्शसे विरुद्ध है अग्नि। जहां अग्नि होती है वहां शीत स्पर्श कहासे होगा? अग्निका कार्य है धूम। तो जो प्रतिषेध साध्य है उसका विरोधी कार्य पाया जानेसे यह विरुद्ध कार्योपलब्धि नामका हेतु होता है। यदि इसके बाद सीधा कहो कि यहा शीतल स्पर्श नही है अग्नि होनेसे तो यह विरुद्ध कारणोपलब्धिमें सामिल होता है। किन्तु हेतु दिया है धूम होनेसे तो शीतस्पर्शका विरोधी है अग्नि और अग्नि का कार्य है धूम। उससे सिद्ध किया है शीत स्पर्शका अभाव। अब विरुद्ध कार्य हेतुका वर्णन करके विरुद्ध कारण हेतुका वर्णन करते हैं।

नास्मिन् शरीरिणि सुखमस्ति हृदयशल्यात् ॥ ७४ ॥

विरुद्धकारणोपलब्धि हेतुका उदाहरण—इस शरीरमें पुरुषमे सुख नही है क्योंकि हृदय शल्य होनेसे। तो यहा साध्य है प्रतिषेध सुखका प्रतिषेध किया जा रहा है तो सुखका विरोधी है दुःख और दुःखका कारण है हृदय शल्य तो हृदय शल्य देकर सुखका प्रतिषेध करना यह विरुद्ध कारण हेतुसे सिद्ध किया जा रहा अनुमान है। जहा विरुद्ध कारण मिले वहा उस कारणके कार्यसे विरोधी बात ही सिद्ध होगी। यो विरुद्ध कार्य हेतुका वर्णन करके अब विरुद्ध पूर्वचर हेतुको कहते हैं।

नोदेष्यति मुहूर्तान्ते शकटं रेवत्युदयात् ॥ ३-७५ ॥

विरुद्धपूर्वचरोपलब्धि हेतुका उदाहरण—एक मुहूर्तके बाद रोहिणीका उदय होनेसे रोहिणीका उदय होनेमेंतो यहां प्रतिषेध है रोहिणीका उदय रोहिणीसे विरुद्ध है पूर्वमें अर्थात् रोहिणीसे पहिले आता है भरणी, उससे पहिले आता है अश्विनी। उससे पहिले आता है रेवती। अब उस समय रेवतीका उदय है तो मुहूर्त बाद सकटका उदय कहा जायगा। प्रथम तो अब अश्विनीका ही उदय है तो उसके बाद आ गयी भरणी तो भरणीका एक मुहूर्त समय व्यतीत होनेके बाद आ गया कृत्तिका। उसके बाद होगा रोहिणी फिर बतला रहे हैं रेवतीका उदय तो यहा सकटके उदयका विरोधी है अश्विनीका उदय और उसका पूर्वचर है रेवतीका उदय यहा विरुद्ध पूर्वचर हेतु हुआ। अब विरुद्ध पूर्वचर हेतुका वर्णन करके विरुद्ध उत्तरचर का उदाहरण देते हैं।

नोदगाद्भरणिर्मुहूर्तात्पूर्वं पुष्योदयात् ॥ ३-७६ ॥

विरुद्धोत्तरचरोपलब्धि हेतुका उदाहरण—मुहूर्तसे पहिले भरणीका उदय न था पुष्यका उदय होनेसे पुष्यसे पहिले आता है पुनर्वसु, उससे पहिले कृत्तिका, उससे पहिले भरणी। तो उतने मुहूर्तों पहिले आने वाले भरणीका प्रतिषेध किया जा रहा कि मुहूर्तसे पहिले भरणी उदयमें न था क्योंकि पुष्यका उदय होनेसे। तो भरणीके उदय का विरोधी है पुनर्वसु। उससे उत्तरचर है पुष्यका उदय। तो यहाँ यह विरुद्ध उत्तरचर हेतु हो गया। जैसे कोई कहे कि अबसे एक दिन पहिले इतवार न था बृहस्पति वार होनेसे। तो इतवारका विरोधी है बुधवार क्योंकि सोमवार भी निकले, मंगलवार भी निकले, मंगलवार भी निकले तब बुधवार आयगा। उसके उत्तरमे रहने वाला है बृहस्पतिवार। तो बृहस्पतिको बताकर उससे एक दिन पहिले इतवारके होनेका निषेध करना यह विरुद्ध उत्तरचर हेतुसे साबित अनुमान हुआ। अब विरुद्ध सहचर हेतुको कहते हैं।

नास्त्यत्र भित्तौ परभागाभावोऽर्वाग्भागात् ॥ ३-७७ ॥

विरुद्धसहचरोपलब्धि हेतुका उदाहरण – इस भीटमे दूसरे परले भागका अभाव नही है क्योंकि इस तरफके भागका सद्भाव है। भीट खडी है, उसका एक ही पहिला हिस्सा तो दिख रहा है। उस दिखते हुए सामनेके हिस्सेसे यह अनुमान करना कि इसके दूसरे हिस्सेका अभाव नही है, क्योंकि यह पहिला हिस्सा दिख रहा है। तो यह अनुमान सही है। प्रतिषेध्य हो रहा है परला हिस्सा। परला हिस्सासे विरोध है परले हिस्सेका सद्भाव। उसका सहचारी है अगले हिस्सेका सद्भाव। तो अगला हिस्सा देखकर परले हिस्सेके अभावका निषेध करना यह विरुद्ध सहचर हेतु हुआ। जैसे कोई यह कहे कि इस आममे रूपका अभाव नही है रस होनेसे। तो रूपके अभावका विरोधं हुआ रूपका सद्भाव। तो रस बताकर रूपके अभावका अभाव कहना यह विरुद्ध सहचर हेतु हुआ। जैसे कि पहिले बताया था कि इसमे रूप है रस होनेसे तो यह हुआ अविरुद्ध सहचर। सीधा अनुमान। अब रस हेतु देकर रूपके अभावका अभाव बताना यह विरुद्ध सहचर हेतुसे साध्य किया है उससे विरुद्ध है परभागका सद्भाव, उसका सहचर है अगले भागका सद्भाव। यहा तक हेतुके दो प्रकारो मेसे एक उपलब्धिरूप हेतु, इनमेसे उपलब्धिरूप हेतुका वर्णन किया जा चुका जिसका साध्य विधिरूप हो और हेतु भी विधिरूप हो वह भी उपलब्धिहेतु कहलाता है। क्योंकि विधिका साध्य किया है और जहा साध्य तो हो प्रतिषेध और हेतु हो विधिरूप तो यह भी उपलब्धि हेतु कहलायेगा, क्योंकि बताया गया था कि उपलब्धि नामक हेतु विधिसाध्य होनेपर भी होता है। तो जैसे उपलब्धिकी बात कही गई थी उसी प्रकार अनुपलब्धिकी भी बात है। अनुपलब्धि भी दो प्रकारके होते हैं– एक अविरुद्ध अनुपलब्धि और एक विरुद्ध अनुपलब्धि। तो उनमेसे पहिले प्रकारकी जो अनुपलब्धि है अर्थात् अविरुद्ध अनुपलब्धि है उसका वर्णन करनेकी इच्छासे अब आचार्य महाराज सूत्र कहते हैं।

अविरुद्धानुपलब्धि. प्रतिषेधे सप्तधा स्वभावव्यापककार्यकारणपूर्वोत्तरसहचरानुपलम्भभेदादिति ॥ ३–७८ ॥

प्रतिषेध साध्य होनेपर अनुपलब्धि हेतुके प्रकार – अविरुद्धानुपलब्धि प्रतिषेध साध्य होनेपर होता है और वह ७ प्रकारसे प्रतिषेध करता है अर्थात् अविरुद्धानुपलब्धिके ७ भेद हैं स्वभाव अविरुद्धानुपलब्धि, व्यापक अविरुद्धानुपलब्धि, कारण अविरुद्धानुपलब्धि, पूर्वचर अविरुद्धानुपलब्धि, उत्तरचरअविरुद्धानुपलब्धि, सहचरअविरुद्धानुपलब्धि, प्रतिषेध साध्यसे अविरुद्धकी अनुपलब्धि होना इसका नाम है अविरुद्धानुपलब्धि। उनमेसे प्रथम स्वभावानुपलब्धिका उदाहरण देते हैं।

नास्त्यत्र भूतले घट उपलब्धिलक्षणप्राप्तस्यानुपलब्धे ॥ ३–७९ ॥

अविरुद्धस्वभावानुपलब्धि हेतुका उदाहरण—इस जमीनपर घट नही

है क्योंकि उपलब्धि लक्षण प्राप्त होनेपर भी उसकी उपलब्धि नही हो रही है। अर्थात् घट प्राप्त करने योग्य चीज है। दिखने योग्य चीज है और फिर भी नही दिख रहा है तो इससे सिद्ध होता है कि यहा घडा नही है। वैसे इस अनुमानमे सिर्फ इतना ही कह देना—अनुपलब्धे। यहा घडा नही है क्योंकि पाया नही जा रहा। तो इतने मात्र हेतुसे काम नही बनता। क्योंकि नही पायी जा रही तो बहुत सी चीजें हैं पिशाच, भूत, राक्षस ये भी नही पाये जा रहे हैं तो इनका भी अभाव सिद्ध कर देंगे क्या? इसलिये उपलब्धि लक्षण यह इतना विशेषण और दिया है, याने जो चीज दिख सकती है, पायी जा सकती है फिर भी न पाया जाय तो उससे उसका अभाव सिद्ध होता है पर पिशाच आदिक तो यहा पाये नही जाते, दिखते नही हैं, फिर उनकी अनुपलब्धिसे उनके विषयमे कुछ नही कहा जा सकता कहो पिशाचादि यहा कही नही दिख रहे और वे मौजूद हो तो इससे यही बात सही है कि जो उपलब्धिके योग्य है और फिर उपलब्ध न हो तो उससे उनका नास्तित्व सिद्ध होता है।

अनुपलब्धिसे आरोपित अस्तित्वका निषेध - यहा कोई पूछे कि यह तो कुछ स्ववचनबाधित जैसी बात हो रही है, जो है वह उपलब्धि लक्षणप्राप्त कैसे हो जायगी? और यदि कोई उपलब्धि लक्षणप्राप्त है अर्थात् पाये जाने योग्य है उपलब्धिको प्राप्त हुआ है फिर उसका असत्त्व कैसे कहोगे? इन दोनों बातोंमें तो परस्पर विरोध जैसी बात है। तो उत्तर देते हैं कि आरोप करके घटरूपका निषेध किया है। पहिले तो ऐसी प्रकल्पना की कि यह जमीन घट सहित हो सकती थी और इस जमीन पर घट देखा जा सकता था तो घडेके सम्बन्धी रूपसे पहिले जमीनकी कल्पना की तब फिर घटका निषेध किया जा रहा है इस जमीनपर, क्योंकि सभी जगह जहा निषेध किया जाता है उसका विषय आरोपित हुआ करता है। शङ्काकार यह कह रहा था कि जो नही है उसे उपलब्धि प्राप्त कैसे कहोगे? और जो उपलब्धि प्राप्त है उसे असत् कैसे कहोगे अर्थात् जैसे इस ही जमीनपर यदि घडा है ही नही तो उसे उपलब्धि लक्षण प्राप्त यह विशेषण कैसे लगाओगे? अर्थात् पाया होता है और फिर न पाया जाय तो पाया हुआ कहा है? और यदि प्राप्त है तो घटका निषेध कैसे? उसके उत्तरमे कह रहे हैं कि जैसे घडा नही है यहा तो बुद्धिने पहिले यह कल्पना की, कि घडा सहित यह जमीन हो सकती थी अब नही है। तो आरोपित विषय होता है निषेधका। जैसे किसी पुरुषके बारेमे कहा जाय कि यह गोरा नही है तो यहा कोई ऐसा तर्क तो नही उठाता कि यदि गोरा है तो निषेध नही हो सकता और अगर निषेध है तो गोरेपनका शब्द ही नही कह सकते हो? इससे जो निषेध वाली बात कही जाती है वह पहिले बुद्धिमें आरोपित करली जाती है फिर उसका निषेध किया जाता है। इस जमीनपर घडा नही है तो निषेध करनेसे पहिले जमीनपर घडेका ऐसा सम्बन्ध बुद्धि मे बताया। फिर आरोप करके उसका निषेध किया गया है।

आरोप्यमे ही आरोपकी सम्भवता—शंकाकार कहता है कि इस तरह तो जो मूर्त पिशाच आदिक अदृश्य है वे भी दृश्यरूपसे आरोपित किये जा सकेंगे और फिर उनका प्रतिषेध किया जायगा। उत्तर देते हैं कि यह बात युक्त नही है। जिसमे आरोप किये जानेकी योग्यता होती है आरोप उसका ही होता है। जो पदार्थ यदि विद्यमान हो तो नियमसे उपलब्ध हो, उसमे ही आरोप किया जा सकता है। जैसे यदि यहा घडा होता तो नियमसे उपलब्ध होता दिखता पाया जाता और अब नही दिख रहा, नही पाया जा रहा तो इससे सिद्ध है कि यहां घडा नही है। और पिशाच आदिकमे तो यह बात नही बनती कि पिशाच आदिक यहां होते तो नियमसे उपलब्ध होते। ऐसा नियम उनमे नही है इस कारण अनुपलब्धिसे पिशाचका नास्तित्व सिद्ध नही किया जा सकता। घडेकी उपलब्धिमे जितने कारण हैं। जैसे इन्द्रिय ठीक होना प्रकाश होना और उन सब कारणोके रहते हुए घडा होता तो नियमसे दिखता ना। अब सब कारण मौजूद है और घडा नही पाया जा रहा तो निषेध किया जा रहा कि घड़ा नही है ऐसी बात पिशाच आदिकमे तो है नहीं। चाहे कितना ही प्रकाश हो और कितनी ही तेज जानने वाली इन्द्रिया हो तो भी पिशाच ग्रहणमे आजाय ऐसा नही है।

एकज्ञानसंसर्गी प्रदेशपर घटका असत्त्व सिद्ध करनेसे अन्यत्र घटाभाव सिद्ध हो जानेकी अनापत्ति—घडेकी उपलब्धिके सारे कारणोका होना एक ज्ञानसे संसर्ग रखने वाले प्रदेशके उपलब्ध होनेपर निश्चित होता है। याने जिस जमीन पर घडा रखा उस जमीनको समझनेका उपलब्ध करनेका कारण भी वही है याने प्रकाश है और इन्द्रियां व्यवस्थित हैं और जमीन दिख रही है और यही कारण हैं घटकी उपलब्धिके। इन्द्रिया व्यवस्थित हैं। प्रकाश हो तो घट भी दिख सकता है तो घट और उस जमीनके हिस्सेको उपलब्ध करनेके कारण समान हैं। तो जब इन इन्द्रियसे और इन प्रकाशोमें यह जमीन तो दिख रही है और घडा मिल नही रहा, तो इससे सिद्ध होता कि यहा घडा नही है। यहाँ एक ज्ञान संसर्गी कहनेसे यह भाव आता है कि जैसे हम यहाकी जमीन देख रहे हैं और वहाँ घडा नही दिख रहा तो घडेका अभाव यहाँ की जमीनपर ही सिद्ध कर पायेंगे। ऐसा नही कि अन्य देश की किसी जमीनपर हम अभाव सिद्ध करदें। जिस एक ज्ञानमे जमीन आ रही है उस ही एक ज्ञानमे घट नही दिख रहा तो घटका नास्तित्व सिद्ध होता है। इसी प्रकार एक ज्ञानमे आने वाले अन्य पदार्थोंमे तो उपलब्धि हो और घट भी दिख सकता था, क्योंकि दृश्य है वह यहां उपलब्ध हो नही रहा तो इस प्रकार उपलब्धि लक्षण प्राप्त घटका अनुपलम्भ सिद्ध किया गया है। उपलम्भ मायने पाया जाना यहा हेतु देरहे हैं स्वभावानुपलब्धिका। यहा घट नही है क्योंकि पाया नही जा रहा। तो एक सीधी ही बात कही जा रही है अविरुद्ध स्वभावकी अनुपलब्धि बतायी जा रही है और, साथ ही साथ साध्य प्रतिषेधरूप भी बताया जा रहा है। शंकाकार कहता है कि एक ज्ञानमे संसर्ग रखने वाले प्रदेशकी उपलब्धि होनेपर,

भी अन्य विषयक जैसे यहाँ घट विषयक ज्ञानके उत्पन्न करनेकी शक्ति सामग्रीकी है ऐसा निश्चय नही किया जा सकता। कैसे ? यों कि कोई जादूगर यहाँ बैठा हो और कहा उसने ऐसा जादू चलाया कि कोई एक चीज किसीको न दिखी और सारी चीज दिख रही तो अब वहा एक ज्ञानसंसर्गीकी बात तो ठीक नही बैठ सका। तो उसी तरह एक ज्ञानमे भूतल तो आ रहा और ऐसा दृष्टि प्रतिबध कर दिया जाय किसीके द्वारा कि घट वहाँ हो और फिर भी उस ज्ञानमे घट न आये तो अब घटका अभाव इस हेतुसे तो सिद्ध नही कर सकते। उसका समाधान देते हैं कि यह कहना अयुक्त है क्योंकि प्रदेश आदिकके द्वारा एक ज्ञानमें सम्बन्धित ही घटका अभाव बताया जा रहा है। भिन्न ज्ञानमे आने वाले घटका अभाव नही बताया जा रहा यदि कही पिशाच आदिकने दृष्टि बन्द कर दी है अदृश्य बना दिया है घटको तो अदृश्य बने हुए घटका हम निषेध नही कर रहे।

अभावकी अन्यभावरूपता—यहाँ तो एक ज्ञानमे सम्बन्ध रखने वाला पदार्थ और है उसका ज्ञान ही पर्युदासकी विधिसे घटकी असत्ता कहलाती है, याने जो चीज नही है उसका दिखना क्या ? और उसका बोलना क्या कि यह नही। उस पदार्थसे रहित जो जमीन दिख रही उसके मायने हैं उस पदार्थकी असत्ता। जैसे कोई कहे कि चौकीपर चश्मा रखा होगा सो उठा लाओ। वहाँ चश्मा था नही। तो देखकर वह कहता है कि चौकीपर चश्माका अभाव है। तो क्या उसे चश्माका अभाव है दिख गया ? न होना ऐसी क्या दिखनेकी चीज है ? पर चश्मा सम्बन्धसे रहित केवल चौकीका दिखना ही पर्युदास विधिसे चश्माका अभाव कहलाता है। तो इस तरह घड़ा दिख जाने योग्य चीज थी। और जिस ही एक ज्ञानमें वह प्रत्यक्ष दिख रहा है, जहाँ घड़ेका अभाव सिद्ध किया जा रहा है वहाँ घड़ेका अनुपलम्भ है तो उससे घटके नास्तित्वकी सिद्धि होती है।

प्रत्यक्षसिद्ध अभावको न मानने वालोके प्रतिबोधके अर्थ अभावका अनुमान—शंकाकार कहता है कि तुमने जो यह कहा कि जमीनके सद्भावका ही नाम घटका अभाव है तो इस तरह भूतल तो प्रत्यक्ष सिद्ध है। सो तद्रूप हुये घटका अभाव यह भी प्रत्यक्ष सिद्ध बन गया। अब अनुपलम्भ हेतु देकर अनुमान बनानेकी आवश्यकता क्या है ? अब तुम्हारा कहना यह है कि खाली जमीन दिख जाय उस ही के मायने घड़ेका अभाव है तो जमीन तो प्रत्यक्षसे दिख गई और जमीनका ही नाम है घड़ेका अभाव तो जमीन दिखते ही घड़ेका अभाव भी दिख गया। प्रत्यक्षसे जान लिया तो अब घड़ेके अभावको सिद्ध करनेके लिये अनुमान बनानेकी क्या आवश्यकता है। और अनुपलम्भ बताकर क्या सिद्ध करना चाहते ? कोई प्रयोजन ही नही ? इसका उत्तर देते हैं कि यह बात तुम्हारी कुछ सत्य है तो भी प्रत्यक्षसे जाने हुए अभावमे भी जो व्यामुग्ध होते है अर्थात् यथार्थ जानकारी नही रखते, ऐसा कोई

दार्शनिक है, उसको अभाव निमित्त करके समझाया जा रहा है। ऐसे सांख्य आदिक कुछ दर्शन हैं जो कि प्रत्यक्ष सिद्ध अभाव होनेपर भी उसको स्पष्ट उस रूपमें नही मान रहे। देखिये सत्त्व रज तम आदिक जो गुण हैं उन गुणोमे जो असत्ताका व्यवहार किया जाता है कि सत्त्व गुणका नाम है स्थायी गम्भीर रहना और रजगुणका काम है उसमे कलुषता आना उपसर्ग आना। तो दो गुणोके दो स्वरूप न्यारे न्यारे हैं। एक गुणमे दूसरा गुण कैसे आयगा। तो जैसे सत्त्व रज तम आदिकमे असत्का व्यवहार किया जाता है तो वह अनुपलम्भ निमित्तिक ही तो है। इसलिये यह कहना युक्त नही है कि अभाव जब प्रत्यक्ष सिद्ध हो गया तो उसमें व्यवहार स्वयं हो जायगा अन्य हेतु आदिक देनेकी क्या आवश्यकता? यों देना पड़ता है कि प्रत्यक्ष सिद्ध होनेपर भी अभावमें जब यथार्थता नही समझी जा सक रही है तो उन्हे अनुमान से हेतुसे बताना पडता है?

अनुपलम्भनिमित्तक व्यवहार बतानेकी आवश्यकताका दृष्टान्त द्वारा विवरण जैसे और दृष्टान्त लीजिये —किसी पुरुषने बहुत बडी गाय देखी और उस को समझा दिया कि देखो—जिसमे सासना लगी है अर्थात् गलेके नीचे जो मांसकी पट्टी लम्बी लटकती रहती है वह सासन जिस जिस जानवरमे पायी जाय उसे गाय कहते हैं। गायके समान अनेक जानवर होते, रोझ भी गायकी तरह है लेकिन सासना अर्थात् गलेके नीचे लम्बी पतली मास चमडेकी पट्टीका लटकना अन्य जानवरोमें न मिलेगा। तो सासना आदिक लक्षण पाये जानेसे उसने बहुत बड़ी गायमे गायका व्यवहार कर लिया कि गाय यह कहलाती है। अब उस मूढ पुरुषने कही ठिगनी गाय देखी जो बहुत ही छोटी थी तो उसमे यद्यपि सदृशतासे तक रहा है फिर भी गायका व्यवहार नही करता, तो उसको जैसे निमित्त बताकर समझाया जाता है। अथवा किसी पुरुषने ठिगनी गायको देखा और दूसरेने समझा दिया कि जो इस तरह सासना आदिक लक्षणोको लिए हुए हो उसे गाय कहते है। फिर वह कही विशाल गायको देखे तो उसमे गायका व्यवहार नही करता तो उसे निमित्त दिखाकर कि देखो इसमे भी यह सासना आदिक हैं इससे यह भी गाय है, इसमे गायका व्यवहार करेगा। इस के पहिले जिस गायको जाना था वहा भी सासना आदिक लक्षण देखकर ही तो जाना था। तो अब इस गायको जान रहे हों छोटी अथवा बडी तो उसमे भी सासना आदि लक्षण पाये जा रहे हैं यों इसे मान लेते। वैसे ही जैसे यहां उपलम्भनिमित्तक व्यवहार कराया गया है। जैसे सासना आदिक पाये गये हैं उस निमित्त गायका व्यवहार कराया गया है इसी प्रकार अभावमें अनुपलम्भके निमित्तसे व्यवहार कराया गया है। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते कि जहां निमित्त दिखाकर व्यवहार कराया जाता है, प्रत्यक्षमे सामने है तिसपर भी व्यवहार यदि नही कर रहा है तो निमित्त दिखाकर व्यवहार कराया जाता है। जैसे कोई बडा सीसमका पेड था, उसमे एक मनुष्य वृक्ष का व्यवहार कर रहा है वह कहलाता है सीसम। और यदि मिल जाय कोई सीसम

का छोटा पौधा उसमे यह सीसमका व्यवहार नही कर रहा तो निमित्त बताकर उसको उसमे व्यवहार कराया जाता, उसको समझ बनाई जाती कि यह वृक्ष है सीसम होनेसे। तो जहाँ सद्भावात्मक चीजमे उनका निमित्त दिखाकर उनका ज्ञान कराया जाता, व्यवहार कराया जाता इसी प्रकार अभाव वाले पदार्थमे, अभावमे अनुपलब्धि का निमित्त बताकर उसमे अभावका व्यवहार कराया जाता। इससे प्रत्यक्ष सिद्ध होने पर भी व्यवहारार्थ हेतु और युक्तियोके द्वारा उसे अनुमानमे लेनेकी आवश्यकता होती है। तो यहाँ स्वभाव उपलब्धि हेतुके उदाहरणमें स्वभावका अनुपलम्भ ही तो बताया घटकी सत्ता अनुपलब्ध है इस कारण घट नही है। यों स्वभावानुपलब्धि नामक प्रथम अविरुद्ध स्वभावानुपलब्धि हेतुका उदाहरण दिखाया है। अब अविरुद्धव्याप्यानुपलब्धि का उदाहरण कहते हैं।

नास्त्यत्र शिंशपा वृक्षानुपलब्धे. ॥ ३-८० ॥

अविरुद्धव्याप्यानुपलब्धिका उदाहरण। जहाँ कोई वृक्ष ही न था उस जगह यह अनुमान किया गया कि यहाँ सीसम नही है, क्योंकि वृक्षकी अनुपलब्धि होनेसे। यहाँ व्याप्यका तो नास्तित्व साध्य बनाया और व्यापकका अभाव साधन बनाया। यहाँ उल्टी बात नही चल सकती थी कि कोई यो कहदे कि यहाँ वृक्ष नही है सीसम न होनेसे। न सीसम हो तो उससे कहीं वृक्षका अभाव तो सिद्ध न कर दिया जायगा। व्यापककी अनुपलब्धिसे व्याप्यका अभाव सिद्ध किया जा सकता है। व्यापक उसे कहते हैं कि जो अधिक जगह रहे याने व्याप्यके साथ तो है ही, पर उस व्याप्यके अलावा अन्यत्र भी रहे तब व्यापकका अभाव दिखाकर व्याप्यका अभाव बताया जा सकता है। व्याप्य तो थोडे स्थलमे रहता, व्यापक रहता बहुत जगह, तो व्याप्यका अभाव बताकर व्यापकका अभाव सिद्ध नही किया जा सकता। तो यहाँ प्रतिषेध साध्य है सीसम नही है और सीसमसे अविरुद्ध व्यापक है वृक्ष, उसकी अनुपलब्धि बतायी जा रही है। तो यों व्यापककी असत्ता सिद्ध करना सो अविरुद्ध व्यापकानुपलब्धि हेतुका साध्य है। अब अविरुद्धकार्यानुपलब्धिका उदाहरण कहते हैं।

नास्त्यत्राऽप्रतिबद्धसामर्थ्योऽग्निर्धूमानुपलब्धे ॥ ३-८१ ॥

अविरुद्धकार्यानुपलब्धि हेतुका उदाहरण—यहाँ जिसकी सामर्थ्य रोकी न गई हो ऐसी अग्नि नही है क्योंकि धुवां नहीं पाया जाता। यहाँ पर प्रतिषेध किया जा रहा है उस अग्निका कि जिस अग्निकी सामर्थ्यसे कोई रोक नहीं रहा है। ऐसी अग्निका अविरुद्ध कार्य है धुवां। यदि वे ठीक ठीक ढंगकी अग्नि हो तो उससे धूमकी उत्पत्ति होती है। उस कार्यकी है यहाँ अनुपलब्धि। धुवां पाया नहीं जा रहा तो उससे यह सिद्ध हुआ कि यहाँ ऐसी अग्नि नही है जिसकी सामर्थ्य अप्रतिबद्ध हो। इस तरह जिसका प्रतिषेध किया जा रहा है उस साध्यके अविरुद्ध कार्यकी अनुपलब्धि होनेसे जो

अनुमान बनाया है; उसका यह हेतु है अविरुद्धकार्यानुपलब्धि । अब अविरुद्धकारणानुपलब्धिका दृष्टान्त देते हैं ।

नास्त्यत्र धूमोऽनग्नेः ॥ ३-८२ ॥

अविरुद्धकारणानुपलब्धि हेतुका उदाहरण —यहाँ धुवाँ नहीं है क्योंकि अग्नि न होनेसे । यहाँ साध्य है प्रतिषेध्य अर्थात् धुवाँका अभाव बताया जा रहा है । तो जिसका प्रतिषेध किया जा रहा है उसका कारण है अग्नि । सो उस कारणभूत अग्निका है वहाँ अनुपलम्भ सो कारणके अनुपलम्भसे कार्यका अनुपलम्भ बताना, ऐसे अनुमानमे जो हेतु आया करता है उस हेतुका नाम है अविरुद्धकारणानुपलब्धि, धूमका अविरुद्ध कारण अग्नि न होनेसे धूम भी नहीं है ऐसा इस अनुमानमे सिद्ध किया गया है। अब अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धि हेतुका उदाहरण कहते हैं।

न भविष्यति मुहूर्तान्ते शकटं कृत्तिकोदयानुपलब्धेः ॥ ३-८३ ॥

अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धि हेतुका उदाहरण—एक मुहूर्तके बाद रोहिणी नक्षत्रका उदय न होगा, क्योंकि कृत्तिकाका उदय न होनेसे । यहाँ साध्य है प्रतिषेध्य शकटका उदय । शकट नक्षत्रका उदय आया करता है कृत्तिकाका उदय हो चुकनेपर अर्थात् कृत्तिकाका उदय आ आया करता है । तो प्रतिषेध्य साध्य है शकट । उसका अविरुद्ध पूर्वचर है कृत्तिकाका उदय । शकटसे ठीक पहिले कृत्तिका नक्षत्र आया करता है । उसकी है यहाँ अनुपलब्धि सो अविरुद्ध पूर्वचरानुपलब्धि हुआ हेतु । कृत्तिकाके उदयका अनुपलम्भ होनेसे यह निश्चित होता है । एक मुहूर्तमे शकटका उदय न होगा इस तरह कृत्तिकाके उदयानन्तर आगामी मुहूर्तमे आ सकने वाले शकटका निषेध किया गया क्योंकि उससे पहिले आने वाले कृत्तिकाका उदय नहीं है । इस प्रकार यहाँ अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धि नामका हेतु हुआ । अब उत्तरचरानुपलब्धि हेतुका उदाहरण कहते हैं ।

नोदगाद्भरणिर्मुहूर्तात्प्राक् तत एव ॥ ३-८४ ॥

अविरुद्धोत्तरचरानुपलब्धि हेतुका उदाहरण—मुहूर्तसे पहिले भरणी नक्षत्रका उदय न हुआ था क्योंकि कृत्तिकाका उदय आया करता है। तो जब जब कृत्तिका का उदय होता, उससे यह सिद्ध हो जाता कि एक मुहूर्त पहिले भरणीका उदय था लेकिन इस समय कृत्तिकाका उदय है नहीं तो इससे यह सिद्ध होता है कि एक मुहूर्त पहिले भरणीका उदय न था । तो इस अनुमानमे प्रतिषेध्य साध्य तो है भरणी नक्षत्र का मुहूर्त पहिले उदय न होना । प्रतिषेध्य साध्य जो भरणी नक्षत्र है उसका उत्तरचर है कृत्तिका । भरणी द्वितीय नक्षत्र है । कृत्तिका तृतीय नक्षत्र है । तो इस उत्तरचरकी अनुपलब्धि सिद्ध हो ही जाती है । इस तरह भरणीउदयसे अविरुद्ध उत्तरचर कृत्तिका

के उदयकी अनुपलब्धि होना सो अविरुद्ध उत्तरचरानुपलब्धि हेतु है। अब अविरुद्ध सहचरानुपलब्धि हेतुका उदाहरण देते हैं।

नास्त्यत्र समतुलायामुन्नामो नामानुपलब्धेः ॥ ३–८५ ॥

अविरुद्धसहचरानुपलब्धि हेतुका उदाहरण–एक तराजूमें कोई वस्तु तौली जा रही है। मानो पाव किलो चांदी तौली जा रही है। ठीक पाव किलो चांदी एक पलापर है दूसरेपर पाव किलोका बाट। तो उस तराजूमें कोई पला नीचे नहीं है। और न कोई पला ऊंचे है। जब बराबर चीज तुल रही है तो वह समतुला बना हुआ है। उस समय यह अनुमान बताया जा रहा कि उस तराजूमें दूसरा पला ऊंचे नहीं है क्योंकि यह पहिला पला नीचे न होनेसे। तराजूमें यदि एक पला ऊंचे होता है तो दूसरा पला तुरन्त नीचे एक साथ होता ही है। तो यहां नीचे पला न होनेसे यह अनुमान किया कि दूसरा पला ऊंचा भी नहीं है। तो यहां एकका ऊंचा होना और एकका नीचा होना यह एक साथ हुआ करता है। उनमेंसे जब एक पला नीचे नहीं है तो सिद्ध हो ही जाता है कि दूसरा पला ऊंचे नहीं है। तो यहां एक पल के ऊंचेका निषेध किया गया तो प्रतिषेध्य साध्य है पलेका ऊंचा होना। उसका सह-चर है पलेका नीचा होना। सो उस सहचरकी यहां अनुपलब्धि है अतएव यह हेतु अविरुद्ध सहचरानुपलब्धि नामसे कहलाया। इस तरह अविरुद्धानुपलब्धिके ७ प्रकार बताकर अब विरुद्धानुपलब्धिका वर्णन करते हैं।

विरुद्धानुपलब्धि विधौ त्रेधा विरुद्धकार्यकारणस्वभावानुपलब्धि भेदात् ॥ ३–८६ ॥

विरुद्धानुपलब्धि हेतुके प्रकार—विरुद्धकी अनुपलब्धि होनेको विरुद्धानुप-लब्धि कहते हैं। विरुद्धानुपलब्धि हेतु विधिसाध्य होनेपर तीन प्रकारका होता है। विरुद्धकार्यानुपलब्धि विरुद्धकारणानुपलब्धि विरुद्धस्वभावानुपलब्धि। विधेय जो साध्य बनाया जा रहा है उससे विरुद्ध कार्यकी कारणकी, स्वभावकी अनुपलब्धि होनेको। विरुद्धकार्यानुपलब्धि विरुद्धकारणानुपलब्धि, विरुद्धस्वभावानुपलब्धि कहते हैं। जिस साध्यका अस्तित्व सिद्ध किया जा रहा है उस साध्यसे विरोधी तत्त्व यदि नहीं पाया जा रहा तो उससे साध्य तो सिद्ध हो ही जायगा। इस बुनियादपर विरुद्धानुपलब्धिके ये तीन भेद किए गए। उनमेंसे विरुद्धकार्यानुपलब्धिका उदाहरण देते हैं।

अस्मिन्प्राणिनि व्याधिविशेषोऽस्ति निरामयचेष्टानुपलब्धेः ॥ ३–८७ ॥

विरुद्धकार्यानुपलब्धि हेतुका उदाहरण—इस प्राणीके रोग विशेष है, क्योंकि निरोग चेष्टा न पायी जानेसे। यहां साध्य सिद्ध किया जा रहा है व्याधिविशेष।

उससे विरुद्ध क्या है ? निरोगता होना । और निरोगता होनेका कार्य क्या है ? कोई तगड़ी चेष्टा होना । उस चेष्टाकी पायी जा रही है अनुपलब्धि । निरोग मुद्रा न पायी जानेसे व्याधि विशेषके अस्तित्वका अनुमान किया गया है । तो यहाँ साध्य बताया गया है रोग विशेष । उसका विरोधी है आरोग्य उसका कार्य है निरोग चेष्टाका उसकी अनुपलब्धि है । तो निरोगी चेष्टा न होनेसे रोग विशेष है । इस अनुमानमे विरुद्ध कार्यानुपलब्धि हेतु आया है । अब विरुद्ध कारणानुपलब्धि हेतुका उदाहरण देते हैं ।

अस्त्यत्र देहिनि दु खमिष्टसयोगाभावात् ॥ ३—८८ ॥

विरुद्धकारणानुपलब्धि हेतुका उदाहरण— इस प्राणीमे दु.ख है इष्ट सयोगका अभाव होनेसे । यहाँ व्यवहारत. भी विदित हो जाता कि जब जिस किसी पुरुषको इष्टका सयोग प्राप्त नही होता तो वह भीतरमे दु ख मानता है । तो इष्टका सयोग न होनेसे दु.ख न होना यह तो ठीक ही है और इसका अनुमान किया गया है तो साध्य है दु:खका अस्तित्व, उसका विरोधी है सुख उसका कारण है इष्ट पदार्थोंका सयोग । अर्थात् साध्यभूत दु खके विरुद्ध सुखका कारण है इष्ट सयोग । वह इष्ट सयोगकी अनुपलब्धि होनेसे दु:खका अस्तित्व सिद्ध किया गया है । तो यहाँ इष्ट सयोगका अभाव यह हेतु विरुद्धकारणोपलब्धि नामक हुआ । अब विरुद्ध स्वभावानुपलब्धि हेतुका उदाहरण देते हैं ।

अनेकान्तात्मक वस्तुकान्तानुपलब्धेः ॥ ३—८९ ॥

विरुद्धस्वभावानुपलब्धि हेतुका उदाहरण— वस्तु अनेकान्तात्मक है क्योकि एकत्व स्वरूपकी अनुपलब्धि होनेसे । यहा साध्य सिद्ध किया जा रहा— अनेकान्त । उससे विरुद्ध होता है एकान्त । जैसे नित्यका एकान्त मानना अथवा क्षणिकका एकान्त मानना । वह एकान्त स्वभाव वस्तुमें पाया नही जा रहा । प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोसे सिद्ध है कि कोई वस्तु न सर्वथा नित्य है न सर्वथा क्षणिक है । सर्वथा नित्य एकान्त और सर्वथा क्षणिक एकान्त प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोसे सिद्ध नही होता, सब वस्तुका अनेकान्तपना सिद्ध करना वाजिब है । इस तरह साध्य अनेकान्तात्मकके विरुद्ध नित्यत्व एकान्त अथवा क्षणिकत्व एकान्तकी अनुपलब्धि होनेसे जो अनुमान बनाया गया है उस अनुमानमे एकान्तकी अनुपलब्धि यह हेतु विरुद्ध स्वभावानुपलब्धि कहलाता है ।

परम्परया संभवित साधनोंका सद्भाव होनेसे साधनसंख्या नियमघातकी आशकाका प्रश्न— अब शकाकार कहता है कि यहाँ साक्षात् साध्यकी विधि करनेमे और साक्षात् साध्यका निषेध करनेमे साधन जो गिनतीके बताये हैं वे तो रहे आये ठीक है किन्तु अनेक प्रसग ऐसे होते हैं, जो

परम्परासे विधिको सिद्ध करते हैं। अथवा निषेधको सिद्ध करते हैं। वे हेतु तो पहिले कहे गये हेतुके प्रकारोसे जुदे रहेंगे। तब फिर हेतुवोकी संख्या इतनी ही है यह यह नियम तो नही बन सकता। अनेक प्रकारके हेतु हैं जिन हेतुवोको पहिले दो प्रकारको बताया — उपलब्धि और अनुपलब्धि। उपलब्धिको फिर दो तरहका बताया अविरुद्धोपलब्धि और विरुद्धोपलब्धि। अनुपलब्धिको भी दो तरह बताया—अविरुद्धानुपलब्धि और विरुद्धानुपलब्धि। और उन सबको विधियोंसे भी सिद्ध करते, और प्रतिषेधोंसे भी। उन सबके प्रकार बताये। तो जितनी संख्या बताई गयी है उनके अतिरिक्त भी तो हेतु होता है जो परम्परासे विधिको सिद्ध करता है अथवा परम्परासे निषेधको सिद्ध करता है। इस प्रकारकी शंका होनेपर सूत्र कहते हैं।

परम्परया संभवत्साधनमत्रवान्तर्भावनीयम् ॥ ३-९० ॥

परम्परया सम्भवितसाधनोंका उक्तसाधनोमें अन्तर्भाव—परम्परासे सम्भव होने वाले हेतु जैसे कार्यकार्य आदिक कारणकारण आदिक इन सब साधनों को इन्ही हेतुवोमें अन्तर्भूत कर लेना चाहिये और तब जो हेतुवोकी संख्या बतायी गई है उसका विघात नही होता। तात्पर्य यह है कि यदि कोई साध्य हेतुके कार्यका कार्य है तो वह कारण हेतुमे सामिल हो जायगा। तथा कोई साध्य हेतुके कारणका कारण है तो वह कार्य हेतुमे सामिल हो जायगा। मतलब परम्परासे लम्बा देखा हुआ साध्य इन्हीं हेतुवोमें सामिल किया जायगा। विधि साध्य होनेपर कार्य नामका हेतु अविरुद्धकार्योपलब्धिमें अन्तर्भूत हो जाता है जैसे

अभूदत्र चक्रे शिवकः स्थासात् ॥ ३-९१ ॥

कार्यकार्यमविरुद्धकार्योपलब्धौ ॥ ३-९२ ॥

कार्यकार्य हेतुका अविरुद्धकार्योपलब्धिमे अन्तर्भाव—इस चक्रपर शिवक पर्याय उत्पन्न हो चुकी क्योंकि स्थास पर्याय होनेसे। कुम्हारके चक्रपर जो घड़ा बनता है उस घड़ेमें पहिले तो मृतपिण्डके बाद शिवक पर्याय बनती है। एक पिण्डी जैसी ऊँची उठा लेना यह पर्याय बनती है, इसके बाद फिर उसका कटोरा जैसा बना ऐसी छत्रक पर्याय बनती है उसके बाद उसे गहरा बनाया सो स्थास पर्याय बनती है। अब यहाँ यह देखेंगे कि शिवकका कार्य तो हुआ छत्रक। छत्रकका कार्य हुआ स्थास तो कार्यकार्य बताकर परम्पराका पूर्व पर्यायको होना बताना यह अविरुद्धकार्योपलब्धि नामक हेतुमे अन्तर्भूत है। अथवा दूसरा दृष्टान्त लीजिये। जैसे रोटी बननेमें पहिले लोई बनाई जाती है फिर बेली जाती है, पीछे तवेपर डाली जाती है। पहिली पर्त सेकी जाती है, उसके बाद फिर दूसरी पर्त सेकी जाती है, बादमे फिर रोटी फुलाई जाती है। तो कोई वहाँ यह अनुमान बनाये कि तवेपर रोटीकी पहिली पर्त सिक चुकी क्योंकि रोटी फूल जानेसे। तो पहिली पर्त सिकनेका कार्य तो है दूसरी पर्त

सिकना और उसका कार्य है रोटीका फूलना तो परम्परा बता दी। कार्यका कार्य बता दिया हेतुमे, तो ऐसा हेतु यद्यपि कार्यकार्य नामक हेतु कहलाया लेकिन अविरुद्धकार्योपलब्धिमे ही इसका अन्तर्भाव हो जाता है। यो परम्परासे होने वाले साधनोका इन्ही हेतुवो मे अन्तर्भाव करना चाहिये। इसको और स्पष्ट करनेके लिये एक निषेधरूप साध्यका उदाहरण दिया जा रहा है।

नास्त्यत्र गुहाया मृगक्रीडनं मृगारिसंशब्दनात् कारणविरुद्धकार्यं विरुद्धकार्योपलब्धौयथेति। ३-९३।

कारणविरुद्धकार्यका कारणविरुद्धकार्योपलब्धिमे अन्तर्भाव—इस गुफामे हिरण का खेलना नही हो रहा, कारण कि सिंहका शब्द होनेसे यह अनुमान सही है कि जहां सिंहका शब्द हो रहा हो (सिंह हिरणका दुश्मन होता है) वहा हिरणोंका खेलना कहा पाया जा सकेगा? इस अनुमानमे निषेध साध्य है मृगक्रीडन और मृगक्रीडनका विरोधी है सिंह और सिंहका कार्य है शब्द करना, तो कारणसे विरुद्ध कार्यकी उपलब्धि होनेसे जो यहा प्रतिषेध साध्य बना है, इस अनुमानमे जो हेतु है वह विरुद्ध कार्योपलब्धिमे सामिल हो जायगा, क्योंकि मृगक्रीडनका कारण है मृग और मृगका विरोधी है सिंह। उसका कार्य है सिंहका नाद। उसकी उपलब्धि होनेसे मृगक्रीडन नही हो रहा। इस साध्यमे जो हेतु दिया है वह विरुद्ध कार्य हेतुमे अन्तर्भूत होता है। अब शकाकार कह रहा है कि यदि अव्युत्पन्न पुरुषोकी उत्पत्तिके लिए दृष्टान्त आदिक देना युक्त है दृष्टान्त आदिक सहित हेतुका प्रयोग करना युक्त है तो व्युत्पन्न पुरुषोके लिये किस प्रकारसे हेतुका प्रयोग करना युक्त है? अथवा व्युत्पन्न पुरुषोको हेतुका प्रयोग किस तरह करना चाहिये, उसके उत्तरमे सूत्र कहते हैं।

व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्यान्यथानुपपत्त्यैव वा ॥ ३-९४ ॥

हेतुके सम्बन्धमे व्युत्पन्न प्रयोगका फल—व्युत्पन्न विद्वान पुरुषोके लिए, प्रयोग तथोपपत्ति अथवा अन्यथानुपपत्तिसे ही किया जाता है। साध्यके होनेपर ही साधनके उपपन्न होनेका नाम है तथोपपत्ति और साध्यके न होनेपर साधनके न होने का नाम है अन्यथानुपपत्ति। ये दो बातें जहा प्रयोगमें आ जावें अथवा इन रूपोमे हेतु का ढाचा बने तो उससे साध्यकी सिद्धि कर ली जाती है। तो जो व्युत्पन्न पुरुष हैं, विद्वान् हैं उनका प्रयोग तथोपपत्ति अथवा अन्यथानुपपत्तिसे ही होता है। अब इसी चीजको उदाहरणके द्वारा दिखाते हैं।

अग्निमानयं देशस्तथा धूमवत्त्वोपपत्तेर्धूमवत्त्वान्यथानुपपत्तेर्वा। ३-९५।

तथोपपत्ति व अन्यथानुपपत्तिके प्रयोगका उदाहरण—यह जगह अग्नि वाली है क्योंकि अग्नि वाली होनेपर धूमवत्त्वकी उत्पत्ति होती है। यह तो हुआ तथो-

पपत्तिके रूपमे हेतुका प्रयोग। अब दूसरी बात सुनो —यह जगह अग्नि वाली है क्योंकि अन्यथा अर्थात् अग्नि वाली न होती तो धुवा वाली होनेकी अनुपपत्ति है। तो अग्निके होनेपर ही धुवाँकी उत्पत्ति कहना तथोपपत्ति है और अग्निके न होनेपर धूम की अनुपपत्ति बताना और उससे अग्निकी सिद्धि करना यह अन्यथानुपपत्ति है। इस प्रकार व्युत्पन्न पुरुषोंको जो प्रयोग किया जाता है वह तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्ति से ही किया जाता है। यहा एक जिज्ञासा होती है कि तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्ति इन दो विधियोंके द्वारा व्युत्पन्न पुरुषोंको किस तरह प्रयोग करनेका नियम कहा गया है ? इसका समाधान देनेके लिये सूत्र कहते हैं।

हेतुप्रयोगो हि यथा व्याप्तिग्रहणं विधियते सा च तावन्मात्रेण व्युत्पन्नैरवधार्यते। ३-९६।

तथोपपत्ति व अन्यथानुपपत्तिके रूपमे हेतुप्रयोगका नियम जिस प्रकार व्याप्तिका ग्रहण हो जाया करता है उस ही प्रकारसे तो हेतुका प्रयोग किया जाता है, क्योंकि हेतुका प्रयोग व्याप्तिके ग्रहणका उल्लंघन किये बिना हुआ करता है और वह व्याप्ति इतना ही कहनेसे अर्थात् तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्तिके प्रयोगमात्रसे ही विद्वान पुरुषोंके द्वारा निश्चित करली जाती है इस कारण फिर दृष्टान्त आदिकका प्रयोग करके व्याप्तिका निश्चय कराना इसमें फिर कोई प्रयोजन नही रहता दृष्टान्त आदिकका प्रयोग इसलिए किया जाता है बालकोंको समझानेके लिए कि उन्हें व्याप्तिका अवधारण हो जाय। इससे खास महत्त्वकी चीज है व्याप्तिका अवधारण जिसके बिना साध्यकी सिद्धि ही नही हो सकती। सो हेतुका प्रयोग ही जब इस तरह बनता है कि जिस प्रकार उस व्याप्तिका ग्रहण होता है और उसका उपाय है तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्ति तो उससे ही व्याप्ति निश्चित हो गयी। और साध्यकी सिद्धि हो गयी, फिर उदाहरण आदिकका प्रयोग करना बिल्कुल निष्प्रयोजन है। यहा कोई ऐसी जिज्ञासा रखे कि दृष्टान्तादिकका प्रयोग साध्यकी सिद्धिके लिए फलवान हो जायगा। तो उत्तर देते हैं कि —

तावतैव च साध्यसिद्धिः। ३-९७।

साध्यसिद्धिके लिये दृष्टान्तादिप्रयोगकी अनावश्यकता—तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्तिके ढगसे जो हेतुका प्रयोग किया गया है उस हेतु प्रयोगसे ही साध्यकी सिद्धि हो जाती है। क्योंकि वह हेतुका प्रयोग जो तथोपपत्तिमें बांध दिया है अर्थात् साध्य होनेपर ही साधनका उत्पन्न होना और अन्यथानुपपत्तिमें बांध दिया है कि साध्यका अभाव होनेपर साधनका उपलम्भ न होना, तो इस विधिमें हेतुके विपक्षमें असम्भवता अपने आप जाहिर हो गयी। हेतु यदि विपक्षमें नही रहता तो वह हेतु सही माना जाता है। तो विपक्षमें असम्भवताका निश्चय रखने वाले हेतुके

प्रयोग मात्रसे ही साध्यकी सिद्धि हो जाती है तो साध्य सिद्धिके प्रयोगके वास्ते भी दृष्टान्त आदिकके कहनेकी आवश्यकता नही होती।

तेन पक्षस्तदाधारसूचनायोक्तः। ३-६८।

साध्याधारकी सूचनाके लिये पक्षका प्रयोग—इस प्रकरणमे हेतुके सम्बन्धमे और अनुमानके सब अंगोके सम्बन्धमे बहुत विस्तारसे वर्णन हुआ है। उन वर्णनोंको सुनकर निष्कर्ष रूपमे यह भी एक बात समझ लीजिये कि पक्ष जिसके आधारमे साध्य सिद्ध किया जा रहा है वह यद्यपि गम्यमान है, प्रत्यक्ष आदिकसे सिद्ध है तो भी विद्वान पुरुषोंके प्रयोगमे क्यो आता है साध्यके आधारकी सूचनाके लिये आता है हेतुसे पक्षसहित साध्यकी व्याप्ति तो न बनेगी। पर इसे हम कहाँ सिद्ध करना चाहते हैं यह तो बताना आवश्यक है। पक्षमे साध्यके कहनेका ही तो सारा वाद है, इसलिये गम्यमान होनेपर भी पक्षका कथन होता है। इस विषयमे पहिले भी बहुत वर्णन हो चुका है। इससे यह सिद्ध हुआ कि साधनसे साध्यके ज्ञान होनेको अनुमान कहते हैं। तथोपपत्ति, अन्यथानुपपत्तिकी विधिसे जो घटे उसे हेतु कहेगे। जो इष्ट हो, प्रतिवादीको असिद्ध हो और अबाधित हो उसे साध्य कहेंगे। इस प्रकार साधनसे साध्यके ज्ञान होनेको अनुमान प्रमाण सिद्ध किया। इसके साथ इतना वर्णन इस अध्यायमे हो चुका कि प्रत्यक्षकी भांति स्मृति भी प्रमाण है, प्रत्यभिज्ञान भी प्रमाण है, तर्क भी प्रमाण है और अनुमान भी प्रमाण है। अब परोक्ष प्रमाणोमेसे एक आगम प्रमाण अवशिष्ट रहा उसकी प्रमाणताका वर्णन आगेके सूत्रमे कहेंगे।

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

(षोडश भाग)
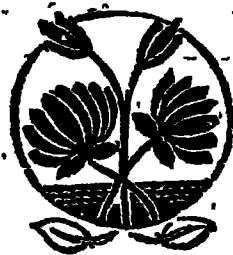
(प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी)

प्रमाणादर्थसंसिद्धिस्तदाभासाद्विपर्ययः ।
इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्म सिद्धमल्पं लघीयसः ॥

आप्तवचनादिनिवन्धनमर्थज्ञानमागमः ॥ ३-९९ ॥

आगमप्रमाणका स्वरूप—आप्तके वचन आदिक कारण है जिसमें ऐसा जो अर्थ ज्ञान है उसको आगम कहते हैं। इस सूत्रमे आगमप्रमाणका वर्णन है। आगम शब्दसे लोग शास्त्र समझते हैं और वह प्रायः ठीक है। शास्त्र भी प्रमाण है। पर शास्त्रसे मतलब क्या है। शास्त्रमें लिखी हुई स्याही या शब्दोंका आकार ये प्रमाण हैं क्या ? अरे प्रमाण तो ज्ञान होता है ऐसा सर्वप्रथम ही कहते आये हैं अज्ञान प्रमाण नही होता। तब निष्कर्ष क्या निकला कि उन शास्त्रोंके शब्दोंका अध्ययन करके अध्येता पुरुषको जो अपने मनमे ज्ञान जगता है, वस्तुस्वरूपके सम्बन्धमें प्रकाश होता उसे आगम कहते हैं। साथ ही यह भी समझना चाहिये कि किसी अन्य संकेतसे भी वस्तुस्वरूपके बारेमे ज्ञान जगता है तो वह भी आगम कहा जाता है। आप्तके द्वारा प्रणीत वचनको आगम वचन कहते हैं। आप्त नाम है सर्वज्ञदेवका। सर्वज्ञदेवकी दिव्यध्वनिकी परम्परासे जो वचन चले आये हैं उन्हे आप्त वचन कहते हैं, आप्त शब्दका सीधा अर्थ है पहुँचा हुआ, पाया जा चुका। जो महापुरुष पहुचा हुआ है अर्थात् पूर्ण अविकारी है निर्दोष है उसे आप्त कहते हैं। आप्तके द्वारा कहे गए वचनोको आप्त वचन कहते हैं। सो आप्तके वचनके कारणसे अर्थज्ञान हुआ और हाथ सज्ञा आदिकके कारण से भी अर्थ ज्ञान होता है।

सूत्रोक्त शब्दोकी सार्थकता—यह आगमं इस सूत्रमे तीन तो पद हैं आप्तवचनादिनिबन्धन, अर्थज्ञान, आगम। इनमेंसे यदि केवल अर्थज्ञान आगम इतना ही कहा जिसका अर्थ होता कि पदार्थके ज्ञानको आगम कहते हैं। तो इतना कहनेपर प्रत्यक्ष आदिकामे भी यह लक्षण चल जाता है क्योंकि प्रत्यक्ष ज्ञानसे भी तो पदार्थोंका

ज्ञान होता है। इस कारण कहना पड़ा कि आप्तके वचनादिक कारणसे हुए अर्थ ज्ञान को आगम कहते हैं। सूत्रमे केवल आप्त वचन ही शब्द दिया जाता आदिका प्रयोग नही किया जाता—केवलिवचन निबधन इतने ही शब्द कहे जाते तो वचन तो अटपट पुरुषोके भी निकलते हैं। सोई हुई दशामें, उन्मत्त दशामे, भी वचन निकलते है सो उनसे फिर जो ज्ञान हुआ वह ज्ञान भी आगमप्रमाण कहलाता। लेकिन उस दोषको दूर करनेके लिए आप्त शब्द दिया है। यदि केवल आप्त वाक्य निबधन ज्ञान इतना ही कहते, तो शब्द सुननेसे शब्दका ज्ञान हुआ। इसे कहते हैं शब्द सम्बन्ध। प्रत्यक्ष ज्ञान। तो इसको ही आगम प्रमाण मान लिया जाता। इसलिये "अर्थ" शब्द डाला गया है। इस तरह इन सभी शब्दोमे सार्थकता है। तब आगम प्रमाणका लक्षण सही यह बना कि सर्वज्ञ देवके वचन आदिक कारणोसे उत्पन्न हुआ जो अर्थ ज्ञान है उसे आगम कहते हैं। वहा आदि शब्द देनेसे हस्त सज्ञा सकेत आदिकका ग्रहण हो जाता है। आप्तकी वाणीको ऋषि सत आचार्य जन भी कहते हैं और शास्त्रोमे लिखते हैं। उन उपदेशोमे जो उनके सकेत आदिक हैं, हस्त आदिकके इशारे हैं उनसे भी अर्थ ज्ञानके समझनेमें मदद मिलती है। इससे अक्षर श्रुतज्ञान और अनक्षर श्रुतज्ञान दोनो का सग्रह हो जाता है।

अर्थज्ञानसे अन्यापोह व शब्द सदर्भकी प्रमाणताका परिहार—इस सूत्रमे अर्थ ज्ञान शब्द देनेसे एक यह भी परिज्ञान होता है कि अर्थ ज्ञान प्रमाण होता हैं। अन्यापोह ज्ञान प्रमाण नही होता। क्षणिकवादी लोग अन्यापोह मानते हैं, अर्थात् जैसे गाय कहा तो गाय शब्दके सुननेसे सीधा गायका ज्ञान नही होता, उनके सिद्धान्तसे किन्तु गाय सुनकर यह ज्ञात होता है कि घोडा बकरी आदिक दुनियाभरके ये सब कुछ नही हैं इसे कहते हैं अन्यापोह। जिसका नाम लिया है उसको छोड़कर बाकी अन्य कोई पदार्थ न होना इसको कहते हैं अन्यापोह। अन्यापोह ज्ञान आगम प्रमाण नही हो सकता। यह बात बतानेके लिये अर्थज्ञान शब्द दिया है। अन्यापोह क्यो प्रमाण नही है, इसका वर्णन विस्तार पूर्वक आगे करेंगे। यहाँ अत्यन्त सीधा समझ लेना कि सबके अनुभवमे यह बात है कि गाय शब्द कहते ही सीधा गायका बोध होता है। अन्यापोहके ढगसे कोई पुरुष ज्ञान नही करता, किन्तु उसके सम्बन्धमे जब ऊहापोह करते हैं तो अन्य व्यावृत्तिके भी विचार बनते हैं। इससे अन्यापोह ज्ञानका आगम प्रमाण न बने इसलिये अर्थ ज्ञान शब्द दिया है। अथवा केवल शब्दकी रचना से ही आगम प्रमाणपना न आये इसलिये अर्थज्ञान शब्द दिया है शब्द स्वय आगम प्रमाण नही है। जो शास्त्र रचे हुए हैं जिनमें बहुत समीचीन विवेचन भरा हुआ है वे शब्द भी साक्षात् आगमप्रमाण नही है। आगमप्रमाण तो उन शब्दोके निमित्तसे जो शुद्ध ज्ञान हुआ है, पदार्थोंके स्वरूप सम्बन्धी ज्ञान हुआ है वह है आगमप्रमाण। पर उस प्रमाण ज्ञानके कारणका कार्य होनेसे वचनोको भी प्रमाण कह दिया जाता है। इस आगम प्रमाणका मूल कारण है सर्वज्ञदेवका ज्ञान। उसका कार्य है शब्द। तो

उन शब्दोंमें भी उपचारसे प्रमाणपना कहा जाता है। साक्षात् तो वस्तु विषयक जो ज्ञान है जो कि सर्वज्ञ देवके वचन परम्पराके निमित्तसे उत्पन्न हुआ है वह प्रमाण है।

आप्तत्वके सम्बन्धमें शंका समाधान—अब यहां शंकाकार कहता है कि सर्वज्ञ कोई होता ही नही है। ऐसा कोई द्रष्टा नहीं है, जो अतीन्द्रिय अर्थको भी देख ले। जो पदार्थ इन्द्रियगोचर नहीं है, सूक्ष्म है, परमाणु आदिक हैं उनका भी कोई परिज्ञान करले ऐसा कोई पुरुष नही होता। तो जब अतीन्द्रिय पदार्थकी द्रष्टाका ही अभाव है तो कोई सर्वज्ञ हो ही नही सकता है तो यह कहना व्यर्थ है कि आप्तके वचनके कारणसे अर्थ ज्ञान होता है। किन्तु अपौरुषेय आगमके कारणसे आगमज्ञान होता है। अथवा अपौरुषेय आगम वेद ही स्वय प्रमाणभूत है। उत्तर देते हैं कि अतीन्द्रिय पदार्थका जाननहार भगवान हुआ यह बात प्रमाण सिद्ध है। आत्माका स्वभाव है ज्ञान, किन्तु इस समय हम आप जीवोके ज्ञानका परिपूर्ण विकास क्यो नही है। ज्ञानका कार्य जब जानना है और जाननेमे कोई प्रतिबंध नही, जो सत् हो उसे जाने। फिर यह ज्ञान समस्त पदार्थोंको जानता क्यो नही है इसलिए नही जानता कि इसपर दोषका आवरण छाया है। रागादिक दोष अज्ञानका आवरण होनेसे हम आपका ज्ञान समस्त पदार्थोंको नही जान पा रहा है। किन्तु यह तो यहाँ ही देखा जा रहा कि किसीमे दोष कम हैं, आवरण कम हैं और ज्ञानका विकास अधिक है। तो जब औपाधिक चीजें कम कम होती नजर आ रही हैं तो उससे सिद्ध है कि यह दोष अज्ञान, आवरण औपाधिक संसर्ग कहीं बिल्कुल भी समाप्त हो जाते हैं। जहाँ औपाधिक सम्पर्क पूर्णतया समाप्त हो जाता है उसे कहते हैं निर्दोष पुरुष। जब दोप समस्त दूर हो जाते हैं तो वहाँ ज्ञानका होता है परिपूर्ण विकास उसीको कहते हैं सर्वज्ञ। सर्वज्ञ है और जब तक वह सकल परमात्मा है अर्थात् शरीर सहित है तब तक उस की दिव्यध्वनिसे भव्य जीव प्रतिबोधको भी प्राप्त होते रहते हैं। उनको कोई विशिष्ट पुरुष गणधर गणोका ईश विशिष्ट होता है जो उस दिव्यध्वनिको भली प्रकार झेल लेता है और फिर उससे समस्त ज्ञान करके फिर वह गणधर देव अन्य आचार्योंको व्याख्यान किया करते हैं। इस परम्परासे जो अर्थ ज्ञान चला आ रहा है वह आगम प्रमाण कहलाता है। सो अतीन्द्रिय अर्थोंको देखने वाला भगवान है यह बात युक्तिसे सिद्ध है और इस सम्बन्धमें पहिले बहुत वर्णन किया भी जा चुका है इसलिए संदेह न करना कि अतीन्द्रिय ज्ञान पदार्थका देखने वाला कोई सर्वज्ञदेव नही है, सर्वज्ञ है।

आगमके अपौरुषेयत्वकी सिद्धि—दूसरी बात यह है कि आगमको अपौरुषेय सिद्ध नही किया जा सकता। किसी पुरुषके द्वारा रचे ही नही गए। यह शब्द वाणी, यह शास्त्र रचना यह अनादिसे स्वय सिद्ध चली आ रही है यह बात सिद्ध नही होती। यदि आगमको अपौरुषेय कहा जा रहा है तो यह तो बतलावो कि वह अपौरुषेयपना किसको कहा जा रहा। शास्त्रमे तो पद मिलता, वाक्य मिलता, वर्ण मिलता

तो क्या पदोको अपौरुपेय कहा जाता अथवा वाक्योको या वर्णोको अपौरुपेय माना जा रहा। पद और वाक्योको अपौरुषेय कहा जा रहा यह बात तो घटित नही होगी, क्योकि आगमके पद और वाक्य पौरुपेय ही होते हैं क्योकि पद और वाक्यरूप होने से। जैसे महाभारत आदिक अनेक पुराण हैं उनमे पद और वाक्य हैं, वे किसी पुरुष के द्वारा रचे गए हैं तो वेदमे भी जिसे आगम माना जा रहा है उसका भी पद और वाक्य पौरुषेय होता है।

आगमके अपौरुपेयत्वकी प्रत्यक्षसे असिद्धि—वेदमे अपौरुषेयपना कैसे बन जायगा ? वेदमें अपौरुषेयनाका साधक प्रमाण नही है यह बात ठीक है अन्यथा प्रमाण बतावो ? कौनसा प्रमाण है जो आगममें अपौरुषेयता सिद्ध करदे ? क्या प्रत्यक्ष प्रमाण अपौरुषेय सिद्ध कर देगा ? या अनुमान प्रमाण अपौरुषेय सिद्ध करेगा? या अर्थापत्ति आदिक अन्य कोई प्रमाण आगमको वेदको अपौरुषेय सिद्ध करेगा ? प्रत्यक्ष तो अपौरुपेयपना सिद्ध करनेमें समर्थ नही है क्योकि प्रत्यक्ष ज्ञानसे अपने शब्द का ज्ञान कर लिया इतने ही मात्रसे प्रत्यक्ष ज्ञान चरितार्थ अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञानका कार्य हो चुका शब्दस्वरूपमात्र ग्रहण करनेमे ही प्रत्यक्ष ज्ञानका व्यापार हुआ है। वह प्रत्यक्ष पौरुषेयत्व अथवा अपौरुषेयत्व विषयको ग्रहण नही करता और फिर अपौरुषेयताका तो अर्थ है अनादि सत्त्व स्वरूप। जो अनादि कालसे सत्त्व है उसको ही तो अपौरुषेय कहते हैं। वह इन्द्रियजन्य ज्ञानसे कैसे माना जायगा ? इन्द्रिया प्रतिनियत, रूप, रस, गध, स्पर्श और शब्दको विषय किया करती हैं। इन्द्रियोका अनादि कालसे सम्बन्धका अभाव है। अर्थात् अनादिकाल और इन्द्रिय इन दोनोका सम्बन्ध नही भिडता। तो जब अनादि कालके साथ इन्द्रियका सम्बन्ध ही नही है तो अनादि काल से यह आगम है इसके साथ प्रत्यक्षका सम्बन्ध ही कैसे बन सकेगा ? और यो जबरदस्ती सम्बन्ध बना डालेंगे प्रत्यक्षका अनादिकालके साथ तो उस ही तरह अनुष्ठान किया जाने योग्य है। इस रूपसे जो अनागत काल सम्बन्धी पुण्यादिकका स्वरूप बताया जाता है उससे भी प्रत्यक्षका सम्बन्ध बन जाना चाहिये और बन जाय सम्बन्ध तो फिर धर्मज्ञका प्रतिषेध कैसे किया जा सकेगा ? अर्थात् हमारा प्रत्यक्ष ज्ञान धर्मज्ञ भी हो गया। अपौरुषेयवादी पुरुष किसी महापुरुषको बहुत बड़ा ऊँचा ज्ञान वाला मान भी लेता है, जिसे वह सर्वज्ञ शब्दसे भी कह सकता तो उसके सर्वज्ञपनेका अर्थ इतना है कि साधारणजनोमे बहुत कुछ अधिक जाना है और उन ज्ञानोको बटोर बटोरकर सचय कर करके यह सर्वज्ञता मिली है फिर भी वह धर्मज्ञ नही बनता। धर्मज्ञताका सम्बन्ध तो वेदसे है आगमसे है। अब यहा प्रत्यक्षको अपौरुपेयत्वसे सम्बन्धित जब बनाया है तो इसका अर्थ है कि प्रत्यक्षका अनादिकालके साथ सम्बन्ध हुआ है। तो जब प्रत्यक्षका भी अनादिकालसे अतीन्द्रिय अर्थसे सम्बन्ध होने लगे तो धर्मादिक स्वरूपके साथ भी उसका सम्बन्ध बन बैठेगा। फिर धर्मज्ञका निषेध करना कि कोई चाहे ज्ञानको सचित करके सर्वज्ञ भी बन जाय, पर धर्मज्ञ नही बन सकता।

यह कहना कैसे ठीक बैठेगा ? इससे सिद्ध हुआ कि प्रत्यक्षज्ञान वेदके अपौरुषेयत्वको सिद्ध करनेमे समर्थ नही है। प्रत्यक्षज्ञान तो शब्दका ग्रहण करले इतने ही मात्रमे चरितार्थ हो जाता है।

वेदके अपौरुषेयत्वके साधक अनुमानका अभाव—वेदकी अपौरुषेयताका साधक अनुमान भी नही हो सकता, क्योकि उस अनुमानको तुम क्या हेतु देकर बनाओगे ? क्या यह हेतु दोगे कि कर्ताके स्मरणका अभाव है इस कारण वेद अपौरुषेय है अथवा ऐसा अनुमान बनाओगे कि चू कि वेदका अध्ययन परम्परासे चला आ रहा है वह वेदाध्ययन शब्दसे वाच्य है इस कारण वेद अपौरुषेय है। क्या यह अनुमान बनाओगे कि वेद किसी भी कालमें बनाया नही गया, क्योकि काल होनेसे। जैसे वर्तमान काल। इन तीन विकल्पोमेसे यदि तुम पहिला विकल्प कहोगे कि कर्ताका अस्मरण है इस कारणसे वेद अपौरुषेय है तो कर्ताका अस्मरण है इसका अर्थ क्या है ? क्या कर्ताके स्मरणका अभाव है अथवा उसका कर्ता स्मरणमे आ ही नही रहा है इन दोनोमेसे क्या अर्थ है कर्ताके अस्मरणका ? यदि कहो कि कर्ताके स्मरणका अभाव है इस कारण वेद अपौरुषेय है तो ऐसा कहनेमें व्यधिकरणासिद्ध हेतु हो गया। व्यधिकरण हेतु उसे कहते हैं कि हेतु तो पाया जाय किसीमें और साध्य सिद्ध किया जाय और कही तो ऐसी ही बात यहा बन गयी कि कर्ताके स्मरणका अभाव तो है आत्मामे और अपौरुषेयत्व सिद्ध किए जा रहे वेदमे तो यह व्यधिकरण है। भिन्न भिन्न इसमें अधिकरण वाले साध्य साधन हैं। तो कर्ताका स्मरण न होनेसे कर्ताके स्मरणका अभाव होनेसे वेद अपौरुषेय है यह सिद्ध नही होता। यदि कहो कि कर्ताके अस्मरणका अर्थ यह है कि उसके कर्तापनका स्मरण ही नही किया जा सक रहा है तो उत्तर मे कहते हैं कि इसमे कोई दृष्टान्त न मिलेगा क्योंकि जितनी भी नित्य वस्तुयें हैं वे न स्मर्यमाणकर्तृक हैं और न अस्मर्यमाणकर्तृक है अर्थात् जिसका कर्ता स्मरण भी नही आ रहा। न तो ऐसे पदार्थ होते हैं और उनका कर्ता स्मरणमें आ रहा। न ऐसे नित्य पदार्थ होते हैं किन्तु जो नित्य होते हैं वे अकर्तृक होते हैं अर्थात् कर्तारहित होते है, और फिर अस्मर्यमाणकर्तृक ऐसा विशेषण देना व्यर्थ है। क्यो व्यर्थ है ? कि देखो - कर्ताके होनेपर ही स्मरण होता है और अस्मरण होता है कर्ता जहाँ होता ही नहीं उसका न स्मरण होता और न उसकी भूल होती। जैसे गधेके सीग। गधेके सींग कुछ है ही नही तो न तो उसका कोई ख्याल करना है और न कोई उसे भूलना है। जैसे कोई चीज रखी हो और भूल गयी तो भूलना भी तो सत्का होता है और ख्याल करना भी सत्का होता है। जब अकर्तृक है कोई चीज तो उसके कर्ताका स्मरण भी क्या और भूल भी क्या ? इस कारण अस्मर्यमाणकर्तृक ऐसा विशेषण कहना व्यर्थ है। यदि कहो कि हम तो इस अनुमानमें अकर्तृक ही कह रहे हैं तो स्मर्यमाण ग्रहण करना ही व्यर्थ है। तथा अकर्तृक कहनेका यहा व्यभिचार होता है पुराने टूटा कुवां दूकान आदिकके साथ, क्योकि कुवां मकान आदिकका कर्ताका स्म-

रण नहीं चल रहा कि किसने बनाया। जो बहुत पुराने कुवा आदि है, वे अपौरुषेय नहीं है। और कर्ताका स्मरण भी नहीं है।

सम्प्रदायके अविच्छेदसे प्रमाणपनेका विचार—यदि कहो कि हम इस हेतुको पूरा यों कहेंगे, सम्प्रदायका विच्छेद न होनेपर स्मर्यमाणकर्तृक होना, तो वेद अपौरुषेय है क्योंकि सम्प्रदायका अविच्छेद होनेपर इसका कर्ता स्मरणमें नहीं आ रहा। यदि ऐसा हेतु कहोगे तो उसमे भी अनेकान्त दोष होगा क्योंकि ऐसे बहुतसे पद वाक्य हैं जिनकी परम्परा नष्ट नहीं हुई जिनका सम्प्रदाय समाप्त न हुआ, पर प्रयोजन न होनेसे उनके कर्ताका स्मरण किया जा रहा। जैसे वटके प्रत्येक पेडपर वैश्रवण रहता है अथवा चबूतरे चबूतरेपर ईश्वर रहता है, पर्वत पर्वतपर राम रहता है आदिक अनेक बातें जो पद वाक्य चले आ रहे हैं वे बराबर सम्प्रदायका अविच्छेद रखते हुए चले आ रहे हैं किन्तु उनके कर्ताका स्मरण कहां किया जा रहा? किसीने कर्ताकी खोजका यत्न भी नहीं किया, क्योंकि कुछ प्रयोजन ही नहीं है। और, यह पदवाक्य अपौरुषेय है क्या? शङ्काकारने स्वयं भी ऐसे वाक्योंको अपौरुषेय नहीं माना है फिर तुम्हारा यह हेतु कि इसका कर्ता स्मरणमे नहीं आ रहा इस कारण वेद अपौरुषेय है, यह हेतु असिद्ध है क्योंकि पौराणिक ऋषिसन्त वेदको ब्रह्मकर्तृक मानते हैं। पौराणिकोंका कथन है कि ब्रह्माके मुखमे वेद निकले हैं तब कर्ता बन गया कि नहीं? अथवा कहते हैं कि प्रत्येक मनुके समयमे अन्य अन्य श्रुतियां नये नये वेद बनाये जाते है, तो इनसे कर्ताका स्मरण हो गया ना। अथवा सीधे भी शब्द लिखे हुए हैं जिससे प्रकट होता कि कोई वेदोंका कर्ता है। ऐसे बहुतसे वाक्य हैं जिनसे वेदोंके कर्ताका स्मरण होता है।

प्रामाण्यका कारण प्रामाणिकमूलता—यहाँ सोचा यह था शङ्काकारने कि अपौरुषेय माननेसे पूरी प्रमाणता आ जायगी लेकिन यह ख्याल न रखा कि अपौरुषेय होनेसे अकर्तृक होनेसे प्रमाणता आती है। यह तो नियम नहीं बनता, किन्तु सर्वज्ञ मूलमे कर्ता हो जिसका, उस वचनमे प्रमाणता आती है यह परिपूर्ण नियम है। जिसका जिस ओर ढलाव हो जाता है वह उसको महत्त्व देता है। यहाँ अपौरुषेयवादी ने अतीन्द्रियार्थका ज्ञाता सर्वज्ञ आत्मा नहीं माना किन्तु वेदका, शास्त्रको अपौरुषेय कह कर सबका आधार माननेका यत्न किया। अरे किसी भी साधनसे चलकर कोई आत्मा यदि पूर्ण पवित्र विकसित न बन सके तो वह साधना ही क्या है? फिर धर्मसाधना ही क्या रही? धर्मसाधना किसलिए करनी चाहिये? आत्मा पूर्ण आनन्दमय बने, पूर्ण विकसित बने, उसका सर्व अभ्युदय हो, इसके लिए ही तो धर्मसाधन है। ऐसा यदि हो सकता है कोई तो इसका अर्थ यह है कि वह सर्वज्ञ बन गया। अब उस सर्वज्ञ की ध्वनिसे, उस सर्वज्ञके वचनसे जो बात चलेगी वह परम्परा प्रमाण है। तो शास्त्रका कर्ता मूलमे सर्वज्ञ हो तो वह प्रमाणभूत होता है, इस ओर तो दृष्टि नहीं गई

और आगममें ही बहुत दृढ़ प्रमाणभूत माननेकी बात मनमें आयी, तब अपौरुषेयकी कल्पना की गई।

अङ्कित नामोंसे वेदके पौरुषेयत्वकी सिद्धि— इसलिये वेदोंमें जगह जगह ऋषियोंके भी नाम आ गये हैं, तो अपौरुषेय अनादि हो उसमें ये नाम कैसे आ सकते हैं। नाम आनेका अर्थ यह है कि जिनका नाम आया उनके समय वेद रचना हुई। उससे पहिले नहीं हुई। किसी ग्रन्थमें ऋषि जनोंका नाम आनेका और अर्थ ही क्या है जैसे स्मृतियोंमें पुराणोंमें ऋषियोंके नाम अंकित हैं इसी प्रकार कण्व माण्डुऋषि, तैत्तिरीय मण्डूक आदिक नाम वाले कुछ आने, परम्परासे आने जो नाम बताये हैं उससे यह सिद्ध हो रहा ना कि उनके कर्ताका स्मरण भी आ रहा। इस गोत्र वाले, इस गुरु परम्परा वाले इस वेदके रचयिता हैं। इस उपनिषदके रचने वाले हैं। ऐसे कर्ताका स्मरण तो हो रहा। जिन ऋषियोंके नाम वेदमें आये हैं तो वे क्यों आये? क्या उन्होंने उसको बनाया इस कारणसे नाम आया है या उन ऋषियोंने उसको देखा है इस कारण नाम आया है, या उन ऋषियोंने उसका प्रचार किया, प्रकाश किया इस कारणसे नाम आया है? आखिर तीन विकल्पोंमेंसे कुछ तो होगा नाम आनेका कारण। यदि कहो कि उन ऋषियोंने बनाये हैं वे ग्रन्थ इस कारण उनका नाम आया है तो इससे साफ विदित हो गया कि वे अपौरुषेय नहीं हैं और उनका कर्ता बराबर स्मरणमें आ रहा है। यदि कहो कि उन ऋषियोंने वेदोंको किया तो नहीं किन्तु उनके द्वारा प्रकाशित किये गए इस कारण नाम वेदोंमें आया है। तो भला बतलावो कि जब नष्ट हुई शाखा अर्थात् उन वेदोंका कोई अध्याय नष्ट हो गया उसे कण्व आदिक ऋषियोंने देखा अथवा प्रकाशित किया तो सम्प्रदायका अविच्छेद कैसे रहा? जब कोई चीज नष्ट हो गई अब उसे दूसरे ऋषियोंने प्रकट की तो विच्छेद तो हो चुका और जिन ऋषियोंने उस प्रमाणभूत वेदको बनाया तो वे ऋषि अतीन्द्रिय पदार्थके दर्शी तो कहलाये। उसका भी निषेध कैसे करोगे? वो अतीन्द्रिय अर्थका दृष्टा हो सकता है वही तो ऐसे वेद आगमका प्रकाश करने वाला बन सकता है। तो यदि उन कण्व आदिक ऋषियोंके द्वारा वेद देखे गए अथवा प्रकाशित हुए हैं तो इसमें दो बातें सिद्ध होती हैं—एक तो सम्प्रदायका विच्छेद हो गया, परम्परा न रही, उनके समयसे नई बात चली। दूसरे अतीन्द्रिय अर्थके देखने वालेका निषेध न हो सका। यदि कहो कि परम्परा तो बराबर बड़ी बनी रही, अनविच्छिन्न धारासे वेद तो बराबर बन चले आये, उसे फिर किसी सम्प्रदायने देखा और प्रकाशित किया। किसी गुरु परम्पराने ऋषि सबने परम्परासे चले आये हुए वेदको ही देखा और उसे प्रकट किया। तब तो जितने उपाध्यायोंने, जितने विद्वानोंने वह शाखा देखी अथवा प्रकाशित की उन सबके नाम उसमें अंकित होना चाहिये थे वे क्यों नहीं हुये? नहीं हुए वे तो इसका अर्थ यह हुआ कि जो कुछ बला वाले बलवान ऋषि सत थे उन्होंने अपना नाम जोड़ दिया और शेष नामोंकी उपेक्षा करदी। तो कर्ता स्मरणमें नहीं आ

रहा ऐसा कह करके वेदको अपौरुषेय सिद्ध नही किया जा सकता।

कर्तृस्मरणकी छिन्नमूलताका विचार--यह भी कहना उचित नही है कि वेदमे कर्ताका स्मरण छिन्नमूल है अर्थात् कर्ताके स्मरणका अब कारण नष्ट हो गया, कोई उसका स्रोत ही नही है। कारण था उसका अनुभव और अनुगव जो है वह कर्ताके स्मरणमे अथवा कर्ताके विषयमे नही चल रहा। यह बात यो अयुक्त है कि यह बतलावो कि कर्ताका स्मरण छिन्नमूल कैसे बन गया? छिन्नमूलका अर्थ यह भी है कि जिसकी मूल कट गयी, जड खतम हो गई उसका कोई कारण ही न रहा। तो वेदमे कर्ताका स्मरण छिन्नमूल क्या इस कारण हो गया कि प्रत्यक्षसे कर्ताका अनुभव नही हो पा रहा या इस कारण छिन्न मूल हो गया कि अन्य प्रमाणोसे उसका अनुभव नही चल रहा? यदि कहो कि प्रत्यक्षसे कर्ताका अनुभव नही हो रहा इस कारणसे कर्ताका स्मरण छिन्नमूल है तो यह बतावो कि आपके प्रत्यक्षसे अनुभव नही हो रहा या सबके प्रत्यक्षसे अनुभव नही हो रहा? वेद आगमके कर्तावोका क्या तुम्हारे प्रत्यक्षमें ही अनुभव नही हो रहा यह इष्ट है या सबके प्रत्यक्षका अनुभव नही हो रहा? यदि कहो कि आपके प्रत्यक्षसे अनुभव नही हो रहा तो दूसरे दार्शनिकोके आगमोमे भी कर्ताका ग्रहण करनेरूपसे आपके प्रत्यक्षकी प्रवृत्ति नही होरही। तो उन लोगोके ग्रथोके कर्ताका भी स्मरण छिन्नमूल हो गया इस कारण दूसरेके ग्रथोके कर्ताका भी स्मरण नही हो रहा तो वह भी अपौरुषेय हो जायगा। यो कर्ताका स्मरण न हो पानेसे और आपके प्रत्यक्षमे अनुभव न हो पानेसे यदि अपौरुषेय बनता है तो सबके ग्रन्थ अपौरुषेय बन जायेंगे। यदि कहो कि दूसरोके आगममे हमारा प्रत्यक्ष कर्ताको नही समझ पा रहा लेकिन वे स्वय अपने अपने ग्रथोके कर्ता बता रहे हैं इस कारण उनका कर्ता स्मरणमें नही आ रहा ऐसी बात तो न रही। और इसी कारण दूसरोके ग्रन्थ अपौरुषेय हो जायें सो बात भी नही रही। अपौरुषेयवादी कह रहा है कि दूसरोंके जो ग्रन्थ हैं उन ग्रन्थोके कर्ताका हमे पता नही, हमारा प्रत्यक्ष उनके कर्ता को जानता नहीं लेकिन वे तो स्वयं कर्ता बता रहे हैं इसलिए हमारा हेतु अनेकान्तिक नही बन रहा। इसका उत्तर देते हैं कि दूसरे लोग अपने ग्रन्थका कर्ता मान रहे है तो दूसरोका मानना तुम प्रमाण मानते हो कि नही। यदि दूसरोका मानना तुम प्रमाण मानते हो तो दूसरे लोग वेदके बारेमे कर्ता मान रहे हैं यह भी उनकी बात मान लीजिये। तब यह कहना कि कर्ता स्मरणमें नही आ रहा इस कारण वेद अपौरुपेय हैं, यह बात तो सिद्ध न बनी।

अतीन्द्रियार्थ द्रष्टाके मूलसे प्रणीत वचनोंमे प्रमाणताका सीधा मतव्य--अपौरुषेयका यदि इतना ही अर्थ करते कि साधारण पुरुषोने उसे नही बनाया, तो यह बात मानी जा सकती थी और फिर दूसरा विषय छिड जाता। फिर उसमे जो सिद्धान्त माना गया है वह युक्तिसिद्ध अनुभवसिद्ध प्रतीतिसिद्ध है अथवा नही? फिर तो,

अन्य विषय छिड़ जाता। लेकिन वेदकी प्रमाणता मजबूत बनानेके लिए यह कहा कि किसीके द्वारा ये रचे ही नही गए, ये अनादिकालसे ही यों चले आ रहे। इसमें यह आपत्ति आ रही। प्रथम तो यह है कि जो बात अन दिसे चली आती रही वह सच्ची हो, प्रमाणभूत हो यह नियम नही बनता, क्योंकि मोह मिथ्यात्व खोटे उपदेश ये भी अनादिसे चले आ रहे हैं तो क्या ये सब भी प्रमाणभूत हो जायेंगे ? दूसरी बात यह है कि निर्मल सर्वज्ञ अतीन्द्रियार्थका देखने वाला आत्मा स्वीकार करले और फिर उस के सन्निधानसे ये सब आगम प्रकट हुए हैं ऐसा मान लेते तो इसमें प्रमाणताकी क्या बात थी ? फिर तो यही निहारना था कि ये वचन वास्तवमें सर्वज्ञ वीतराग भगवान की परम्परासे आए हुए हैं या अन्य किन्हीं साधारणजनोंके द्वारा रचे गए हैं ? खैर प्रकरण यह चल रहा है कि आगमका स्वरूप बताया गया था कि जो आप्तदेवके वचन आदिकके कारणसे अर्थज्ञान उत्पन्न हुआ है उसको आगम कहते हैं। उस लक्षणमें जिन्हें आप्त सर्वज्ञ परमात्मा, यह शब्द खटका उनकी ओरसे यह शङ्का चली कि आप्त अथवा सर्वज्ञ कोई नही है। आगम तो अपौरुषेय है। किसी भगवानके द्वारा प्रणीत नही है। उसे सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर होते हुए बात यहां तक आई कि यह नहीं कहा जा सकता कि कर्ताका स्मरण नही हो रहा, इस कारण वेद अपौरुषेय है।

कर्तामात्रके विवादसे भी कर्ताके अस्मरणकी प्रमाणताका अनिर्णय — अब शंकाकार कहता है कि, भाई कर्ता विशेषमे विवाद हो उठा है। तो विवादग्रस्त कर्ता बतानेमे विवाद होनेसे कर्ताका स्मरण करना अप्रमाण है। जैसे कि लोग कहते है कि वेदका कर्ता हिरण्यगर्भ है। कोई कहता है कि वेदका कर्ता अमुक आदिक ऋषि हैं। तो कर्ता विशेषमें विवाद होनेसे कर्ताका स्मरण ही अप्रमाण है। तो, उत्तरमे कहते हैं कि भाई-कर्ता विशेषमें यदि विवाद हो उठा है तो कर्ताविशेषका स्मरण ही, तो अप्रमाण होगा, कर्ता सामान्यका स्मरण तो अप्रमाण न होगा। यदि कर्ता विशेष मे विवाद हो उठनेसे कर्ता मात्रका स्मरण अप्रमाण बन जाय तो कादम्बरी आदिक ग्रन्थोंके भी कर्ता-विशेषमे विवाद है अब भी कि ये ग्रंथ किसने बनायें हैं ? तो कर्ता-मात्रके स्मरणसे तुम स्मर्यमाणकर्तृक नही मानते तो कर्ताका स्मरण फिर इन ग्रंथोंके भी नही हो रहा। तो यह काव्यग्रन्थ भी अपौरुषेय बन बैठेगा। यदि कहो कि वेदमे तो कर्तामात्रमे भी विवाद है जैसे कि कर्ता विशेषमे विवाद कर-रहे सो अब कर्तामात्र मे भी विवाद है तब तो वेदके सम्बन्धमें कर्ताका स्मरण करना भी अप्रमाण हो गया, परन्तु कादम्बरी आदि काव्यग्रंथोंके तो कर्ताविशेषमे ही विवाद है कर्तामात्रमे नही सो वहा कर्ताका स्मरण प्रमाण है अतः अस्मर्यमाणकर्तृकत्व हेतुमे अनैकान्तिक दोष नही आता। समाधानमे कहते हैं मीमांसक नही करते इस तरह कर्तामात्रमें यदि विवाद होनेसे कर्ताका स्मरण अप्रमाण है तो उसी तरह कर्ताका अस्मरण भी क्यो नही अप्रमाण हो जायगा जब कर्तामात्रमें विवाद है तो विवादका लाभ दोनो जगह उठाया जा सकता है तो जैसे तुम कहते हो कि विवाद होनेसे कर्ताका स्मरण-अप्रमाण

है तो वहा यह भी कहा जा सकता है कि विवाद होनेसे कर्ताका अस्मरण अप्रमाण है। यो कर्ताका अस्मरण अप्रमाण होनेसे "अस्मर्यमाणकर्तृकत्वात्" यह हेतु असिद्ध हो जायगा, पूर्ण असिद्ध नही भी मानोगे तो सदिग्धासिद्ध तो हो ही गया है। इस कारण कर्ताका अस्मरणरूप हेतुसे वेदकी अपौरुषेयताका साधक अनुमान नही बन सकता। अच्छा यही बताओ कि विशिष्ट उत्कृष्ट सम्पुष्ट ज्ञान यदि वेदका मूल नही है तो क्या मूल निमित्त है? अज्ञान निमित्तक हुए शब्द सदर्भकी प्रमाणता कैसे बनेगी। यदि कहो कुछ भी निमित्त नही है तो वेदका उपादान ही बतला दो कागज आदि जड पदार्थ उपादान हैं या कोई ज्ञानमय पदार्थ सर्व ओरसे विचार करनेपर यह सिद्ध होगा कि प्रभुवचनादिनिमित्तक अर्थज्ञान आगम है और वह प्रमाणभूत है।

अनुपलम्भपूर्वक अस्मर्यमाणकर्तृकत्व हेतुकी भी असिद्धि—शकाकार कहता है कि यदि अनुपलम्भपूर्वक अस्मर्यमाणकर्तृकपनेको हेतु रूपसे कहा जाय तो पहिले जो असिद्ध अनैकान्तिक दोष दिया था उनका यहाँ अवकाश न रहेगा अर्थात् यदि यह अनुमान बन या जाय कि वेद अपौरुषेय है क्योकि अनुपलम्भ पूर्वक अस्मर्यमाणकर्तृक है। पहिले तो अनुपलम्भहेतुसे सिद्ध किया गया अस्मर्यमाणकर्तृक और अस्मर्यमाणकर्तृक भी बना तो उससे वेदकी अपौरुषेयताकी सिद्धि हो जायगी। उत्तर देते है कि यह भी युक्त नही है क्योकि कर्ताके अभावको ग्रहण करने वाला कोई अन्य प्रमाण ही नही हो रहा है। यदि कहो कि इस ही अनुमानसे कर्ताके अभावकी सिद्धि कर लेंगे तो इतरेतराश्रय दोष आता है। इस अनुमानसे तो करना चाहते हो आप कर्ताके अनुपलम्भकी सिद्धि तो जब अनुमान सिद्ध बने तब कर्ताके अनुपलम्भकी सिद्धि बने। तो अनुपलम्भपूर्वक अस्मर्यमाणकर्तृक यह हेतु सिद्ध हो। अब यह हेतु सिद्ध हो तो अनुमान बने इस तरह इसमे इतरेतराश्रय दोष है।

अनुष्ठायकोकी नि सशय प्रवृत्ति होनेसे अकर्तृत्वकी शका—अब शकाकार कहता है कि वेदमे यदि कर्ताका सद्भाव मानते हो तो जिस समय लोग वेदमे लिखी हुई विधिका अनुमान करते हैं जो उसमे क्रिया चारित्र यज्ञ आदिक बताये गए हैं उनका जो अनुष्टान करते है वे पुरुष तो प्रामाण्यसे अनिश्चित हैं अर्थात् उनको अनुमानके समयमे अपनी क्रियाकी प्रमाणताकी सिद्धि करनेके लिये किसी कर्ता पुरुष का स्मरण करना चाहिये। जो लौकिक विधियोको करते हैं वे उन यज्ञादिकको करते जाते हैं और कभी वे कर्ताका स्मरण नही करते। जिस बातमे प्रमाणता निश्चित न हो उसमें किसी बडेका नाम अवश्य लेना होता है। लेकिन वेद विधियोको करने वाले लोग अपने अदृष्ट फलमे, अपने यज्ञादिक कर्मोंमें ऐसा निसंशय होकर लग जाते हैं जैसे ये वेद ही साक्षात् प्रमाण उनके दर्शनमें हैं। यदि अपौरुषेय न होता, साक्षात् प्रमाणभूत न होता तो वेद विधियोको करते समय उनको अनेक उपदेष्टाका स्मरण करना होता और उस स्मरणकी प्रमाणताका निर्णय होता। जैसे कि जिसका फल

हम नही समझते ऐसे कर्मोमें जब हम प्रवृत्ति कहते हैं तो यह कहने लगते हैं कि पिता आदिकने ऐसा ही बताया है इसलिये ऐसा हम करते हैं। जो काम करते हैं उस काम का अगर हमे फल समझमें नहीं आ रहा तो उसकी प्रमाणता सिद्ध करनेके लिये हम उसके उपदेष्टाका नाम अवश्य लेते हैं। पिता आदिककी प्रमाणताके बलसे स्वय ऐसे कर्मोमे जिसका कि फल हमने नहीं देखा, पिता आदिकके उपदेशसे ही प्रवृत्ति करते हैं। तो इसी तरह वैदिक कर्म जब करने लगे कोई तो उन्हें भी कर्ताका स्मरण नही करते और नि.सशय उनके विधानमे लग जाते हैं इससे सिद्ध होता है कि वेद अपौरुषेय हैं। उसका कोई कर्ता नही है और इस ही प्रकारसे अनुमान बनता है कि वेद अपौरुषेय है, क्योकि कर्ताके स्मरण योग्य होनेपर भी कर्ताका स्मरण नही हो रहा। यदि कर्ता होता तो अवश्य स्मरण योग्य था पर है ही नहीं। इससे वेदका कोई कर्ता नही है।

अनुष्ठायकोकी नि.सशय प्रवृत्तिका अकर्तृकत्वके साथ अनियम— उक्त आशङ्काका उत्तर देते है कि इस तरहसे तो जो दूसरे पुरुषोके आगम हैं अन्य दर्शनोके शास्त्र हैं उनमे भी यह हेतु चला जाता है। अनेक ग्रन्थ ऐसे हैं कि जिनके कर्ताका स्मरण नही है अथवा दूसरे दार्शनिकोके यहा भी शास्त्रोमें जो लिखा है उसे ऐसा नि सशय होकर करने लगते है कि ये शास्त्र ही प्रमाण हैं। वे कभी ऐसी नही धारणा करते उस समय कि यह अमुक ऋषिने बनाया है इसलिए हम ऐसा कर रहे हैं, किन्तु आगममे बताया है इसलिए हम कर रहे हैं। दूसरी बात यह है कि आपका जो हेतु है अस्मर्यमाणकर्तृकपना और उसमे जो विशेषण दिया है कि कर्ताका स्मरण योग्य होनेपर भी नही हो रहा तो इतना लम्बा चौड़ा विशेषण तब सार्थक कहलाये जब विपक्षसे विरुद्ध विशेषण विपक्षसे हटते हुए अपने विशेष्यको लेकर हटा करे। पौरुषेयपनेके साथ कर्ता स्मरण योग्य है इस हेतुका न तो सहानवस्था लक्षण विरोध है अर्थात् जहाँ पौरुषेयपना रहे वहा कर्ताके स्मरणकी योग्यता न रहे ऐसा तो है नहीं, या ये दोनों परस्पर परिहारपूर्वक भी नही रहा करते कि जहा कर्ताके स्मरणकी योग्यता रहे, वहाँ पौरुषेयपना न रहे ऐसा विरोध भी नही है और अगर विरोध हो गया तो इस हीसे अपौरुषेय साध्यकी सिद्धि हो गयी। फिर अस्मर्यमाणकर्तृक यह विशेषण देकर हेतुको कहना व्यर्थ है। साथ ही यह भी सोचें कि जो यह कहा कि वेद विधियोके अनुष्ठानके समयमें लोग ऐसा नि.सशय होकर लग जाते हैं कि कर्ताका स्मरण तक भी नही करते हैं। इससे सिद्ध है कि वेद स्वय प्रमाणभूत होनेसे अपौरुषेय है और जो यह बताया कि नही वे स्मरण करते हैं तो यह कोई नियम नही है कि जितने भी अनुष्ठान करने वाले लोग हैं वे इष्ट अर्थ करनेके समयमें उसके कर्ताका स्मरण करके ही परिणति करें। जैसे कि कोई शब्द सिद्धि कर रहा है, जैसे किसी भी सतने व्याकरण बनाया और उसमे बताए हुए सूत्रोके अनुसार शब्दसिद्धि कर रहा है तो उस समय कोई भी ग्रन्थकर्ताका स्मरण करे ही करे ऐसा तो नही देखा जाता।

जिसको शब्दसिद्धिकी योजना विदित है वे कर्ताके स्मरणके बिना भी शीघ्र ही भवति राम आदिक शब्दोंकी सिद्धि कर लेते है और उन्हे इन शब्दोंका ज्ञान हो जाता है। तो इन सब बातोंपर विचार करनेसे यह सिद्ध हुआ कि कर्ताका स्मरण छिन्नमूल नही है आपके प्रत्यक्षसे अनुभव नही हो रहा उसके कर्ताका इस कारण छिन्नमूल है यह बात युक्त नही है।

सर्वसम्बन्धि कर्तृस्मरणकी असिद्धि— यदि कहो कि सभी लोगोको प्रत्यक्षसे कर्ताका स्मरण नही हो रहा इसलिए छिन्नमूल है। तो उत्तरमे कहते कि इसका तुम्हे कैसे पता ? सर्व सम्बन्धी प्रत्यक्षसे कर्ताके स्मरणका अनुभव नहीं है यह तुमने कैसे जाना ? जो पुरुष असर्वज्ञ हैं वे कभी यह निश्चय नहीं कर सकते कि सभी लोग वेदके सम्बन्धमे कर्ताको ग्रहण करने वाला प्रत्यक्ष नही रखते। सभीका प्रत्यक्षकर्ताको ग्रहण नही कर रहा ऐसा क्या कोई अल्पज्ञ असर्वज्ञ पुरुष निश्चय कर सकता है ? इससे कर्ताका स्मरण छिन्नमूल न बना तो यह जो हेतु दिया था कि अस्मर्यमाणकर्तृक होनेसे वेद अपौरुषेय है यह अनुमान सिद्ध नहीं हो सकता।

वेदके कर्तृस्मरणकी छिन्नमूलताकी असिद्धि - यहाँ प्रकरण मूलमे यह चल रहा था कि वेदकी अपौरुषेयताका साधक कोई प्रमाण नही है तो सर्वप्रथम तो प्रत्यक्षकी बात कही गई थी कि प्रत्यक्षसे कर्ताका अपौरुषेयताका भान नही होता, क्योंकि प्रत्यक्षकी गति हीं नही है। अतीत काल, अनादिकालको समझनेमे। अनुमान भी अपौरुषेयताका साधक नही है। क्योकि अनुमानमे तुम हेतु क्या दोगे ? या तो यह हेतु दोगे कि कर्ताका अस्मरण है या यह कहोगे कि वेदाध्ययन शब्दके द्वारा वाच्य है या यह कहोगे कि काल होनेसे। जैसे वर्तमान काल काल है उसमे कर्ताका स्मरण नही है इसी तरह अतीत काल भी काल है। वहा भी कर्ताका स्मरण नही हो सकता। इन तीन विकल्पोंमेंसे पहिले विकल्पका तो खण्डन किया कि कर्ताका अस्मरण यह हेतु सिद्ध नही होता। इस हेतुसे सम्बन्धित जो प्रसग बना उस प्रसगमे यह बात आयी थी कि शंकाकार कर्ताके स्मरणको छिन्नमूल मानता है अर्थात् उसका अब कारण नहीं रहा। उस स्मरणका तांता कट गया। स्मरणका सवाल अब नही रहा। तो छिन्नमूलके सम्बन्धमे पूछा गया था कि छिन्नमूलता कैसे सिद्ध हुई ? प्रत्यक्ष प्रमाणसे या अन्य प्रमाणसे। तो प्रत्यक्ष प्रमाणसे तो छिन्नमूलता सिद्ध नही होती। यदि कहो कि अन्य प्रमाणोमे कर्ताके स्मरणका, अनुभवका अभाव है तो यही छिन्नमूलता है तो यह भी ठीक नही, क्योंकि अनुमान और आगम अथवा अन्य प्रमाण तो कर्ताके सद्भावका समर्थन करने वाला मौजूद है। इस कारण अस्मर्यमाणकर्तृक बतानेका यह हेतु सही नही बन सकता।

अस्मर्यमाणकर्तृकताके स्वामीके सम्बन्धमे तीन विकल्प– फिर और

बतलाओ कि अस्मर्यमाणकर्तृकपना क्या वादीकी अपेक्षा है या सबकी अपेक्षा है ? अर्थात् कर्ता स्मरणमे नही आ रहा इसका मतलब क्या यह है कि वादीका कर्ता स्मरणमे नही आ रहा यह हेतुका भाव है या प्रतिवादीको कर्ता स्मरणमें नही आ रहा ? जो अपौरुषेय मानता है वेदको वह वादी है इस समय, तो वादीको कर्ता स्मरणमे नही आ रहा यह हेतुका भाव है या प्रतिवादीको कर्ता स्मरणमे नही आ रहा यह उसका भाव है ? या सबको कर्ता स्मरणमे नही आ रहा यह उसका भाव है ? यदि कहो कि वादीका कर्ता स्मरणमे नही आ रहा तो यह अनैकान्तिक दोष हो जायगा, क्योंकि अनेक प्रसग ऐसे हैं जिनमे कर्ताका स्मरण नही हो रहा अथवा वादी को अगर इष्ट है हेतु तो वादीका ही स्मरणमे नही आ रहा तो इससे प्रतिवादीको तो न मना लिया जायगा। यदि कहो कि प्रतिवादीके स्मरणमे नही आता तो यह बात असिद्ध है। प्रतिवादीको तो कर्ताका स्मरण हो है इससे सबको स्मरणमें नही आ रहा यह भी निराकृत हो गया। क्योंकि सबमे क्या है ? वादी और प्रति वादीको यह बात मजूर नही है। वह कर्ताका स्मरण करता है इस कारण सबको स्मरणमे नही आ रहा यह बात भी खण्डित हो गई अथवा समस्त आत्माके ज्ञानके विज्ञानसे रहित कोई पुरुष कैसे वेदमें यह निश्चय करेगा कि इसके सम्बन्धमें सभीको कर्ताका स्मरण नही है।

अस्मर्यमाणकर्तृकत्व हेतुसे अपौरुषेयत्वकी साधना या पौरुषेयत्व साधक अनुमानमे बाधनारूप दो विकल्प और भी बताया कि इस हेतुसे कि अस्मर्यमाणकर्तृक है वेद, जिसके कर्ताका स्मरण भी नही हो पा रहा है ऐसा हेतुसे वेदको जो अपौरुषेय सिद्ध कर रहे हो तो इस हेतुसे क्या तुम स्वतन्त्रतासे अपौरुषेय-पना सिद्ध कर रहे हो या पौरुषेयपनाको सिद्ध करने वाले अनुमानमे बाधा दे रहे हो अर्थात् इस हेतुसे अपौरुषेयकी सिद्धि कर रहे हो या पौरुषेयताका खण्डन कर रहे हो ? यदि कहोगे कि हम इस हेतुका स्वतन्त्रतासे अपौरुषेयपनाको सिद्ध कर रहे हैं तो स्वतन्त्रतासे अपौरुषेयपनेका यह अस्मर्यमाणकर्तृकत्व साधन है या प्रसङ्गसाधन है। स्वतन्त्र पक्षमे तो इस हेतुसे अपौरुषेयत्वकी सिद्धि नही होती, क्योंकि जिसमे पद है वाक्य है वह पौरुषेय होगा। केवल इसमे यह समझमे न आयगा स्वतन्त्रतासे सिद्ध करनेपर कि क्या अस्मर्यमाणकर्तृक होनेसे वेद अपौरुषेय है या पदवाक्यात्मक होनेसे वेद पौरुषेय है ? सदेह वाले हेतुमे प्रमाणता नही आया करती तो यहा जब पदवाक्य नजर आ रहे हैं तो लोकमें शास्त्रोमे जो ऐसी रचनाये होती हैं उन रचनाओका कोई कर्ता जरूर होता है। भला इस प्रकारके वर्णोंकी रचना पद और वाक्यका ऐसा क्रम रचना ये सब सदर्भ क्या किसीके किये बिना हो गए हैं ? पद वाक्य जैसी रचना तो चाहे कही भी मिले शास्त्रमे आगममे काव्यग्रन्थोमे उन रचनावोको देखकर प्रत्येक पुरुष यह कल्पना करता है कि कितना अच्छा लिखा है, कितनी अच्छी बात बतायी है। तो उससे रचने वालेका स्मरण सबको हो जाता है। भले ही उसका रचने वाला कौन

है यह बुद्धिमे न आये, कर्ता विशेषका स्मरण न आये लेकिन कर्ता स्मरणका तो उन्हे जरूर स्मरण हो जाता है।

हेतुओसे अपौरुषेयत्व व पौरुषेयत्वकी सिद्धिमे सन्देह शकाकार कहता है कि हमने जो हेतु दिया है स्मर्यमाणकर्तृकपना अर्थात् इसका कर्ता स्मरणमे नही आ रहा इस प्रकृत हेतुसे सदेहकी उत्पत्ति नही होती जिससे कि इस हेतुको और इस हेतुसे बने हुए ज्ञानको अप्रमाण करार कर दिया जाय किन्तु प्रतिहेतुपनेसे विरुद्ध प्रतिकूल हेतुवोको सदेह उत्पन्न हो जाता है। सो जब यह हमारा हेतु है, इस हेतुके होनेपर प्रतिकूल हेतुका नही बन सकता है फिर इसमे सशय कैसे हो जायगा ? समाधान करते हैं कि जैसे ही प्रकृत हेतुके सद्भावमे पौरुषेयपना सिद्ध करने वाले हेतुकी अप्रवृत्ति कही जा रही है उसी प्रकार पदवाक्यपनारूप हेतुके सद्भाव होनेपर तुम्हारा जो हेतु है अस्मर्यमाणकर्तृकपना इसकी भी प्रावृत्ति हो जाय। मतलब यह है कि इस समय दो हेतु सामने रखे गए हैं। अपौरुषेयवादी तो यह कह रहे हैं कि इसका कर्ता स्मरणमे ही नही आ रहा है इस लिए अपौरुषेय है तो पौरुषेयपना सिद्ध करने वाले यह कह रहे हैं कि चूकि इसमे पद और वाक्यकी रचनाये भरी पडी हैं इस कारणसे ये पौरुषेय है तो जैसे अपौरुषेयवादी यह कहता है कि जब हमारा हेतु यहा रखा है तो उसके समय दूसरा हेतु आ ही नही सकता तो इसके मुकाबलेमे यह भी तो कहा जा सकता है। जब पद वाक्यपनेका हेतु सामने रखा है तो अस्मर्यमाणकर्तृकपन हेतुकी प्रवृत्ति भी ही नही हो सकती। इस कारण तुम्हारा हेतु स्वतत्र साधन नही बन रहा। अर्थात् यह हेतु अस्मर्यमाणकर्तृकपनारूप हेतु साक्षात् अपौरुषेयत्वको सिद्ध करदे, ऐसा साधन नही बन रहा।

प्रसगसाधनके सम्बन्धमे विचार --अस्मर्यमाणकर्तृकत्व प्रसग साधन भी नही बन रहा। प्रसग साधनके मायने क्या है ? अनिष्ट बातको ला देना। तो अपौरुषेयत्व माननेपर फिर वेदके कर्ता पुरुषके स्मरणका प्रसग होता है यह है अनिष्टका अपादान अर्थात् अनिष्ट बात लग गयी है इसीको कहते हैं आपत्ति प्रदर्शन। कोई बात सिद्ध करते करते ही कोई बात अनिष्ट लग बैठे तो उसे प्रसग साधन कहते हैं, पर कर्ताका स्मरण करना प्रतिवादीको अनिष्ट नही है जैसे अपौरुषेयत्ववादी अपने साधनसे अपने इष्ट अपौरुषेय साध्यको सिद्ध करनेमे लगे हैं और सिद्ध करते करते कही यह कह बैठे कि इस तरहसे तो प्रसग साधन हो जायगा अर्थात् वेद पौरुषेय सिद्ध हो बैठेगा तो यह अनिष्ट कब है दूसरेको ? प्रतिवादी लोग तो पौरुषेय ही मान रहे हैं और पद वाक्यरचनाका हेतु देकर स्पष्टरूपसे सिद्ध कर रहे हैं तो यह प्रसग साधन नही बनता। जो पद वाक्यत्व हेतु देकर उसके कर्ताके स्मरणको जान रहा है वह कर्ताके स्मरणको अनिष्ट कैसे कह देगा यह बात विचारनेकी है कि जहा वाक्यरचना हो, पद रचना हो शब्द रचना हो वह रचना क्या यो ही आकाशसे आ गयी ? क्या

कहींसे टपक गई ? कोई सोच सकता है इस बारेमे कि किसी विद्वानके बिना ऐसा पद वर्ण वाक्य इनकी योजना हो जाय, कोई भी पद वाक्य यहां इस तरह योजनामे नहीं आ रहे तो यह पद वाक्योंकी रचना ही यह बतला रही है कि इनका करने वाला अवश्य है, तो जो पद वाक्यत्व हेतु देकर उसके कर्ताके स्मरणको विश्वास करा रहा है उस तुम यों कहते कि इस तरहसे तो कर्ताका स्मरण बन बैठेगा। यह अनिष्ट आपदा आ जायगी। यहां अनिष्ट कहनेपर यह तो इष्ट है, स्पष्ट है और युक्तिसिद्ध बात है। जितने भी शब्द सदर्भ हैं उनका कोई कर्ता है। उन शब्द रचनाओंको उन शास्त्रोंको, आगमोंको प्रमाण मनानेके लिये अपौरुषेयत्वपना सिद्ध करना बुद्धिमानी नहीं है, किन्तु यह सिद्ध करना बुद्धिमानी है कि उन रचनाओंका मूल कारण अमुक ज्ञानी पुरुष है। भगवान है, सर्वज्ञ है। इस कारण उसकी मूल धारामें चला आया हुआ यह शास्त्र यह आगम प्रमाणभूत है। शास्त्रकी प्रमाणता सर्वज्ञमूलक होनेसे होती है। न कि अपौरुषेय होनेसे होती है। शब्दरचना तो अपौरुषेय होती ही नहीं है इस से तुम्हारे हेतुवोंसे वेद अपौरुषेयत्वकी सिद्धि नहीं हुई।

आगमके लक्षणके प्रकरणमें प्रासंगिक चर्चा – यह प्रकरण आगमके लक्षण का चल रहा है। आगम कहते हैं सर्वज्ञदेवके वचनादिकके निमित्तसे हुये अर्थज्ञानको। इस लक्षणके प्रसंगमें वेदको अपौरुषेय मानने वाले दार्शनिक कहते हैं कि आप्त तो कोई होता ही नहीं है। इसलिये आप्त वचनोंका कोई निमित्त नहीं। जो अपौरुषेय वेद है वही आगम है और प्रमाणभूत है। उसके सम्बन्धमें बहुत सी चर्चा चलनेके बाद अपौरुषेयत्वको सिद्ध करनेके लिए हेतु दिया गया है अस्मर्यमाणकर्तृकत्व अर्थात् उसका कर्ता स्मरणमें नहीं आ रहा है इस कारण अपौरुषेय है। तो इस हेतुके सम्बंध में यह पूछा गया था कि अस्मर्यमाणकर्तृकत्व हेतु वेदको अपौरुषेय सिद्ध करता है या पौरुषेय सिद्ध करने वाले अनुमानमें बाधा डालता है ? तो प्रथम विकल्पका तो विवरण सहित निराकरण किया कि वह अपौरुषेयको सिद्ध नहीं करता।

पौरुषेयत्वसाधक अनुमानमें बाधाका अभाव—यदि कहो कि अपौरुषेयपनेको साधने वाला जो अनुमान है जैसे कि कहा है कि वेदमें पौरुषेयपना है क्योंकि पद और वाक्य इसमें मौजूद हैं। जो पद वाक्य होते हैं वे किसीके द्वारा रचे हुये होते हैं इस अनुमानमें बाधा आयगी, यदि ऐसा दूसरा विकल्प कहते हो तो यह बतलावो कि इस हेतुके द्वारा, अस्मर्यमाणकर्तृकत्व साधनके द्वारा पौरुषेयत्व साधक अनुमानके स्वरूपमें बाधा आती है या उसके विषयमें बाधा आती है। तुम्हारा हेतु किस को बाध रहा है ? स्वरूपको तो बाधित करता नहीं। क्योंकि यहां अब दो हेतु आ गये—अपौरुषेय सिद्ध करनेके लिये हेतु है अस्मर्यमाणकर्तृकत्व और पौरुषेयत्वको सिद्ध करनेके लिये पदवाक्यत्व अर्थात् पद और वाक्यकी रचना इसमें पायी जा रही है इस कारण आगम पौरुषेय है। तो शंकाकार कह रहा है कि अस्मर्यमाणकर्तृकत्व

हेतुके द्वारा पौरुषेयत्व सिद्ध करने वाले अनुमानमे बाधा आती है तो हम कहेंगे कि पौरुषेयत्व सिद्ध करने वाले पदवाक्यत्व लक्षण हेतुके द्वारा अपौरुषेयत्वके अनुमानमे बाधा आती है। वे दोनो हेतु तुल्यबल वाले हैं क्योकि सबका हिसाब ठीक मिल रहा है। एक दूसरेसे विशेषता नही है और यदि कहो कि वे दोनो हेतु तुल्यबल वाले नही हैं उनमे समान शक्ति नही है तो यदि अतुल्यबल वाली बात कहोगे तो फिर अनुमान बाधा बतानेसे क्या प्रयोजन रहा जिस ही दोषसे तुम अतुल्य बलपना सिद्ध करते हो उस ही दोषसे उसके अप्रामाण्यकी सिद्धि हो जायगी, इससे पौरुषेयत्व साधक अनुमानका स्वरूप तो बाधा नही जाता। यदि कहो कि अस्मर्यमाणकर्तृकत्व हेतुमे पौरुषेयत्व साधक अनुमानके विषयमे बाधा आती है। उस अनुमानका विषय बाधा भी सिद्ध नही होती। जब दोनो हेतु तुल्य बल वाले है तो एक हेतु दूसरेके विषयमें बाधक बन रहा तो जब दोनो हेतु परस्पर एक दूसरेके विषयमे बाधक बन रहे तो यह कहना चाहिये कि वेदमे दोनो ही धर्म नही है अर्थात् न पौरुषेयता है न अपौरुषेयपना है। एक हेतुने अपौरुषेयत्वको निराकृत किया तो एक ने अपौरुषेयत्वको। तो इसका अर्थ यह हुआ कि वेदमे दोनो ही धर्म नही हैं। अथवा यदि कहो कि एक हेतु अपने विषयका साधक बन जायगा तो वह एक कौनसा साधक बनेगा ? दूसरा भी साधक बन जायगा। तब इसका अर्थ यह हुआ कि वेदमें दोनो ही धर्म पाये जायेंगे, पौरुषेयत्व भी और अपौरुषेयत्व भी। अतुल्यबलवाली बात यदि कहोगे तो उसका यह उत्तर हुआ कि जिस कारणसे अतुल्यबल है उस कारणसे अप्रमाण सिद्ध हो जायगा। फिर अनुमान बाधाकी बात कहना व्यर्थ है। यहा तक एक हेतुके विषयमे चर्चा चली।

अपौरुषेयत्वसाधक अनुमानके प्रथम हेतु विकल्पकी समीक्षा समाप्ति— अपौरुषेय वादियोसे पूछा गया था कि अपौरुषेयत्वका साधक प्रत्यक्ष तो है नही, तब क्या अनुमान है ? तो उस अनुमानकी चर्चा चल रही थी कि अपौरुषेयत्वका साधक यदि अनुमान है तो वह किस हेतुसे अनुमान उत्पन्न हुआ। इन तीन हेतु विकल्पोरूप मे पूछा गया था क्या इस कारण वेद अपौरुषेय हैं कि कर्ताका स्मरण नही हो रहा है। दूसरा हेतु विकल्प किया गया था क्या इस कारण अपौरुषेय है कि वह वेदाध्ययन शब्दके द्वारा वाच्य है अर्थात् वेदका अध्ययन है और अध्ययन जितने होते हैं वे परम्परापूर्वक होते हैं। तो वेदके अध्ययनकी परम्परा चली आयी है, बनाये किसने ? क्या इस हेतुसे सिद्ध करेंगे अथवा कालत्वहेतुसे सिद्ध करें आजके कालमे कोई वेदकर्ता नही हैं तो पहिले भी न था। तो इन तीन विकल्पोमे प्रथम हेतुविकल्पका निराकरण किया। अब दूसरे विकल्पका चर्चा चलेगी।

अपौरुषेयत्वसाधक अनुमानके द्वितीयहेतु विकल्पकी समीक्षा—क्या वेद इस कारण अपौरुषेय हैं कि वेदाध्ययन शब्दके द्वारा वाच्य है। जैसे आजकलका

अध्ययन गुरुके अध्ययनपूर्वक है तो पहिले भी लोग अध्ययन करते थे वे भी गुरुके अध्ययनपूर्वक करते थे और इस तरह यह परम्परा चली आयी। इस अनुमा से भी पौरुषेयके साधने वाले अनुमानमे बाधा नहीं आती क्योंकि जो दोष ऊपर दिया गया है वह ही दोष यहाँ लगता है कि जब दो हेतु तुल्यबल वाले हैं, अपौरुषेयको सिद्ध करने वाला हमारा हेतु तुम्हारे शरीरसे बलिष्ठ है और पौरुषेयको सिद्ध करने वाला हमारा हेतु हमारी ओरसे और जनताकी ओरसे भी बलिष्ठ है इस कारणसे वेद ध्ययन शब्द वाच्य होनेसे वेदमे अपौरुषेयत्वपना सिद्ध नही होता। और न वेदमे पौरुषेयताको सिद्ध करने वाले अनुमानमे बाधा आती है। अब जरा इस ही हेतुके सम्बन्धमे थोडा और विचार करें कि यह तुम्हारा अध्ययन शब्द वाच्यत्व हेतु निर्वि शेषण होकर अपौरुषेयत्वको सिद्ध करेगा अर्थात् अध्ययन शब्द द्वारा वाच्य है इतना ही मात्र हेतु देकर तुम अपौरुषेयता सिद्ध कराेगे या उसके साथ कुछ और विशेषण लगाकर हेतुको मजाकर जैसे कि कर्ताके अस्मरणसे विशिष्ट अध्ययन है इससे वेद अपौरुषेय है ऐसा साधमे विशेषण लगाकर इस हेतुमे अपौरुषेय सिद्ध करोगे ? इसमे दो विकल्प किये हैं कि निर्विशेषण अध्ययन अपौरुषेयत्वको सिद्ध करोगे ? इसमें दो विकल्प किये हैं कि निर्विशेषण अध्ययन अपौरुषेयत्वको सिद्ध करता है या सविशेषण अध्ययन अपौरुषेयता सिद्ध करेगा ? यदि कहो कि निर्विशेषण ही हेतु अपौरुषेयत्व को सिद्ध कर देगा तो तुम्हारा हेतु अनैकान्तिक रहेगा अर्थात् अध्ययन होनेसे यह हेतु तुम्हारे जो ग्रन्थ पौरुषेय हैं, जिन्हे किन्ही ऋषिसंतोने रचा है, उनमे भी पाया जाता हेतु तो वह भी अपौरुषेय बन जायगा। जैसे अनेक ग्रन्थ भारत आदिक पुराण हैं ये भी तो अध्ययनमे आ रहे हैं और इनका भी अध्ययन गुरुओके अध्ययन पूर्वक हो रहा है तो ये भी अपौरुषेय बन बैठे। तो ये भी अपौरुषेयत्वको सिद्ध नहीं कर सकता।

अध्येताओकी जातिके विकल्पोका समीक्षण—और भी सोचिये ! यह बतलावो कि आजकलके लोगोका जैसे अध्ययनपूर्वक अध्ययन हेतु बनाया जा रहा है, क्या आज जैसे ही लोगोका समूह पहिलेके लोगोका अध्ययन अध्ययनपूर्वक बता रहे हो या आजकलके लोगोसे विलक्षण अन्य प्रकारके लोगोका अध्ययन अध्ययनपूर्वक बता रहे हो ? जो यह कहा है कि वेदका अध्ययन गुरु परम्परासे अध्ययन पूर्वक चला आ रहा है। तो जैसे आजकल लोगोका अर्थात् अल्पज्ञोका अध्ययन अध्ययनपूर्वक चल रहा है क्या इस प्रकारके अल्पज्ञ पहिले समयमे भी थे जिसका कि अध्ययन गुरु परम्परासे अध्ययनपूर्वक चला आ रहा है। या आजके पुरुषोसे वे विलक्षण पुरुष थे। कुछ समझदार थे, अतीन्द्रिय अर्थके जानने वाले थे उनका अध्ययन अध्ययनपूर्वक चला है यह सिद्ध करते हो ? यदि आजके ही समान अल्पज्ञ पुरुषोंका अध्ययन अध्ययन पूर्वक है, यदि ऐसा कहते हो तो वह हमे मजूर है क्योकि मद बुद्धि वालेका अध्ययन अध्ययनपूर्वक ही होता है, पर इससे यह सिद्ध नही हो पाया कि उसका मूलमे प्रणेता कोई न था। यह तो मद बुद्धि वालोके अध्ययनकी बात रही। यदि कहो कि

आजके पुरषोसे विलक्षण प्रत्यक्षदर्शी पुरुषोका अध्ययन गुरु परम्परासे अध्ययन पूर्वक चला आया है तो यह हेतु तुम्हारा प्रयोजन रहित है। जब वे अतीन्द्रिय अर्थके देखने वाले हैं तो उनके गुरु अध्ययनपूर्वक अध्ययनकी क्या जरूरत है? यदि कहो कि हम जैसे अल्पज्ञ पुरुषोका हो हम अध्ययन अध्ययनपूर्वक सिद्ध करते है और उसमे सिद्ध साधन दोष भी नही आता क्योकि सारे पुरुष हम जैसे हुआ करते है। अतीन्द्रिय अर्थका द्रष्टा कोई पुरुष नही होता और इसी कारण वेदमे जो अतीन्द्रिय अर्थके प्रतिपादक वचन है उनको रचनेकी किसीमे सामर्थ्य नही है, इस कारण वे सब पुरुष मूलमे भी अनादिसे यहाँके आजकलके पुरुषोकी तरह ही अल्पज्ञ थे। उत्तर देते हैं कि यह बात युक्त नही है। क्योकि यह वेद वाक्य अतीन्द्रिय अर्थके प्रतिपादनमे प्रमाणभूत सिद्ध हो जाये, अप्रामाण्यसे रहित सिद्ध हो जाये तब तो तुम्हारा यह कहना ठीक बैठ सकता है लेकिन गुणवान वक्ताके अभावमे अर्थात् उन वेद वाक्योका मूल वक्ता यदि गुणवान न था तो गुणवान वक्ताके अभावमे दोष तो दूर होगा नही, क्योकि दोष तो दूर हुआ करते है गुणोसे और, गुणवान वक्ता तुमने माना नही तो जब दोष न टलेगा तब तो यह प्रामाण्य अपवाद सहित हो गया अर्थात् सदिग्ध हो गया। प्रमाणभूत भी कहलो, अप्रमाणभूत भी कह लो सदोष प्रामाण्य रहा। और, सदोष प्रामाण्य वाले वेद वाक्योको ऐसे पुरुष भी रचनेमे समर्थ हो सकते हैं जो अतीन्द्रिय पदार्थके देखनेकी शक्तिसे रहित है तब फिर तुम्हारा यह कहना कैसे ठीक है कि इस अतीन्द्रिय अर्थका प्रतिपादन करने वाले वेद वाक्योको रचनेमे समर्थ न होनेसे सभी पुरुष आज कलके पुरुषोके समान हैं जिस कारणसे सिद्ध साधन नही होता, अर्थात् गुणवान वक्ता माने बिना वचनोमे प्रमाणता नही आ सकती।

अपौरुषेयत्वसे अप्रामाण्यनिवृत्तिकी सभावनापर प्रश्नोत्तर—अब शङ्काकार कहता है कि शब्दमे जो अप्रामाण्यकी निवृत्ति होती है अर्थात् यह शब्द प्रमाणभूत है उस बातकी सिद्धि गुणवान वक्ताके होनेसे ही नही होती किन्तु अपौरुषेयपना होनेसे भी प्रामाण्यकी सिद्धि होती है, अप्रामाण्यकी निवृत्ति होती है अर्थात् किसी रचनाका या तो रचने वाला गुणवान हो तब भी प्रमाणभूत है या रचनाका रचने वाला कोई न हो तो प्रमाणभूत है। गुणवान वक्ता होनेसे प्रमाणभूत है। जैसे अनेक ऐसे शास्त्र जो वेदके बाद रचित हैं किन्तु वेद इसलिए प्रमाणभूत है कि उसका रचयिता कोई नही है। गुणवान भी नही, दोषवान् भी नही। तो जब दोषवान वक्ता नही है तो दोष कहासे आयगा? रचना वाला सदोष हो तब तो वचनोमे दोष आये। अब जिन वचनोका कोई रचने वाला ही नही है तो उसमे दोष कहाँसे आयगा? दोष निराश्रय नही हुआ करते, दोषवानके आश्रय होते हैं। तो इस कारण अपौरुषेय होनेसे भी अप्रामाण्यकी निवृत्ति होती है अर्थात् प्रमाणताकी सिद्धि होती है। उत्तर देते हैं कि यह भी कहना समीचीन नही है। यहा जो प्रेरणा वाक्योमे अपौरुषेयत्व सिद्ध कर रहे हो सो क्या इसका अपौरुषेयत्व अन्य प्रमाणसे जाना गया है या इस ही हेतुसे

अर्थात् अध्ययन शब्द वाच्य होनेसे इस हेतुमे अपौरुषेयपना समझा गया है तब तो यह हेतु देना व्यर्थ है है चूंकि वेदका अध्ययन गुरुग्रध्ययनपूर्वक चला आया है। यदि कहो कि इस हेतुमे ही वेदाध्ययनवाच्यत्वात् इस हेतुसे प्रेरणा की अपौरुषेयता सिद्ध होती है तो इसमें इतरेतराश्रय दोष आता है। वेदाध्ययन वाच्यत्व होनेसे इस अनुमानसे जब पहिले अपौरुषेयता सिद्ध हो जाय तब तो वेदवाक्योंमे अप्रामाण्यका अभाव सिद्ध हो और जब वेदवाक्योमे अप्रामाण्यका अभाव सिद्ध हो तो अतीन्द्रिय अर्थ प्रतिपादक प्रेरणाके रचने वालेकी सामर्थ्य न होनेसे सभी पुरुष आजकलके पुरुषोके समान हुए यह सिद्ध हो। इस तरह इसमे इतरेतराश्रय दोष होता है। यो निर्विशेष हेतु तुम्हारे प्रकृत साध्यको वेदकी अपौरुषेयताको सिद्ध नही कर सकता।

सविशेषण वेदाध्ययनत्व हेतुसे भी अपौरुषेयत्वकी असिद्धि—यदि कहो कि सविशेषण अध्ययनसे अपौरुषेयता सिद्ध करेंगे अर्थात् कर्ताका स्मरण जहाँ नहीं हो रहा ऐसा अध्ययन अध्ययनपूर्वक चला आ रहा है इस कारण अपौरुषेय है आगम ऐसा विशेषण हेतुमे लगाकर यदि अपौरुषेयता सिद्ध करते हो तो फिर केवल विशेषण ही साधक बन गया। केवल इतना ही अगर कह दो कि कर्ताका स्मरण नहीं हो रहा इससे अपौरुषेयत्व है, इसका भी यही अर्थ है और कर्ताके स्मरणसे सहित अध्ययन चला आ रहा इसका भी अर्थ यही है फिर तो विशेषण ही गमक हो गया। विशेष्य का ग्रहण करना अनर्थक हुआ। तब शङ्काकार कहता है कि चलो विशेषण ही साध्य को सिद्ध करदे तो इसमें क्या हानि है। हमको तो सर्वथा अपौरुषेयपना सिद्ध करनेसे प्रयोजन है। तो कहते हैं कि यह भी समाधान युक्त नहीं है क्योंकि कर्ताका अस्मरण हो रहा है। यह जो विशेषण हेतुमें लगाया है तो यह अस्मरण शब्द क्या अभाव नामक प्रमाण है? स्मरण न होनेको अस्मरण कहते हैं। तो स्मरणका अभाव है ऐसा क्या यह अभाव नामक प्रमाण है? या अर्थापत्तिरूप प्रमाण है? अथवा अनुमान प्रमाण है? उनमेंसे पहिला पक्ष तो युक्त नहीं है कि अभाव नामका प्रमाण है क्योंकि अभाव प्रमाणमें प्रमाणता ही नहीं है क्योंकि उसका न स्वरूप बनता है, न अभावकी सामग्री सिद्ध होती है, न अभावका कोई विषय बनता है। तो अभाव नामक कोई प्रमाण है ही नहीं।

पौरुषेयत्वसाधक प्रमाणकी निवृत्ति न होनेसे अभाव प्रमाणसे अपौरुषेयत्वकी असिद्धि – और भी देखिये! अभाव प्रमाणके सम्बन्धमे अभाव प्रमाण- [illegible] या कि सत्ताका उपलम्भ करने वाले पांचो प्रमाण जहां न बन सकें [illegible]वृत्ति होती हैं। प्रमाण ६ माने हैं जिनमें ५ प्रमाण तो सत्ताको [illegible]व प्रमाण असत्वको बताता है। तो अभाव प्रमाणके सम्बन्धमे [illegible] कहा है कि सत्वका उपलम्भ करने वाले पांचो प्रमाण जहा न [illegible]णकी प्रवृत्ति होती है, पर यहा तो प्रमाण वेदकी पौरुषेय-

ताको सिद्ध करने वाले मौजूद है, फिर अभाव प्रमाणसे अपौरुषेयताको कैसे सिद्ध करोगे ? देखो ना अभी कहा है कि पदवाक्य होनेसे यह रचना पौरुषेय है, इस अनुमानको अप्रमाण नही कह सकते, क्योकि जितने भी पदवाक्य रचनायें मिलेंगी उन सबका कोई रचयिता अवश्य मिलेगा। जहा एक एक वर्ण मिला जुलाकर शब्द बनाये गए शब्दमें प्रत्यय जोडकर उन्हे पद बनाया गया और अनेक पदोको व्यवस्थित सही ढगसे रखकर वाक्य बनाये गए हैं, ऐसी रचना क्या रचयिताके बिना हो सकती है ? तो पदवाक्य रूप रचना होनेसे यह प्रेरणा अर्थात् वेदवाक्य पौरुषेय हैं इस अनुमानमे अप्रमाणता नही है क्योकि इसकी अप्रमाणता किस कारणसे कहोगे ? क्या इस कारणसे कहोगे कि अभाव प्रमाणकी प्रवृत्तिसे बाधा आती है या इस कारण कहेंगे कि पदवाक्यत्व हेतुमे साध्यका अविनाभावपन नही पाया जा रहा, इन दो विकल्पोमेसे किसी विकल्पके कारण हम पदवाक्यत्वहेतु से सिद्ध होने वाले अनुमानको अप्रमाण कहेगे। यदि कहो कि अभावप्रमाणसे बाधित है इस कारण पौरुषेयत्व साधक अनुमान प्रमाण है तो इसमें चक्रक दोष आ गया। चक्रक दोष इतरेतरा दोषकी तरह है। इतरेतरा दोषमे दो चीजें होती है जिनमे बताया जाता है कि यह सिद्ध हो तो यह सिद्ध हो। जैसे बिना तालीके लगने वाला बक्समे ताली डालकर ऊपरसे लगा दिया तो वहाँ जैसे यह समस्या सामने आती है कि ताला खुले तो ताली निकले और ताली निकले तो ताला खुले ! तो इतरेतराश्रय दोष दोके बीच हुआ करता है और चक्रक दोष तीन या तीनसे अधिकके बीच हुआ करता है। तो अभाव प्रमाणके द्वारा पद वाक्यत्व हेतुसे साधित अनुमानमे बाधा आनेपर चक्रक दोष आता है। जब तक अभाव प्रमाण की प्रवृत्ति नही होती है तब तक इस प्रयुक्त अनुमानमे बाधा नही आ सकती। पदवाक्यत्व हेतुसे जो पौरुषेयत्व सिद्ध करनेमे अनुमान किया है इसमे बाधा तब तक नही आ सकती जब तक अभाव प्रमाणकी प्रवृत्ति न बन जाय और जब तक अनुमानमे बाधा साबित न हो तब तक सत्ताका उपलम्भ करने वाले प्रमाणकी निवृत्ति नही बन सकती है और जब तक सत्ताको सिद्ध करने वाले प्रमाणका निवृत्ति न बन जाय तब तक प्रमाणपचक निवृत्ति निबधनक अर्थात् पाँचो प्रमाण नही लग पा रहे इस कारण से होने वाले अभाव नामक प्रमाणकी प्रवृत्ति नही बन सकती और जब तक अभाव प्रमाणकी प्रवृत्ति न बने तब तक अनुमानमे बाधा नही आ सकती। यह तो बड़ा लबा चौडा चक्रक दोष हो गया, प्रकृत बात सिद्ध हो ही न सकेगी। यदि कहो कि तुम्हारे हेतु साध्यके साथ अविनाभावी नही है तो यह कहना अयुक्त है क्योकि पदवाक्यात्मक रचना पौरुषेयपनेके बिना कही नही देखी गई, इसलिये पदवाक्यात्मक हेतु अपने साध्य के साथ पौरुषेयत्वके साथ दृढ अविनाभाव रखने वाला है। अत. पदवाक्यत्व हेतुसे पौरुषेयत्वपना सिद्ध होता है।

अनुपपद्यमानरूप अनुमानसें भी अपौरुषेयत्वकी असिद्धि – वेदकी अपौरुषेयता न प्रत्यक्षसे सिद्ध हुई न अनुमानसे। यदि कहा जाय कि अन्यथानुपपद्य-

मानसे अपौरुषेयता सिद्ध हो जायगी जैसे कि वेद अपौरुषेय है अन्यथा कर्ताका अस्मरण नहीं बन सकता था। तो यहां अन्यथानुपपत्तिमें बताया कि कर्ता अस्मरण अन्यथानुमान है अतः कर्ताके अभावका निश्चय है। इस प्रकार अन्यथानुपपद्यमानका अनुमानसे भी अपौरुषेयपना सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि अन्यथानुपपत्ति अनुमानसे अलग नहीं है, यह तो हेतुकी ही विशेषता है और इसका पहिले ही निराकरण कर दिया गया है कि यहां कर्ताके अस्मरणके सम्बन्धमें अन्यथानुपपद्यमानता असम्भव है कर्ताके अस्मरणके सम्बन्धमें बहुत विस्तारपूर्वक कहा ही गया है इससे अन्यथानुपपद्यमानता भी अपौरुषेयपनेको सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं है।

तत्कालत्व हेतु वाले अनुमानसे भी अपौरुषेयत्वकी सिद्धि—यदि कहा जाय कि कालत्वात् यह हेतु अपौरुषेयत्वको सिद्ध कर देगा अतीत और भविष्यत ये समस्त काल वेदकर्तासे रहित हैं क्योंकि काल होनेसे। जैसे कि इस समयका काल। इस समय कोई कर्ता नहीं है तो पहिले भी न था आगे भी न होगा। उत्तर देते हैं कि यह हेतु भी अयुक्त है, उसमें पूछा जा सकता है कि कालत्वात् इस अनुमानके द्वारा तुम पौरुषेयत्व सिद्ध करने वाले अनुमानके स्वरूपमें बाधा दे रहे हो अथवा उस अनुमानके विषयमें बाधा दे रहे हो और इन दोनों पक्षोंमें जैसे कि पहिले वर्णन कर दिया है उस प्रकारसे दोष आता है। दूसरी बात कालत्वात् यह हेतु हम अन्य आगममें भी लगा देंगे। चूंकि समस्त काल शास्त्रोंके, अन्य ग्रन्थोंके भी कर्ता आज नहीं हैं सो काल होनेसे इस हेतुके द्वारा आगमका कर्ता पहिले भी न था आगे भी नहीं हो सकता। यह सिद्ध कर दिया जायगा। तो कालत्वात् यह हेतु तो जहां चाहे लगाया जा सकता है क्योंकि कालपना तो एक साधारण चीज है। हरएकके सम्बन्धमें कहा जा सकता है।

कालत्वहेतुके विकल्प और उनका निराकरण—अच्छा कालत्वात् इस सम्बन्धकी अन्य बात भी देखिये। यह बतलावो कि इस समय जैसा काल है वेद न करनेसे असमर्थ पुरुषोंसे युक्त काल है। वेदमें कर्तासे रहित जैसे आजका काल है क्या इस प्रकारका काल अतीतको सिद्ध कर रहे हो अर्थात् आज जैसे पुरुषोंसे युक्त, अल्पज्ञोंसे युक्त अतीत काल था उसकी यह बात सिद्ध कर रहे हो या आजकलके हम जैसे लोगोंसे विलक्षण अन्य प्रकारके पुरुषोंसे युक्त अतीत काल है ऐसा सिद्ध कर रहे हो। कालत्वात् तो हेतु दिया है कि चूंकि आजके कालमें कोई आगमका कर्ता नहीं दिख रहा तो भूतमें भी न था कर्ता तो वह भी काल है यों कालकी बात कहते हो तो वहां दो विकल्प उत्पन्न होते हैं। तुम अतीतकालको ऐसा बता रहे हो जैसे कि आज कलके लोगोंसे सहित काल है, जो आगम करनेमें असमर्थ हैं या नहीं कर रहे हैं ऐसे पुरुषोंसे युक्त आजका काल है क्या ऐसे ही प्राणियों वाला काल अतीत बता रहे हो या अन्य प्रकारके पुरुषोंसे युक्त अतीत कहो कि हम जैसे ही पुरुषोंसे युक्त अतीत

कालकी बात कह रहे हैं तो कहते है कि यह बात तो सिद्ध साध्यपनेकी होगी अर्थात् ठीक है। ऐसे ही पुरुषोसे युक्त यदि अतीतकाल था तो नही किया गया पर यह निर्णय तो नही। यदि कहो कि अन्य प्रकारके पुरुषोमे युक्त काल था। तो अन्य प्रकारके पुरुषोके मायने क्या ? सर्वज्ञ अतीन्द्रिय अर्थके द्रष्टा होगे यो तो तुम्हारा हेतु अप्रयोजक हो गया बात और उल्टी सिद्ध हो गयी कि ये सब अतीन्द्रिय अर्थके द्रष्टा। यदि कहोगे कि हम आज जैसे पुरुषोमे युक्त ही अतीतकालको कहते हैं और उससे फिर हम वेदके कर्तासे रहित सिद्ध करते हैं इसमे सिद्ध साध्यता भी नही आती है क्योकि अन्य प्रकारका काल हो ही नही सकता। जैसे आजका वर्तमान समय है है वैसा ही पहिले था। अन्य प्रकार क्या हो सकता है ? तो उत्तर देते है कि यह तो बतलावो कि आजके कालसे विलक्षण अन्य प्रकारका काल नही होता है यह तुमने किस प्रमाणसे जाना। आज जैसे अल्पज्ञ मद बुद्धि पुरुष पाये जाते हैं और उनसे युक्त समय है आजका तो ऐसे ही पुरुषोसे युक्त समय पहिले था इससे विलक्षण पुरुष न थे यह बात तुमने किस प्रमाणसे जाना ? यदि कहो कि हमने अन्य प्रमाणसे जाना तो वही अन्य प्रमाण बतलावो उससे ही अपौरुषेयत्व सिद्ध कर लिया जाय, फिर कालपनेकी बात कहकर हेतु कहकर क्या फायदा है ? यदि कहो कि हम इस ही कालत्वात् हेतुसे जाने गये कि अतीतकालमे इससे विलक्षण कोई पुरुष न था तो इसमे अन्योन्याश्रय दोष आता है। अन्य प्रकारके कालका अभाव सिद्ध होनेपर इस अनुमान से वेदकर्ता से रहितपना सिद्ध होता है तब अन्य प्रकारके कालका अभाव सिद्ध होगा इस कारण कालत्वात यह हेतु देकर भी इस आगमकी अपौरुपेयता सिद्ध नही कर सकते।

आगमको अपौरुषेय सिद्ध करने वालोंका मानस—आगमकी अपौरुपेयता सिद्ध करनेका प्रयोजन शकाकारका यह है कि वह प्रमाण मान लिया जाय जिस को किसीने बनाया ही नही। अनादिसे ही चला आया है। तो वह पूर्ण प्रमाणभूत है लेकिन प्रमाणता तो सर्वज्ञ प्रभुकी मान्यता करके भी आ सकती थी और वास्तविक शास्त्रोमे प्रमाणता तो सर्वज्ञदेवके मूल कारण माननेपर आती है। इस ओर दृष्टि न देकर और आगमकी प्रमाणता समझनेके लिये अपौरुषेयताकी सिद्धि की जा रही है लेकिन वह युक्त नही बैठता है, यहा तक प्रत्यक्ष और अनुमानसे अपौरुपेयताकी सिद्धि नही हो सकी। यदि यह पक्ष लिया जाय कि आगमसे अपौरुषेयत्वकी सिद्धि हो जायगी तो इतरेतराश्रय दोष है कि जब आगमको अपौरुपेयता पहिले सिद्ध हो ले तब तो यह सिद्ध होगा कि इसमे अप्रामाण्यका अभाव है अर्थात् यह आगम प्रमाणभूत है। और, जब अप्रामाण्यके अभावकी सिद्धि होने लगे तब यह सिद्ध हो सकेगा कि यह अपौरुषेयत्वका प्रतिपादन करने वाला कोई वेदवाक्य ही नहीं है। विधि वाक्यसे भिन्न अर्थात् प्रतिषेध वाक्य मीमासकोंने प्रमाण नही माना है। अन्यथा यदि प्रतिषेध वाक्य को भी प्रामाण्य मान लिया जाय तो पौरुषेयत्वके प्रतिपादन करने वाले जो वचन हैं

उनमें पौरुषेयता सिद्ध हो जायगा। जैसे बहुतमें वाक्य आते हैं जिनमें हिरण्यगर्भादिकका स्मरण किया जाता है। कहते हैं कि सबसे पहिले हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुए तो इसमें आदि सिद्ध हो गई और पौरुषेयता सिद्ध हो जाती है तो आगमसे भी अपौरुषेयता सिद्ध नहीं हुई।

उपमान व अर्थापत्ति प्रमाणसे भी अपौरुषेयत्वकी असिद्धि- अब एक उपमान प्रमाण माना है मीमांसक सिद्धान्तमें। सदृश चीज देखकर किसी दूसरी चीज सदृशका स्मरण हो जाय उसे उपमान प्रमाण कहते हैं। जैसे वनमें रोझ देखकर गायका स्मरण हो जाय तो उसे प्रमाणभूत माना है। तो उपमान प्रमाण तो तब सिद्ध हो जब अपौरुषेयत्व धर्म वाला कोई और उपमाके लिए मिले। उपमान प्रमाण की यही शकल तो होगी कि देखो यह चीज भी अपौरुषेय है उसकी तरह वेद है इस लिये यह भी अपौरुषेय है। ऐसी तरहकी चीज तो बताते होगी। अपौरुषेयत्व धर्म के आधारसे प्रमाण प्रसिद्ध किसी भी पद वाक्य आदिकका होना सम्भव नहीं है इस लिये अर्थापत्तिसे भी अपौरुषेयत्वकी सिद्धि नहीं होती है क्योंकि अपौरुषेयत्वसे भिन्न कुछ और हो जिससे तुम्हारा अनुपपद्यमान अर्थ कुछ मिले ऐसा कुछ भी नहीं अपौरुषेयत्वसे भिन्नरूपसे जो कुछ न हो सके ऐसे अर्थकी तुम अनुपपद्यमानता किससे सिद्ध करोगे? अर्थापत्तिकी यही तो शकल बन सकती है कि वेद अपौरुषेय है अन्यथा यह बात न बन सकती थी तो अन्यथा यह बात न बन सकती थी उस बातको तो बताओ कि किसके लिये कहा जायगा? वह अर्थ क्या है? यदि कहो कि अप्रामाण्यका अभाव है, यही वह अर्थ है जिसमें (जिसके अन्यथानुपपद्यमानमें) अपौरुषेयताकी सिद्धि होती है याने अब यह शकल बन जायगी कि आगम अपौरुषेय है अन्यथा अप्रामाण्य का अभाव न हो सकता था। तो क्या वह अर्थ जो अनुपपद्यमान सम्भावित हो वह अप्रामाण्याभाव लक्षण रूप है अथवा क्या अतीन्द्रिय अर्थके प्रतिपादन करनेका स्वभाव रूप है यह वह अर्थ इन दूसरे विकल्पोंमें शकल इस तरह बन जायगी कि आगम अपौरुषेय है अन्यथा अतीन्द्रिय अर्थके प्रतिपादन करनेका इसमें स्वभाव न हो सकता था। अथवा वह अर्थ क्या शब्दोच्चारण है जिसकी शकल यों बनेगी कि वेद अपौरुषेय है अन्यथा दूसरे पुरुषोंके लिए शब्दका उच्चारण न किया जा सकता था। यों तीन विकल्पोंमें किस विकल्प रूप माननेमें अर्थको मानते हो जो अर्थापत्तिके लिये अन्यथानुपपद्यमान अर्थ बने

अनुपपद्यमानार्थके विकल्पोंमें प्रथम विकल्पका निराकरण— अनुपपद्यमानार्थक ३ विकल्प तो युक्त है नहीं अर्थात् अप्रामाण्यका अभाव है वेदमें इस कारण वेद अपौरुषेय है। यह कहना यों युक्त नहीं कि अप्रामाण्यका अभाव तो अन्य आगम में भी पाया जा सकता। यह बात नहीं कह सकते कि अन्य आगममें अप्रामाण्यका अभाव मिथ्या है। अन्य आगम भी यदि अन्य आगमके प्रमाणको मिथ्या कहोगे तो

वेदमें भी मिथ्यापन घट जायगा। यदि यह कहो कि अन्य आगमोंमें तो किसी पुरुष को कर्ता माना है और जितने पुरुष होते हैं वे रागादिक दोषोंसे सहित होते हैं तो रागादिक दोषोंसे सहित पुरुषोंके द्वारा जो चीज बनायी गयी है उसमें प्रामाण्य सम्भव है। वह पूरा प्रमाण कैसे हो सकेगा? जो रागादिमान पुरुषोंके द्वारा रचा गया है वह प्रामाण्य कैसे? किन्तु वेदमें यह दोष यों नहीं आ सकता कि किसीने रचा ही है। अप्रामाण्यको उत्पन्न करने वाले दोषोंका आश्रय कोई पुरुष होता है सो कर्ता वेदमें नहीं माना गया। तो इसके उत्तरमें पूछ रहे हैं कि यहाँ कर्ताका अभाव निश्चित है यह कैसे जाना? यदि कहो कि अन्य प्रमाणसे जाना कि वेदका कर्ता नहीं है कोई तो यही बतलावो फिर। अर्थापत्तिकी बात कहना फिर व्यर्थ है। यदि कहो कि अर्थापत्तिसे ही सिद्ध होगा तो इसमें इतरेतराश्रय दोष आता है अर्थापत्तिसे पहिले कर्ताके अभावकी सिद्धि हो और कर्ताके अभावकी सिद्धि हो तो अप्रामाण्यके अभावकी सिद्धि हो। जब यह सिद्ध हो जाय कि इसमें अप्रामाण्यका अभाव है यह प्रमाणभूत है तो अर्थापत्तिसे कर्ता पुरुषके अभावकी सिद्धि हो इस कारण अर्थापत्तिकी सिद्धिके लिये अपौरुषेयसे भिन्न जिस अर्थकी अनुपपत्ति बने वह अर्थ अप्रामाण्यका अभाव तो नहीं ठहरा।

अतीन्द्रियार्थप्रतिपादनस्वभाव व परार्थशब्दोच्चारण अर्थापत्तिसे भी अपौरुषेयत्वकी असिद्धि—अब यदि दूसरा विकल्प लोगे कि अतीन्द्रिय पदार्थके प्रतिपादन करनेका स्वभाव वाला है वह अर्थ जिससे हम अर्थापत्ति सिद्ध करेंगे तो यह बात यों अयुक्त है कि अतीन्द्रिय अर्थका प्रतिपादन करनेरूप अर्थ तो अन्य आगमोंमें भी सम्भव है। वेदसे अतिरिक्त अन्य पुराण शास्त्र अन्य दर्शनोंके आगम ये भी परमाणु काल, आत्मा आदि अतीन्द्रियार्थका भली प्रकारसे प्रतिपादन कर रहे हैं। इस कारण से यह सकल बनाना युक्त न रहा कि वेद अपौरुषेय है अन्यथा याने अपौरुषेय न होता तो अतीन्द्रिय अर्थके प्रतिपादन करनेका स्वभाव न पाया जाता। अतीन्द्रियार्थ प्रतिपादनका स्वभाव तो अन्य आगमोंमें भी पाया जा रहा। इससे द्वितीय विकल्प भी युक्त नहीं रहा। अब तृतीय विकल्प मानोगे अर्थात् दूसरेके लिए शब्दका उच्चारण अन्यथा नहीं बन सकता था इस कारण वेद अपौरुषेय है तो यह कहना भी युक्त नहीं है क्योंकि इस शङ्कामें यह मर्म रखा था कि शब्द नित्य हो तभी दूसरेका कुछ समझाया जा सकता है। जैसे कोई चीज नित्य है तब तो दूसरेको ख्यालमें कराया जा सकता। देखो यह चश्मा है ना, यह इसका है, इस काम आता है, ऐसा है तो वह चीज एक कई दिन रहने वाली है तब तो उसका सकेत कराया जाता, तो इसी तरह शब्द एक है नित्य है तब तो दूसरेको समझाया जा सकता कि इस शब्दका यह अर्थ है। तो दूसरेके लिए शब्दका जो उच्चारण किया जाता है और उससे वह दूसरा अर्थ समझा जाता है तो इससे सिद्ध है कि यह शब्द नित्य है और उस नित्यका जो प्रतिपादन करे वह भी नित्य है। यों अपौरुषेयता इस विकल्पके द्वारा मानी जा रही थी। उत्तरमें

कहते कि यह भी अयुक्त है क्योंकि पदार्थकी प्रतिपत्ति तो सादृश्यसे भी जानी जा सकती है। जैसे रसोईघरमें धुवा देखकर अग्निका ज्ञान किया था तो क्या यह जरूरी है कि रसोईघर वाला ही धुवां कहीं मिले तो अग्नि जानी जायगी ? अरे ! उस धुवा के सदृश जहा धुवा मिलेगा वहां अग्नि जान ली जायगी। इससे यह सिद्ध होता है कि वही शब्द होना चाहिए तब हम दूसरेको समझा सकते हैं। उस शब्दकी तरह दूसरा शब्द मिले उससे भी समझाया जा सकता है। जैसे धूमकी तरह अन्य धूम मिलनेसे अग्निका ज्ञान हो जाता है। तो शब्द नित्य नही है अनित्य है इस कारणसे दूसरेके लिए शब्दका उच्चारण अन्यथा नही बन सकना अत वेद अपौरुषेय है यह बात नही बनती, क्योकि सकेत और समझाना तो सदृश शब्दोके द्वारा हुआ करता है।

प्रसज्यप्रतिषेधरूप अपौरुषत्वकी असिद्धि — अच्छा अब यह बतलाओ कि जो अपौरुषेयपना सिद्ध कर रहे हो जिसमें दो शब्द हैं —अ पौरुषेय। अ का अर्थ है नही, पौरुषेयका अर्थ है कृतक, किया गया। तो इस अपौरुषेय शब्दका अर्थ क्या है ? क्या यह प्रसज्यप्रतिषेधरूप है या पर्युदासरूप है ? प्रसज्यप्रतिषेधका अर्थ यह है कि जिसका अर्थ केवल 'न' कहना है। जैसे एक वाक्य बोला किसीने कि अजैनको भोजन करावो, तो उस अजैनके दो अर्थ हो सकते हैं— जैन न, बस आगे कुछ नही। दूसरा रूप ग्रहण न करना, किन्तु जैनका अभाव इसे कहते हैं प्रसज्यप्रतिषेध तो उसे क्या भोजन कराया जायगा ? कही जैनके अभावको भोजन भी कराया जा सकेगा ? अब दूसरा अर्थ तो यह है कि जो जैन नहीं अन्य हैं उन्हें भोजन कराओ। तो इसे कहते हैं पर्युदास। तो यहाँ जो अपौरुषेयत्व सिद्ध की जा रही है वह प्रसज्य प्रतिषेधरूप माना गया है या पर्युदासरूप माना गया है ? यदि कहो कि प्रसज्यप्रतिषेधरूप माना है तो वह प्रसज्यप्रतिषेध अर्थात् अपौरुषेयत्वका अभाव—क्या सत्ताका उपलम्भ करने वाले प्रमाणके द्वारा ग्राह्य है या अभाव प्रमाणके द्वारा ग्राह्य है ? प्रसज्यप्रतिषेधरूप अपौरुषेय अर्थात् पौरुषेय नही, इतना ही मात्र केवल अभाव क्या सत्वका उपलम्भ करने वाले प्रमाण द्वारा ग्राह्य है या अभाव प्रमाणके द्वारा परिच्छेद्य है ? उनमेसे प्रथम पक्ष तो अयुक्त है अर्थात् सत्ताका उपलम्भ करने वाले प्रमाणके द्वारा भी प्रसज्य प्रतिषेधरूप पौरुषेयत्वका अभाव सिद्ध हो जाय यह बात तो विरुद्ध है क्योंकि ग्रहण करना चाहते हो तुम प्रसज्य प्रतिषेधरूप पौरुषेयत्वका अभाव और चाहते हो ग्रहण करना सत्वसिद्ध करने वाले प्रमाणसे तो यह बात कैसे बन सकेगी ? सत्ताका उपलम्भ करने वाले प्रमाणोंके द्वारा तुच्छ स्वभाव वाला अभाव ग्राह्य नही बन सकता और फिर तुच्छ स्वभावरूप अभाव तो कुछ चीज ही नही कहलाता। इससे प्रसज्य प्रतिषेधरूप पौरुषेयत्वका अभाव सत्ता सिद्ध करने वाले प्रमाणसे न जाना जा सकेगा। यदि कहो कि हम उसे अभाव प्रमाणसे जान लेंगे तो यह तुम्हारी केवल श्रद्धाभरकी बात है। अभाव प्रमाण तो असम्भव है। उस अभाव प्रमाणके द्वारा प्रसज्यप्रतिषेध तुच्छ अभाव स्वभावरूप अभाव ग्रहणमे नही आ सकता। अभाव प्रमाण तो यो भी

असम्भव है कि जिसको न कोई सामग्री है, जिसका न कोई स्वरूप है उसकी सत्ता क्या ? अभाव प्रमाण क्या ? तुच्छाभावरूप अभाव नही होता, न किसीके ज्ञानमे स्वतन्त्रतासे तुच्छाभावरूप अभाव ज्ञानमे आया है। इससे प्रसज्य प्रतिषेधरूप अपौरुषेयत्व मानना तो युक्त नही है अर्थात् पौरुषेयत्वका अभाव सिर्फ अभाव सिद्ध करता है कि उसका कुछ अर्थ ध्वनित नही होता कि किसे कहा जा रहा। ऐसा प्रसज्य प्रतिषेधरूप अपौरुषेयत्व सिद्ध नही हो सकता।

पर्युदासरूप अपौरुषेयत्वकी भी असिद्धि—वेद अपौरुषेय है। इसमें अपौरुषेय है। इसमे अपौरुषेय शब्दका क्या अर्थ है यह पूछा जा रहा है। अपौरुषेय शब्द के दो अर्थ है - एक तो पौरुषेय नही। इसके आगे और कुछ न सोचना पौरुषेयत्वका अभावमात्र। इसे कहते हैं प्रसज्यप्रतिषेध दूसरा अर्थ होता है अपौरुषेय। मायने पौरुषेय नही और कुछ। इसे कहते हैं पर्युदास रूप। तो पुराना प्रतिषेधरूप अपौरुषेय का तो निराकरण किया था अब पर्युदास पौरुषेयकी चर्चा चल रही है। यदि पर्युदास मानते हो तो यह बतलावो कि दूसरी बात जो पौरुषेयसे अन्य है पर्युदास विधि से अपौरुषेय विधिको कहा जाय तो पर्युदासका यह अर्थ है कि यह नही किन्तु अन्य अन्य सब कुछ लेकिन इस प्रकार अपौरुषेय शब्दका पर्युदास अर्थ है तो वह अर्थ बतलावो जो पौरुषेय नही किन्तु अन्य कुछ है। यदि कहो कि वह अर्थ है वेदका सत्त्व। वेद अपौरुषेय है अर्थात् पौरुष नही किन्तु क्या है ? सत्त्वभूत। यदि वह सत्त्व विशेषण सहित याने अपौरुषेयका अर्थ वेदका सत्त्व इतना ही किया है तो वेदका सत्त्व इतना ही मतलब है या वेदका अनादि सत्त्व अनादिसे वेदका सत्त्व है यह सत्त्वका अर्थ यह सत्त्वका अर्थ है ? यदि कहो कि निर्विशेषण सत्त्व माना है तो यह बात हमें भी पसद है, क्योकि पौरुषेयसे अन्य क्या है वेदका सत्त्व। वह प्रत्यक्ष प्रमाणसे प्रसिद्ध ही है। वेद शास्त्र ये सब प्रत्यक्षसे देखे ही जाते। जैसे कि अन्य ग्रन्थ। पौरुषेयके मायने है कृतक किया गया। और उससे भिन्न हुआ उसका अभाव रूप हुआ वेदका सत्त्व। उस पदार्थका सत्त्व। तो इसमे कौन विवाद करता है ? ठीक है, मान लो। यदि कहो क अनादि सत्त्व अर्थ करेंगे। अपौरुषेय है वेद तो इसका अर्थ है कि वेद अनादिसे सत् है। तो उसके अनादित्वमे बहुत कुछ बाधाये दतायी जा चुकी है। अनादित्व सिद्ध नही होता। इस प्रकार अपौरुषेयका पर्युदास रूप भी अर्थ युक्त नही हो सकता।

अव्याख्यात वेदमे अर्थ प्रतीति करनेकी असभवता—अच्छा मानलो वेद अपौरुषेय है तो भी यह वेद व्याख्यान किये जाते हुए अपने अर्थको बताता है या बिना ही व्याख्यान किए अपने अर्थको बताता है ? शकाकारके मतके अनुसार मान लो थोडी देरको कि वेद अपौरुषेय है मगर वह व्याख्यात होकर अपने अर्थमे विश्वास कराता है या अव्याख्यात होकर ? याने उसका व्याख्यान किया जाय तब वह वेद

अपने अर्थको बताता है या व्याख्यान न भी किया जाय तो भी वेद अर्थकी प्रतीति कराता रहता है ऐसे दो विकल्प किये गए। यदि बिना व्याख्यान किए ही बिना उस की व्याख्या टीका, अर्थ विवरण किए ही वेद अपने अर्थमे प्रतीति कराने लगे तो इस मे तो वेद जैसे द्विजोको अपना अर्थ बता देते इसी तरह बौद्धादिकको क्यो अपना अर्थ बताते रहते हैं तो सबको बताते रहे। इसलिए अव्याख्यात होकर वेद अपना अर्थ नही बता सकता।

व्याख्यात वेदमे भी अर्थप्रतीति करनेकी असमर्थता—यदि कहो कि व्याख्यात होकर वेद अपना बता देगा व्याख्यान किये जानेपर यह वेद अपना अर्थ बताता है तो यह बतलावो कि उसका व्याख्यान कैसे होता है ? क्या स्वत. व्याख्यान होजाता है या किसी पुरुषके द्वारा व्याख्यान होता है ? किस तरह व्याख्यान होता है ? यदि कहो कि उसका व्याख्यान स्वतः ही चलता रहता है तो यह बात यो युक्त नही कि वेद तो जड है, वह कुछ बोल सकता नही है। शब्द है आकार है तो उसके पदवाक्य का यही अर्थ है, दूसरा अर्थ नही है यह कैसे समझा सकता है वेद ? और यदि समझा दे वेद कि मेरे पदोका यह अर्थ है, दूसरा अर्थ नही है तब फिर उसके अर्थमे भेद क्यो लोग करते ? जब वेद ही स्वय अपने आप अपना अर्थ बताने लगा तो लोग उसमे विवाद क्यो करते हैं ? कोई कहता है कि इस वाक्यका यह अर्थ है तो कोई कहता कि यह अर्थ है यह विवाद क्यो ? जब वेद ही स्वत. व्याख्यान करने लगा, अर्थ बताने लगा तो फिर व्याख्यानोमे भेद नही आना चाहिये। इससे वेदका स्वत व्याख्यान तो बन नही सका। यदि कहो कि पुरुषसे व्याख्यान हो जायगा तब फिर पुरुषोके व्याख्यानसे जो कि पौरुषेय है जो पुरुषके द्वारा किया जाय उसे पौरुषेय कहते हैं पुरुषसे व्याख्यान चले तो वेदका व्याख्यान पौरुषेय व्याख्यानसे यदि अर्थका ज्ञान माना जाय तो फिर उसमें दोषकी आशका कैसे न होगी ? क्योकि पुरुष तो सदोष हैं। वे विपरीत भी अर्थ बताते हुए देखे जाते हैं। जब पुरुषसे वेदका व्याख्यान माना तो पुरुष अनेक विपरीत भी अर्थ कर सकता है। जैसा उनका ज्ञानप्रकाश हुआ अज्ञान हुआ अज्ञान हुआ उसके अनुसार वे भिन्न भिन्न अर्थ तो करेंगे।

सवादसे प्रमाण माननेपर अपौरुषेयत्वकल्पनाकी अनर्थकता—यदि कहो कि नही, व्याख्यान तो पुरुषसे होता है पर सम्वादसे प्रमाणता मान ली जाती है। सम्वादका अर्थ है सच्चाई। जिसमें विवाद उत्पन्न न हो, सही ज्ञानका निर्णय हो, उससे प्रमाणता मान ली जाती है उत्तर देते हैं कि सम्वादसे प्रमाणता माननेकी बात कहो, उसमें अपौरुषेयपनेकी कल्पना करना व्यर्थ है। सम्वादका अर्थ क्या है ? जो चीज प्रत्यक्षसे ग्रहणमें आ सकती है उसमें तो हमारा यह इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष ही सम्वादक है। हम प्रत्यक्षसे ही कहते हैं कि यह वस्तु इस ही प्रकारकी है। इसमे किसी प्रकारका विवाद नहीं। और जो पदार्थ अनुमेय होते हैं, अनुमान प्रमाणसे ज्ञेय

विकल्प —यदि ऐसा कहो कि वेदके जो व्याख्याता हुए हैं जो लोग मनु आदिक उनकी प्रज्ञा सातिशय थी, उनकी बुद्धि प्रबल थी, वे प्रतिभा सम्पन्न थे। अत उनके व्याख्यानसे यथार्थ ही ज्ञान होता है अर्थात् बुद्धिमान मनु आदिक महापुरुषोंके व्याख्यानसे यथार्थताका निर्णय हो जाता है। इसके उत्तरमें यह पूछा जा रहा है कि क्या तुमने यह निर्णय कर लिया है कि उनकी प्रज्ञा सातिशय थी, वे बड़े प्रतिभासम्पन्न थे, उनकी प्रज्ञामें चमत्कार था। यदि ऐसा तुम मान रहे हो तो यह बतलावो कि उन आदिककी प्रज्ञामें अतिशय कैसे आया? उनकी बुद्धिमें जो विशेष निर्मलता आई और बहुत कुछ सारी समझनेकी प्रज्ञा जगी तो कैसे जगी? क्या स्वत ही वह प्रज्ञाका अतिशय बन गया? या वेदमें अर्थका अभ्यास करनेसे उनकी प्रज्ञामें अतिशय आया या भाग्योदयसे उनकी प्रज्ञामें अतिशय आया? या ब्रह्मसे उनकी प्रज्ञामें अतिशय आया? ऐसे ये चार विकल्प किए गये हैं। वेदव्याख्याता मनु आदिकके व्याख्यान यथार्थ हैं क्योंकि उनकी प्रज्ञामें बड़ा अतिशय था और अतिशय प्रज्ञावानके वचन यथार्थ होते हैं। ऐसा कहनेपर प्रज्ञामें अतिशयकी निष्पत्ति कैसे हुई? इस सम्बन्धमें चार विकल्प किए गए।

मन्वादिमें स्वत प्रज्ञातिशय होनेका निराकरण—यदि कहो कि मनु आदिककी प्रज्ञामें अतिशय आया करता है तो ऐसी प्रज्ञावोंके अतिशय सबमें ही आ जाने चाहिये क्योंकि प्रज्ञाके अतिशय स्वत. आने लगे तो स्वत.में फिर नियत्रण क्या, कि मनु है आदिककी प्रज्ञामें अतिशय आया और अन्य जनोंकी प्रज्ञामें अतिशय न आया इस कारण स्वत ही प्रज्ञातिशय हो जाता है यह बात तो युक्त नही है, स्वत होने वाली बातमें नियत्रण नही किया जा सकता। यह बात अमुकमें ही होवे, अन्य किसीमें न होवे। किसीमें हो अन्य किसीमें न हो ऐसे नियत्रणका कारण ही और कुछ होता है, यह बात स्वत नही बन सकती।

वेदार्थाभ्याससे प्रज्ञातिशय होनेका निराकरण—यदि कहो कि वेदार्थके अभ्याससे उनकी प्रज्ञामें अतिशय आ गया उन्होंने वेदार्थका बड़ा अभ्यास किया। बारबार अभ्यास करनेसे उनकी प्रज्ञा अत्यन्त स्पष्ट हो गयी। बुद्धिमें पूर्ण निर्मलता जग गयी। ऐसा यदि कहते हो तो यह बतलावो कि क्या ज्ञात वेदार्थका अभ्यास था उनका या अज्ञात वेदार्थका अभ्यास था? मनु आदिकने वेदार्थका अभ्यास किया तो क्या जाने हुए वेदार्थका अभ्यास किया या न जाने हुए वेदार्थका अभ्यास किया? इन दो विकल्पोंमेंसे यह तो कह नही सकते कि बिना जाने हुए ही वेदार्थका अभ्यास किया। यदि अज्ञात अर्थका अभ्यास बनने लगे तो वही दोष आयगा कि सबको उस वेदार्थका अभ्यास आ जाना चाहिये। जब बिना जाने हुए अर्थात् अज्ञात वेदार्थका अभ्यास चलने लगा तो जो ढोर चराने वाले हैं उन सबको वेदार्थका अभ्यास बन जाना चाहिए। क्योंकि उनको जाननेका नियत्रण ही नही कि पहिले जानें फिर

उसका अभ्यास करे अब तो अज्ञातका अभ्यास चलने लगा ना। इससे अज्ञातका वेदार्थ अभ्यास मनु आदिकके नहीं बन सकता यदि कहो कि अज्ञान अर्थका अभ्यास हुआ। उनके तो यह बतलावो कि उसका ज्ञान कैसे हुआ ? जाने हुए वेदार्थका अभ्यास किया उन्होंने तो हम ही जाननकी बात पूछ रहे हैं कि उनका जानना हुआ कैसे ? स्वतः हुआ या किसी अन्य कारणसे हुआ ? यदि स्वतः कहोगे तो इसमें एक तो यह दोष आता कि फिर स्वतः ज्ञान होता तो सबको क्यों नहीं हो जाता ? दूसरी आपत्ति यह है कि इसमें अन्योन्याश्रय दोष आ जाते हैं। किसी प्रकारके जब स्वतः वेदार्थका ज्ञान बने तब वेदार्थका अभ्यास बने। यदि कहो कि अन्य प्रमाणोंसे या अन्य पुरुषसे उसका ज्ञान हो जाता है कि मनु आदिकने अभ्यास किया तो फिर जिस पुरुषसे ज्ञान हुआ उस पुरुषका ज्ञान भी अन्यसे होगा इस तरह अनवस्था हो जायगा। तब तुम्हारी बात यह निर्णयमें आयी कि अतीन्द्रिय अर्थका द्रष्टा न मानने पर अर्थ परम्परासे अटपट प्रसंग आनेसे यथार्थ निर्णय नहीं बन सकता है। इसमें यह विकल्प करना ठीक नहीं रहा कि वेदार्थके अभ्याससे धर्मादिककी बुद्धिमें अतिशय जगा और इसी कारण उनके व्याख्यानमें यथार्थता बसी हुई है।

अदृष्टसे प्रज्ञातिशयकी असिद्धि—अब तीसरे विकल्पकी चर्चा चल रही है कि यदि यह कहो कि अदृष्टसे मनु आदिककी बुद्धिमें अतिशय आ गया है तो अदृष्ट तो सब जगह है। सब प्राणियोंमें बसा हुआ है सभी प्राणियोंमें अतिशय क्यों नहीं पा जाता ? बुद्धिकी निर्मलता जब भाग्यसे आने लगी तो भाग्य सब जीवोंमें लगा है पर सब जीवोंकी बुद्धि निर्मलता नहीं आ पाती इससे सिद्ध है कि अदृष्टसे प्रज्ञाका अतिशय सिद्ध नहीं होता। जो कारणसर्वत्र एक समान है फिर उनमें एक जगह तो उसका कार्य मानना न मानना और अन्य जगह कार्य और नियन्त्रण बना देना कि यहां ही तो काम होगा अदृष्ट होनेसे मनु आदिककी ही प्रज्ञाका अतिशय होगा, अन्यकी प्रज्ञाका अतिशय न होगा। यह नियन्त्रण अविशिष्ट कारणमें नहीं बन सकता। यदि कहो कि प्रज्ञाके अतिशयको लाने वाले अदृष्ट मनु आदिकमें ही सम्भव है, अन्य प्राणियोंमें सम्भव नहीं है तो पूछा जा रहा है उनमें कि प्रज्ञाके अतिशयको रचाने वाले अदृष्टकी उत्पत्ति मनु आदिकमें ही है यह बात कैसे समझी ? यदि कहो कि वेदके अर्थका वे व्याख्यान करते हैं, अनुष्ठान करते है, पालन करते हैं इससे सिद्ध होता है तो फिर वही प्रश्न हो जायगा। क्या वह ज्ञात वेदार्थका अनुष्ठान करता है या अज्ञात वेदार्थका अनुष्ठान करता है ? अनुष्ठानका अर्थ है जो कुछ उन वाक्योंमें कहा है थोड़ा उनका पालन करना। उस पर विकल्प बनाना तो यह अनुष्ठान ज्ञात वेदार्थका किया गया या अज्ञात वेदार्थका किया गया या अज्ञात वेदार्थका किया गया ? यदि कहो कि अज्ञात वेदार्थका किया गया तो इसमें यह ही दोष आयगा। तब फिर सभी और घराने वालोंको, सभी दरिद्रियोंको, मूर्खोंको भी वेदार्थका अनुष्ठान हो जाना चाहिये

जाय तो इसमे कौनसी कठिनाई की बात है ?-इस कारण वेदके अर्थका ज्ञान करनेके लिये अतीन्द्रिय अर्थका द्रष्टा सर्वज्ञ मानना यह बात युक्त नही हैं। सर्वज्ञसे कुछ भी प्रयोजन नही है। यह तो शब्द रचना है। पद वाक्य है। जैसे लौकिक पद वाक्य सुनते ही हम उसका अर्थ समझ जाते है इसी प्रकार वैदिक पद वाक्योको सुनकर भी हम उसका अर्थ समझ जायेंगे।

अभ्याससे लौकिक शब्दोंकी तरह वैदिक शब्दोंकी अर्थप्रतिपत्ति माननेपर पौरुषेयताका समर्थन —अब उक्त शकाका समाधान करते हैं कि यह कहना असार है क्योकि तब तो फिर जैसे लौकिक पद वाक्य है तैसे ही वैदिक पद वाक्य मान लो। तो लौकिक पद वाक्योके भी तो अनेक अर्थ होते हैं। तो वैदिक शब्दके भी अनेक अर्थ हो गए। अब उन अनेक अर्थोंमेसे अन्य अर्थोंका परिहार करके जिस अर्थको हम कहना चाहते हैं उस ही अर्थका हम नियम बनायें तो यह कैसे हो सकता है ? जब शब्दोके अर्थ अनेक हैं तब उनमेसे हम यही अर्थ लें अन्य अर्थ न लें ऐसा नियम कैसे किया जा सकता है ? यदि कहो कि प्रकरण आदिकसे नियम बन जायगा लौकिक शब्दका भी तो प्रकरणसे नियम बनता है जैसे कोई भोजन करने बैठा है और कहे सैन्धव लावो तो सैन्धवका अर्थ घोडा भी है और नमक भी है। तो कोई वहाँ घोडा लाकर खडा कर देता है क्या ? नमक ही लाता है। तो जैसे प्रकरण आदिकसे लौकिक प्रसगोमे नियम चलता है इसी तरह प्रकरण आदिकसे उस का भी नियम बन जायगा। कहते हैं कि यह भी बात नही बन सकती है क्योंकि प्रकरण आदिककी भी तो अनेक प्रकारसे प्रवृत्ति की जाती है। जैसे कि सधान आदिक काव्य हैं जिनके दो दो प्रकरणके अर्थ लगते जाते हैं। जैसे सुना है कि एक धनजय कविका रचित द्विसधान काव्य है एक ही श्लोकमें रामायण और महाभारत दोनोंके अर्थ लगते जाते हैं तो प्रकरण भी तो अनेक बन जाते है। यदि लौकिक गुणादिक शब्दोसे समान होनेके कारण वैदिक आदिक गुण शब्दोकी रचनासे ज्ञान कर लिया जाता है तो लौकिक शब्दोमे जैसे पौरुषेयता भरी हुई है इसी तरह वैदिक शब्दोमे भी पौरुषेयता क्यो नही बन जाती ? जब लोकमे जो शब्द बोले जाते हैं उन शब्दोका जैसा अर्थ है वही अर्थ वैदिक शब्दोका बनता है तो लौकिक शब्दोमें पौरुषेयत्वपना है। तो वैदिक शब्दोमे भी पौरुषेयत्व क्यो न आ जायगा ? लौकिक जो शब्द है अग्न जल और पद वाक्य, मै मदिर जाता हूँ आदिक तो इन शब्दोकी रचना है कि नही ? ये शब्द अर्थवान हैं तो शब्दोकी यह अर्थवत्ता पौरुषेयपनेसे व्याप्त है। ये शब्द अर्थवान है और पुरुषोके द्वारा उच्चारण किए गए हैं। देखिये इन लौकिक पदोमे ये दोनो बातें हैं कि नही। अर्थत्त्व और पौरुषेयत्व। शब्द अपना अर्थ रखते हैं और ये पुरुषके द्वारा उच्चारित हैं। तो लौकिक शब्दोमे जैसे दो धर्म व्यापक है अर्थवानपना और पौरुषेयपना तो इसी प्रकार ये वैदिक अग्नि आदिक शब्द भी दोनो धर्मोंमे व्याप्त होना चाहिये। ये वैदिक शब्द भी अर्थवान हुए और पौरुषेय हुए, उनमे

से पौरुषेय धर्मको तो ये वेदका छोड दें और अर्थवान धर्मको ये ग्रहण करें ऐसा क्यो, या तो दोनो धर्मोंको ग्रहण करे या दोनोको छोड दे। जब लौकिक शब्दोकी समानता देखकर वैदिक शब्दोंसे अर्थ परिज्ञानकी बात कही जा रही है तो जैसे लौकिक शब्दो मे अर्थवत्ता पडी है इसी तरह पौरुषेयत्व भी है। तो दोनो ही बातें वैदिक शब्दोमे आ जायेंगी।

लौकिक और वैदिक शब्दोमें समानता होनेसे पौरुषेयत्व व अपौरुषेयत्वके विभागकी असिद्धि—देखो ! लौकिक शब्द अग्नि जल पृथ्वी आदिक ये शब्द ही तो हैं। शब्दके स्वरूप हैं ना, और वैदिक शब्द भी पृथ्वी जल, अग्नि, इन्द्र आदिक ये भी शब्द ही हैं तो लौकिक शब्दोंमें और वैदिक शब्दोमे शब्दस्वरूपकी समानता है कि शब्दस्वरूपमे कुछ फर्क है ? जैसे अग्नि, जल भू आदिक लौकिक शब्द मे आते है। जैसे शब्दोके आकारस्वरूप इस लोकव्यवहारके शब्दमे हैं वैसे ही शब्दक स्वरूप वैदिक शब्दमे है तो शब्दस्वरूपकी समानता है इन दोनोमें और संकेतग्रहणकी अपेक्षा रखकर अर्थका प्रतिपादन करदे यह भी दोनोंमे समान है। जब शब्दोका संकेत ग्रहण किया जाता है गो शब्द कहनेसे इस अर्थका बोध होता है इस प्रकार शब्द ग्रहणकी अपेक्षा रखकर अर्थको बताना यह बात शब्दोंमें है ना ! तो जैसे संकेत ग्रहण की अपेक्षासे अर्थका प्रतिपादन करना, इस शब्दका यह अर्थ है यह प्रकट हो जाना। जैसे लौकिक शब्दोमे पाया जाता वैसे ही वैदिक शब्दोंमे भी पाया जाता तो यह दूसरी बात भी समान हो गई। अब तीसरी बात देखो शब्द अगर उच्चारित न किया जाय तो पुरुषके सुननेमे नही आता यह बात जैसे लौकिक शब्दोंमे है इसी तरह वैदिक शब्दोंमें भी है। लौकिक शब्द अग्नि जल आदिक यह बोला न जाय तो दूसरा व्यक्ति सुन कैसे लेगा ? बोला जानेपर ही तो सुना जा पाता है। तो देखो ये वैदिक शब्द भी बोले न जायें तो दूसरा पुरुष सुन कैसे पायगा ? वह भी तो बोले जानेपर सुन सकेगा। तो यह तीसरा धर्म कि उच्चारण न किया जाय शब्दका तो वह पुरुषके द्वारा सुननेमें नही आता, यह भी दोनो जगह समान हैं, लौकिक शब्द भी अनुच्चरित सुननेमे नही आते और वैदिक शब्द भी अनुच्चरित सुननेमे नही आते। इतनी तो समानता है। अब विशेषता क्या रही कि जिससे यह कहा जाय कि वैदिक शब्द तो अपौरुषेय होता है और लौकिक शब्द पौरुषेय होता है। जब सब तरहसे उनमें समानता मिल रही है तो यह अन्तर कैसे हो सकेगा ? संकेतको उल्लंघन न करके अर्थका जाहिर हो जाना यह बात भी दोनो जगह समान है।

शब्दोंको पौरुषेय माननेपर ही संकेत व अर्थावगमकी सिद्धि—अब यह भी विचार करिये कि ये शब्द यदि अपौरुषेय हो जाते हैं तो पुरुषकी इच्छाके अनुकूल फिर उनके अर्थका प्रतिपादन नहीं बन सकता है। देखा जाता है यह वेदमें भी कि पुरुषोके द्वारा जिस जिस अर्थमे वे शब्द संकेतित हुए हैं उन शब्दोका जिस अर्थमें संकेत

बनाया है उन उन अर्थोंका वे शब्द निर्विवाद ढगसे प्रतिपादन करते हैं। यदि ऐसा न होता तो फिर सकेत भेदकी कल्पना करना अनर्थक है, उन शब्दोका आकार होना आदिक ये अनर्थक हो जायेंगे इससे शब्द हैं जैसे लौकिक तैसे ही वैदिक। लौकिक शब्द पौरुषेय है तो वह भी पौरुषेय है वेदकी प्रमाणता सिद्ध करनेके लिए अपौरुषेय मानता यह तो बनता नही इसके बजाय यह यत्न करना चाहिये कि इन वैदिक ग्रथों मे निबन्धोमें परस्पर कही विरोध नही है और जैसा बताया है वैसे ही पदार्थोंका स्वरूप मिलता है ऐसा सम्वाद बताकर प्रमाणता सिद्ध करनेका यत्न करना चाहिये।

वैदिक शब्दोमे रचनाकी अविशिष्टता होनेसे पौरुषेयत्वकी सिद्धि—अपौरुषेयतासे न प्रमाणता सिद्ध होती और न अपौरुषेयत्वकी सिद्धि होती। इससे यह निर्णय करिये कि जो जो पद मनुष्यो द्वारा रचित वचन रचनाके समान हैं वे शब्द पौरुषेय होते हैं। जो भी शब्द ऐसे हों कि जिन्हे मनुष्य रचता है बोलता है तो वह शब्द पौरुषेय ही है। जैसे कि जो जो टूटे फूटे जीर्ण शीर्ण कुवा महल आदिक नये कुवा महल आदिककी रचनाके समान हैं तो वे पौरुषेय हैं, कृतक हैं। उनके कर्ताका भी पता नही है, कब बने, किसने बनाया इसका भी पता नही है, लेकिन उनके देखते ही इनके कर्ताका तो सामान्य रूपसे लोग स्मरण कर लेते हैं। देखो कितना विशाल किला किसी कारीगरने बनाया था। तो किसीके द्वारा यह बनाया ही गया था इस बातमें कोई सदेह नही रखता। तो जैसे पुराने जीर्ण शीर्ण कुवा महल आदिक नये कुवा महल आदिककी रचनाके समान है तो वे पौरुषेय है इसी प्रकार ये वैदिक वचन शब्द भी मनुष्य द्वारा रचित वचनके समान हैं इस कारण ये भी पौरुषेय हैं। इस अनुमानमे जो हेतु दिया है कि मनुष्य द्वारा रचित वचनरचनाके समान होनेसे। यह असिद्ध नही है इसका आश्रय भी असिद्ध नही है, क्योकि वैदिकी जितनी वचन रचना है वह सब प्रत्यक्षसे जाहिर हो रही है। कानोसे सुननेमें आ रही है और वे शब्द उन्ही शब्दोके समान हैं जैसे कि लोकव्यवहारमे बोलते हैं। क्या लोकव्यवहार का अग्नि, जल, शब्द और किस्मका है और वेदकीय अग्नि जल शब्द और किस्मका है? जैसे लौकिक शब्द कानोमे श्रवणमें आते हैं तैसे ही वैदिक शब्द भी कानोमे श्रवणमे आते है, अन्य किसी इन्द्रियमे समझने नही आते। तो यह सब समानता स्पष्ट है। इस कारणसे आश्रयासिद्ध दोष नही लगता और इसका सपक्ष न हो यह भी बात नही है। बराबर स्पष्ट विदित हो रहा है, कि नये कुवा महल आदिकमे ये पौरुषेय है, किसी पुरुष कारीगरके द्वारा बनाये गए हैं तो पौरुषेयपना सपक्षमें बिल्कुल प्रसिद्ध है। तो इसी प्रकार मनुष्यरचित रचना रचनाकी तरह ये वैदिक शब्द हैं अतएव ये भी पौरुषेय हैं। हेतु स्वरूपासिद्ध भी नहीं है, क्योकि जैसे वैदिकी वचन रचना है इसी प्रकार लौकिक वचन रचना है। उसमें कोई विलक्षणता ग्रहण करने वाला प्रमाण नही है। जैसे ये शब्द हैं लौकिक कानोंसे सुननेमे आने वाले और उच्चारण किये जाने वाले इसी प्रकार वैदिक शब्द भी कानोंसे सुननेमें आते और मुखसे बोलने

मे आते। तो जब लौकिक शब्दोमे और वैदिक शब्दोमें कोई विशेषता नही है तो फिर उनमेसे एकको पौरुपेय कहना, एक को अपौरुपेय कहना यह नहीं बन सकता, क्योंकि उन दोनो वचनोमे कोई विशेषता नहीं है।

अप्रामाण्यके अभावरूप विशेपसे गुणवान कारणका अनिराकरण— यदि कहो कि अप्रामाण्यका अभावरूप विशेष है अर्थात् लौकिक शब्द और वैदिक शब्द सब तरहसे समान हैं तो भी यह अन्तर है कि वैदिक शब्दमे अप्रामाण्यका अभाव है, पूर्ण प्रमाणभूत है, लौकिक शब्दमे इसका नियम नही है। कोई प्रमाणभूत होते अप्रमाणभूत होते। उत्तर देते हैं कि यह भी बात युक्त नही है। प्रमाणभूत होनेपर भी पौरुपेयत्वका निराकरण नही होता। यह नही कि जो प्रमाणभूत हो वह अपौरु-षेय हो, ऐसा नियम नही बनता। जिसमे सम्वाद हो, जिसमे संशय विपर्यय अनध्यव-साय उत्पन्न न हो वह प्रमाण बनता है। चाहे लौकिक शब्द हो अथवा वैदिक, प्रामा-ण्यकी सिद्धि सम्वादसे होती है अपौरुपेयसे नही होती। तो प्रमाणता विद्यमान होने पर भी पौरुपेयत्वका खण्डन नहीं कर सकते। जैसा विशेष भेद प्रतिपादित होकर निराकरण करेगा वैसा विशेष भेद इसके है ही नहीं, इसलिये वैदिक शब्द हो या लौकिक शब्द हो दोनोंमें सब तरहसे समानता है। अत लौकिक शब्दको पौरुषेय कहना और वैदिक शब्दको अपौरुपेय कहना यह विभाग नही हो सकता। और अप्रा-माण्यका अभाव है, यह जो विशेष है तो दोषवान पुरुषोंका यह निराकरण करता है। कोई बात प्रमाणभूत है, उसमे अप्रमाणता नही है तो वह क्या सिद्ध करता है कि इस का रचने वाला, इसका कारणभूत जो पुरुष है वह दोषवान नही है। तो अप्रमाणका अभाव है ये जो विशेषण है वह अप्रामाण्यके कारणभूत दोषवान पुरुपका निराकरण करता है, किन्तु अप्रामाण्यको हटाने वाले गुणवान पुरुपका निराकरण नही करता। तो अप्रामाण्यका अभाव बतानेसे यह सिद्ध होगा कि इसका रचने वाला गुणवान है कोई पुरुष।

आगमकी प्रमाणताका मूल सर्वज्ञ प्रभु—अब यहाँ शकाकार कहता है कि भाई बात ऐसी है कि दोषवान पुरुषसे जो रचना बनती वह तो प्रमाणभूत होती नही इसे तुम मानते हो और गुणवान पुरुष सर्वज्ञ पुरुष कोई दुनियामें होता नही इसलिए वेद अपौरुपेय है। कहते हैं कि यह बात अयुक्त है। गुणवान पुरुषका सद्भाव है। जब आत्माका स्वरूप ज्ञान है और उसका काम जानना है, यह स्वरूप जानता रहे तो उस जाननमें सीमा कैसे? जाननका जो आवरण है। रागद्वेष अथवा पौद्गलिक कर्म ये जहा हट जाते हैं वहांपर ज्ञान पूर्ण प्रकट हो ही जाता है और जिसका ज्ञान परिपूर्ण है उसीको सर्वज्ञ कहते हैं। सर्वज्ञताका सद्भाव है और इसका पहिले सर्वज्ञ सिद्धिके प्रकरणमे बहुत विस्तारसे निरूपण किया गया है। यदि सर्वज्ञका अभाव मान लिया जाय तो अप्रामाण्यका अभावरूप विशेषण फिर ठहर नही कर सकता। शास्त्रमें

ही यह है कि जो हितकी प्राप्ति करानेमे और अहितका परिहारकरानेमे समर्थ हो। अब सामान्यको जाना और ज्ञानमात्र ही अर्थक्रिया बनी तब उससे प्रवृत्ति क्या हो सकती है। दूसरी बात —जिस अनुमानके प्रमाणमे तुम धूम और अग्निको सामान्य मान रहे, सामान्यके ज्ञानसे ही विशेषका ज्ञान होना मान रहे और मुख्यता सामान्यका दे रहे हो तो यहा वाच्य वाचकके कथनमे भी शब्द वाचक है और अर्थ वाच्य है इस का भी अर्थ जातिरूप लगा लो, व्यक्तिरूप न लगाना चाहिये क्योकि दोनो जगह न्याय समान है। जो बात अनुमानके प्रसङ्गमे लगाते हो वही बात यहा वाच्य वाचकके सम्बन्धमें भी लगाइये।

शब्दसादृश्यकी असिद्धिका अभाव—शकाकार कहता है कि सदृशत्व धर्म से यदि अर्थकी प्रतीति होना माना जाय तो वह इसलिये सम्भव नही है कि जो एक चीज है उसमें सदृशता कहासे आयगी? शब्द एक ही है, उसकी सदृशता नही हो सकती। उसके सदृश कोई दूसरा सिद्ध हो और वाचक हो सो नही बन सकता। यदि कहो कि सामान्यके सम्बन्धसे उन सब सदृशोमे समानता आती है तो यह बतलावो कि जिस शब्दका अर्थ जाना था अर्थवान शब्द तो पहिले देखा था और जाना था। वह तो उसी क्षणमें नष्ट हो गया। अब दूसरी बार जो कोई भी उत्पन्न हो रहा है शब्द इसका यह अर्थ है याने यह। यो अर्थ वाला है यह कैसे जाना जा सके? उत्तर कहते हैं कि इस तरहस तो अनुमानका भी उच्छेद हो जायगा क्योकि अनुमानमे भी यह लगावोगे कि जो धुवां पहिले जाना था वह तो वहां नष्ट हो गया। वर्तमान घटनामे जो धूम स्थान जाना जा रहा है वह एक नया है तो उस नये साध्यके साथ व्याप्तिका धर्म कैसे आ सकता है? तो यो अनुमानकी बात करना भी बेकार है। शकाकार कहता है कि शब्द सदृश होनेसे वाचक कहलाता है सो बात नही किन्तु वह एक है इस कारण वाचक हैं। प्रत्येक पुरुष यही जानता है कि मैंने जो पहिले सम्बन्धग्रहणका शब्द जाना था वही शब्द अब यहा हैं सो जान रहे हैं? उत्तरमे कहते हैं कि बारबार उच्चारण किए जाने वाले शब्द एक समान हो जानेसे वे एक रूपसे निश्चयमे आ रहे हैं और ऐस एकरूपसे निश्चयमे आना भी चाहिये। उस ही सदृशता से अर्थका ज्ञान होता है जिस सदृशतासे एकत्वमे प्रतीति होने लगे। जैसे रसोईघरमे धूम देखा था अब पर्वतमे धूम दिख रहा है तो उसे एक समान दिखता है और यो ही लगता कि वही धूम हैं एकत्वरूपसे जाना तो यह तो सदृशताकी शोभा है और उस सदृशतामें अर्थकी प्रतीति होती है, विशेष होनेसे नही होती।

सादृश्यकी व्यक्तिनिष्ठता—उक्त निराकरणसे यह भी अयुक्त हो गया कि जब तक शब्दका उच्चारण नही किया जा सकता तब तक वह सम्बन्धका कारण कैसे बने? और उच्चारण किया हुआ शब्द नष्ट हो जाता है फिर उसके सम्बन्धसे प्रयोजन क्या रहा? इस कारण शब्दको एक और नित्य मानना चाहिए। यह बात

धोठ तालू व दिन मुखके स्थान है, क्या इनमे शब्द भरे हैं। वे पन्य पदार्थ शब्द पाए, दर्थ है रहते है। जब इसका उस विधिसे प्रयोग होता है कठ ओठ, तालू व दन्त का जिस तरह संयोग वियोग किया जाता है वैसे ही पवन इस का प्रयोग चलता है तो इससे शब्दकी उत्पत्ति होती है, पर इसने संकेत समझ रखा है शब्दका कि इस शब्दका यह अर्थ है तो जब उस उस प्रकार शब्द सुनते हैं तो उस उस प्रकारके अर्थका ज्ञान लेते हैं। तो शब्दमें अर्थका अवगम होता है इस समय सद्ध नहीं होता कि वह नित्य है। अनित्य पदार्थोंसे भी साध्यका बोध हुआ करता है। तो शब्द नित्य नहीं सिद्ध हुए जिसके कारण तुम आगमको नित्य मानकर प्रमाण बतलानेकी चेष्टा करो। आगम नित्य है यह बात नहीं किन्तु उसका मूल प्रवक्ता सर्वज्ञ प्रभु है इस कारण वह प्रमाण है। आगमकी प्रमाणताका यह साधन है।

सदृश साधनसे साध्यप्रतिपत्तिकी तरह सदृश शब्दसे अर्थप्रतिपत्ति— यह कहनेपर कि जैसे सदृश धूमसे अग्निका ज्ञान हो जाता है इसी प्रकार सदृश शब्दसे अर्थका ज्ञान हो जाता है शंकाकार कहता है कि धूम विशेष अग्निकी प्रतिपत्तिका कारण नहीं है किन्तु धूम सामान्य ही अग्निके परिज्ञानका कारण है। उत्तर देते हैं कि यह बात ठीक नहीं है क्योंकि सामान्य ही क्या चीज कहलाती है? अनेक व्यक्तियों की सदृशताका ही नाम सामान्य है। और जहाँ अनेक व्यक्ति हैं उन व्यक्तियोंसे साध्य की सिद्धि होती है। कोई भी मनुष्य ऐसा कभी ज्ञान नहीं करता कि धूमत्व होनेसे अग्निका ज्ञान किया, किन्तु ऐसा ज्ञान करता है कि धूम होनेसे अग्निका ज्ञान किया। धूम जो कहलाया व्यक्ति और धूमत्व कहलाया सामान्य तो किसी पुरुषने ऐसा अनुमान नहीं किया कि इस पर्वतमें अग्नि है क्योंकि धूमपना होनेसे। धूमपनेकी बात कोई नहीं कहता; धूमको ही कहता है। तो जैसे धूमत्वके हेतुसे अग्निका ज्ञान नहीं होता किन्तु धूमसे होता है और वह ज्ञान सामान्य विशिष्ट दोनों व्यक्तियोंका अर्थात् साध्य और साधनका ग्रहण करनेपर घटित होता है परन्तु धूम सामान्य और अग्नि सामान्यसे अनुमेय और अनुमापक बनें ऐसा किसीने नहीं समझा है और इसमें सामान्य विशिष्ट विशेषणताके ढंगसे इसका उपयोग करता हो कोई सो भी नहीं। अन्यथा यानें सामान्यको ही साधन मान लिया जाय तो सामान्यमात्र ही साध्य बन जायगा। यहाँ सामान्यसे अर्थ जातिको लेना है, भावको लेना है। तो यदि सामान्य मात्र ही साध्य साधन रहे, व्यतिरेक न रहे तो उससे चलाना आदिक अर्थक्रिया बन ही नहीं सकती। रही ज्ञान अर्थ क्रियाकी बात सो ज्ञानरूप अर्थक्रिया तो उसी समय हो जाती है जिस समय ज्ञान किया। फिर तो जो रसोई आदिक बनाना चाहते, कोई चीज चलाना चाहते उन पुरुषोंको अनुमेय अर्थका प्रतिभास तो हो गया और वह क्या? एक सामान्य जाति। जिससे कि दाहादिक अर्थक्रिया नहीं होती है और इसी कारण प्रवृत्ति न हो सकेगी और जिनकी प्रवृत्ति न हो सके उनका अप्रामाण्य हुआ करता है। प्रमाणका लक्षण

है। उस शब्दका हम बारबार उच्चारण करते हैं और उसमें हेतु यह दे रहे हैं कि यदि शब्द वही न हो तो उससे अर्थका बोध नहीं हो सकता, क्योंकि नया शब्द बोला—कोई जो सुनने वाला ही न जानता, नई चीज है तो कैसे जान जायगा कि घट किस चीज है? जब घट पहिले से ही चला आ रहा है और उसका सम्बन्ध पहिले जान लिया तो वहां घट शब्द जान लेगा कि वही है। सुननेमे शंकाकारकी युक्ति बड़ी अच्छी मालूम हो रही है लेकिन यह परिचय नहीं किया कि सदृश पदार्थसे भी सम्बन्ध का बोध होता है। जैसे धुवाँ रसोईघरमे था उससे अग्निका ज्ञान किया जा रहा था, अब पर्वतमे धुवा देखा तो यह धुवा वही तो नहीं है पर उसके सदृश है। तो सदृश धुवाँने भी तो अग्निका ज्ञान करा दिया। इसी प्रकार शब्द भी अनित्य है। जब बोला तब हुआ और मिट गया। मगर शब्दमे सदृशता तो है। जिस शब्दको सुनकर हम जिस अर्थका सम्बन्ध जानते थे उस ही प्रकारके शब्दको सुनकर उस प्रकारका अर्थ सम्बन्ध जान लेंगे इसमे कोई अयुक्त बात नहीं है।

नियत हेतुसे भी नवीन नवीन शब्दोंकी उत्पत्ति—यहां एक विचारणीय बात है कि जैसे रिकार्डमे शब्द भरे जाते हैं तो वे शब्द भरे होते हैं और सूई लगानेसे वे शब्द निकलने लगे तो क्या इससे शब्द नित्य सिद्ध न होगा? उसका उत्तर यह है कि रिकार्डमे वे शब्द नहीं भरे हैं किन्तु ऐसा एक वैज्ञानिक प्रयोग है कि उस कालमे ऐसे पदार्थोंका मसालोंका ढाँचा बना लेते हैं कि जिससे सूई लगाया तो शब्द प्रकट हो जायें एक हारमोनियम ही ले लो। हारमोनियम बजाया तो उसमें शब्द स्वर सुनाई देते है तो क्या वहाँ यह शका ठीक है कि इस हारमोनियममे शब्द भरे हैं। तब तो जहा अगुली लगाते हैं वहा शब्द निकल बैठते। और देखो जिस स्वर पर अगुली लगायेंगे उसपर वही स्वर निकलेगा लेकिन क्या उसमे वे शब्द भरे हैं? खूब देखलो, लकड़ी है। पीतल है, रबड़ है। ये सब तो हैं पर वहा शब्द नहीं हैं। ऐसे पदार्थोंका सम्बन्ध बन रहा है जिसमे इस प्रकारका प्रयोग हुआ। इस प्रकारकी हवाका धक्का लगे और जिस जगह हवा निकलनेका अवकाश दे वहां उसपर स्वतः प्रकट होता है, इसी तरह सभीकी बात है। जैसे सितार बाजा है, उसके बारेमे क्या शब्द भरे हैं? शब्द नहीं भरे हैं किन्तु वह एक ऐसा प्रयोग है, ऐसा ढाँचा है कि जिसपर इस प्रकारका प्रयोग किया जाय तो वहां शब्द उत्पन्न होने लगते हैं तो इसी प्रकार रिकार्डका भी मामला है। वहा ऐसा मसालेका पिण्ड बनाया गया, वैज्ञानिकोंने अपनी विज्ञान कलामे ऐसी खोज निर्माण किया कि वहां इस परिस्थितिमे सूईका प्रयोग हो और वह चले तो वहा भी इस प्रकारके शब्द निकलेंगे। जैसी बात रिकार्ड में है वैसी ही बात टेपमे भी है। सबमें यही बात बसती है। शब्द वहां भरे हुए नहीं होते, किन्तु वह पदार्थ ऐसी व्यवस्थाका है कि उसका प्रयोग हो तो शब्द निकलने लगते हैं। उस रिकार्डमें पहिले कहे हुए शब्दोंके सम्बन्धको पाकर उस मसालेमे यह योग्यता आयी कि वह प्रयोग पानेपर इस प्रकारके शब्दोंको निकाले। जैसे कंठ,

यदि शब्द नित्य न होता, अनित्य होता तो दूसरे शिष्योके लिए वाक्यका उच्चारण अन्यथा बन न सकता था। इसी बातको दार्शनिकोने भी कहा है कि उच्चारण परार्थ होनेसे शब्द नित्य है तब दूसरेके लिए उच्चारण किया जा सकता है। कोई चीज नित्य हो तब तो दूसरेके लिये भेंट दी जा सकती है हाथमे लेते ही चीज नष्ट हो जाय तो भेंट क्या देगा ? इसी प्रकार शब्द भी नित्य हैं तभी दूसरेके लिये हम उसका उच्चारण कर सकते हैं।

अर्थप्रतिपादकत्व हेतुसे शब्दनित्यत्वकी शङ्काका समाधान – अब इसका समाधान करते हैं। शंकाकारने यह कहा कि शब्द नित्य है अर्थका प्रतिपादक होनेसे यह बात अयुक्त है, क्योकि अर्थका प्रतिपादक, अर्थका अविबोधक अनित्य भी बन सकता है। जैसे धुवा अनित्य है ना ! जो धुवाँ रसोईघरमे देखा था क्या वही यह धुवाँ है जो कि हम पर्वतपर दिख रहा है ? अरे, यह तो नवीन धुवा उत्पन्न हुआ है। तो इस धूममें उत्पत्ति है, विनाश है, अनित्य है वो भी यह अग्नि अर्थका अवबोध करा देता है, इसी प्रकार शब्द अनित्य है। कल बोले गए थे शब्द वे कलके परिणमन थे, हुए और मिट गए। आज जो बोले जा रहे हैं शब्द वे आजके परिणमन हैं। ये भी होते हैं और मिटते हैं लेकिन सदृशता तो है। जैसा रसोईघरमे धूम था वैसा ही तो धूम यहाँ है। अर्थकी सदृशता होनेसे वह अन्य अर्थका अविबोध करा देता है। तो शब्दकी वह सदृशता अनित्य होनेपर भी यह शब्द जिसका कि सम्बन्ध जाना गया है, सादृश्य होनेसे अर्थका प्रतिपादक बन जाता है कहीं यह नियम न कर लेना चाहिये कि जो ही पदार्थ सङ्केतके समयमे देखा गया है उस ही पदार्थसे अन्य पदार्थका ज्ञान होता है यह नियम बन ही नही सकता, क्योकि रसोईघरमे रहने वाला धुवाँ क्या पर्वत आदिकसे अन्य जगहमे अग्निको सिद्ध कर देता है ? रसोईघरमे जो आग दीखे, जो धुवाँ दीखा वह दुनियाभरकी सारी आगको सिद्ध करदे यह तो नही बनता। जहाँ जहा धुवा दीखेगा वहा वहा ही तो अग्नि सिद्ध करेगा अन्यथा सारी दुनियामे आग लग बैठेगी ! जब एक जगह धुवा देखनेसे अन्यत्र अग्निका गमक होजाय धुवाँ तो सब जगह आग लग बैठेगी ! इस तरह सब पदार्थ सब जगह व्यापक हो जायेंगे। साध्यके साधनमें जो सम्बन्धका निश्चय होता है वह सदृश परिणामकी प्रधानतासे होता है। वही पदार्थ हो तब हम साध्य सिद्ध कर सकें ऐसा नही है। जो रसोईघरमे धुवाँ था वही पर्वतपर है तब अग्नि सिद्ध हो रही, ऐसा नही है, किन्तु जैसा धुवाँ रसोईघरमें था उसीके सदृश है। इस सदृशतासे साध्यसाधन सम्बन्धका अवधारण होता है क्योकि जिसकी समान परिणति अनाश्रित नही है, समान परिणतिका आश्रय न किया हो, जो विषम हो, विरुद्ध हो ऐसे सभी पदार्थोंका अपने साध्यके साथ सम्बन्ध ग्रहण नही किया जा सकता, क्योकि असाधारणरूपके द्वारा उस पदार्थकी परिणतिका प्रतिभास नही होता। मतलब यह है कि यहा अपौरुषेय माननेवाला जो हेतुको अकृतक मानता नित्य मानता वह यह सिद्ध करना चाहता कि शब्द नित्य है और एक है वहीका वही

से समझे हुए बालककी क्रियावोंको देखकर, उसकी हर्षादिककी चेष्टावोंको देखकर अनुमानसे सब बातें समझ जाता है ओह! यह गाय है, यह डण्डा है। तो देखो अर्थकी प्रतिपत्ति अन्यथा न बन सकती थी इस कारण उस शब्दमें ही यह वाचक शक्तिकी कल्पना करते हैं। जब उस दूसरे बालकने देखा शब्दको सुनकर सबको देखकर फिर उस सुनने वालेकी क्रियावोंको निरखकर समझा ओह! इस शब्दका यह अर्थ है इसके मायने यह है। सो अब वह बालक समझ गया। तो देखो सब यहाँ अर्थका, शब्दका जो सम्बन्ध जाना गया है वह तीन प्रमाणोंसे जाना गया है। ये तीन प्रमाण यहाँ कौन हुये ? प्रत्यक्ष, अनुमान और अर्थापत्ति। प्रत्यक्षसे तो जाना शब्द और अर्थ। जो जाना गया वह शब्द कानोंमें आया तो प्रत्यक्ष कहलाने लगा। इसके आगे ज्ञानका और काम नहीं है कि वह शब्दका अर्थ समझादे या व्यापार कराये उसका काम तो इतना ही है कि वह हो गया। प्रत्यक्ष सुन लिया। गायको प्रत्यक्षसे देखा, आँखोंसे देखा। तो उसका काम इतना ही है जो जो पदार्थ अवस्थित है वह जाननेमें आ गया। इससे आगे आँखका काम नहीं है कि जो यह समझे कि यह है गाय। जो पदार्थ है उस पदार्थका निरखना जानना मात्र आँखका काम हुआ। तो प्रत्यक्षसे शब्द और अर्थकी प्रतिपत्ति हुई। अब फिर हुआ उस पुरुषके बोचकी चेष्टा का अनुमान। ओह! यह हो रहा है। फिर अर्थापत्तिसे जाना कि यह शब्द यह कह रहा है। तो शब्दसे वाचक शक्ति है। यह शब्द उस अर्थको कहनेकी सामर्थ्य रखता है तो यों प्रत्यक्ष, अनुमान और अर्थापत्ति इन तीन प्रमाणोंसे सम्बन्ध हुआ। यह तीन प्रमाणोंसे बने हुए सम्बन्धका अवगम एक ही बार वाक्यके प्रयोगसे सम्भव नहीं होता। बारबार बोलनेमें यह सम्बन्ध दृढ़ निश्चित होता है एक तो यह बात, दूसरी यह बात कि जो अनित्य हो, अस्थिर हो उसका बारबार उच्चारण नहीं किया जा सकता।

सदोच्चारित होनेसे शब्दके नित्यत्वकी शंकाका समर्थन—शंकाकार कह रहा है जो चीज अनित्य है उत्पन्न हुई और नष्ट हुई उसको आप कहीं बारबार धर उठा सकते हैं क्या ? चौकी है महीनों रहनेकी चीज तो उसे धरते उठते हैं। तो शब्द भी नित्य है। सदा रहता है तब उसे रोज रोज बोल लेते हैं। उसका उच्चारण होता है। तो अनित्य चीजका बारबार उच्चारण घटित नहीं होता और फिर उच्चारण करनेपर अर्थका बोध नहीं होता। जैसे गाय शब्दका उच्चारण किया तो गाय अर्थका बोध होता और न उच्चारण करें तो नहीं होता, इससे यह समझा जाता है कि इस अर्थमें इस शब्दको कहनेकी शक्ति है। जब शब्द और अर्थका यह अन्वय व्यतिरेक समझमें आया तो यह कहा जायगा कि शब्दमें इस अर्थको कहनेकी शक्ति है। यदि वाचक शक्तिके ज्ञानका अभाव हो तो बुद्धिमान लोग दूसरोंको समझानेके लिए वाक्यका उच्चारण नहीं कर सकते। इससे यह सिद्ध होता है कि शब्द नित्य है क्योंकि दूसरे पुरुषके लिए वाक्यका उच्चारण अन्यथा बन न सकता था।

हैं। जो कार्य अपने कारणोंके होनेपर हो और कारणके न होनेपर न हो वह कृतक कहलाता है। आगम ऐसा सिद्ध किया गया तो जब कृतक सिद्ध हुआ तो वह अनित्य कहलाया। इससे वैदिक अथवा लौकिक शब्दोंका भी अपौरुषेयत्व अकृतकत्व नित्यत्व सिद्ध नहीं किया जा सकता। इससे यह सिद्ध हुआ कि आगम वही प्रमाण है जो प्रभुके वचनादिकके कारणसे उत्पन्न हुआ हो। आगमकी प्रमाणताके लिये गुणवान कारणका खोज करना चाहिये, न कि अपौरुषेयत्वका खोज करना चाहिये।

अर्थप्रतिपादकत्व होनेसे शब्दके नित्यत्वकी शङ्का— अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि शब्द तो अनित्य है ही नहीं। चाहे वैदिक शब्द हो चाहे लौकिक शब्द। अन्यथा यदि अनित्य हो उससे अर्थकी प्रतीति न होगी। शङ्काकार कह रहा है कि हम रोज रोज शब्दसे जो अर्थकी प्रतीति किया करते हैं, घट कहा तो यह अर्थ आया गाय कहा तो यह अर्थ आया। इस तरह तभी तो हम शब्दसे अर्थकी प्रतीति करते हैं जब कि अब शब्द नित्य हो, सदा रहता हो तब उससे हम अर्थ जान सकेंगे। अर्थ प्रतीति होती है इस कारण यह समझना कि शब्द नित्य है, क्योंकि अन्यथा अपने अर्थका प्रतिपादकत्व नहीं बन सकता था। यदि शब्द नित्य नहीं होता, अनित्य होता, उत्पन्न होता और मिटता तो उस शब्दसे अपने अर्थका प्रतिपादक नहीं बन सकता था ऐसा मानना चाहिये। यह शब्द नित्यत्ववादी शङ्काकार अपने शब्दको नित्यत्व सिद्ध कर रहा है। जब शब्द नित्य सिद्ध हो जायगा तो आगम वेद अपौरुषेय सिद्ध हो जायगा। उसकी अपौरुषेयताकी सिद्धिके लिए शब्दके नित्यत्वकी सिद्धि की जा रही है और इस प्रसङ्गमें शब्द नित्यत्वका प्रकरण एक विस्तृत और स्वतंत्र प्रकरण बन जाता है। शङ्काकार कह रहा है कि देखिये! अपने अर्थसे ग्रहण क्या है सम्बन्ध जिसने ऐसा शब्द अपने अर्थका प्रतिपादन करता है अन्यथा जिसने संकेत ग्रहण नहीं किया ऐसे किसी पुरुषको भी शब्दसे अर्थकी प्रतीति हो जानी चाहिये।

शब्दके अर्थसम्बन्धावगमकी प्रमाणत्रय सम्पाद्यताका विचार— अब अपने अर्थसे शब्दका सम्बन्ध ग्रहण होना है यह कैसे जाना सो सुनो! शब्दके अर्थसे सम्बन्धकी अवगति तीन प्रमाणोंसे सम्पादित होती है। शब्दका अर्थके साथ सम्बन्ध है। वह किस प्रकारसे? जैसे कि कोई बूढ़ा पुरुष किसी ऐसे बालकसे कहता है जिस ने पहिलेसे संकेत समझ रखा है कि ऐ बालक इस सफेद गायको डण्डेसे भगा दो। तो उस समय पासमें खड़ा हुआ कोई दूसरा बालक जिसने कि उन संकेतोंको समझ न पाया था कि इन शब्दोंका क्या अर्थ है, तो वह शब्द जो कहा वह कानोंसे सुन लिया यह तो हुआ शब्दका प्रत्यक्षसे बोध और अर्थका हुआ प्रत्यक्षसे बोध इस तरह कि वह गाय सामने दिख रही है। पर अभी उसने यह नहीं समझा था कि गायके कहनेसे यह चीज कही जाती है। डण्डा कहनेसे यह कहा जाता है। और भगानेका यह मतलब है। ऐसा जिस बालकने पहिलेसे संकेत न समझ रखा था वह उस पहिले

कि मनुष्य रचित वचन रचनाके समान होनेसे वेद शब्द पौरुषेय हैं ऐसे अनुमानमे किसी भी प्रकारसे बाधा नहीं आती है तब आगमका यह लक्षण बना कि प्रभु सर्वज्ञदेवके वचन आदि कारण उत्पन्न हुए अर्थज्ञानको आगम कहते हैं, इसमे किसी प्रकारका विरोध नही आता।

नररचितवचनरचनाऽविशिष्टता हेतुमे प्रकरणसमत्व दोषका भी अभाव—वैदिक शब्द पौरुषेय हैं क्योंकि मनुष्योंके द्वारा रचित वचन रचनाके समान है। इस हेतुमे किसी प्रकारके दोष नहीं आते। और प्रकरणसम उसे कहते हैं कि जिसके मुकाबलेमे उससे विपरीत हेतु देकर विपरीत साध्यका सिद्ध किया जाय। वह विपरीतताम मिलन जुलन रखता हो विधिप्रतिषेधरूपसे तो ऐसा प्रतिहेतु जो विपरीत धर्मको सिद्ध करे और प्रकरणमे चिंता लावे अर्थात् संदेहसे लेकर निर्णय तक बराबरीका चिन्तन और व्याख्यान चले ऐसा प्रकरणसम दोष भी यहां नहीं है और, अपने साध्यका अविनाभूत जो हेतु उससे जो सिद्ध किया जा रहा धर्म, उससे विपरीत धर्म यहाँ सम्भव ही नहीं है अर्थात् विपरीत धर्मका सिद्ध करने वाला कोई दूसरा हेतु यहाँ नहीं लगता। अबाल गोपालको स्पष्ट है कि जो वचन रचना है वह कभी होता है और मिटती है। इस प्रकार वेद और पद वाक्योमे नित्यपना घटित नही होता और न वेदके वर्णोमे नित्यपना घटित होता। सर्वप्रथम इस प्रकरणमे यह पूछा गया था कि जो अपौरुषेय सिद्ध कर रहे हो तो क्या वेदके पदोको अपौरुषेय सिद्ध करते हो या वाक्योको या वर्णोको? तो यहां कह रहे अब कि वर्ण तो कृतक ही होते हैं। जितने भी शब्द हैं वे सब उच्चारित होते हैं किए हुए होते हैं, वे अनित्य हैं। सो वेदके वर्णोंमे भी अनित्यपना सिद्ध हो जाती है। वह किस प्रकार शब्द अनित्य है? कृतक होनेसे, घटकी तरह। अब इसमे अन्वय व्याप्ति लगा लीजिये। जो जो कृतक होते हैं वे सब अनित्य होते हैं। जैसे घड़ा। व्यतिरेक व्याप्ति लगा लीजिये—जो अनित्य नही होता वह कृतक नही होता, जैसे आकाश आदिक।

कारणान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वसे कृतकत्वकी सिद्धि—यहा कृतकपना असिद्ध नही है। शब्द कृतक है क्योकि अपने कारणका अन्वय व्यतिरेकसे सम्बन्ध रखता है। शब्दका कारण है तालू कंठ, ओठ आदिक। इनके संयोग वियोग प्रयोगसे ही शब्दकी उत्पत्ति होती है। तो तालू आदिक कारणोका व्यापार होनेपर ही जब शब्दके स्वरूपकी निष्पत्ति होती है और तालू आदिक कारणका व्यापार नहीं होता तो शब्दकी निष्पत्ति नही होती है। तो इससे सिद्ध है कि ये शब्द अपने निष्पादक कर्ता के साथ अन्वय व्यतिरेक सम्बन्ध रखते हैं जैसे कि चक्र आदिकका व्यापार होनेपर घटका आत्मलाभ होता है और चक्र आदिकका काम न रहे तो घटकी उत्पत्ति नहीं होती है, तो घट अपने कारण अन्वयव्यतिरेक व्यापारसे सम्बन्ध रख रहा है तो ये शब्द भी अपने कारणभूत तालू आदिकसे अन्वयव्यतिरेक रखते हैं इससे सिद्ध है कि ये कृतक

आगममे जो प्रमाणता की बात समझायी जा रही है उसका मूल कारण सर्वज्ञ है। ये सब आगम ये सब शब्द रचनायें सर्वज्ञसे चली हैं अतएव प्रमाणभूत हैं। सर्वज्ञकी साक्षी भी एक बहुत महत्त्वकी चीज है। जो पुरुष सर्वज्ञ हो जाता है रागद्वेषसे पूर्णतया रहित हो जाता है वह पुरुष हम आप लोगोकी भाति क्रमसे पदवाक्य रचना करके बोलता होगा यह बात समझमे नही आती। यदि हम आप जैसे पद वाक्योको कोई बोलता है तो उसके किसी न किसी प्रकारका राग है, चिंतन है, अज्ञान है, ये सब दोष उसमे सम्भव हो सकते हैं। तो सर्वज्ञ हम आपकी तरह क्रमशः पद वाक्य रचना जोड कर निबंध बनाकर व्याख्यान करता हो यह बात समझमें नही आती है। उसका निबंध उसका उपदेश तो एक दिव्यध्वनिमे है। दिव्यध्वनि बन रही है, उसमे शब्दोकी क्रमशः रचना बन रही हो यह बात वीतरागताके प्रतिकूल है। उस सर्वज्ञके शब्दोकी जैसे महिमा है ऐसे ही उसकी दिव्यध्वनिके सुननेकी भी महिमा है। अब उसकी साक्षीमे जो गुणवान पुरुष और भी बैठे हैं जिन्हें सम्यक्त्व हुआ है जिन्हे अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान हुआ है ऐसे योगिराजोका ज्ञान भी बहुत बडा विशाल ज्ञान है। तो प्रमाणभूत उनका भी ज्ञान है और जिन्हे पूर्ण प्रमाणमय ज्ञानमय सर्वज्ञदेवक साक्षी मिले हैं, उनकी दिव्यध्वनि मिली है तो उस परम्परासे उनके ज्ञानमे सातिशय प्रमाणता आ जाती है इससे शब्द ये प्रमाणभूत हैं ऐसा माननेके लिए शब्दोका कारणभूत पुरुष गुणवान है यह मानना होगा।

सकल शब्दोको पौरुषेय सिद्ध करनेमे नररचितवचनरचनाऽविशिष्टता' रूप हेतुकी निर्दोषता—यह हेतु कि वैदिक शब्द भी पौरुषेय है, क्योकि मनुष्य द्वारा रचित वचन रचनाके समान हैं इस हेतुमे न आश्रयसिद्ध दोष रहा, न स्वरूपासिद्ध दोष रहा न विरुद्धता रही और न इसमे अनैकान्तिक दोष है क्योकि यह हेतु पौरुपेय प्रासाद आदिकमे देखा जा रहा है अपौरुषेय आकाश आदिकमे नही देखा जा रहा है। सपक्षमे हेतु मिल रहा, विपक्षमे नही मिल रहा अर्थात् रचनाके समान यह यहाँ साधारणरूपसे हेतु है तो कुंवा महल आदिकमे रचनाकी समानता नजर आ रही है और आकाश आदिकमे रचनाका प्रसङ्ग ही नही है, इस कारण यह हेतु अनैकान्तिक नहीं और विरुद्ध भी नही। विरुद्ध तो उसे कहते हैं कि जो हेतु पक्षमे भी रहे और विपक्षमें भी रहे। मगर रचनाकी समानतारूप हेतु विपक्षमें नही रह रहा है इसलिए यह हेतु निर्दोष है। जो जो चीजें रचनाके समान पाई जायें वे वे चीजें पौरुपेय होती हैं। तो यह हेतु न असिद्ध रहा न अनेकान्तिक रहा और इसमे कालात्ययापदिष्ट दोष नही रहा। इसका अर्थ है कि हेतु प्रत्यक्षबाधित हो आगम बाधित हो या सिद्ध साधन हो। सो ऐसा इस हेतुमे दोष नही पाया जाता, क्योकि जहा अपने साध्यके साथ अविनाभावरूपसे रहकर हेतुपक्षमे मिलकर पाया जाय, अपने साध्यको सिद्ध करदे वहाँ ही उसके विरुद्ध कोई दूसरा धर्म आये सो नही, क्योकि एक धर्मका एक समय एक ही जगह या विधि होती है या निषेध होता है। प्रयोजन यह है कि यह कहना

अयुक्त है ऐसी बात तो हम अनुमानमें भी कह सकते। जो धूम अदृष्ट है, देखा नहीं गया उसमें सम्बन्ध बनाया नहीं जा सकता और जो धूम दीखा था वह देखते ही नष्ट हो गया। अब उस धूमके साथ अग्निका सम्बन्ध बतानेका कोई प्रयोजन ही न रहा। इस तरह अनुमानकी भी बात करना बेकार हो जायगी। सदृश होनेसे सम्बन्ध बन जाता है। शंकाकार कहता है कि यह तो बतलावो कि वह सदृशता व्यक्तिसे अभिन्न है अथवा भिन्न है। एक है अथवा अनेक है। नित्य है अथवा अनित्य है? यदि भिन्न मानते हो एक मानते हो, नित्य मानते हो व्यक्तिसे तो वह वही तो जाति हो गयी जो व्यक्तिसे भिन्नरूपसे सत् हो और एक ही एक समान रूपमें पाया जाता हो। और नित्य हो सदा रहता हो उस हीका नाम जाति है। उत्तर देते हैं कि यह कहना अयुक्त है। किसी भी अपने हेतुका एकका जैसा भी परिणमन है वैसा ही परिणमन होना सो दूसरे हेतुका सादृश्य कहा जाता है। पर वही हो सो नहीं है। जैसे अग्निके सिद्ध करनेमें हेतु दिया गया धूमका जो कि पूर्व परिचित रसोईघरका धूम था, उस का जैसा परिणमन था, रग आकार आदिक उस ही प्रकारका पर्वतमें रहने वाला धूम सदृश मालूम पडा तो उस सदृश परिणामसे एकत्व जाना गया है, और हेतु बनाया गया है, परन्तु वह ही हेतु उस कारणसे बनाया गया हो सो नहीं, और वह परिणमन जिसकी सदृशताका परिणमन व्यक्तिसे भिन्न भी है अभिन्न भी है क्योंकि दृष्टिभेदमें ऐसा ही प्रतीत होता है। चूंकि स्वरूप न्यारा है। व्यक्ति विशेषरूप है इस कारणसे भिन्न है। अभिन्न यों हैं कि यह सादृश्य व्यक्तिको छोडकर अन्य किसी जगह नहीं रहता। मगर जातिको जाति पदार्थवादी इस प्रकारसे नहीं मानते हैं, उसे लोग नित्य और व्याप्त मानते है। तो वह कथंचित भिन्न हुआ व्यक्तिसे और कथंचित् अभिन्न हुआ, इस तरहसे तो नहीं माना गया है और जैसे जाति मानी गई नित्य और व्यापक तो उस प्रकारकी जातिका तो सामान्यके निराकरणमें निराकरण किया जायगा। पृथक व्यक्तिसे जाति कोई सामान्य नामका पदार्थ नहीं है। मीमासक जन ७ प्रकारके पदार्थ मानते हैं। द्रव्य, गुण, क्रिया, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ये मानोंगे सातों एक दूसरेसे भिन्न हैं और अपनी अपनी सत्ता रखते हैं, तब यों सामान्यको भी भिन्न सत्ता मान लिया गया है। पर यह सामान्य कोई भिन्न सत्ता नहीं है, वह तो वस्तु है। आवान्तर सहित पदार्थमें जो सादृश्यका अविशेष उससे जाना गया है, सामान्य तो जातिरूप बनता है। सामान्यमें अर्थक्रिया नहीं होती, न उसमें चटाव घटाव होता है। जैसे किसीको दूध चाहिये तो वह गाय सामान्यसे दूध न ला सकेगा, गाय व्यक्तिसे दूध ला सकेगा। सामान्य व्यक्तिसे भिन्न कुछ हो वह ठीक नहीं है। प्रतीतिमें ही नहीं आता इस कारण जिसमें प्रवृत्तिकी इच्छा है, प्रवृत्तका सत्व रखना चाहता है उसे अनुमानसे व शब्दसे सामान्य मात्रकी प्रतिपत्ति न मानना चाहिए अर्थात् लिङ्ग शब्द भी व्यक्तिरूप होता है और उनसे जो कुछ समझा गया है साध्य और अर्थ वह भी व्यक्तिरूप होता है। इससे शब्द जब व्यक्तिरूप है तब अनित्य नहीं हो सकता।

शब्दसे सामान्यविशेषात्मक ज्ञान—अब शंकाकार कहता है कि विशेषको छोड़कर सामान्य कुछ चीज ही लक्ष्यमें नही आ रही अथवा सामान्य अगर नही है विशेष भी अर्थ नही है, विशेषका ज्ञान तो लक्षित लक्षणसे जाना जाता है। अर्थात् सामान्यसे तो समझा गया विशेष फिर विशेषका ज्ञान सामान्यसे उत्पन्न हुआ है और इस तरह विशेषकी प्रतिपत्ति हो जानेसे हमारे प्रतीत आदिकका अभाव नही हो सकता। जब व्यक्ति और विशेष जान लिया जाता है तो उससे प्रवृत्ति होने ही लगती है। उत्तर देते हैं कि यह बात युक्त नही है, क्योंकि यहा क्रम प्रतीत नही होती। सामान्यके पहिले प्रतीति हो और उस प्रतीतिसे विशेषकी प्रतिपत्ति हो ऐसा भाव नही दृष्टिमें आता ऐसा अनुमान नही होता किस को कि शब्दसे वाच्यका प्रतिभास उत्पन्न हो, उस समय पहिले सामान्यका प्रतिभास हो और पीछे विशेषका प्रतिभास हो। देखते ही सामान्यविशेषात्मक पदार्थका प्रतिभास हो जाता है जानने समझनेमे प्रथम व्यक्ति आता है तब ऐसे ऐसे अनेक अनुमानोमे सदृश परिणामको देखकर फिर सामान्यका बोध किया जाता है। इससे यह कहना कि सामान्यसे सत् विशेषका ज्ञान होता यह अयुक्त है।

शब्दलक्षित सामान्यसे विशेषप्रतिपत्तिके विकल्प और उनका निराकरण—अब बतलावो कि सामान्यसे विशेषका जो ज्ञान होता हैं, विशेष लक्ष्यमे आता है या साधारण रूपसे साथ लक्ष्यमे आता है। उसमे पहिला पक्ष तो नही दे सकते, क्योंकि विशेष प्रतिनियत रूपसे ही लक्ष्यमें आया है और सामान्यरूपमे लक्ष्यमे नही आया। शब्दके उच्चारण करनेके समय जातिमे नियमित विशेष असाधारणरूपसे अनुभवमें आये यह बात तो समझमे नही आती किसीको। क्योंकि इस तरह यदि विशेष जाति संयुक्त होकर प्रतिनियत रूपसे समझमे आये तो सबका प्रत्यक्ष एक समान हो जायगा। फिर उसमे यह कहना कि यह अमुक व्यक्ति, है यह, अमुक व्यक्ति है ऐसा उसमें भेद प्रतिभास नही बन सकता। दूसरी बात यह है कि जातिका प्रतिनियतरूपके साथ अविनाभाव सम्बन्ध नही है, फिर जातिके द्वारा विशेषका लक्षण कैसे बनेगा इससे पहिला पक्ष तो सिद्ध नही होता कि सामान्यसे विशेष, प्रतिनियतरूपके द्वारा लक्ष्यमें आया करता है। तब दूसरा पक्ष लो कि सामान्यमे विशेष साधारणरूपसे लक्ष्यमे आया करता है तो यह कहना यो युक्त नही है कि साधारण रूपसे जाने हुए भी विशेषमें अर्थ क्रिया नही बन सकती। जब विशेष एक साधारण रूपसे ही जाना गया तो उससे काम कैसे बनेगा ? जैसे घडेको कोई घडेके रूपसे जाने तो सामान्य मिट्टीके रूपसे जाने हुए घडेसे कोई जल कैसे भर लायगा ? कहीं कोई सामान्य मिट्टीरूप कल्पित घडेसे भी जल भरकर लाया करता है क्या ? जैसे खानमें पडी हुई मिट्टी सामान्यरूप है, उसमेंसे कोई पानी भरकर लाता है क्या ? नही लाता। इसी तरह जो विशेष है उसे भी जब सामान्यरूपसे उत्पन्न माननेमे लगे हो तो उससे भी अर्थ क्रिया नही हो सकती। जब उस विशेषमे अर्थ क्रिया नही हो सकती तो

फिर उससे प्रवृत्ति नहीं बन सकती। प्रवृत्तिका कारण वही होता है जिसमें कोई अर्थक्रियाका होना और परिणमनका होना यह प्रतिनियतरूपसे ही सम्भव है। साधारणरूपसे जाने विशेषमे यह बात सम्भव नही-हो सकती, फिर भी साधारण रूपसे विशेषकी प्रतिपत्ति मानी जायगी तो अनवस्था दोष होगा। वह किस तरह ? कि साधारणरूपसे तो विशेषकी प्रतिपत्तिको तब विशेष प्रतिपत्ति होनेपर अर्थात् उस विशेषके साधारण ढगसे प्रतिपत्ति होनेपर कहलायेगा कि सामान्यसे, सामान्यकी प्रतिपत्ति हुई। इस तरह जब सामान्यसे सामान्यकी प्रतिपत्ति होगी तब सामान्यकी प्रतिपत्ति होगी। फिर विशेषकी प्रतिपत्ति हो ही नही सकती, क्योंकि साधारण रूप का अर्थ क्या है ? सामान्यस्वभाव। यदि विशेषका ज्ञान साधारणरूपतासे होता है तो उसका अर्थ है कि वह विशेष सामान्य स्वभावसे ज्ञात होता है। तो सामान्य ही रहा, फिर विशेष कुछ चीज न रही।

शब्दसे जातिका ही ज्ञान होनेपर व्यक्तिसे असम्बन्धका प्रसग—अब यह बतलावो कि यदि कोई शब्दसे जाति जानी गयी तो फिर व्यक्तिकी क्या बात उसमे आयी, जिसके कारण फिर यह शब्द उस व्यक्तिका बोध कराये। अब यहा बोध शब्दसे तो माना जातिका बोध, व्यक्तिका बोध नही माना तो जब शब्दोसे जाति जानी गई तो फिर जाति ही जानी जाय, उसमे व्यक्तिकी क्या बात आयी जिसके कारण यह शब्द व्यक्तिको जान ल। यदि कहो कि उन दोनोमे सम्बन्ध है सामान्य और विशेषमे। तो शब्दमे तो जाना सामान्य और सामान्यसे सम्बन्ध है विशेषका तो यो शब्दसे ही विशेषका भी ज्ञान कर लिया गया। उत्तर देते हैं कि उन दोनोका, जाति और व्यक्तिका यदि सम्बन्ध माना है जाना है तो वह उस ही समय जाना है जिस समय शब्दके उच्चारणके समय शब्दसे जातिका ज्ञान हो रहा है अथवा उससे पहिले जाना है। विकल्प यो किया जा रहा है कि तुम कहते हो कि शब्दसे तो जाना जाता है जातिको और जातिसे जाना जाता है व्यक्तिको। व्यक्तिको सीधे शब्दो से नही जानता तो शब्दसे जातिके जान लेनेपर व्यक्तिका उसमे आया क्या ? तो जातिसे व्यक्ति भी जान लिया जाय ऐसा सिद्ध करनेके लिये तुम मान रहे हो सामान्य और विशेषमे सम्बन्ध, तो वह जो जाति व्यक्तिका सम्बन्ध है वह कब समझा गया है, जिस समय शब्दसे जातिका ज्ञान किया जा रहा है। क्या उस समय समझा है या जातिका ज्ञान किया जा रहा है उससे पहिले ही समझ लिया।

शब्दलक्षित सामान्यसे व्यक्तिके सम्बन्धके अवगमकी असिद्धि—उक्त दो विकल्पोमेसे प्रथम विकल्प तो युक्त है नहीं। अर्थात् जाति और व्यक्तिका सम्बन्ध शब्दसे जातिके ज्ञानके समयमे ही समझ लिया गया। यह बात यों युक्त नही बनती कि व्यक्ति तो अभी समझा ही नही गया। जब व्यक्ति ही नही समझा गया तो उस समय वह जानी गई जाति तो सम्बन्ध कैसे समझ लिया गया ? सम्बन्ध तो उसका

ही समझा जा सकता है कि जिनका सम्बन्ध जाना है उन दोनोंका ज्ञान हो रहा हो। अब शब्दसे तो केवल जाति ही ज्ञात होती है व्यक्ति तो ज्ञात होता नहीं। तो शब्दसे जातिका ज्ञान करते समय उस जातिका और व्यक्तिका सम्बन्ध नहीं जाना जा सकता है। अन्यथा यदि शब्दसे जातिके बोधके समयमें ही व्यक्ति भी जान ली गई तो फिर लक्षित लक्षण कैसे बने? तो पहिले सामान्यका ज्ञान होता है फिर सामान्यके ज्ञानसे विशेषका ज्ञान होता है। यह लक्षित लक्षण फिर यहाँ युक्त नहीं हो सकता है क्योंकि व्यक्तिके न जाननेपर व्यक्तिके सम्बन्धका ज्ञान नहीं हो सकता। सम्बन्ध तो द्विष्ठ होता है अर्थात् दो पदार्थोंमें रहता है। तो शब्दसे जब जाति और व्यक्ति दोनों जान लिए जाये तो जाति और व्यक्तिमें फिर सम्बन्धकी बात कही जा सके, पर ऐसा तो हो ही नहीं रहा। तो इस प्रकार पहिला पक्ष सिद्ध न हो सका कि शब्दसे जातिके परिज्ञानके समयमें ही व्यक्ति जान लिया जाता। यदि कहो कि शब्दसे जातिके जान लेनेमें पहिले व्यक्ति जान लिया गया है तो उसमें कहते हैं कि फिर तो यह सम्बन्ध भी उस ही समय हो जाय। जिस समय व्यक्तिका परिज्ञान हुआ उस समय जाति और व्यक्तिका सम्बन्ध भी हो गया। ऐसा नहीं होता कि एक समय उसका सम्बन्ध हो और अन्य समय उसका सम्बन्ध बने नहीं, क्यों नहीं कि जातिका स्वरूप विशेषनिष्ठता है अर्थात् विशेष व्यक्तियोंमें जाति रहती है, यही स्वरूप है और फिर जाति नित्य है, व्यापक है एक है, यह कहना यों अयुक्त है कि जब हम व्यक्तियोंको नाना देख रहे हैं तो उन व्यक्तियोंके बीच बीच अन्तरालमें हमें कुछ सामान्यका स्वरूप तो नजर नहीं आ रहा। इससे सिद्ध है कि सामान्य व्यक्ति निष्ठ ही होता है। जहाँ व्यक्ति है, उनका जो सादृश्य है उस सदृश परिणामके प्रतिनिधिका ही नाम जाति है तब फिर इस जातिका व्यक्तिका अविनाभाव कहाँ रहा, तो यह कहना कि शब्दसे जाति जानी जाती है फिर जातिके ज्ञानसे व्यक्ति जाना जाता है यह बात अयुक्त है।

शब्दसे व्यक्तिके अवगमकी सिद्धि—शब्दसे एकदम व्यक्ति जान लिया जाता है। जिस अर्थका वाचक शब्द बोला जाय उस शब्दके बोलते ही उसके ही अर्थका परिज्ञान होता है। कहीं ऐसा क्रम नहीं देखा गया कि किसीने गाय कहा तो गाय शब्दसे गोत्व ऐसा कोई अनुभव नहीं करता बल्कि गाय शब्द सुनकर अथवा गाय अर्थको देखकर एकदम उस गाय व्यक्तिका ज्ञान होता है फिर उसमें गाय सामान्यपना है सभी गायोंमें रहता है ऐसा गायपना है ऐसी जातिकी कल्पना उसके बाद हुई है। तो शब्द नित्य है और शब्दमें जाति जानी जाती है वह जाति भी नित्य है फिर जातिसे विशेष जाना जाता है ऐसा घटन करना ठीक नहीं है, किन्तु सीधा मानना चाहिये कि कंठ, तालू आदिक स्थानोंके प्रयोगसे शब्दोंकी उत्पत्ति होती है और जिस प्रकारके शब्दोंसे जिस अर्थका सम्बन्ध जोड़ा गया था उस ही प्रकारका शब्द जब यहाँ उच्चारणमें आया तो उस शब्दसे उस अर्थका परिज्ञान किया गया। शब्द एक होनेसे अर्थका

ज्ञान होता है यह बात युक्त नहीं है किन्तु शब्दकी सदृशता है जो सदृश शब्दसे पदार्थका ज्ञान हुआ करता है। अतः शब्द अनित्य है, अव्यापक है और एक नहीं है अनेक है। इस सम्बन्धमे तो सभी लोगोंको यथार्थ परिज्ञान रहता है कि हाँ सर्वप्रथम इन्द्रिय द्वारा व्यक्तिका परिज्ञान होता है और व्यक्तिके परिज्ञानके बाद फिर उससे जाति, गुण क्रिया आदिक सब कुछ ज्ञान किया जाता है तो यह सब फिर एक जातिमे सम्बन्धित है, व्यक्तिमे तो व्यक्तिका काम होता है। परस्पर सामान्य जाति माना क्यो गया कि जब व्यक्ति है तो उसमे जो कुछ पाया जाता है, उससे सामान्य बनता है। यो शब्दसे सीधे अर्थकी प्रतीति होती है और शब्द अनित्य है सदृश है उससे अर्थका ज्ञान होता, शब्दको नित्य सिद्ध करना फिर आगमको अपौरुषेय मानना ऐसा परिश्रम करना व्यर्थ है। प्रमाणता अपौरुषेयत्वसे नही किन्तु गुणवान वक्तासे आया करती है।

सामान्य द्वारा प्रतिनियतरूपसे विशेषकी प्रतिपत्तिकी अशक्यता— शंकाकारके मतमें जातिसे व्यक्ति परिलक्षित होता है अर्थात् जाति वास्तविक पदार्थ है और सर्वप्रथम ज्ञानमे जाति आती है और जातिकी प्रतिपत्तिके बाद फिर व्यक्ति लक्ष्यमे आता है ऐसी वार्ताके मध्य शंकाकारसे पूछा जा रहा है कि सामान्यमे जो विशेष लक्ष्यमे आता है वह क्या प्रतिनियतरूपसे लक्ष्यमे आता है या साधारणरूपसे लक्ष्यमें आता है या असाधारणरूपसे लक्ष्यमें आता है, अर्थात् सामान्य तो साधारणरूपसे ज्ञानमे आता है, इसमे तो विवाद है नही। अब उस सामान्यसे जो विशेष लक्ष्यमे आया है वह विशेष क्या प्रतिनियत रूपसे आया है अर्थात् असाधारण गुणको दृष्टिमे रख करके विशेष लक्ष्यमे आया या साधारण ही रूपसे आ गया ? इन दो विकल्पोमे से प्रथम विकल्प तो युक्त है नही, क्योंकि सामान्यसे विज्ञात किये गये विशेषमे प्रतिनियतरूपसे प्रतीति नही होती। ऐसा नही अनुभवमे आता कि शब्दके उच्चारणके समयमे जाति परिमित विशेष कोई असाधारण रूप लेकर अनुभवमे आता हो अन्यथा याने शब्दोच्चारण सम्बन्धमे जाति सम्बन्धित विशेष यदि प्रतिनियतरूपसे अनुभवमे आये तो फिर प्रत्यक्ष विषयोमे विशेषता न रहेगी और फिर प्रतिनियतरूपसे प्रतीति नही होती। ऐसा नही अनुभवमें आता कि शब्द के उच्चारणके समयमें जातिपरिमित विशेष कोई असाधारण रूप लेकर अनुभवमे आता हो। अन्यथा याने शब्दोच्चारण सम्बन्धमे जाति सम्बन्धित विशेष यदि प्रतिनियतरूपसे अनुभवमे आये तो फिर प्रत्यक्ष विषयोमे विशेषता न रहेगी और फिर प्रतिनियतरूपसे जातिका अविनाभाव है नहीं, फिर प्रतिनियतरूपसे विशेषका लक्षण कैसे बनेगा ? अब सामान्यमे विशेषका परिज्ञान कैसे होगा क्योकि सामान्यका विषय है जाति, व्यक्तिका विषय है प्रतिनियत रूप। तो जातिका प्रतिनियत रूपके साथ अविनाभाव है नहीं तब फिर विशेषका ज्ञान कैसे होगा ? प्रतिनियतरूपसे यह प्रथम वचन तो युक्त न बैठा।

सामान्यद्वारा साधारणरूपसे विशेषप्रतिपत्तिकी अशक्यता— अब

विशेषका ज्ञान तो पूछते हैं कि शब्दसे जाति जानी गई तो व्यक्तिमे क्या बात आ गई ?

शब्दसे जातिबोधके कालमे जाति और व्यक्तिके सम्बन्धावगमकी असिद्धि – यदि कहो कि जाति और व्यक्तिका सम्बन्ध है सो शब्दसे जातिके जान लेनेपर व्यक्ति भी जान लिया जाता है तो इस सम्बन्धमे पूछा जा रहा है कि शब्दसे जातिके बोधके कालमे जो जाति और व्यक्तिका सम्बन्ध ज्ञानमे आता है या पहिले ही ज्ञानमें आया है ? यहाँ दो विकल्प किए कि जाति और व्यक्तिका जो सम्बन्ध ज्ञात होता है वह क्या शब्द जातिके जान लेनेके समय ही हो जाता है या शब्दसे जातिको जाननेसे पहिले ही हो जाता है ? उस ही समय तो हो नही सकता । क्योकि जब जाति जानी जा रही है शब्दोच्चारणके समयमे तो व्यक्तिका कहाँ ज्ञान हो रहा और ऐसा माना है शकाकारने कि शब्दके उच्चारणके समयमे केवल जाति ही प्रतिभासित होती है और साथ ही उसके समर्थनमें कहा भी है शकाकारने कि यदि शब्दोच्चारणके समय केवल जाति ही ज्ञानमे न आये, व्यक्ति ज्ञानमे आ जाय साथ ही तो फिर लक्षित लक्षण माननेकी क्या बात है ? लक्षित लक्षण कहते है कि सामान्यसे जानी गई जाति और जानी हुई जातिसे जाना गया विशेष अर्थात् शब्दसे जाना जाति, जातिसे जाना व्यक्ति इसको कहते हैं लक्षितलक्षण । तो लक्षित लक्षणका मतव्य ही यह सिद्ध करता है कि शब्दोच्चारणके समय शब्दसे केवल जाति ही प्रतिभासमे आती है । व्यक्तिके न जाननेपर उसके सम्बन्धका भी तो ज्ञान नही हो सकता । समाधानमें कह रहे हैं कि शब्दसे केवल जाति ही जानी गई, विशेष नही जाना गया तो सामान्य और विशेषका सम्बन्ध नही जाना जा सकता क्योकि सम्बन्ध होता है दोनोंमें रहने वाला और सम्बन्ध यहाँ सोचा जा रहा है जाति और व्यक्तिका और जब सामान्य ही शब्दसे जाना गया तो सामान्य और व्यक्तिका सम्बन्ध कैसे जान लिया जायगा ? इससे यह तो सिद्ध हो नही सकता कि शब्दके उच्चारणके समयमे जाति और व्यक्तिका सम्बन्ध हो जाता है ।

शब्दसे जाति बोधकालके पूर्व जाति व व्यक्तिके सम्बन्धावगमकी असिद्धि – अब दूसरे विकल्पकी बात सुनो । दूसरे विकल्पमे शकाकारको यह सोचा या गया था कि क्या शब्दसे जातिके बोधसे भी पहिले जाति और व्यक्तिका सम्बन्ध जान लिया जाता है ? इस तरह यदि जो जाति और व्यक्तिका सम्बन्ध पहिले जान लिया जाय तो भी उस ही समय यह सम्बन्ध रहे । पूर्वमे जाना शब्द बोलनेसे पहिले तो उस ही पूर्वसे सम्बन्ध रहो, बादमें सम्बन्ध कैसे आ गया । ऐसे समयमे जाति और व्यक्तिका सम्बन्ध हो तो वह सम्बन्ध अन्य समय भी हो यह बात नही, क्योकि ऐसा माननेपर बहुत दोष आयगा ? यदि घट और पटका एक समय सम्बन्ध है, घडेपर कपडा रखा है तो एक समय सम्बन्ध होनेपर फिर यह ही सर्वदा सम्बन्ध बन बैठेगा ।

जातिपदार्थवादमे जातिकी व्यक्तिनिष्ठताकी असिद्धि—अन्य बात यह भी है कि जातिका विशेष निष्ठता ही स्वरूप नही है, क्योंकि जाति तो माना शङ्काकारने सर्वव्यापक और नित्य व्यक्तिथा कहा है सर्वव्यापक। जैसे मनुष्य क्या भिचे भये दुनियामे रखे भये हैं ? एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्यका कितने ही हाथोका अन्तर रहता है। तो जातिविशेष निष्ठ मान लेता शकाकार तो उसमे, इसे यह भय था कि जाति व्यापक न रहती। जहा मनुष्य रहता वहा जाति रहती, जब विशेष निराकरण नही मानते, जब विशेषनिष्ठ नहीं मानते, तो भी जाति तो सदा रहती है। तो जाति अलग चीज हुई व्यक्ति अलग चीज हुई। तो जाति विशेषनिष्ठ तो नही कहलाया। विशेषनिष्ठ होनेपर व्यक्तिके बीचमे जातिके स्वरूपका असत्व हो बैठेगा। तो इससे शङ्काकारने जातिको माना नित्य सर्वव्यापक और विशेषको व्यापक नही माना। तब फिर जाति और व्यक्तिका अविनाभाव कैसे बन जायगा ? इससे यदि शब्दसे जाति जान ली गई तो ठीक जान लो मगर उससे व्यक्ति कुछ न आयगा क्योंकि जाति और व्यक्तिका सम्बन्ध ही नही। जाति विशेषनिष्ठ तो नही माना। विशेष तो भी माना है जहाँ व्यक्ति नही है वहा भी जाति है। तो जैसे आकाश सर्वव्यापक है, इससे यह न कह सकेंगे कि आकाशसे सामान्यका अविनाभाव है। इसी तरह उस जातिका व्यक्तिसे अविनाभाव नहीं बनता तो सम्बन्ध भी नही बनता जाति और व्यक्तिका। और जब सम्बन्ध नही बनता तो शब्दसे जाति जान ली गई तो व्यक्ति तो न जाना जा सका। और व्यक्ति न जाना जा सके तो फिर न कोई प्रवृत्ति रहेगी न अर्थ क्रिया रहेगी। न कुछ भी व्यवहार चलेगा।

जातिपदार्थवादमे जातिके व्यक्तिनिष्ठत्वके अवगमकी असिद्धि—अब और प्रसगकी बात सुनिये कि यदि जातिको व्यक्तिनिष्ठ मानते हो तो यह बतलावो कि सभी समय जाति व्यक्ति निष्ठ है या किसी ही समय जाति व्यक्ति निष्ठ है। यदि कहो कि सभी समय जाति व्यक्ति निष्ठ है। विशेषमे रहने वाली है तो यह बात तुमने प्रत्यक्षसे जाना या अनुमानसे ? जाति व्यक्तिमें सदा रहती है इसका ज्ञान तुमने कैसे कर लिया ? प्रत्यक्षसे तो नही किया। प्रत्यक्षसे किया हो तो यह बतलावो कि एक साथ ही जाना सब या क्रमसे ? अर्थात् जाति समस्त व्यक्तियोंमें निष्ठ है यह बात तुमने एक साथ जाना। यह तो असम्भव है, क्योंकि दुनियामें जितने व्यक्ति हैं सर्व व्यक्तियोका प्रतिभास न हो पाया तो व्यक्तियोका प्रतिभास न हो पाया तो व्यक्तियोसे जातिका सम्बन्ध निर्णय करना भी अशक्य है। तो सर्व व्यक्तियोका एक साथ प्रत्यक्ष नही हो सकता। यदि कहो कि क्रमसे ज्ञान होता जायगा तो यह बात यो ठीक नहीं बनती कि समस्त व्यक्ति तो हैं सीमा रहित, उस मे हैं अनन्त व्यक्ति। तो उन व्यक्तियोकी परम्परा जाननेमे आ ही नहीं सकती। इससे प्रत्यक्षसे यह नही विदित हो सकता कि जाति सदा व्यक्ति निष्ठ ही होती है। यदि कहो कि जाति व्यक्तिमे कभी कभी निष्ठ होती है तो इसका अर्थ यह हुआ

तो फिर जातिका विशेषनिष्ठ होना सदा न रहा, सब जगह न रहा। तो यो प्रत्यक्षसे यह बोध होना असम्भव है कि जाति व्यक्तियोमे ही निष्ठ रहती है लेकिन अनुमानको तो जान लिया जायगा। समाधानमे कहते हैं कि यह भी बात ठीक नही है क्योंकि अनुमान प्रत्यक्ष पूर्वक ही बनता है। तो उससे फिर साध्यकी सिद्धि की जाती है और प्रत्यक्षकी प्रवृत्ति यहाँ होती नही तो अनुमानकी भी प्रवृत्ति नहीं हो सकती। तब फिर लक्षित लक्षणासे विशेष प्रतिपत्ति होती है, यह बात युक्त नही। लक्षित लक्षणासे यह तात्पर्य है कि शब्दसे तो सामान्य लक्षित हुआ और इस सामान्यसे फिर लक्षणा बनी अर्थात् विशेषका ज्ञान हुआ यह पद्धति नही बन सकती। इससे यह मानना चाहिये कि वाच्य वाचकमे सामान्य विशिष्ट विशेषरूपता है। जैसे धूमादिक मे पहिले जाना था रसोईघरका धूम और अब जान रहे हैं पर्वतका धूम तो पर्वतका धूम सामान्य विशिष्ट विशेषरूप है अर्थात् वह धुवाँ न केवल व्यक्तिरूप है न केवल जातिरूप है किन्तु जाति को न छोडकर उस सामान्यरूपसे विशिष्ट होकर व्यक्ति जाना गया है।

पदार्थमें सामान्यविशिष्ट विशेषरूपता—अब शङ्काकार कहता है कि धूम आदिकके तो सामान्यका सद्भाव है तब फिर उस सामान्यको विशिष्ट धूमादिक की उपपत्तिका तो गमकपना आ जायगा पर सामान्यमे तो विशेषका अभाव है तब फिर सामान्य विशिष्ट विशेषरूपता नही बन सकता फिर वह अर्थका ज्ञापक बन नही सकता। विशेषका सामान्यमें अभाव है यह कैसे जाना कि जब हम दूसरे वर्णको ग्रहण करते है तो दूसरे वर्णका तो ग्रहण करते हैं तो दूसरे वर्णका इस समय प्रत्यभिज्ञान नही होता। इससे सिद्ध है कि शब्दमें विशेषका अभाव है। वही शब्द है। शब्द कोई दूसरा होता ही नही है। जहा ही सामान्य है तो वहाँ एकके ग्रहण करने पर दूसरे व्यक्तिका स्मरण होता है। जैसे रोझमें और गायमे समानता है—आकार, सीग, मुह आदिक उनके मिलते जुलते हैं तो कुछ सामान्य आया तो वहा तो यह बन जायगा कि रोझके देखनेसे गायका प्रत्यभिज्ञान हुआ, पर यहा तो वर्णान्तरोमे विशेषता नही है। दूसरा वर्ण जिसे ग्रहण किया तो उस सम्बन्धकका अनुष्ठान तो नही होता। एक ही वर्ण आता। जैसे गायकी रोझमे विशेषता है और सामान्य भी है तो वहाँ तो सामान्य विशिष्ट विशेष ज्ञानमे आ जायेंगे मगर शब्दमे तो विशेष है ही नही। सब न्यारे न्यारे शब्द हैं और वे सामान्यरूप हैं। जैसे १६ स्वर ३२ व्यञ्जन आदिक जो भी शब्द है बस वे उतने है। तो वहा कोई ग बोले तो क का कोई ख्याल नहीं करता। इससे सिद्ध है कि वहा विशेष है नही तो शब्दमे यह बात नही घटित हो सकती कि सामान्य विशिष्ट विशेषणका ज्ञान हुआ करता है। अनुमानमे तो बात बन जायगी कि धूमसे अग्निका ज्ञान होता है और वह धूम सामान्य विशिष्ट विशेषरूप है, धुवाँ तो व्यक्तिरूप है जिसमे व्यतिरेक पाया जाय वह व्यक्ति कहलाता है। धुवाँ यद्यपि व्यक्तिरूप है पर धूमत्व सामान्य जाति भी पडा रहता है, किन्तु शब्दमे सामान्यविशेषरूपता नही है। अब समाधानमे कहते हैं कि यह बात कुछ अयुक्त है। ग

आदिक अन्य वर्णोंके ग्रहणके कालमे अन्य वर्णोंका ग्रहण होनेपर यदि ग, भी वर्ण है, ऐसे अनुसंधानका अभाव है तो फिर उससे अनुष्ठानका अभाव असिद्ध क्योंकि उस प्रकारका अनुष्ठान पाया जा रहा है। सो अनुष्ठानका अभाव असिद्ध है। यह वही वाच्य है ऐसा लोगोंको स्मरण होता है इसलिए उसमे सामान्य विशिष्ट विशेष-रूपता बन जायगी।

वर्णमे सामान्यविशेषात्मकताकी चर्चा यदि कहो कि न आदिक अन्य वर्णोंके ग्रहणपर यह भी आदिक है ऐसा अनुसधान न होनेसे सामान्यका सद्भाव नही है। यदि आप कहते हो तो कई गायोमे कोई चितकवरी गाय देखा तो उसके देखने पर, भी यदि कोई काली गाय है तो यह भी काली है ऐसा अनुष्ठान नही होता तो गायपनेका भी अभाव हो जायगा। यह भी गाय है। तो जैसे गायोंमें चितकवरी, लाल, काली आदिक अनेक गायोका जब उनमें गाय सामान्यका बोध होता है, यही बात वर्णोंमे है। क ख ग आदिक वर्ण विशेष कुछ हैं और उनमे सामान्यका धारण पाया जाता है। जितने बार बोले गए वे सब क क व्यक्ति विशेष हैं और उनमें क पना सामान्य है। यदि कहो कि गऊ गऊ आदिक अनुगत प्रकारक ज्ञान होनेसे गाय-पनेका असत्त्व तो नही है अर्थात् गाय सामान्य बराबर तत्त्व है तो यह बात वर्णोंमे भी लगा लो। वहापर भी वर्ण है इस प्रकार अनुगत आकाररूप ज्ञान होता है सो फिर किसी वर्णमे वर्णपनेमे ग आदिकका गत्त्वका, शब्दमे शब्दत्वका अभाव कैसे हो जायगा, क्योंकि सब बाते बिल्कुल समान हैं, निमित्तकी विशेपना नही है समानता सिद्ध करनेका निमित्त जब अनुगताकार प्रत्यय है अर्थात् वहाँ वही वही है इस प्रकार का बोध समानताका निर्णायक है तो यही बात वर्णोंमे भी पायी जाती है कि यह वर्ण है यह वर्ण है इस प्रकार वर्णोंमें वर्णत्वका अभाव नही है क्योंकि अनुगताकार प्रत्यय बराबर मिलता रहता है। अब वर्णोंमे एक एक वर्णको लेकर देखो—जैसे ग जितने भी प्रत्यक्षाभाव हैं पहिले बोले गए इस समय भिन्न भिन्न मनुष्योके बोले गए भविष्यमें भी बोले जाने वाले ग आदिकमे गत्व बराबर मौजूद है और शब्दमें शब्दत्व-भी मौजूद है। इस प्रकार अनुगताकार प्रत्यय बराबर होनेसे उनमें भी सामान्य पाया जाता है। समान और असमान रूप वाले व्यक्तियोमे कही समान है यह प्रत्यय तो सबमे अनुगत होना है और अन्यसे व्यावृत्त होता है। अर्थात् वृत्तियाँ अनेक हैं और किसी धर्मसे वह असमानरूप है तो जिस धर्मसे समान रूप है उस धर्मसे अनुगत है और जिस धर्मसे असमान रूप है उस धर्ममे वह एक दूसरेसे अलग है। तो जहा बोध की अनुवृत्ति अर्थात् वही वही है यह इस प्रकारके बोधका बराबर चलते रहना यह ग आदिकमें भी समान है इस प्रकार कैसे नही वहाँ सामान्यकी व्यवस्था हो सकी। यहा अनुगताकार प्रत्यय भी मिल गया तिसपर भी सामान्य नही मानते हो तो फिर जो गायोमे लाली पीली, काली, चितकवरी आदिक है उनमे भी सामान्य नही मानो। क्योंकि उन गायोमे भी उस प्रकारके बोधकी अनुवृत्तिके बिना सामान्य मान लेनेपर

हम कुछ मान लेनेमे हम कुछ और निमित्त नही देख रहे अर्थात् अनुगताकार प्रत्यय का होना ही सामान्यके माने जानेका वास्तविक कारण है और यह कारण शब्दोंमें वर्णोंमे इनमे भी पाया जाता है।

सवर्णोंमें अनुगताकारता न माननेपर अन्य वर्णोंमें व्यावृत्तत्वके अभावका प्रसग - यदि कहो कि यहाँ अनुगत अबाधित इन्द्रियजन्य ज्ञानके विषयपना होनेपर भी गत्व आदिकका अभाव है अर्थात् ग आदिक वर्णोंमे अनुगत प्रत्यय भी हो रहा और अबाधित बात बन रही और कर्ण इन्द्रियसे उसका बोध भी हो रहा तिस पर भी अगर उन ग आदिक वर्णोंमे गत्व आदिकका अभाव माना जाय तो ग आदिक वर्णोंका भी अभाव हो जायगा। जब ग ग ग अनेक ग मे अनुगत प्रत्यय होने से गत्व होना चाहिये सो नही मानते तो क आदिक अनेक वर्णोंमे जो कि एक वर्ण दूसरे वर्णसे अलग है, व्यावृत्त प्रत्ययके विषयभूत हैं उनका भी अभाव हो जायगा। तो इस प्रकार किस उच्चारणको तुम परार्थत्वात् इस हेतुसे नित्यपना सिद्ध करोगे ? जब यहाँ हेतुका साध्य ही न मिलेगा, ग आदिक वर्ण ही न मिलेंगे, पक्ष न मिलेगा तो नित्यत्व पना कैसे सिद्ध करोगे ? अब जो कहा गया था कि सादृश्यके द्वारा पदार्थोंकी प्रतिपत्ति नही होती है तो यह बात अयुक्त है क्योंकि सदृश परिणाम है लक्षण जिसका ऐसे सामान्यमे सहित जो व्यक्ति है वह अर्थका प्रतिपादक है। शब्द अर्थका प्रतिपादक है। शब्द अर्थका प्रतिपादक है और वह शब्द सदृश परिणाम वाला है। जितने अक्षर बोले गए थे पहिले वे ही अक्षर अब है, उनकी तरह हैं इससे सादृश्यसे अर्थकी प्रतिपत्ति बराबर बनती है। बारबार उच्चारण किए जाने वाले शब्द सदृशताके कारण एक रूपसे निश्चयमे आ रहे हैं सो जब उनमे प्रत्यभिज्ञा रहती है तुरन्त तो वह शब्द अर्थकी प्रतिपत्तिको करने लगता है। देखिये शब्द बोलनेके बाद जो अर्थका ज्ञान होता है इस बीच कितने ज्ञान हो जाते हैं। शब्द बोला तो सबसे पहिले सादृश्य प्रत्यभिज्ञान बना। पहिला प्रत्यक्ष बना। श्रवण इन्द्रियसे जाना फिर स्मृति बनी। ऐसे ही शब्द बोले गए थे फिर सादृश्य प्रत्यभिज्ञान बना। उससे वह अपने कार्यमे एक रूपसे निश्चय करने वाला बना उससे फिर अर्थका बोध हुआ। तो अर्थके बोधके लिऐ शब्दको नित्य मानना ही पडेगा यह बात ठीक नही जचती। वह तो प्रत्यक्ष स्मृति प्रत्यभिज्ञान इन सब प्रमाणोंकी सहायतासे शब्दमे अर्थकी प्रतिपादकता हुआ करती है।

सादृश्यसे अर्थप्रतिपत्तिको भ्रान्त माननेपर अनुमानके अभावका प्रसग—देखिये ! शब्द बोलनेके बाद जो अर्थका ज्ञान होता है उस बीच कितने ज्ञान हो जाते हैं। शब्द बोला तो सबसे पहिले सादृश्य प्रत्यभिज्ञान बना, पहिला प्रत्यक्ष बना। श्रवण इन्द्रियस जाना फिर स्मृति बनी। ऐसे ही शब्द पहिले बोले गए थे फिर सादृश्य प्रत्यभिज्ञान बना। उससे वह अपने कार्यमे एकरूपसे निश्चय करनेवाला बना,

उससे फिर अर्थका बोध हुआ। तो अर्थके बोधके लिए शब्दको नित्य मानना ही पड़ेगा यह बात ठीक नहीं जचती। वह तो प्रत्यक्ष स्मृति प्रत्यभिज्ञान इन सब प्रमाणोंकी सहायतासे शब्दमे अर्थकी प्रतिपादकता हुआ करती है।

सादृश्यसे अर्थप्रतिपत्तिको भ्रान्त माननेपर अनुमानके अभावका प्रसग शङ्काकारने जो कहा था कि सादृश्यसे अगर अर्थकी प्रतीति करने लगोगे तो शाब्दिक ज्ञान भ्रान्त हो जायगा। सो इस तरह अगर सदृशतासे होने वाले अर्थज्ञा में भ्रान्त विज्ञान मानोगे तो फिर अनुमान प्रमाण भी न बन सकेगा किन्तु वहाँ धूम आदिकके देखनेसे अग्नि आदिककी प्रतिपत्ति हुई अग्निका पर ज्ञान हुआ। तो वहा जो धूम देखा वहा तो सदृश धूम दिखी, जिस धूमको देखकर पहिले अग्निका अविनाभाव समझाया था वह धूम नाहीं था, अब यह धूम नया है तो उनमें जो अग्निकी व्याप्ति की जाती है वह सदृशतासे की जाती है और अब सदृशता देखकर जो अर्थका ज्ञान होता है उसको मान लेते हो भ्रान्त ज्ञान तो यह भी भ्रान्त बन बैठेगा, फिर अनुमान प्रमाण क्या बनेगा? तो जिस तरह सदृश धूमको देखकर अग्नि आदिकका ज्ञान हो जाता है और वह अनुमान प्रमाण सम्यक प्रमाण बनता है इसी प्रकार सदृशतासे अर्थकी जब प्रतीति होती है तो वहां शाब्दिक ज्ञान भ्रांत नहीं हो सकता।

सादृश्यविशिष्ट व्यक्तिरूप वर्णोंकी वाचकता – शङ्काकारने जो विकल्प किया था कि गत्वादिक वाचक है या ग आदिक व्यक्ति वर्ण वाचक है? शङ्काकार ने दो विकल्प बताये थे कि शब्द सुनकर जो अर्थका ज्ञान होता है तो अर्थका ज्ञान गत्व है या ग आदिक वर्ण है। गत्व कहते हैं अनेक ग मे रहने वाले सामान्य गपना को। जैसे घट और घटत्व। जितने घट हैं उन सब घटोंमे रहने वाला सामान्यपन घटत्व है। इसी प्रकार जितने वर्ण हैं उन वर्णोंमें जो सामान्य है उसका नाम है वर्णत्व। अब क ख ग आदिक जो अनेक वर्ण हैं उनमे सामान्य हुआ, कत्व, खत्व, गत्व आदिक। तो क्या इस तरह गत्ववाचक है, या ग यह व्यक्तिरूप वर्ण वाचक है और इन विकल्पोंको उठाकर उनका निराकरण करना चाहा था कि गत्व वाचक होजायगा तो इसमे शङ्काकारका मत ही सिद्ध हो रहा है और यदि व्यक्ति वाचक बना हो तो व्यक्तिमात्र या व्यक्ति विशेष, व्यक्तिमात्र हो तो सामान्यमे गया या व्यक्तिमे अन्तर्भूत इन विकल्पोंको उठाकर दोष दिया गया था, वे सब दोष निराकृत होते हैं। केवल इतने ही मात्रके समर्थनसे कि सामान्य विशिष्ट व्यक्तिरूप वर्णवाचक हुआ करता है, जितने भी वर्ण बोले जाते हैं क ख ग आदिक तो जितने भी क अब तक बोले गए और अनेक पुरुषोंके द्वारा बोले जा रहे और आगे बोले जायेंगे उन सब क आदिक वर्णोंमें कपनेका तो सबमे योग है। जितने भी क हैं सबमे कत्व पाया जाता है, कत्व युक्त जो क है वह अर्थका वाचक है। कुछ शब्द मिल जुलकर अर्थके वाचक होते हैं। जो एकाक्षरी पद होते हैं वे एक ही अक्षरवाचक होते हैं। जैसे क मायने जल। तो

सामान्यविशिष्ट व्यक्तिवाचक हुआ करता है इससे सिद्ध है कि वर्ण वाचक हो जाता है।

सादृश्य प्रत्यभिज्ञानका शब्दार्थप्रतिपत्तिमे खासा सहयोग—शङ्काकार कहता है कि सादृश्यसे अर्थकी प्रतीति किस तरह हो सकती है। एकपनाका जब तक अर्थका ज्ञान नही होता। जो ही शब्द उसने अर्थका सम्बन्ध ग्रहणके समयमे जाना था वही शब्द यह बोला जा रहा है ऐसा शब्दज्ञान होता है तब उससे अर्थकी प्रतीति होती है। जैसे कि पुरुषने बालकसे कहा कि कांचका गिलास लावो। तीसरेने सुना और यह देखा कि वह यह उठा लाया, तो झट समझ जाता कि कांचका गिलास मायने यह। अब जब जब कांचका गिलास यह शब्द बोला जायगा जब तब तब यह यह समझेगा कि जो शब्द केवल सम्बन्ध ग्रहण रूपसे समझ रखा था कि कि इस शब्दका सम्बन्ध है इस पदार्थके साथ वही शब्द आज बोला गया तब अर्थको जानता है। समाधान करते हैं कि यह बात यो अयुक्त है कि वाचक बननेके लिए हमे उस तरहके शब्द मिलने चाहियें। जो शब्द बोले गए थे वह उस समयकी भाषा वर्गणाका परिणमन था। वह परिणमन तो टला और अब यह दूसरा परिणमन आया तो सदृश होनेसे वाचकपना बन जाता है। इससे एकत्वकी बात नही।

सदृश शब्दसे अर्थप्रतिपत्ति होनेमे अभ्रान्तत्व—शंकाकार कहता है कि देखो—सदृशतामे यदि अर्थका ज्ञान किया जाय तो सदृशतासे ज्ञान जो होगा वह भ्रान्त ज्ञान होगा क्योकि जिससे सकेत ग्रहण नही किया गया ऐसे पदार्थोंमे अन्य शब्दोसे अगर अर्थका ज्ञान किया जाता है तो वह अभ्रान्त नही कहला सकता। जैसे कि यह गाय शब्द बोलकर सकेत ग्रहण कराया गया कि यह गाय है तो कही उस गाय अर्थका बोध अश्व शब्दसे तो न बन बैठेगा। अश्व मायने घोडा, क्यो नही बनता कि गाय पदार्थसे सम्बन्ध है गाय शब्दका। गाय पदार्थसे सम्बन्ध घोडा शब्दका नही है। तो इसी तरह जैसे कि यह गाय शब्द घोड़ा शब्द भिन्न भिन्न शब्द हैं, जुदे जुदे हैं तो गाय शब्दसे जो बोध घोडा शब्दसे नही हो सकता। इसी तरह गाय गाय शब्द भी जितनी बार बोला जाय वे अगर न्यारे न्यारे शब्द हैं तो जिस गाय शब्दसे गाय अर्थका सम्बन्ध जाना था गाय शब्द तो वही एक मानते नही, अब तो नया शब्द आया तो नये शब्द अर्थका सम्बन्ध बनाया नही, तो नवीन गाय शब्दसे कोई अर्थ कैसे जाना जा सकता है और फिर भी जाना गया तो भ्रान्त हो जायगा। जैसे कि कोई घोडा शब्दसे गाय अर्थका सम्बन्ध जोड़ा तो वह भ्रान्त है। इसी प्रकार नवीन गाय शब्दसे जिससे कि सकेतका अभी ग्रहण नही किया गया और फिर उससे गाय शब्दका बोध करेगा तो वह भी भ्रान्त हुआ। उत्तरमे कहते हैं कि यह बात यो ठीक ठीक नही बैठी कि बहुत अवयवोकी समतासे जब सम्बन्ध जुडता है तब होता है सादृश्य और वह शब्दोमे सम्भव है, और उस सादृश्यसे चू कि वैसे ही अवयव नवीन थे, शब्दमे है तो वह शब्द भी उसके अर्थका बोध करा देता है। यह आशका भी

अयुक्त है वर्ण तो निरवयव होता है। वर्णोंमे अश नही होते। वर्ण पुद्गलात्मक होते शब्द वर्णात्मक होते तो शब्दमे उस प्रकारका सादृश्य हो जाता है। अवयव है और अवयवोका समूह है शब्द तो उसमे समानता आ जाती है।

वर्णसादृश्यप्रत्यभिज्ञानसे अर्थवाचकताकी सिद्धि--शकाकार कहता है कि वर्णोंमे जो समानता आयी तो समानताका अर्थ क्या है ? गत्व, कत्व आदिक तो यह सामान्य यदि गत्व वाचक है तो यही बात हमारे मतकी की गई कि वह सामान्य नित्य होता, गत्व भी नित्य होता और वह नित्य वाचक बना इसीको हम इस शब्दमे कहते हैं कि नित्य शब्द अर्थवाचक होता है। यदि कहो कि ग आदिक व्यक्ति वाचक होते है शकाकार कह रहा है, तो यह बतलावो कि ग आदिक व्यक्ति विशेष वाचक है या केवल ग आदिक व्यक्तिमात्र वाचक है, गत्व आदिक व्यक्ति विशेष वाचक नही, क्योकि उस व्यक्तिका अनेक ग में अर्थ नही पाया जाता। और, व्यक्तिमात्रकी बात कहोगे तो वह व्यक्तिमात्र सामान्यके अन्त प्रविष्ट है या व्यक्तिमें अन्तर्भूत है। यदि सामान्यके अन्त. प्रविष्ट है तो यह बात आ गई कि सामान्य वाचक बना और वह है नित्य। यदि व्यक्तिमें अन्तर्भूत बना तो उसका अन्वय नही पाया जाता। इससे शब्दको नित्य ही मानना चाहिये। क्योकि शब्दको नित्य माने बिना शब्द अर्थका प्रतिपादक नही हो सकता जब शब्द नित्य हो तो उसके अर्थसे सम्बन्ध बनाया जाय। जिस शब्दको हमने पहिले जाना ही नहीं, देखा ही नही, जिस पदार्थको हमने कभी देखा ही नहीं, उसका न सम्बन्ध बनता न उसमें वाच्यवाचकता आती, यदि अन्य ही शब्द पदार्थोंको बताने लगे तो कोई सा भी शब्द सबका वाचक बन सकता है और इस प्रकार सभी शब्द सबको प्रकाशित करदें यह बात कहना यो युक्त नही है कि ये शब्द शब्दसदृशतासे तो एकरूप जचते हैं पर इनकी उत्पत्ति है ये भिन्न देश कालमे पाये जाते हैं इस कारण ये न्यारे न्यारे वर्ण है और अनित्य हैं। तो इस तरह जो बात सुगम है, सीधी है, स्पष्ट हैं। वर्ण न्यारे न्यारे है। पैदा होते हैं। नष्ट होते हैं। उन शब्दोंमें जो पदार्थोंका सामर्थ्य है वह सदृशतासे एकत्वका निश्चय होनेपर प्रत्यभिज्ञा होनेपर अर्थको स्पष्ट कर जाते हैं।

शब्दकी अनेकता व अनित्यताको भ्रम बताते हुए नित्यता एकताके समर्थनकी शका—शकाकार कहता है कि अनेक जानने वाले लोग भिन्न भिन्न देशोमे भिन्न-भिन्न शब्दोको सुनते हैं इस कारण शब्द भिन्न भिन्न हो गए हैं यह बात युक्त नही है क्योकि जैसे एक सूर्य है और भिन्न भिन्न देश वाले उस सूर्यको भिन्न भिन्न देशोमे देख रहे हैं, उपलभ्यमान है, इस प्रकारसे जान रहे हैं तो भी सूर्य एक है। नाना नही हैं। नाना देशोमे जो सूर्यकी उपलब्धि हो रही है सो भले ही हो किसी कारणसे, किन्तु सब जानते हैं कि सूर्य एक है। इसी प्रकारसे विभिन्न देशोंमे शब्दोकी उपलब्धि हो रही है तो भले ही उपलब्धि हो मगर शब्द एक है। यह जो भिन्न

भिन्न देशोंमें शब्दकी उपलब्धि होती है वह व्यञ्जक ध्वनिके आधीन होनेसे होती है। कहीं शब्दके स्वरूपमे भेद पड़ा हो इस कारण नही होती। शब्दमें सभी वर्णोमें नित्यपना है और व्यापकपना है यह बात बाधा रहित प्रमाणसे, प्रत्यभिज्ञानसे स्पष्ट जानी जाती है। जो जो शब्द ग्रहणमे आ रहे हैं सभी देशोंमे वे शब्द मौजूद हैं बराबर और एक हैं, क्योंकि इसके अवयव नही होते। वर्णके हिस्से नहीं हैं। देशके एक एक भागके रूपमे ये शब्द भिन्न भिन्न देशोमे पाये जाते हैं। हां सब जगह शब्द है और इसी कारणसे वे भी सर्वात्मक हैं केवल व्यञ्जक ध्वनियोके आधीन होनेके कारण उस देशमे हो शब्द ग्रहणमें आते हैं, क्योंकि ध्वनियोमे यह सामर्थ्य नही है कि ध्वनिया सारे आकाशको व्याप सके इस कारण अविच्छिन्नरूपसे ये शब्द सर्वत्र ग्रहणमे नही आ रहे। ध्वनियाँ अलग अलग हैं, भिन्न भिन्न देशमे हैं और यह श्रुति शब्द श्रवण इसी कारणसे रुक रुककर होता है पर शब्दका स्वरूप देखो तो शब्द अनादि नित्य सर्वव्यापक है। सवत्र शब्दको प्रकट करने वाली जो वायु है। व्यञ्जक ध्वनिया हैं वे अन्य देशमे पायी जाती हैं। शब्द हैं सब जगह और शब्द प्रकट करने वाली ध्वनि अथवा व्यञ्जक वायु यह है एक जगह, सो एक जगह थोडी- जगहमें शब्द सुनाई देता है सो यह बुद्धि लोगोकी हो जाती है कि शब्द व्यापक नही है, पर सब अनुभव कर सकते है कि ऐसा लगता है कि जैसे शब्द दौड करके बडे वेगसे आया हो और श्रोता उन उन बातोसे ऐसा मानता है कि यह शब्द आया, पर शब्द आया पर शब्द नित्य हैं, सर्वत्र है, उसकी उत्पत्ति नही होती है। और जब शब्द नित्य हैं तो वेद और आगम शब्दोसे भरे पडे हैं। वे भी नित्य हैं और अपौरुषेय हैं।

शब्दके अनेकत्व व अनित्यत्वके निराकरणका निराकरण—उक्त शङ्का के समाधानमे इतनी बात समझ लेना चाहिए कि जो भी पदार्थ सत् होते है वे किसी न किसी अवस्थामे रहते हैं, अवस्थाशून्य नही होते। तो शब्द अवस्था है न कि पदार्थ, पदार्थ एकरूपमें शाश्वत रहने वाला है, पदार्थोंके स्वरूपमे आविर्भाव तिरोभाव इनका भी उत्पादव्यय नही देखा जाता, फिर सीधा उत्पादव्यय पदार्थोंमे होगा ही कैसे ? तो शब्द है अवस्था और अवस्था होती है किसी एकके आधारमें तो शब्दका आधार है भाषावर्गणा जातिके पुद्गल स्कध। उनमे परस्परके सयोग वियोगसे व्यञ्जक ध्वनिया उत्पन्न होती है उन्ही ध्वनियोंका नाम तो शब्द है। शब्द शब्दत्व सामान्यसे विशिष्ट है और सब उसमे पदार्थोंके प्रतिपादन करनेकी वाचन करनेकी सामर्थ्य है। यो शब्द उत्पन्न होता है, अनित्य है, अव्यापक है और जैसे गुणवान पुरुष या दोषवान पुरुष उन शब्दोंकी रचना करता है सो गुण और दोषके कारणसे उनमे प्रमाणता और अ-प्रमाणता व्यवस्थित हो जाती है।

शब्दसे एकत्वकी सिद्धिमे बाधा—शङ्काकारने जो कहा था कि जो जो ग्रहीत शब्द हैं वे सभी देशमे विद्यमान हैं पर उनके अवयव नहीं हैं जिससे कि वे हिस्से

हिस्सेके रूपसे रह सकें। शब्द है और वह सर्वात्मक है, व्यञ्जक ध्वनिके आधीन होने के कारण वे एक-देशमे ही है शब्द ऐसा प्रतीत होता है। समाधान— उसमें जो कुछ हेतु बनाया है उसके पक्षमे अनुमानसे बाधा है वह किस तरह सो सुनिये ! गो शब्द अनेक हैं एक पुरुषके द्वारा एक समय भिन्न देश ,स्वभावरूपसे, उपलभ्यमान होनेसे। अर्थात् गो गो आदि शब्द अनेक हैं क्योकि एक ही पुरुप एक ही समय भिन्न-भिन्न देश मे भिन्न रूपसे प्राप्त कर लेते हैं—घट आदिककी तरह। जैसे घट अनेक हैं। कैसे जाना ? यो कि एक ही पुरुष एक ही समयमे नाना देशोमे स्थानोमे घटको देखता है तो वह जानता है कि घट अनेक हैं। इसी प्रकार बोलने वाले पचासों आदमी चारो तरफसे गो गो शब्द बोलते है तो उस उस देशमे वह वह शब्द उपलभ्यमान होता है— यह शब्द नित्यत्वके स्वप्नमें अनुमान बाधा बतायी जा रही है। अनुमान किया गया कि एकके द्वारा एक समय भिन्न देश स्वभावरूपसे उपलभ्यमान होनेसे तो इस हेतुसे शब्दकी अनेकता सिद्ध हो जाती है।

शब्दके अनेकत्वके समर्थक हेतुकी अव्यभिचारिताका विवरण—यहा कोई कहे कि जैसे सूर्य एक है और अनेक जानने वाले भिन्न भिन्न देशोंमें प्राप्त कर रहे हैं —अमेरिका वाले अमेरिकामे देखते हैं, भारत वाले भारतमे देखते हैं तो इससे व्यभिचार हेतुका आ जायगा यह बात भी नही कह सकते, क्योकि यारे समय शब्द तो हैं एक पुरुषके द्वारा भिन्न भिन्न देशमे पाये जाने वाले, जो भारतमे एक पुरुष देख रहा है सूर्यको बस वह एक जगह देख रहा है। अन्य देशोंमें जो कोई देखता है वह वहासे देख रहा है। एकने तो नही देखा कई स्थानोसे। यहा हेतुमे 'एकेन व एकदा विशेषण दिया हुआ है। कोई कहे कि कोई एक पुरुष भिन्न भिन्न देशादिकरूपसे उपलभ्यमान होता है तो उससे व्यभिचार हो गया अर्थात् एक देवदत्त नामका पुरुष कल किसी घरमे देखा था आज किसी घरमें देखा तो देवदत्त तो एक है और भिन्न भिन्न देशोमें वह दीखा है तो उत्तर देते हैं कि इस हेतुमे एकत्व व एकदा विशेषण जोडा गया है, एक ही समयमे भिन्न भिन्न देशोमे चीजें पाई जाय तो वे अनेक होती हैं। एक ही समयमे भिन्न भिन्न देशोमे देखा किन्ही चीजोको तो वे अनेक हुआ करती है। अब यहां कोई शङ्का करता है कि एक ही आत्मा एक ही समयमें एकको देख रहा है, एक घडेको छू रहा है अथवा एक ही घडको देखनेके रूपसे प्राप्त कर रहा है और स्पर्शनके रूपसे प्राप्त कर रहा है तो ऐसे घट आदिकके साथ इस हेतुका व्यभिचार हो जायगा कि देखिये ! एक ही मनुष्य एक ही समयमें भिन्न भिन्न स्वभावसे घटादिक प्राप्त कर रहा है। उत्तर देते हैं कि हेतुमे भिन्न देश तथा भी विशेषण है अर्थात् भिन्न भिन्न देशोमे दीखे तो अनेक हैं। एक ही घडेको कोई आखोंसे देखकर रूप स्वभावसे घटको प्राप्त कर रहा है और वही पुरुष उस ही घडेको छूकर स्पर्शन इन्द्रियमे जो जाना है उस रूपसे घटको प्राप्त कर रहा है तो घट तो एक है और भिन्न स्वभाव से जाना गया, किन्तु अनेक कहा रहा, यह दोष इस कारण नही दिया जा सकता कि

हेतुमें भिन्न देशका विशेषण पडा हुआ है। वह एक घडा जिसको देखकर रूप स्वभाव से जान रहे हैं लेकिन भिन्न भिन्न स्थानोमे तो नही जान रहे इस कारण ऐसे दर्शन और स्पर्शनके द्वारा स्वभावभेद पाये जाने वाले घट आदिकके साथ व्यभिचार नही।

शब्दके एकत्वकी सिद्धिमे जलपात्रस्थित सूर्यबिम्बका विरुद्ध दृष्टान्त और शब्दके अनेकत्वकी सिद्धि— अब शङ्काकार कहता है कि देखो १० थालियाँ रखी है पानीसे भरी हुई धूपमे तो वहा १० जगह सूर्य दिख रहे हैं तो जलके थालोमे सक्रान्त हुए अनित्यके प्रतिबिम्बोसे स हेतुका व्यभिचार किया जायगा अर्थात् हेतुकी सकल यो है कि एक पुरुषके द्वारा एक ही समयमे भिन्न देश रूपसे भिन्न स्वभावरूपसे जो चीज पायी जाय वह अनेक कहलाती है। तो यहा देखो—एक ही पुरुषने देखा, एक ही समय देखा और जितनी जगह थालिया रखी है उन भिन्न भिन्न देशोमे देखा लेकिन सूर्य तो एक है तो इस हेतुमे व्यभिचार हो गया ना। उत्तरमे कहते हैं कि उन थालियोंमे सूर्य नही दीखा किन्तु प्रतिबिम्ब दीखे। सूर्यका निमित्त पाकर उन थालियो का पानी सूर्य छायारूप परिणम गया। तो अब जो दीख रहा है वह थालीमे भरे हुए पानीकी चीज दीख रही है सूर्य नही दीख रहा है तो इस तरह अब सूर्यमे भी व्यभिचार नही हुआ। अब प्रकरणपर आइये! शब्द एक पुरुषके द्वारा एक ही समयमे भिन्न भिन्न देशोमे भिन्न–भिन्न स्वभावसे उपलभ्यमान हो रहा है इस कारण अनेक हैं शब्द, ऐसा अनुमानसे सिद्ध होनेपर भी और नित्य व्यापक सिद्ध करने वाले अनुमानमे बाधा आनेपर भी यदि व्यापकत्व नित्यत्व धर्म मान लोगे तो घट आदिकमे भी यह धर्म मान बैठो! जैसे कि तुम कहते हो कि वर्णके अवयव नही होते जिससे कि वर्ण कुछ कुछ अंशोमे रहा करे। जैसे घट रखा है पूराका पूरा इसी तरह वर्ण भी रहता है पूराका पूरा। और वह है सर्वात्मक। अब इसके समाधानमे कहते हैं कि देखो, कही तो लाल घडा है कही काला व कही पीला आदि। भिन्न भिन्न देशोमे घट पाये जाते हैं इसलिये वे भिन्न है ऐसे ही शब्दकी भी भिन्न भिन्न देशोमे प्राप्ति होती है और भिन्न भिन्न स्वभावसे कही शब्द उदात्त है कही अनुदात्त। कही अ मिला हुआ है कही इ मिला हुआ है ऐसे ये शब्द भी भिन्न भिन्न प्रकारके पाये जाते है। सो वे अनेक हैं और साथ ही वे उत्पादव्यय होनेके कारण अनित्य हैं।

उदात्तादि धर्मोंकी आरोपितताकी मीमासा—शङ्काकार कहता है कि उदात्त अनुदात्त आदिक अकारादि वर्णोंके धर्म नही है व्यञ्जकोंके धर्म हैं। वर्ण तो पहिलेसे ही मौजूद हैं सदा हैं, व्यापक हैं उनको प्रकट करने वाली ध्वनि होती है तो ध्वनि स्थानमे जैसे भेद होता है वैसे ही उदात्त अनुदात्त आदिक भेद निकल बैठते हैं वे शब्दोके धर्म नही है। वे वहा आरोप होनेसे धर्मकी तरह प्रभासमान होते है जैसे स्फटिक आदिक मणिमे जवाकुसुमकी लालिमा उपचरित होकर प्रतिभासमान होती है। वैसे ही बुद्धिकी तीव्रता और मदता होनेपर महत्त्व और अल्पत्वकी कल्पना

जगती है। और, जैसे बडे भारी तेजसे प्रकाशमान पदार्थमे वृद्धि कुशल निपुण बनती है। और मद प्रकाशसे बुद्धि मद बनती है इसी तरहसे समझना चाहिए कि प्रकाशमे उससे पहिले जैसे घट आदिक तो वे होके वे हो हैं एक प्रकाश भेदसे उनमें भेद आता है। यो ही शब्द तो वहीके वही हैं, नित्य हैं व्यापक हैं पर ध्वनिके धर्मभेदसे उन उन शब्दोमे भी भेद प्रकट होता है। समाधान करते हैं कि यह बात सारहीन है। क्योकि यदि उदात्त आदिक धर्मसे रहित आकार आदिक और उदात्त आदिकसे सहित ध्वनि लाल गैरलाल आदिक स्वभाव वाले जपा कुसुम धर्ममे आरोपित स्फटिक छाया की तरह कही प्राप्त हो जाय तो यह कहा जा सकता है कि अन्यका धर्म अन्यमे आरोप करनेसे धर्मरूपसे प्रतिभासमान होता है। शकाकारका यह कहना था कि जैसे स्फटिक मणिमे लालिमा तो नही है स्वच्छ है, पर लाल कागजका अन्य कोई लाल चीज यदि उसके सामने हो तो वह स्फटिकमे लालिमा समान होती है। यह बात शब्दोंमे तब घटित की जा सके कि जैसे कहीं स्फटिक मणि अलग दिख जाती है और जवाकुसुम आदिक अलग दिखते हैं और फिर उनका सम्बन्ध होता है तो वहा प्रभावको आरोपित कह सकते हैं लेकिन उदात्त आदिक धर्म रहित अकार आदिक वर्ण और उदात्तादिक सहित ध्वनि कही प्राप्त होवे तो कहा जा सकता है कि ये भेद शब्दके न थे, ये उपचरित होते हैं, पर यह बात तो स्वप्नमें भी नही पायी जाती। शब्द धर्मरूपसे प्रतिभासमान थे उदात्त आदिक यदि अन्यके मान लिए जायें तो फिर किसी भी पदार्थमे कुछ भी विश्वास करनेका अवकाश नही रह सकता।

उदात्तादिधर्मसहित प्रतीतिमे बाधाका अभाव—शब्दोको नित्य व्यापक आदिक अनेक बातें सिद्ध करनेमे बाधकके अभावका हेतु दोगे कि हमारे माने हुए मन्तव्यका बाधक कोई हेतु नही है शकाकारके द्वारा कहा जा रहा है तो यह तो यहाँ भी समान हैं। शब्द अनेक हैं क्योकि एक पुरुषके द्वारा एक समय भिन्न देश और भिन्न स्वभावरूपसे उपलभ्यमान हैं बाधक नाम है विपरीत दिखनेका। जो बात प्रसगमे आयी है, प्रस्तुत की गई है उससे विपरीत अर्थका दर्शन करा दे कोई तो वह बाधक कहलाता है। जैसे कि दो चन्द्रमा दिखते हो किसीको तो उसका बाधक है एक चन्द्र का दिखना, पर यहाँ कोई ऐसा विपरीत दर्शक नही होता क्योंकि आकार आदिकमे हमेशा उदात्त आदिक धर्म प्रतीत होते रहते हैं। उदात्त आदिक धर्मको शब्दमे उपचरित तब कहा जा सके जब आधार छोडकर स्वतत्र रहा करता हो उनकी स्वतत्र सत्ता हो और शब्दोकी स्वतत्र सत्ता हो। तो यह कह सकते हैं कि भिन्न शब्दोमे उदात्त आदिक धर्मरूपसे ही प्रकट हुआ करता है। तो बाधा तो नहीं विपरीत दर्शन तो नही। शब्दोमे जो कुछ भी ह्रस्व आदिक दीर्घ जो भी नजर आते हैं वे सदा उस रूप हैं। जो शब्द बोले जायें उनमे आत्म लाभके समय हो उदात्त और अनुदात्त आदिक रूप होना पाया जाता है। फिर भी उदात्त रहित शब्द बोलने लगेंगे कि शब्द तो न्यारे शब्द ही हैं। उनमे उदात्त और अनुदात्त धर्म नही हैं। वे तो व्यञ्जक ध्वनियो

के भेदसे प्रकट हुए है। ऐसा माननेपर तो हम यहाँ भी यह कल्पना कर बैठेंगे कि घडा आदिक पदार्थ भी लाल पीले आदिक धर्मोंसे रहित दिखते हैं। तब घट आदिकमे यह लाल है, काला है, पीला है आदिक यह बोलका एक उपचार ही है। यदि कहो कि लाल काला आदिक धर्मोंसे रहित घट पट आदिक परिणाम ही नही हैं, वे जब हैं तो लाल नीला आदिक रूपको लिये हुए ही है। क्योकि रक्त आदिक धर्म रहित घटका असत्त्व है। उत्तरमे कहते हैं कि इसी तरह शब्दमे भी उदात्त आदिक धर्मसे रहित शब्दका असत्त्व है। शब्द उदात्त रहित, ह्रस्वरहित, दीर्घरहित ये पाये जाते हो तो उनसे रहित मान बैठना चाहिये।

शब्दके अल्पत्व महत्त्व उदात्तत्व आदिक धर्ममे बुद्धिकी तीव्रता व मदताकी अकारणता अब और देखिये। शङ्काकारने जो यह कहा है कि बुद्धिकी तीव्रता और मदतासे महत्त्व और अल्पत्व युक्त अर्थकी उपलब्धि होती है तो यह बतलावो कि महत्त्वरहित अर्थकी महत्त्वरूपसे उपलब्धि है या जिस प्रकारसे वह अवस्थित है उसकी अत्यन्त स्पष्टरूपसे उपलब्धि है यह भाव है। शङ्काकारके इस कथनपर कि शब्द तो एकरूप है नित्य है, व्यापक है। शब्दमे भेद नही पडा हुआ है क्योकि बुद्धि की जब तीव्रता होती है तो घट आदिक बडे जचने लगते है। तो इसके निराकरणमे दो विकल्प किये गए है कि जब महत्त्वरहित घट प्रतिभासित हो रहा है तो महत्त्वसे युक्त रूपमे प्रतिभासित होता है याने उससे कुछ घडा बडा बन जाता है या जैसा घडा है वैसा ही है किन्तु वह अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है। यदि कहोगे कि बुद्धिकी तीव्रतासे, महत्त्वरहित भी पदार्थ महान दिखता है तो फिर इस बुद्धिको भ्रान्त कहना चाहिए अर्थात् बडा तो है नही और उसे बडा देखते हैं। इसी प्रकार यह भी कहना कि बडा तेज तीव्र घट आदिकमे एक विशेषता, स्थिरता प्रकट होती है और मद परिस्थितिमे मदता प्रकट होती है। यह उदाहरण भी अयुक्त है। छोटा घडा कही महान नही प्रतिभात होता है। हा यह बात है कि शब्द उच्चारते हैं तो पदार्थ स्पष्टरूपसे प्रतिभासमान हो जायेंगे? तो इसी प्रकार शब्द जैसे उच्चारित होते हैं वैसे ही प्रकट होगे, वे कही व्यञ्जक ध्वनियोके कारण हल्के हो जायें, बडे हो जायें, भेद पड जाय सो बात नही है। बुद्धिकी तीव्रतासे पदार्थका महत्त्व जचता है, बुद्धिकी मदतासे पदार्थ अल्प जचता है ऐसा प्रश्न किया जानेपर उत्तर दिया जा रहा है कि यह भी नही होता। बहुत बडे उजेलेमे चीज एकदम साफ नजर आयगी पर छोटेका बडा नजर आये यह बात नही होती। तो महत्त्वरहित पदार्थका महत्त्वके द्वारा उपलम्भ होनेका नाम बुद्धिकी तीव्रता है यह बात तो घटित नही होती, यदि दूसरा पक्ष लोगे कि महत्त्व आदिक धर्म रहितका पदार्थका स्पष्टरूपसे ग्रहण होनेका ही नाम बुद्धिकी तीव्रता है और ऐसा होनेपर व्यञ्जक ध्वनियोके धर्मका अनुविधान करना भी सिद्ध नही होता। अर्थात् बुद्धि तीव्र हो जायगी तो पदार्थ स्पष्ट विदित हो जायगा पर यह न छोटा और बडा नजर आने लगे। इस तरह बुद्धिके मद होने

पर पदार्थमे अलगता आती है। यहाँ कहते है कि यह मत नष्ट हो जाती है। बुद्धि मद हो गई तो पदार्थ जरा कम जनने लगे, उनके ज्ञानको कठिन कहने लगे किन्तु कितने ही स्पष्टरूपसे पद थका ज्ञान होना। ज्ञाता पुरुष पदार्थको उतना ही उतना देख पाता है। ऐसा नहीं है कि मदतेजमे प्रकाशमान हुए घट आदिक छोटे होंगे और तेज प्रकाशमे प्रकाशमान घट आदिक बड़े होंगे इस कारण यह मानना चाहिये कि बडे तालु आदिकके व्यापार होनेपर महत्त्व आदिक धर्मोंसे सहित शब्दोंकी उत्पत्ति होती है और मन्द तालु आदिकके व्यापार होनेपर अल्पत्व आदिक धर्म सहित शब्द ही उत्पन्न होते हैं।

तात्वादिकोकी व्यञ्जकता व शब्दोकी व्यञ्जकतापर मीमासा और भी सुनिये! यदि तालु आदिक ध्वनियां शब्दकी व्यञ्जक बन जाँ तो तालु आदिकके व्यापार होनेपर महत्त्व अल्पत्व आदिक धर्म सहित शब्दकी नियमसे उपलब्धि न होगी, क्योंकि यह तो कारकोका व्यापार है कि अपनी सामर्थ्यसे नियमसे कार्यको बनाये। यह व्यञ्जकोंका व्यापार नहीं है। तात्पर्य यह है कि जैसे घट रखे हुए हैं और उनपर कपड़ा डाल दिया तो कपड़ा उघाडनेसे कहीं वह घड़ा बड़ा या छोटा न बन जायगा। जो है सो ही व्यक्त होगा। छोटा बड़ा होना तो कारण कार्यमे बनता है। व्यञ्जक और व्यंग्यमे नहीं बनता। यह व्यञ्जकोंका व्यापार नहीं है कि किसी शब्दको छोटा करदे और किसीको बड़ा करदे, यह भी नहीं है कि जो व्यञ्जक है वह जहाँ हो वहाँ व्यंग्य अवश्य हो। जैसे दीपक तो है व्यञ्जक अर्थात् पदार्थोंको प्रकट करने वाला और पदार्थ है व्यंग्य अर्थात् प्रकट होने योग्य। तो क्या कहीं ऐसा देखा है किसीने कि दीपक जलाया तो वहाँ घड़े आदिक बनकर आने चाहियें? घर होंगे तो प्रकाशमे आयेंगे न होंगे तो प्रदीपके जलनेपर भी घट आदिक प्रकाशमे नहीं आ सकते। जैसे व्यञ्जक प्रदीप आदिक जहाँ जहाँ हैं वहाँ वहाँ व्यंग्य घट आदिकका सन्निधि हो उपलब्धि हो, यह नियम नहीं है। अन्यथा अर्थात् प्रदीप आदिकके होनेपर घट आदिककी उत्पत्ति हो जाय तो फिर उसमे कोई विशेषता नहीं रही, फिर उत्पन्न करना भी व्यर्थ है, कुम्हार चक्र आदिकका व्यापार भी व्यर्थ है क्योंकि अब तो यह नियम बना दिया कि जहाँ व्यञ्जक होता है वहाँ व्यंग्य नियमसे होता है। दीपक हैं घट पट आदिक पदार्थों के व्यञ्जक प्रकाशमान करने वाले तो जहाँ जहाँ दीपक होंगे वहाँ वहाँ पर घटआदिक अपने आप ही आ जायेंगे। फिर घट पटके भेद करनेकी क्या जरूरत है? फिर चक्र कुम्हार, कुलाल, कुविन्द आदिककी आवश्यकता ही क्यों रहे?

शब्दोकी कार्यरूपताके विरोधमे शङ्का व समाधान—शङ्काकार कहता है कि घट आदिक पदार्थ तो सर्वगत हैं नहीं, वे जितने बड़े हैं उतनी जगहमें ही रहते हैं इसलिए घट आदिकको व्यञ्जन करने वाले, प्रकाशित करने वाले प्रदीप आदिकका सन्निधान भी हो तो भी सब जगह घट पट आदिक उपलब्ध होना चाहिये। यह बात

न बनेगी। किन्तु शब्दमे यह बात सम्भव है क्योंकि शब्द है सर्वव्यापक। जब सर्वत्र शब्द पडा हुआ है और कही व्यञ्जक तालु आदिक व्यापार ध्वनिया बन गयी हैं तो वहाँ शब्द व्यग्य हो ही जाता है। उत्तरमे कहते हैं कि यह भी कथन बिना विचारे है शब्द सर्वगत है ही नही। अपनी कल्पनामें कोई कुछ मान ले इससे वह प्रमाण तो नही हो जाता। शब्द सर्वगत नही है, क्यो क सामान्य विशेषवान होनेपर बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष होनेसे। जैसे घट पट आदिक पदार्थ ये सामान्य विशेष वाले हैं और बाहरमे एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष होते है। जैसे आंखोसे देखा घडा तो मालूम होता है कि यह सर्वव्यापक नही है। तो यहां बात शब्दमे पाई जाती है। शब्द भी सामान्य विशेष वाला है इसलिए शब्दको अगर व्यग्य मानते हो तो घट आदिकको भी व्यग्य मान लो। और यदि घट आदिकको व्यग्य नही मानते, कार्य मानते हो तो शब्दको भी कार्य मानो। जब हेतु दोनोमे एक समान रूपसे रहता है घट भी सामान्य विशेषवान है और बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत है तो शब्द भी सामान्य विशेषवान है और बाह्य एकेन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्षभूत है। कर्ण-इन्द्रियके द्वारा शब्दका परिज्ञान होता है,इस कारण जैसे कुम्हार चक्र आदिकके व्यापारसे घटकी उत्पत्ति होती है इसी प्रकार कठ तालू आदिकके व्यापार होनेपर शब्दकी उत्पत्ति होती है। यो शब्द नित्य नही, व्यापक नही और शब्दोमे भरा पूरा जो आगम है उसकी प्रमाणता उसमे वक्ता की प्रमाणतामे आया करती है।

श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य होनेसे ध्वनिमे व शब्दमे अनर्थान्तरता—यह प्रकरण चल रहा है आगम प्रमाणका। आगम भी प्रमाण है। इसका लक्षण बताया गया कि आप्त सर्वज्ञदेवके वचन आदिकके निमित्तसे जो पदार्थोंका ज्ञान होता है उसे आगम कहते हैं। इस प्रसगमे वेदसिद्धान्त वालोने शका रखी थी कि यह लक्षण सही नही है क्योंकि सर्वज्ञ कोई है ही नहीं, फिर सर्वज्ञके वचनसे शब्द आये और प्रमाण हुए यह कैसे होगा। साथ ही यह बतावो कि वेदवाक्य ही प्रमाण है क्योंकि वह अपौरुषेय है। किसी पुरुषके द्वारा बनाया नही गया है। इसके समर्थनमे यह भी कहा कि शब्द नित्य होता है और वे नित्य शब्द ही वेदमे है अतएव वे प्रत्येक अर्थ बताते है और प्रमाणभूत हैं। तो यहां शब्दके नित्यत्वके बारेमे चर्चायें चल उठी। शब्द नित्य नही है क्योंकि वह उत्पन्न होता है और नष्ट होता है। कहते हैं कि शब्द तो सदा रहते है, शब्द नही उत्पन्न हुआ करते। इन शब्दोका आविर्भाव होता है। जैसे घट आदिक पदार्थ पडा हो और उसके ऊपर कोई आवरण पडा हो तो आवरण हटनेसे घटपट आदिक पदार्थोंका आविर्भाव हो जाता है। इसमे भी बहुत आपत्ति आयी, क्योंकि शब्द हो और उनका आविर्भाव हो तो आविर्भाव कैसे हुआ? ध्वनियोमे तालू कठ आदिकसे शब्दका आविर्भाव माना है जिससे कि उत्पत्ति मानी गई है। उन स्थानोसे शब्दोका आविर्भाव माना है शकाकारने तो उन ध्वनियोके सम्बधमे पूछा जा रहा है कि वे ध्वनिया श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्रहणमे आती हैं या नहीं?

शकाकार कहता है कि ध्वनि और शब्द ये दो अलग अलग चीज रहे । ध्वनि तो उत्पन्न होती हैं किन्तु शब्द नित्य है वह उत्पन्न नही होता । तो वे ध्वनिया क्या चीज हैं सो पूछा जा रहा है । वैसे लोकरुढिमे ध्वनि भी शब्द कहलाती है । जैसे मेघकी ध्वनि हो, भगवानकी ध्वनि हो तो ध्वनि मायने ही शब्द है । शकाकार चाहता है कि ध्वनि कुछ और कहलाये, शब्द कुछ और कहलाये । तो उस ही ध्वनिके सम्बन्धमे पूछा जा रहा है कि वे ध्वनिया श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्रहणमे आती है अथवा नही ? यदि कहो कि श्रोत्र इन्द्रिय द्वारा साध्य है वे ध्वनियाँ तो इस ही कारण वे शब्द कहलाते हैं । ध्वनिया शब्द ही है । ध्वनि तो बन जाय व्यञ्जक और शब्द रहे व्यग्य अर्थात् शब्द तो पहिलेसे बने हुए है । उनका तो होता है आविर्भाव और ध्वनियाँ उत्पन्न की जाती है, उन ध्वनियोके आविर्भाव होता है क्योकि शब्दका, लक्षण यही है कि जो श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्रहणमे आये । अब व्यक्तियोको श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्राह्य माना है तो ध्वनियाँ शब्द नही हैं ।

उदात्तादिकोकी शब्दधर्मतापर विचार – शकाकारके समक्ष जब शब्दोके भेद सामने आये कि शब्दमे तो अनेक भेद पडे हैं—कोई ह्रस्व कोई दीर्घ । कोई उदात्त कोई अनुदात्त । जो शब्द ऊचे स्थानसे बोले जाये सो उदात्त हैं और जो नीचे स्थान करके बोले जायें सो अनुदात्त हैं । तो उदात्त अनुदात्त आदिक शब्दोके धर्म कहे गए थे और जिनका विविधता हो वह अनित्य होता है । अनेक होता है तो इस समय शकाकारने यह कहा था कि उदात्त ह्रस्व दीर्घ ये सब भेद ध्वनियोके हैं शब्दके नहीं शब्द तो एक है, नित्य है । सर्वव्यापी हैं । ध्वनिया जाना हैं । तो अब श्रोत्र इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य ध्वनियाँ हो गयी जिससे कि ध्वनिक शब्द कहलाने लगे तब फिर उदात्त आदिक भेद तात्विक कहलाये । ऐसा नही कि उदात्त आदिक धर्म शब्दके वास्तविक नही हैं, हैं किसीके और उनका उपचार शब्दोमे किया गया । ऐसी बात नही किन्तु शब्दके ही धर्म उदात्त ह्रस्व दीर्घ आदिक हैं । उन्हें चाहे ध्वनि शब्दसे कहो चाहे शब्द शब्दसे कह उन ध्वनियोसे अतिरिक्त शब्दकी कल्पना करना व्यर्थ है ? चाहे ध्वनि कहलो, चाहे शब्द कह लो यह वह पदार्थ है जो श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्रहणमे आता है । यदि कहो कि ये ध्वनिया श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्रहणमे नही आती तब फिर उन ध्वनियोके धर्म जो उदात्त अनुदात्त ह्रस्व दीर्घ आदिक आया है वह श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा कैसे ग्राह्य होगा । शकाकार यहा दो बातें मान रहा है ना—ध्वनिया और शब्द । और उदात्त अनुदात्त ह्रस्व दीर्घ आदिक जो भेद हैं वे ध्वनियोके माने हैं शकाकार उन भेदोको शब्दोमे नही मानता क्योकि शब्दोमे नही मानता क्योकि शब्दोमे भेद मानने लगे तो शब्द अनित्य हो जायगा । नाना हो जायेंगे, सर्व व्यापक भी न रहेंगे । इस कारण उदात्त आदिक धर्म ध्वनिके माने गए हैं । तो अब जब ध्वनि श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्राह्य नही हैं यह मिथ्या विकल्प माना जा रहा है तो फिर उदात्त धर्म श्रोत्र इन्द्रिय द्वारा ग्रहणमे कैसे आ सकता है? कहीं ऐसा नही होता कि

रूपादिकके धर्म तो चमक आदिक हैं तो रूप तो ग्रहणमे नही आये और चमक ग्रहण मे आ जाय अथवा रूपका चमक आदिक श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्रहणमे आ जायें ऐसा तो नही होता। तो इसी तरह भी नही हो सकता कि ध्वनिया मायने हैं उदात्त आदिक सो ध्वनि तो श्रोत्र इन्द्रियसे ग्रहणमे नही आये और उदात्त आदिक ग्रहणमें नही आ जाये। और जबरदस्ती मानोगे भी कि उदात्त आदिक श्रोत्र इन्द्रियसे ग्रहणमे आ गये तो उनको शब्दका धर्म मानना पडेगा अथवा किसी भी इन्द्रियके द्वारा उदात्त आदिक ग्रहणमे आ जायें यो मानना पडेगा।

उदात्तह्रस्वादिकी शब्दधर्मता माननेमे ही वास्तविकता—शङ्काकार कहता है कि उदात्त आदिक जो ग्रहणमे आते हैं, छोटे बडे अक्षर शब्द जो ग्रहणमे आते हैं तो वे वास्तवमे ग्रहणमे नही आते किन्तु आरोपसे आते है याने उदत्त अनुदात्त स्वर ह्रस्व दीर्घ ऐसे जो वर्ण भेद है, वे जो ग्रहणमे आ रहे हैं सो सीधे ग्रहणमे नही आते किन्तु आरोपसे आते हैं। तो उनसे पूछा है कि अग्रहीतको आरोप कैसे हो जायगा? जब उदात्त आदिक धर्म ग्रहणमे न आ सके तो उनका आरोप कैसे बनेगा? ध्वनियोके धर्म हैं और शब्दोमे आरोप होता है। यदि अग्रहीतका भी आरोप बनने लगे तो रूपका जो भासुरता आदिक धर्म है उसका भी शब्दमे किसी भी चीजमे आरोप करलें। बिना ग्रहण किए हुए धर्मका आरोप अगर होने लगे तो रूपके चमकका आरोप भी शब्दमे कर डालें क्योकि आरोप तो बिना ग्रहण किये भी हो जाया करता है। शकाकार कहता है कि ध्वनियो हैं व्यञ्जक, इस कारण ध्वनियोंके वे धर्म ही शब्दमे आरोपित होते हैं। छोटा बडा होना यह तो ध्वनियोका धर्म है और उसका आरोप शब्दोसे होता है। आशयमे यह बात पडी है कि तालु कठ आदिक ये कहलाते हैं ध्वनियाँ और इसमे तो छोटा बडापन आदि भेद बने हुए है। जब ध्वनियोसे प्रकट होते हैं शब्द तो छोटा बडापन जो ध्वनियोके धर्म हैं उनका आरोप शब्दोमे किया जाता है। तो व्यगता होनेसे ध्वनियोके ये धर्म शब्दमे आरोपित नही हु सकते क्यो कि रूपादिक शब्द व्यञ्जक नही है। जो शब्दके व्यञ्जक है उनका ही धर्म शब्दमे आरोपित हो सकता है पर रूपादिकके धर्म शब्दमे इस कारण आरोपित नही होते कि रूपादिक तो शब्दके व्यञ्जक नही है 'रूपसे शब्द नही प्रकट होता' उत्तर देते हैं कि भाई व्यञ्जकपनेका अर्थ है क्या? यही ना कि ज्ञान उत्पन्न करदे। ये तालू कठ आदिक शब्दके व्यञ्जक हैं अर्थात् ये शब्दके ज्ञानको उत्पन्न कर देते है। तो ज्ञानको उत्पन्न करनेसे अतिरिक्त व्यञ्जकपना और कुछ नही है, तब फिर यह प्रसग आयगा कि आँख तो है छोटी सी और उसके द्वारा उत्पन्न हुआ यह पर्वत, सो महान होनेपर भी चूँकि इस पर्वतका व्यञ्जक है आँख आँख है छोटी तो आँखका जो अल्पत्व धर्म है वह पर्वत मे लग बैठेगा, पर्वत छोटा प्रतीत होने लगेगा और सरसो बहुत बडे प्रमाण वाले प्रतीत होने लगेंगे पर ऐसा तो नही है इस कारण उदात्त आदिक ध्वनियोके धर्म हैं यह बात ठीक नही किन्तु वे शब्दके ही धर्म हैं। छोटा शब्द बडा शब्द ये सब शब्दके

धर्म हैं तो भी यदि शब्दको एक व्यक्ति ही मानोगे तो फिर घट आदिकमें भी धर्म छोटा बडा काला पीला आदिक अनेक हैं तो घट आदिकके धर्म भी आरोपित हो जावेंगे । तो इस तरह घट आदिक भी एक व्यक्ति हो जायगा । घट बना है यह बात फिर सिद्ध नही हो सकती ।

शब्दके अल्पत्व महत्त्वका प्रतिपादन—शङ्काकार कहता है कि शब्द तो एक है इसलिये आकाशकी तरह कारणके आधीन नही है । शब्द किसी कारणसे उत्पन्न नही होता । शब्द कार्य नही है, शब्द तो नित्य है । जैसे आकाश नित्य है । आकाशका धर्म शब्द है आकाश जैसे नित्य है तो वह किसी कारणके आधीन नही है, तब आकाशमे न उत्कर्ष है न उपकर्ष है । इसी प्रकार शब्द भी जब एक है तो उसमे न उत्कर्ष है न अपकर्ष है, लेकिन घटको यदि एक मान लोगे तो जो एक होता है वह कारणके आधीन नही होता । तब फिर घटमे छोटा बडापन न होना चाहिये । उत्तर मे कहते हैं कि यह तो शब्दमें भी समान है । शब्द भी यदि प्रत्येक एक एक व्यक्तिरूप है तो तालु आदिकमें उत्कर्ष अथवा उपकर्ष होनेसे शब्दमे उत्कर्ष अथवा अपकर्ष न आना चाहिये, किन्तु सभी शब्दोमे एक समान ज्ञान रहना चाहिये । शङ्काकार कहता है कि तालु आदिकके बडे होनेसे शब्दका बडापन होता है, यह बात असिद्ध है क्योंकि वर्ण न बढता है, न घटता है । अल्प होना, महान होना यह कारणसे सम्बन्ध रखा करता है । जैसा कारण होता है वैसा अल्प और महान कार्य बना करता है, पर वर्ण तो अवयव रहित है उसमे वृद्धि और ह्रास नही हुआ करता । समाधानमें कहते हैं कि अल्पपना और बडापनाके कारणका अनुविधान होना यह बात जो असिद्ध बतला रहे सो क्यो बतला रहे ? क्या अल्पत्व महत्व स्वभावसिद्ध होनेसे असिद्ध है इस कारण बतला रहे हो या कारणके अल्प व महान होनेसे शब्दमे अल्पत्व और महत्व हो नही होता क्योकि वहाँ स्वभावसे ही अल्पपना महत्वपना नही है । यहाँ शङ्काकार से दो विकल्प किए गए कि जो यह बताया है कि अल्पत्व और महत्वका कारणके अनुसार होना यह बात असिद्ध है । तो असिद्ध क्यो है स्वभावसे या कारणके अल्प महान होनेसे शब्द का अल्पत्व और महत्त्व नहीं होता क्योकि स्वभावमे अल्पता और महत्ता नही है, इनमेंसे यह विकल्प कि स्वभावमें से ही अल्पत्व और महत्त्व पडा हुआ है सो ठीक है । सो शब्दके स्वभावमे ही अल्पत्व महत्त्व आ गया परन्तु वह उसके कारणके अल्प होनेसे और महान होनेसे किया गया यह बात नही आयी और इस तरहसे फिर घट पट आदिकमे भी उसी प्रकार स्वभावसे अल्पत्व और महत्वका प्रसग भी आ जायगा । यदि कहो कि कारणके छोटे बडे होनेसे शब्दका छोटा बडापन ही नही हुवा करता क्योकि शब्दमे छोटा बडापन है ही नही । तो कहते कि यह बात तो प्रतीतिके विरुद्ध है । शब्दमे छोटा बडा पन तो सब लोग समझते ही हैं । कैसे कह सकें कि शब्दमे छोटा बडापन नही हुआ करता । महान तालु आदिक होनेपर महान शब्द प्रतीत होता है और तालु आदिकका अल्प व्यापार होनेपर शब्द भी अल्प प्रतीत होता

है। जब कभी कोई धीरे-धीरे बात करता है गुप्त बात करता है तो वहाँ तालु आदिक का व्यापार ही तो हीन हो रहा और इस तरह अगर कारणके अल्प महान हुं नेको कार्यमे अल्पता महत्ता न मानोगे तो फिर लोकमे किसी भी विषयमे अल्पत्व महत्त्वका कोई विश्वास न किया जा सकेगा।

कारणके अल्पत्व महत्त्वसे भी कार्यमे अल्पत्व व महत्त्वकी निष्पत्ति— अब और बात सुनिये जो यह कहा कि वर्ण बढना नही है तो इसका अर्थ क्या मानते हो तुम ? क्या छोटे तालू आदिकसे उत्पन्न हुए वर्ण जो कि अल्प रूपसे बताया हुआ है वह महान तालू आदिकके व्यापारसे नही बढता यह कहना है क्या ? तो यह तो सिद्ध साधन है अर्थात् ओठ कठ आदिक यदि कोमल चलाया जायगा अल्प चलाया जायगा तो शब्द अल्प प्रकट होगे और ये तालु आदिक ये विशेष चलाये जायेंगे तो विशेष व्यापारसे दीर्घ आदिक हो जायेंगे। घट जैसे छोटे मृत्पिण्डसे बनाया जाता है तो बनता ही है बडा। यह बात तो वहाँ भी है कि छोटी मिट्टीसे बनाया गया जो घट है वह अन्यसे बढना नही है क्योकि छोटे मृतपिण्डसे बनाये गए अल्प घट किसी अन्य से बढने लगें तो या वह घट नही रहा या अन्य घट बन गया। यदि कहो कि दूसरा भी बडा हुआ उत्पन्न नही होता तो यह बात नही है। थोडे मृतपिण्डसे जो घडा बनाया जायगा वह छोटा बनेगा। बडे मृतपिण्डसे जो घडा बनाया जायगा वह बडा बनेगा। यह बात बराबर देखी जा रही है और देखी हुई बातको टाला नही जा सकता है।

शब्दोमे सकेतकी निष्पत्ति— अब प्रश्न यह रहा कि शब्द तो छोटे बडे हो गए पर नये-नये शब्द जब उत्पन्न हो रहे हैं तो उन शब्दोसे सकेत कैसे बनेगा। पुराना शब्द हो, वही शब्द हो उसमे तो सकेत बन जायगा। जैसे एक यह चौकी है १० वर्षसे है तो इस चौकीमें सकेत बना हुआ है, और नित्य, रहती है तो उसका सकेत बन सकता है। स्वरूपपर दृष्टि डालनेके ही साथ नष्ट हो दोनो तो फिर शब्दमे अर्थको समझानेका सकेत कैस बन सकता है ? तो उनकी बात यहाँ समाधानमे कह रहे हैं कि भाई सामान्यसे यह सकेत बनता है जो घट शब्द आज बोला है यहाँ घट शब्द पहिले भी बोला गया था और सकेत किया गया था कि घट शब्द बोलनेसे यह निर्णय बनाना चाहिये कि अब उस ही शब्दके समान आज घट बोला गया है तो सादृश्यके परिणाम वाले शब्दोसे सकेत बन जाता है और सामान्य व्यक्तिसे रहा करता है तो व्यक्तिकी सदृशता व्यक्तिके अनुसार भाव भी रहा करते हैं। तो इस तरह वर्ण वाले अल्पत्व और महत्त्वसे भी सब सकेत बन जाते है पर आपका जो कर्तृत्व सामान्य है वह सामान्य तो कुछ है ही नही। सामान्य वेदाकार कभी नित्य है व्यापक है और व्यक्तियोने भी नित्यपना जाना वह एक स्वतत्र पदार्थ है, तो ऐसा सामान्यस्वरूप जो व्यक्तिसम्मत नही है वह तो कहते है कि असत् है, उससे ध्वनियाँ कैसे होजायेंगी? तो इससे सीधा यह मानना चाहिये कि तालु कठ आदिकके व्यापारसे शब्दकी उत्पत्ति

होती है और जैसे स्थानका प्रयोग होता है उस ही प्रकार शब्द बना करते हैं। जैसे कण्ठपर जोर देकर जो ध्वनित किया जाता है क, ख, ग, घ आदिक शब्द बनते हैं। तालूपर जोर देकर शब्द निकलते हैं च, छ, ज, झ आदिक स्वर निकलते हैं। मूर्धापर जोर देकर जो शब्द उत्पन्न होते हैं वे ट ठ ड आदिक हैं। तो जैसा कारण होता है वैसा कार्य होता है इससे भी यह सिद्ध है कि शब्द कारणसे उत्पन्न होते हैं और ह्रस्व दीर्घ उदात्त अनुदात्त आदिक भाव उत्पन्न हुए शब्दमें हैं। तो शब्द कृतक है। शब्दमें प्रमाणता गुणवान वक्तासे आती है। दोषवान् शब्दको बोले तो वह अप्रमाण है। तो आगमकी प्रमाणता सिद्ध करनेके लिये कोई न कोई वक्ताकी खोज करिये।

अभिव्यञ्जकके धर्मका शब्दमें आरोप करनेका प्रयास और परिहार शङ्काकार कहता है कि दर्पणमें मुख देखनेसे मुख तो जैसा है वैसा ही है इस दर्पणमें कोई लम्बा चौड़ा नाना प्रकारका दिखता है। चमकती हुई तलवारमें मुख देखनेसे मुख लम्बा प्रतीत होता है तो जैसा मुख असल आकारमें जैसा है वैसा ही है लेकिन उसका जो अभिव्यञ्जक दर्पण आदिक है उनके धर्मके अनुसार मुखका भी आकार बन जाता है, इसी प्रकार शब्द भी अपनेमें जैसा है सो ही है। नित्य है, एक ही सर्वव्यापक है किन्तु उसकी अभिव्यञ्जक जो ध्वनियां हैं तालु कण्ठ आदिक उनके भेदसे शब्दोंमें उदात्त ह्रस्व आदिक भेद प्रतीत होने लगता है। समाधानमें कहते हैं कि यह बात युक्त नहीं है क्योंकि भ्रान्त दृष्टान्तसे अभ्रान्तमें व्यभिचार नहीं लगाया जा सकता। शब्दमें यह महान है ह्रस्व है, दीर्घ है उदात्त आदिक जो धर्म हैं, इसका जो ज्ञान हो रहा है वे तो अभ्रान्त हैं, उनमें किसी भी प्रकारका भ्रम नहीं है। स्पष्ट श्रवण इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष होता है। उसमें किसी भी प्रकारकी बाधा नहीं रहती है। पर मुखमें उस महान छोटे लम्बे आदिक प्रकारका जो बोध होता है वह भ्रान्त है, क्योंकि उसमें बाधा पायी जाती है। लम्बी तलवारमें देखा तो लम्बा मुख दीखा। गोल दर्पणमें देखा तो विशाल दीखा। तो उसमें तो बाधायें पायी जाती हैं। दूसरे स्वयं भी मुखको टटोलकर देख सकते हैं, पर शब्दमें तो भ्रान्ति है नहीं। जिस प्रकार का शब्द बोला उसी प्रकारका लोग सुनते हैं। दीर्घ शब्द बोला जाय तो उसमें दो मात्रायें होती हैं और वे वैसी ही प्रतिभात होती हैं तो अन्यके भ्रान्त होनेपर भी अन्य को भ्रान्त नहीं माना जा सकता। यदि एकका भ्रम होनेसे दूसरेमें भी भ्रम जोड़ दिया जाय तो सकल शून्य हो जायगा। जैसे स्वप्नमें होने वाला जो ज्ञान है वह भ्रान्त है ना। तो स्वप्नमें होने वाले ज्ञानके भ्रान्त होनेसे फिर समस्त ज्ञानोंमें भ्रान्ति ला दी जायगी। और फिर तलवारमें जो मुखकी छाया पड़ी तो लम्बा प्रतिबिम्ब बना। तो वहां मुख लम्बे रूपसे नहीं आता या दर्पणमें मुख गोलरूपसे दीखा तो कहीं इस प्रकारका गोल मटोलपना मुखमें नहीं है। या नीले कांचमें नीला प्रतिबिम्ब दीखा तो कहीं मुख नीलारूप नहीं प्रतिभास होता। किन्तु वहां दर्पण आदिकमें उन का ही आकार प्रतिबिम्बित होता है, सो दर्पणके धर्मका अनुकरण करने वाला वह

प्रतिविम्ब प्रतिभात हो रहा है। यह बात स्पष्टरूपसे लोगोको विदित होती है। तल-वार लम्बी है उसका आकार उसकी झलक लम्बी है। अतएव वहाँ जो प्रतिबिम्ब किया गया वह लम्बेरूपसे किया गया, पर लम्बे रूपसे प्रतिबिम्ब आनेपर जिसका प्रतिबिम्ब आया है वह लम्बा हो जायगा यह बात युक्त नही बैठती।

मूर्तका ही मूर्तमे प्रतिबिम्बत होनेके नियमसे अभिव्यञ्जककी छाया का शब्दमे होनेकी अनुपपत्ति — यह ऐसा नही है कि शब्दका आकार ध्वनिमे आया हो या ध्वनिका प्रतिबिम्ब शब्दमे आया हो और इस कारणसे ध्वनिके धर्मका अनुकरण करने वाला शब्द बन जाय यह बात नही कही जा सकती, क्योकि शब्द तो अमूर्त माना गया है शंकाकारके सिद्धान्तमे क्योकि शब्दको शंकाकारने आकाशका गुण समझा है। आकाश है अमूर्त तो अमूर्त आकाशका जो गुण होगा वह भी अमूर्त होगा। तो अमूर्त शब्दका मूर्तिक ध्वनिमे प्रतिबिम्बत हो ही नही सकता। ध्वनियां है मूर्त। तालू कठ मूर्धा आदिक ध्वनियाँ है और वे हैं मूर्त। उनमे शब्दका प्रतिबिम्बन नही बन सकता, क्योकि शब्द मूर्त हैं। मूर्त ही मुख आदिकका दर्पणमे प्रतिबिम्ब होना देखा गया है। कही अमूर्त आत्माका भी दर्पणमे प्रतिबिम्ब आ सकता है क्या? अमूर्त आकाश आदिकका दर्पणमे प्रतिबिम्ब आ सकता है क्या? मूर्तमे मूर्तका ही प्रतिबिम्ब हुआ करता है। और भी देखिये ध्वनिके सम्बन्धमे पूछा गया था कि ध्वनि श्रोत्र ग्राह्य है अथवा नही? अर्थात् कर्ण इन्द्रियसे ध्वनिका ग्रहण होता है तो अब तक ये समस्त दोष बताये गए। इसलिये श्रोत्र ग्राह्य माननेपर ध्वनि और शब्द दोनो एक चीज बन गयी। ध्वनिसे अतिरिक्त शब्द और कुछ नही है। अब दूसरे विकल्पसे मानोगे कि ध्वनि श्रोत्रेन्द्रिय ग्राह्य नही है तो ध्वनिमे प्रतिबिम्बका आकार भी अग्राह्य नही है। जैसे दर्पण नेत्र इन्द्रिय द्वारा ग्रहणमे न आ रहा हो तो दर्पणमे प्रतिबिम्बित होने वाला आकार क्या नेत्र द्वारा ग्रहणमे आ सकता है? कभी नही? तो इस प्रकार ध्वनिका शब्दसे अतिरिक्त और कोई स्वरूप बनता ही नही हैं।

शब्दके अल्पत्व महत्वके आरोपमे आकाशकी तुलनाकी अघटितता— अब शंकाकार कहता है कि जैसे बडे खाईमे या बडे कमरेमे, आकाशमे महत्वकी बुद्धि होती हैं। ओह! बहुत बडा आकाश है। छोटे कमरेमे या छोटी खानमे यह बुद्धि होती है कि यह तो छोटा ही आकाश है। तो इस प्रकारसे ध्वनि महान है तो उसमे शब्दकी भी महत्ता ज्ञात होती है और ध्वनि यदि मद है तो उसमे शब्दकी मदता ज्ञात होती है। उत्तर देते हैं कि यह भी बात युक्त नहीं है क्योकि आकाश तो अतीन्द्रिय है। आकाशमे यह महान आकाश है यह छोटा आकाश है यह भेद हो ही नही सकता। और कदाचित् मान लो भेद आकाशमे भी है यह महान है, यह अल्प है, ऐसा अर्थ मानने लगोगे तो वहां बात क्या हुई कि छोटी खाईसे घिरा हुआ जो आकाशका प्रदेश है उसे कहते है अल्प और बडी खाईसे घिरा हुआ जो आकाश

प्रदेश है उसे कहते हैं महान । इसमें अनेकान्त दोष क्या आया ? दृष्टान्त भी ठीक शब्दके लिये नहीं घटित हो सकता । बड़ी हालमें भीट लम्बा चौड़ी है तो लम्बी चौड़ी भींटसे घिरा हुआ जो आकाश प्रदेश है उसे उपचारसे कहा जा सकेगा कि यहां आकाश उत्कृष्ट है और सकरी भींटसे घिरा हुआ जो आकाश प्रदेश है उसे कहा जायगा कि यह अल्प आकाश है । इसमें अनेकान्त दोष नहीं आता है और न शब्दमें अल्प महानका उपचार करनेके लिये दृष्टान्त मिल सकता है ।

परिकल्पित निरवयव वर्णमें सर्वव्यापकताकी असम्भवना—और, फिर एक बात यह भी है कि वर्णोंको माना शंकाकारने अवयव रहित अर्थात् वर्ण एक अणुकी तरह है जैसे अणुमें अंग नहीं होते इसी प्रकारसे वर्णमें भी अंग नहीं होते । शब्द तो वर्णोंके समूहका नाम है भले ही शब्द अवयव सहित हो जायें पर वर्ण निरवयव होते हैं । तो निरवयव होनेपर शब्दोंको अणुकी तरह व्यापी नहीं माना जा सकता । और, अकृत भी नहीं माना जा सकता है वर्णोंको कि ये वर्ण कभी किये नहीं गये, अनादि अनन्त सर्वव्यापक हैं ये । तो जो अत्यन्त अकृतक हैं किये ही नहीं गए उसमें अर्थक्रिया हो नहीं सकती । न क्रमसे अर्थक्रिया हो सकती न एक साथ अर्थक्रिया ही हो सकती । तो वर्णको निरवयव माननेसे और अकृतक माननेमें वचन व्यवहारकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती । और, शब्दको माना है सावयव । तो शब्द सावयव क्या है । जो अनेक वर्णोंका समूह है उसका नाम शब्द रखा है । तो निरवयव वर्णोंके समूहका नाम शब्द है और निरवयव वर्णमें जो अर्थक्रियाका विरोध है सो उनका समुदाय होनेपर भी शब्दोंमें भी अर्थक्रिया नहीं हो सकती ।

व्यञ्जक ध्वनियोंका श्रावण प्रत्यक्षसे अग्रहण—शङ्काकारने जो यह कहा कि शब्द व्यञ्जक ध्वनिके आधीन होनेसे जहां ही व्यञ्जक ध्वनियां हैं वहां ही शब्द ग्रहणमें आते है । शंकाकारको यह क्यों कहना पड़ा था कि यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि जब शब्द सर्वव्यापक है नित्य है तो ये शब्द सब देशोंमें क्यों नहीं सुनाई देते ? जहां बोले जाते हैं वहां ही सुनाई देते है । तो इसके समाधानका यत्न किया शंकाकारने कि शब्दोंका प्रकट होना व्यञ्जक ध्वनियोंके आधीन है, और वे शब्द उस ही देशमें ग्रहणमें आते हैं । यह कहना यों अयुक्त है कि यह बतलावो कि वे ध्वनियां तुमने किस प्रमाणसे जानी हैं ? जिस कारणसे ध्वनिके आधीन शब्दोंके समूहका सुनना बने, ध्वनियोंको क्या प्रत्यक्ष प्रमाणसे जाना या अनुमानसे जाना अथवा अर्थापत्तिसे जाना ? यदि कहो कि ध्वनियोंका ज्ञान प्रत्यक्षसे किया गया तो प्रत्यक्षमेंसे किस प्रत्यक्षसे ? क्या श्रोत्र इन्द्रिय प्रत्यक्षसे अथवा स्पर्शन-इन्द्रिय प्रत्यक्षसे । श्रोत्र प्रत्यक्षसे तो कह नहीं सकते क्योंकि श्रोत्रसे तो शब्द प्रतिभासमें आता है, ध्वनियां प्रतिभासमें आती हैं ध्वनिसे मतलब तालू कंठ, ओठ आदिक । शब्दोंकी तरह श्रोत्र इन्द्रियसे भी ध्वनियां प्रतिभासित नहीं होतीं अन्यथा विवाद ही न रहना चाहिये, और

मानलो कि ध्वनियाँ श्रोत्रइन्द्रियके द्वारा ग्रहीत होती हैं तो इनका अर्थ है कि वही शब्द हुए। जो श्रोत्रइन्द्रियद्वारा ग्राह्य हो उस हीका नाम शब्द है।

व्यञ्जक ध्वनियोका स्पर्शन प्रत्यक्ष व अनुमानसे अग्रहण – यदि कहो कि स्पर्शन इन्द्रिय प्रत्यक्षसे ध्वनियाँ जानी जाती हैं जैसे कि कोई अपना हाथ अपने मुखपर लगाये हो और फिर बोले तो अपने हाथके स्पर्शनसे ध्वनियोका ज्ञान होता है कि देखो यह ध्वनि है जिसने हाथको छुआ। अथवा जो कोई बोल रहा हो उसके मुखके उपर यदि कोई जरासी रूई वगैरह चिपकी हो तो उस रूईमे प्रेरणा होती है, रूई हिलती है तो रूईकी क्रियाको जानकर अनुमानसे भी जाना जाता है कि ये ध्वनियाँ निकल रही हैं? समाधानमे कहते हैं कि यह बात यो युक्त नही कि जैसे तालू आदिक व्यापारके अनन्तर वायुकी उपलब्धि होती है और फिर तुम वायुकी उपलब्धिसे शब्द की प्रकटता सिद्ध करते हो अर्थात् वह वायु शब्दका अभिव्यञ्जक है तो तालु आदिक के व्यापारके बाद शब्दकी तरह कफके अश भी तो प्राप्त होते हैं तो वह कफाश भी शब्दका अभिव्यञ्जक हो जाय फिर तो यह नही रहा कि शब्दके अभिव्यञ्जक कठ तालू आदिक है। यहाँ तालू आदिक व्यापारके बाद जैसे वायुका ज्ञान होता वैसेही उपलब्धि होती है वैसे ही कफांश भी तो उपलब्ध होता है तो यो कफाश भी शब्द अभिव्यञ्जक बन जाय। शकाकार कहता है कि बोलने वालेके मुखकी जगह ही इन कफाशोका प्रत्यक्ष हो जाता है। वह मुखमे आगे नही निकलता है। श्रोतावोके कर्ण प्रदेशमें कफके अश नही आया करते हैं इस कारण कफाश शब्दके अभिव्यञ्जक नही होते। तालू आदिक व्यापारके अनन्तर जैसे वायुका ससर्ग होता है ऐसे ही कफाशका भी ससर्ग होता है तिसपर भी कफाश कभी मुखसे बाहर नही निकला उसका शब्द सुननेके लिए। वह वहीका वही छू छा कर प्रक्षीण सो जाता है। तो उत्तरमे कहते हैं कि यह बात वायुमे भी कह सकते, वायु भी वक्ताके मुख प्रदेशोमे ही समाप्त हो जाती है और श्रोतावोके कानोमे जाती हुई प्रतीत नही होती। यदि कहो कि वायु तो जाती हुई प्रतीत होती है कैसे कि यदि वायु कानमे न जाती होती तो शब्दका ज्ञान नही हो सकता। तो चूँकि अन्यथा शब्दकी प्रतिपत्ति न बन सकती थी अतएव वायुका जाना सत्य है, तो यही बात तुम कफाशके लिए भी कह सकते। यदि कफाश कानोंमे न जाते होते तो शब्दकी प्रतिपत्ति अन्यथा बन ही नही सकती। और जैसे बहुत धीरे बोलने वाले पुरुषके कफाशकी उपलब्धि नही होती अर्थात् बोलनेमे कफकी गिडगिडा-हट आदिक ज्ञात नही होती तो यो अत्यन्त मद बोलने वाले पुरुषके भी वायुकी उपल-ब्धि नही होती इससे जो व्यञ्जक ध्वनियाँ हैं यह न प्रत्यक्षसे जान सकें और न अनु-मानसे। जब ध्वनियोका ही सद्भाव कई प्रमाणोसे सिद्ध न हो सका तो ध्वनियोका शब्दमे अभिव्यञ्जक मानना और ध्वनियोके धर्म शब्दमे उपचरित किया जाता है यह मानना असगत है।

अर्थापत्तिसे व्यञ्जक ध्वनियोंकी सिद्धि माननेके प्रयासमे तीन विकल्प–

अब यदि उन व्यञ्जक ध्वनियोकी प्रतिपत्ति अर्थापत्तिसे मानते हो, किसी तरह कि शब्द जो है नित्य होनेसे उत्पन्न नही होता, किन्तु उसकी संस्कृति ही की जाती है। और वह संस्कृति बन नही सकती विशिष्टता संस्कृतिमे आ नही सकती, यदि ध्वनियां न हो तो इससे सिद्ध है कि ध्वनियां हैं। शब्दकी उत्पत्ति तो होती नही, और शब्दोमे विशिष्ट संस्कार देखे जाते हैं तो उससे यह सिद्ध है कि शब्दमें जो वह विशिष्ट संस्कार आया है वह ध्वनियोसे आया है। तो शब्द नित्य है शब्द उत्पन्न नही होता और उन मे संस्कृति देखी जाती है तो फिर वह संस्कृति आई कहासे ? जिस कारणसे आई उसका ही तो नाम ध्वनियाँ है। यो अर्थापत्तिसे ध्वनियोका ज्ञान हो जायगा। उत्तर देते हैं कि विशिष्ट संस्कृति जो आप शब्दोमें कह रहे हैं उसका अर्थ क्या है ? क्या शब्द संस्कारका नाम विशिष्ट संस्कृति है यों श्रोत्र संस्कारका नाम विशिष्ट संस्कृति है अथवा शब्द श्रोत्र दोनोके संस्कारका नाम विशिष्ट संस्कृति है ? तीनो प्रकारके संस्कार माने भी हैं शङ्काकारने, इस कारण विशिष्ट शब्द संस्कारमे तीन विकल्प किए गए हैं, यदि कहो कि शब्द संस्कारका नाम विशिष्ट संस्कृति है अर्थात् प्रथम पक्ष मानते हो तो यह बतलावो कि शब्द संस्कारका अर्थ क्या है ? क्या शब्दकी उपलब्धिका नाम शब्द संस्कार है या शब्दका स्वरूपभूत कहीं कोई अतिशय आ गया इसका नाम शब्दसंस्कार है या शब्दमे अनतिशय न रहा इसका नाम शब्दसंस्कार है ? अथवा अपने स्वरूपका का परिपोषण होना इसका नाम शब्द संस्कार है या शक्तियोके समवायका नाम शब्द संस्कार है ? अथवा शब्द संस्कारके ग्रहणकी अपेक्षा रखकर शब्दका ग्रहण होता है इसका नाम शब्द संस्कार है ? या व्यञ्जक पदार्थोंके सन्निधान मात्रका नाम शब्द संस्कार है या आवरणके दूर होनेका नाम शब्दसंस्कार है ? इस प्रकार शब्दसंस्कारके अर्थके बारेमे ८ विकल्प किये गये।

शब्दसंस्कारके ८ विकल्पोमेसे प्रथम द्वितीय तृतीय पक्षकी असिद्धिका वर्णन—शब्दसंस्कारके ८ विकल्पोमेसे प्रथम विकल्प यदि मानते हो अर्थात् शब्दकी उपलब्धिका नाम शब्दसंस्कार है और उस शब्द संस्कारसे ध्वनियोका ज्ञान होता है याने यदि शब्दोपलब्धिको शब्दसंस्कार कहते हो तो शब्दोपलब्धि ध्वनियोका गमक कैसे हो सकता है ? क्योकि ध्वनियाँ तो श्रोत्र मात्रमे हुआ करती हैं। तो भी यदि अन्य निमित्तकी कल्पना करते हो तो फिर हेतुवोमें अवस्थिति नही रह सकती। यदि दूसरा व तीसरा पक्ष मानते हो याने शब्दका आत्मभूत कोई अतिशय ही शब्द संस्कार है व अनतिशयकी निवृत्ति शब्दसंस्कार है तो सुनो ! यहा भी अतिशय तो शब्द स्वभाव ही होता और अनतिशयकी व्यावृत्ति अहृदय स्वभावका खण्डन मात्र है। सो ये दोनोके दोनो यदि स्वभावसे अन्य हैं, भिन्न हैं तो अतिशयके करनेपर भी और अनतिशयकी व्यावृत्तिसे भी शब्दमे कुछ नही आया क्योकि ये दोनो संस्कार शब्दसे भिन्न माने हैं। यदि कहो कि ये दोनो शब्दसे अभिन्न हैं अर्थात् अतिशय होना और अनतिशयका हटना ये दोनो भिन्न हैं तो शब्दमे भी क्रियापना होनेसे अनित्यत्वका दोष

होगा, क्योकि यह सस्कार किया गया अतिशयकी उद्भूति और अनतिशयकी व्यावृत्ति ये दोनो शब्दसे अभिन्न हैं और दोनों कार्य है तो शब्द भी कार्य बन गया । तो जैसे यह सस्कार अनित्य है उसी प्रकाश शब्द भी अनित्य बन बैठा, क्योकि जो जिससे असमर्थ स्वभावके परित्यागरूपसे सामर्थ्य स्वभावको प्राप्त करता है वह यदि उसका जन्य नही है तो फिर जन्यताका व्यवहार कहां होगा ? याने शब्दसे ये अभिन्न हुए दोनो सस्कार और सस्कार है अनित्य और अनित्य सस्कारोसे अभिन्न शब्द है यह तो शब्द भी अनित्य हो गया अब ध्वनिमे जैसे कि पहिले तो था असमर्थ स्वभाव याने शब्दको प्रकट न करनेका स्वभाव था । अब उस स्वभावका परित्याग किया और सामर्थ्य स्वभावमे आया । अर्थात् अब शब्द प्रकट करने लगे ध्वनि तो इसका अर्थ यही तो हुआ कि शब्द जन्य बन गया । ऐसा भी नही कह सकते कि समर्थ स्वभाव ही जन्य होता है, शब्द जन्य नही होता । क्योकि शब्दका इसमे विरुद्ध धर्म बन गया । तब फिर अभिन्न कहा रहा । यह पक्ष तो नही रहा कि ये दानो अतिशयकी उद्भूति और अनतिशयकी व्यावृत्ति शब्दमे अभिन्न होती है और फिर इसमे वही दोष आता है जो कि शब्दमे बताया है । यदि कहो कानके प्रदेशोमे ही ध्वनिका शब्दका सस्कार है तो इतना ही मात्र शब्द रहा । व्यापक न रहा । शब्दका सस्कार कानोमे ही हुआ अन्यथा सभीको क्यो नही सुनाई देते, यह दोष आता है तो यो शब्दका सस्कार यदि कानोके प्रदेशमे हो तो शब्द उतना ही मात्र है जो कानोमे ही आया है । वही शब्द है, इससे बाहर नही, व्यापक नही, उस ही शब्दका कानोके प्रदेशसे अन्य जगहमे विपरीत स्वभावसे ठहरे है याने स्वभावकी तो जन्यता माने और शब्दकी अजन्यता है ऐसा भेद करके रहे याने कानोके प्रदेशमे तो शब्दका सस्कार बना और कानोसे बाहर प्रदेशमे शब्दका सस्कार न बना, ऐसा माननेपर शब्दमे दृश्य और अदृश्यत्व का प्रसग आ जाता है अर्थात् एक जगह तो शब्द हो गया ज्ञेय और बाकी पडा है अज्ञेय और यो फिर शब्दमे सवगतपना भी नही रहता । निरशताका व्याघात भी होता, इस कारणसे शब्दको परिणामी मान लो, अनित्य मान लो । तो किसी भी प्रकारके तोड मरोड करके कल्पनायें न करनी पडेगी ।

वर्णके अनित्यत्व व कार्यत्वके सिद्ध होनेका निष्कर्ष —जो हम-लोगोने कहा था कि शब्द क्या चीज है, श्रवण इन्द्रियमे आ सकने वाले स्वभाव का विनाश और उत्पत्ति जिसमे हुआ करती है ऐसा कोई पुद्गल द्रव्य है, भाषावर्गणाका स्कन्ध है, जिसमे कि श्रवणइन्द्रियद्वारा ग्रहणमे आ जाय और फिर विनष्ट हो जाय ऐसी जिसमे प्रकृति पडी है उस ही को शाकाकार लोग वर्ण इस शब्दसे कहा करते हैं । अर्थ भेद तो नही रहा, और भी सुनो । जो श्रवणइन्द्रियमे आ जाय, सुननेमे आ जाय ऐसे स्वभाव का जो उत्पाद विनाश है वही तो शब्दका उत्पाद विनाश है, उसीको आप लोग शब्द की अभिव्यक्ति और शब्दका तिरोभाव इस नामसे बोलते है । तो शब्द भेदमे बोल लो पर अर्थमे कोई भेद नही आता । एक कोई शब्द दृश्य हो जाय और अदृश्य हो जाय

ऐसा स्वीकार करनेसे अद्वैत सिद्ध होगा और अद्वयवादका समर्थन होगा और उस ही प्रकार फिर चेतन और अचेतन रूप होनेसे एक ही अवस्थिति रह सकती है, उसका विरोध नहीं हो सकता है और फिर घट आदिकमें भी इसी प्रकार हम व्यापकपना मान बैठेंगे। कह देंगे कि घट भी देखे गए प्रदेशोंमें दृश्य है और जिन प्रदेशोंमें नहीं देखा उनमें अदृश्य है ऐसा कहनेमें कौन सा विरोध हो जायगा? जैसे कि शब्दके बारे में कहते हो कि जो शब्द कानोंमें आये सो सुननेमें आये, जो कानोंमें न आये सो सुनने में न आये, तो यों ही घटके बारेमें कह देंगे कि घट तो एक ही है। जिस प्रदेशमें देखा गया उस प्रदेशमें दृश्य हो गया, अन्य प्रदेशमें अदृश्य हो गया। इसमें जैसे घटकी बात कही जाती है कि जहां घट देखा घट वहीं है अन्य जगह नहीं है इसी प्रकार यह मान लेना चाहिये कि शब्द जहां सुननेमें आये शब्द वहीं है, उससे बाहर शब्द नहीं है, और सभी जगह इसका संस्कार माननेपर सदा ही उपलब्धि होनी चाहिये। और नहीं होती उपलब्धि तो फिर कभी भी कदाचित भी न होना चाहिये। इस तरह अतिशय की उद्भूति और अनतिशयकी व्यावृत्ति रूप शब्द संस्कार यह भी सिद्ध नहीं होता।

शब्दसंस्कारके चतुर्थ पञ्चम व षष्ठ विकल्पका निराकरण—अब चतुर्थ पक्ष मानो कि शब्दका परिपोष होना ही शब्द संस्कार है ध्वनियोंके द्वारा शब्दके स्वरूपका परिपोषण होता है यह शब्दका संस्कार है तो यह भी युक्त नहीं है क्योंकि शब्द को शंकाकारने नित्य माना और नित्यमें स्वभाव अन्यथा कभी किया ही नहीं जासकता है और यदि स्वभाव भी बदल जाय तो स्वभावके अतिशय पक्षमें जो दोष दिया गया था वह ही दोष यहां आता कि वह स्वभाव शब्दसे भिन्न है कि अभिन्न है अथवा व्यक्तियोंसे भिन्न है या अभिन्न है। यदि ध्वनियोंसे स्वभाव भिन्न है तो इससे शब्दका क्या किया गया? यदि अभिन्न है तो जैसे शब्द संस्कारकी उत्पत्ति हुई वैसे ही शब्दकी उत्पत्ति हो गयी। इस कारण स्वरूप परिपोष नामक शब्द संस्कार भी सिद्ध नहीं होता। अब ५ वां पक्ष है व्यक्ति समवाय। अर्थात् व्यक्तियोंका समूह हो जाना यह शब्दका संस्कार है तो यह बात यों अयुक्त है कि वर्णोंमें व्यक्ति सम्भव ही नहीं है, अयन्था याने शब्दमें व्यक्तिका सत्व हो जायगा। तो सामान्य आदिक रूपका प्रसंग हो जायगा। फिर सामान्यमें, इसमें भेद क्या रहेगा? इस कारण व्यक्तियोंके समवाय होनेका नाम शब्द संस्कार है यह भी बात युक्त नहीं होती। शंकाकारका वर्ण आदि नहीं है। वर्ण निरंश है, एक है नित्य है, सर्व व्यापक है। सादि तो न नित्य होता न सर्वव्यापक होता न एक होता। तो फिर जब वर्णोंमें व्यक्तित्व ही नहीं है तो व्यक्तियोंका समवाय कैसे होगा। ६ वां पक्ष तो माना गया है कि शब्द संस्कारके ग्रहणकी अपेक्षा रखकर शब्दमें ग्रहण होता है। शब्दका जो श्रवण होता है वह शब्द संस्कारके ग्रहणकी अपेक्षा रखकर होता है। यह भी बात सिद्ध नहीं होती। क्योंकि शब्द नित्य है, वह अपेक्षा किसकी करता है। यदि अपेक्षा करता है तो इसका अर्थ यह है कि शब्दमें अनित्यत्व है। अपेक्षासे पहिले शब्दमें ग्रहण स्वभाव न था। अपेक्षा

करनेपर शब्दमे ग्रहण स्वभाव बना। यो शब्द अनित्य बन बैठा। तो तद्ग्रहणकी अपेक्षा रखकर शब्दका ग्रहण होना यह छठा पक्ष भी नही रहा।

व्यंजकसन्निधानमात्र शब्दसंस्काररूप सप्तमविकल्पका निराकरण— अब ७ वे पक्षका उपचार सुनो। व्यञ्जकोके सन्निधान मात्रका नाम शब्द संस्कार कहा गया है तो व्यञ्जक तो सदाकाल रहता है, सब जगह रहता है। तो फिर सभी जगह, सब समय सब लोगोका सब वर्णोका ग्रहण हो जाना चाहिये। शकाकार कहता कि जैसे सब समय ग्रहणमे प्रसग आता है। क्योकि प्रतिनियत ध्वनिके द्वारा प्रतिनियत वर्ण सस्कृति होती है और प्रतिनियत ही ज्ञानके द्वारा इस प्रकारका सामर्थ्य है। सभी जगह सब लोगोको सब समय वर्ण सुननेमे आ जायें यह बात यह दोष यो नही होता कि प्रतिनियत ध्वनिके द्वारा प्रतिनियत शब्द सस्कार हुआ करता है। विषयका भी जब सस्कार होता है तब एक ही का तो सस्कार होता है और इसी कारण सर्वज्ञ सर्वदा सभी उसको जान जाय यह दोष नही आता। तो जैसे उत्पद्यमान विषय संस्कार सबके द्वारा नही जाना जाता है इसी प्रकार देश दिशावोके विभाग बिना सबके प्रति सबके निकट होनेपर भी शब्द सबके द्वारा नही जाने जाते। जिसके समीपमे स्थित नाद हो, शब्द हो वहाँ ही तो सस्कार बनता है और उन्हीके द्वारा शब्द सुना जाता है, इस कारण बाहरमें रहने वाले शब्दश्रुत नही बन पाते। इससे शब्दग्रहण सदा हो यह प्रसङ्ग नही आता। उत्तरमे कहते हैं कि यह भी बात युक्त नही है क्योकि शब्दके उपलम्भका यदि सामर्थ्य नही है, शब्द ग्रहणमे नही आ सकते ऐसा उसमे स्वभाव है तो सदा ग्रहणमे न आयेंगे। जैसे कोई बहिरे पुरुष होते हैं और उनको शब्द ग्रहणमे नही आया करता है तो कभी भी उसे ग्रहणमे न आयेंगे। जिस समयमे समीपमे स्थित व्यञ्जकोके द्वारा यह शब्द व्यक्त होता है उस समय उन हीके द्वारा शब्द ग्रहणमे आता यह बात कहना ठीक नही है, क्योंकि शब्दोके जो व्यञ्जक हैं, तालु कठ आदिक जो ध्वनियां है उनमें शब्दने क्या किया। जिससे कि वे शब्द व्यञ्जकोकी अपेक्षा रखें। जो अकिञ्चित्कर होता है उसमे उपेक्षा नही बनती। तो यह बतलावो कि शब्दोके व्यञ्जकोने शब्दमे क्या किया ? यदि कहो कि शब्दोके व्यंजकोने शब्दोके ग्रहण करनेमे योग्यता बतायी तो किसकी योग्यता बनायी ? आत्मा की योग्यता बनायी। शब्दकी योग्यता बनायी या इन्द्रियकी योग्यता बनायी। व्यंजक ध्वनियोने शब्द ग्रहणकी योग्यता उत्पन्न करदी तो वह किसकी योग्यता उत्पन्न की। वहा ही तीन विकल्प किये गए। यदि कहो कि आत्मामे योग्यता करदी कि वह शब्द ग्रहणमें आने लगे तो सदैव ग्रहण होना चाहिये क्योकि आत्मा सदा है। शब्द सदा है और आत्मामे ही योग्यता करदी। शब्दमे योग्यता कर दी। तो यो भी सदा काल शब्दकी उपलब्धि होनी चाहिए। तो शब्दकी उपलब्धि नही होनी चाहिये। इन्द्रियमे योग्यता करदी ऐसे सस्कारोका तो अभी निराकरण किया जायगा शकाकारने और जो यह कहा कि जैसे उत्पद्यमान सस्कार भी सभी पुरुषोके द्वारा नही जाना जाता

इसी प्रकार शब्द संस्कार भी सभीके द्वारा ग्रहणमें नही आता, यह भी युक्त नही है। क्योंकि देश काल आदिककी अपेक्षासे हम लोगोंने शब्दका ग्रहण नही माना किन्तु कानोंके अन्तर्गत होनेसे शब्दका ग्रहण माना है। इस कारण जिसके ही श्रोत्रमे शब्द आये वह शब्द उस हीके द्वारा ग्रहणमें आता है। और जो लोग शब्दको व्यापक मानते है उनके यहा इस दोषका परिहार नही हो सकता अर्थात् सभी वर्ण सभी पुरुषोंके श्रवणमे आ जायें तो हमेशा उपलब्धि होनी चाहिये। पुरुष भी सर्वत्र है। कान भी सब जगह हैं और शब्द भी सब जगह हैं फिर क्यों नही शब्द सबके ग्रहणमें आ जाते ? इस कारण यह कहना कि व्यञ्जकके सन्निधानके हो जानेका नाम शब्द सस्कार है यह भी युक्त नही बैठता।

आवरणविगमरूप शब्दसस्कारका निराकरण अब तृतीय विकल्पकी बात सुनो ! यह कहना कि आवरणके दूर होनेका नाम शब्दसस्कार है अर्थात् शब्द तो नित्य सर्वव्यापक है उसपर पडा हुआ है आवरण। उसका जो विनाश हो उसका ही नाम शब्द सस्कार है तो यह बात भी असत्य है क्योंकि पहिले किसी प्रमाणसे शब्दका सद्भाव सिद्ध करके फिर उसका आवरण सिद्ध करना। जैसे घटका आवरण अधकार है ना तो पहिले स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा हम घटको छू कर जाना तब हम यह सिद्ध कर पाते हैं कि यह अधकार घटका आवरण है, इस अधकारके कारण यह घट व्यक्त नही हो रहा है तो घटपर आवरण है। यह बात तब जानी जा सकती कि घट का पहिले बोध तो हो जाय। इसी प्रकार शब्दपर आवरण पडा है यह बात तभी बन सकती है जब पहिले शब्दका सद्भाव तो सिद्ध करलो। पर शब्दका सद्भाव ही सिद्ध नही हो सकता है। फिर आवरण कैसे बताया जायगा कि शब्दपर आवरण है ? शब्द नित्य है, सर्वव्यापक है। ऐसा शब्दका सद्भाव सिद्ध नही है, क्योंकि जो नित्य होता है वह अनाधेय होता है। किसीका आधार नही पडता है और उसमे कुछ दूर नही किया जा सकता। वह तो अकिञ्चित्कर हुआ करता है। अकिञ्चित्कर कोई भी किसीका आवरण नही बन सकता। अब तुम नित्य शब्दपर कोई आवरण बताना चाहते हो और आवरणको दूर करनेकी बात कह कर सस्कार सिद्ध करना चाहते हो सो बात यो युक्त नही बनती कि शब्द तो नित्य है, उसमे कोई कुछ नही किया जा सकता। शब्दमे कोई कुछ करदे ऐसा मानोगे तो इसके मायने है कि वह नित्य न रहा। तो आवरण सारे अकिञ्चित्कर रहेंगे। आवरण नित्यका कुछ नही कर सकता। यदि कहो कि शब्दकी उपलब्धिसे प्रतिबन्धका कारण बन जाता है आवरण की सिद्धि है। तो इसके समाधानमे उत्तर देते हैं कि शब्दका तो सदैव रहना स्वभाव है उसमे प्रतिबन्ध क्या आयगा ? और, फिर उस सस्कारमे तो शब्दका ग्रहण करानेका उत्पन्न करानेका स्वभाव तो सदा रहा। उसमे आवरण नही बन सकता क्योंकि कार्यका विनाशक न होनेपर भी कार्यका क्षय हो जाय तो समझना चाहिये कि वह उसका कार्य नही है। शकाकार कहता है—तो फिर किसी नित्य

आदिककी ओटमे कोई घड़ा रखा है तो वह किवाड आदिक घटके आवरण करने वाले कैसे बन जायेंगे ? उत्तर देते है कि उसके उत्पन्न करने वालेका जो स्वभाव है वह स्वभाव नही रहता इसलिए वह आवरक होता है। फिर कहा कि कैसे दूसरेके उपलब्धिको उत्पन्न करदे तो सुनो। उसमे ऐसा स्वभाव पडा हुआ है। एकमे दोनो स्वभाव आ सकते हैं। पहिले उपलब्ध न हो पीछे उपलब्ध हो जाय ऐसी उभयरूपता आ सकती है। ऐसा देखा गया है। शब्दका भी अश्रावण स्वभाव खण्डित कर दिया जाय तो उसमे अनित्यता सिद्ध हो जाती है।

शब्दको नित्य सर्वव्यापक माननेपर शब्दकी आव्रियमाणकताका अभाव—जब शब्द सर्वव्यापक है तो वह आव्रियमाण हो नही सकता। आवरण करने वाला उन पदार्थोंको कहा करते हैं जिन पदार्थोंके द्वारा आवरण किये जाने योग्य पदार्थ ढक जायें। जैसे घटका आवरण है कपडा। कपडेके द्वारा घट ढक जाना है इस कारण कपडा घटका आवरण करने वाला कहलाता है परन्तु शब्द तो आवरण करने वालेके निकटमे सर्वत्र विद्यमान है, फिर वह किसके द्वारा विद्यमान किया जाय, आवरण करनेपर इन्द्रियाँ फिर विद्यमान नही हो सकती, बल्कि उल्टा अगर कहदे कि शब्द आवरण करने वाला है और वह कल्पित प्रतिबन्ध आवरणमे आता है तो इसमे कोई क्या खण्डन कर सकेगा ? यदि कहो कि शब्दकी तरह आवरण करनेवाला भी सर्वव्यापक है, तब तो आवरण करने वाला कुछ न रहा। जैसे आकाश सर्वव्यापक है तो आकाश आत्माका आवरण करने वाला तो नही बनता। यदि कहो कि मूर्त होनेसे घटके आवरणकी बात बनती है या ध्वनिया मूर्त है इसलिए आवरक कहलाने लगती हैं, तो इसका अर्थ यह है कि फिर वह शब्द सर्वगत न रहा, क्योकि शब्द मूर्त बन गया। मूर्त सर्वव्यापी होता नही। इससे सीधा मानना चाहिए कि कठ तालु आदि व्यापारसे शब्दकी उत्पत्ति होती है, शब्द नित्य नही होता।

शब्द और आवारकमे आवार्य आवारककी अव्यवस्थाका विवरण—शकाकार कहता है कि सारे आकाशमे व्यापने वाले बहुतसे इसके आवारक हैं, समस्त आकाशमे इसके आवरक फैले हुए हैं और बहुत हैं इस कारणसे यह दोष नही आता कि बीच-बीचमे शब्दोका ग्रहण होना चाहिए। पूछते हैं कि वे आवरक क्या अन्तर सहित हैं या अन्तर रहित हैं ? यदि अन्तर है तब तो आवरण नही कहलाया। जब अन्तर पड गया शब्दोके मध्यमे, शब्दोके एक तरफ, शब्दोके निकट आवरण रहे तो बाकी बीचमे अपना शब्द प्रकट रहे। यदि कहोकि अपने माहात्म्यसे सान्तर होनेपर भी अपने ही प्रदेशमें वह आवारक अपने शब्दोका आवारक होता है तो फिर अन्तराल मे उन शब्दोंकी उपलब्धि हो जानी चाहिये। जहाँ कि आवारक नही है वहाँ शब्द क्यो नही प्रकट हो जाते ? तो यो सान्तर प्रतिपत्ति होगी और प्रत्येक वर्णमे खण्ड-खण्डसे प्रतिपत्ति होगी। यदि बहुत आवारक माने जाते हैं और वे अन्तर सहित माने जाते हैं

तो उसमे शब्दोका खण्ड–खण्डसे ज्ञान होगा। शब्दको वर्णको तो एक माना है सर्वव्यापी माना है। अब उस एक सर्वव्यापी शब्द पर आवरण बहुतसे हैं लेकिन उनके बीच अन्तर पड गया है। तो जहाँ अन्तर पड गया है वहाँ ही वर्णका टुकडा प्रकट हो जाना चाहिये। यदि कहो कि सर्वत्र सभी समय-सर्वरूपसे विद्यमान हैं वर्ण, इसलिये दोष नहीं आता। उत्तरमे कहते है कि यह बात नही है। यदि सभी जगह सर्वरूपसे वर्ण विद्यमान हैं अथवा आवरण विद्यमान हैं तो प्रत्येक प्रदेशमे बहुतसे आवरण आदिकका ग्रहण होना चाहिये और ध्वनि आदिककी विफलता होनी चाहिये। क्योकि अब तो ध्वनियोके अभावमें भी अन्तरालमे शब्दोकी उपलब्धि होने लगी। यदि कहो कि अन्तरालमे ध्वनिया नही भी हैं फिर भी आवरक हैं तब एक ही आवरण करने वाला कोई पदार्थ मानना चाहिये। फिर बहुत आवरक माननेसे क्या प्रयोजन ? जो दूसरी जगह नही है वह आवरक कैसे हो सकता है अथवा अन्तररूपसे जो नही है वह आवरक कैसे हो जायगा यदि यह शंका करते हो, तो अन्तरालकी तरह यहाँ भी समझ लेना चाहिए। इस कारण सान्तर आवरक होकर वे शब्दों को ढकते हैं यह बात नही बनती। यदि कहो कि वह आवरक निरन्तर है, सारे आकाशमे व्याप्त होकर रहता है निरन्तर है, तो जब आवरक निरन्तर हो गए और उसीकी तरह शब्द भी निरन्तर हैं तो अब न कोई आवार्य रहा और न कोई आवरक रहा, क्योकि आवरण करने वाला भी सर्वत्र है और आवरण करने योग्य जिसे कहा जा रहा है वह भी सब जगह है। तो जब समानरूपसे हैं वे दोनो तो उसमे कोई आवरक कहलाये कोई आवरण कहलाये यह बात कैसे सम्भव है ? यदि कहो कि वस्तुका स्वभाव ऐसा है कि जो स्तिमित वायु है वह आवरक कहलाती है, यह बात भी ठीक नहीं क्योकि वस्तु कोई दिखे तो उसमे यह बात कही जा सकती है कि यह आवरक है। जैसे अग्नि देखा तो हम जानते है, कि अग्नि दाहक स्वभाव है। कहते हैं कि स्वभावसे ही अग्नि जलाती है। जलका दाहक स्वभाव नहो है-यह हमे दिखता है और इसका प्रयोग करते हैं तो हमें इसका प्रत्यय है पर इस प्रकारकी वायु तो नही देखी गई क्या वायु आखोसे दिखी, प्रयोगमे आयी कि वह आवरण करने वाली है वायु। चलो आवरण नही रहा पर यह कुछ दिखनेमे आये तब तो उनका स्वभाव माना जाय भी। जिसे कि नित्य व्यापक माना है। सर्वत्र मत होता हुआ भी वायुवो के द्वारा आवर्यमाण भी नही होता जिससे कि यह कहा जाय। अदृष्टकी कल्पना करना तो दोनो जगह समान है तो जब शब्द भी सर्वव्यापक है और आवरक भी निरन्तर है तो उसमे यह व्यवस्था नही बनता कि शब्द तो आवार्य है और आवरण आवरक है।

तात्वादिकव्यापारसे ध्वन्यात्मक शब्दोकी उत्पत्तिका कथन—अथवा हो ऐसा, शब्दका आवरण भी बना आये और निरन्तर रहा आये तो भी इसका विनाश कैसे होता। यह आवरण दूर किस प्रकार होता है ? यदि कहो कि ध्वनियो से दूर होता है तो अभी ध्वनियोके सद्भावका सिद्ध करने वाला प्रमाण ही कुछ नही

है। ध्वनियां ही असत् हैं। तब फिर ध्वनियोंमें आवरणकी बात कहना कहां तक ठीक है? अथवा मान लो ध्वनियां हैं तो उन ध्वनियोंकी उत्पत्ति कैसे हुई? किन साधनोंसे ये ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं? यदि कहो कि तालु आदिकके व्यापारसे ध्वनियाँ उत्पन्न हो जाती है तो यह बात युक्त नहीं है क्योंकि उसी तरहसे तो, तालु आदिकके व्यापार होनेसे शब्दकी भी उपलब्धियां होती हैं, फिर तो तालु आदिकका कार्य शब्द हो गया। अब वहां इतनी परम्परा मानना कि तालु आदिकका व्यापार होनेपर ध्वनियां उत्पन्न होती हैं और उन ध्वनियोंमे शब्दोंकी व्यक्ति होती है। सो प्रकटरूप होता है कि कंठ तालु आदिकका व्यापार होनेपर शब्दकी उत्पत्ति देखी जाती है।

शब्दाभिव्यक्तिमें खातावष्टब्ध आकाशकी तुलनाकी अघटितता—अब शंकाकार कहता है कि जैसे खात खोदनेके अनन्तर वहां आकाशकी उपलब्धि होती है और आकाश खानका कार्य नहीं है यों इस अनुमानसे तुम्हारे हेतुमें अनेकान्तिक दोष हो गया अर्थात् तालू आदिकके व्यापार करनेसे शब्दकी उपलब्धि तो होती है मगर इससे शब्द उनका कार्य हो जाय तो खान खोदनेके अनन्तर आकाशकी उपलब्धि होनेसे आकाश भी उनका कार्य हो जायगा। जैसे जलसे भरे हुए आकाशमें जलको अगल बगल किया तो आकाश प्रकट हो जाता है। वह नित्य है। सदा सत् है, जलमें ढका था, जलका आवरण हटाया तो आकाश प्रकट हो गया, भूमिका आवरण हटाया तो आकाश प्रकट हो गया, इसी प्रकार कान आदिकका व्यापार हुआ तो वहां शब्द प्रकट हो गया पर इससे शब्द कार्य हो जाय यह बात नहीं बनती। इसका समाधान करते हैं कि यह बात संगत नहीं है। यदि तालु आदिकके व्यापारके अनन्तर शब्दकी उपलब्धि होनेपर भी शब्दको तालु आदिक व्यापारका कार्य नहीं मानते तो ध्वनियां भी तालु आदिक व्यापारोंके कार्य न हो सकेंगी। अथवा जो शंकाकारने दृष्टान्तमें यह बताया कि आकाश तो एकरूप है किन्तु भूमिके खोदनेसे, जलके हटानेसे वहां आकाश प्रकट हो जाता है। तो यों आकाशकी एकरूपता भी असिद्ध है। क्योंकि यह बतलावो कि उस आकाशमें अपना ज्ञान उत्पन्न करनेका एक स्वभाव पड़ा हुआ है क्या? यदि आकाशमें अपना ज्ञान उत्पन्न कर देनेका स्वभाव पड़ा हुआ है तो फिर खोदनेके बाद ही क्यों आकाशकी उपलब्धि हुई? उससे पूर्व भी उपलब्धि हो जाना चाहिये। यदि विशेष मानते हो कि आकाशमें अपना ज्ञान उत्पन्न करनेका भी स्वभाव पड़ा है और कभी अपना ज्ञान उत्पन्न न करनेका भी स्वभाव पड़ा है तब आकाशमें एकरूपता तो न रही।

ताल्वादिक व्यापारसे ध्वनिवत् शब्दकी उत्पत्तिका प्रतिपादन—प्रत्यभिज्ञानसे शब्दमें पहिले सत्त्वकी सिद्धि करना यह तो बात ध्वनिमें भी समान बनती है। जैसे ध्वनियोंको पहिलेसे सत् नहीं माना। ये तालु आदिक व्यापारके बाद

अपना स्वरूप रखते हैं तो यों ही हम शब्दके सम्बन्धमें भी कह सकते हैं कि तालु आदिक व्यापारसे पहिले भी प्रत्यभिज्ञानसे ध्वनिकी सिद्धि है। जो ही ध्वनि पहिले अकारादिकी व्यञ्जक बनती है। वही ध्वनि पीछे भी है और फिर इस तरह ये व्यञ्जक भी सब जगह, सब समय मौजूद हो गये, फिर तालु आदिकका व्यापार करना विफल है, क्योंकि सब जगह सर्वसमय शब्दोंकी अभिव्यक्ति प्रतीत हो जायगी। इस कारण ध्वनि ही तालु आदिकके व्यापारका कार्य हो सो बात नहीं है ध्वनियाँ शब्दसे क्या कुछ अलग हैं ? शङ्काकार कुछ अपना ऐसा आशय रखता है कि जैसे कोई शब्द स्पष्ट न निकले, अस्पष्ट हो, शब्दो जैसी सकल न हो और फिर आवाज आये तो वह ध्वनिका रूप रखता है और जब शब्द स्पष्ट हो जाता है तो स्पष्ट होनेपर भी जो ध्वनिका रूप है वह तो रहता ही है, और स्पष्टता होनेसे वहा शब्दकी अभिव्यक्ति हो गयी है ऐसे ही भावको रखकर शङ्काकार तालु आदिकके व्यापारसे तो ध्वनियोकी उत्पत्ति मानता है और फिर उन ध्वनियोको शब्दका अभिव्यञ्जक मानता है। इस प्रकार उनमे भेद डालते हैं। लेकिन भेद नही है। तालु आदिकके व्यापारका कार्यपना ध्वनियोंमे ही हो सो बात नही। ध्वनि भी शब्द ही कहलाती है। शब्द तालु आदिक व्यापारके कार्य कहलाते हैं फिर कैसे ध्वनियोका अलग सत्त्व हो जायगा क्योंकि पृथक उत्पादकका अभाव हो गया। वे ही तालु आदिक व्यापार शब्दके उत्पादक हो गए फिर ध्वनियोके उत्पादकपनेकी बात क्या कही जा सकती है ?

अभिन्न देशमे अभिन्न इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य आवार्यमे आवरणभेदकी अप्रतीति अथवा चलो रही आये वे ध्वनियाँ अथवा आवरण तो भी इन ध्वनियो को आवरणका हटाव माननेपर जैसे विवक्षित वर्णोंकी अभिव्यक्ति होती है इसी प्रकार समस्त वर्णोंकी उपलब्धि हो जानी चाहिये। यह भेद कहाँ रहा कि वर्ण तो है नित्य, सर्वव्यापक और कही आवरणका हटाव, तो आवरणका हटाव होनेपर वही वर्ण प्रकट हो अन्य वर्ण प्रकट न हो यह भेद कैसे बन जायगा क्योंकि वर्ण तो सर्वत्र व्यापक है आवरण हटा तो वर्ण सामान्य प्रकट हुआ। उनमेंसे कोई एक वर्ण प्रकट हो, जिसको कहनेकी इच्छा है वही वर्ण तो प्रकट हो पर अन्य प्रकट हो ऐसा भेद क्यों बन जाता है ? और यदि ऐसा मानते हो, किसी भी ध्वनिसे कहीका भी आवरण हटे तो वहाँ विवक्षित वर्णोंकी उत्पत्ति होती है, तब फिर अन्य ध्वनियोंके माननेकी विफलता हो जायगी, अन्य ध्वनिया अनर्थक हो जायेगी। कुछ भी ध्वनि हो, कुछ भी आवरण हटे वहा विवक्षित वर्णोंकी उत्पत्ति होने लगेगी। शङ्काकार कहता है कि आवार्य शब्दोंकी तरह आवरकोका भेद है और उन आवरकोके भावोंकी तरह उन आवरणोको हटा देने वाले साधनमे भेद है, इस कारण यहाँ यह दोष नही आता। इस व्यञ्जक वायुके अनेक अवयव हैं इस कारणसे जैसे अवयव दूर होते हैं, उस-उस प्रकारसे वर्णोंकी व्यक्ति होती है। वायु दूसरोंके लिए प्रेरित हुआ करती है। दूसरे शिष्योंको समझाने के लिए वायुकी प्रेरणा की जाती है तो जैसे समझाना चाहिए उस ही प्रकारसे वायु

निकलती है और उस हीके अनुरूप शब्दोकी व्यक्ति होती है। तो इसमे विवक्षित वर्ण प्रकट हुआ और ध्वनियोकी भी विफलता नही है, सब बातें व्यवस्थित हो जाती हैं। समाधान करते हैं कि यह सब भी बिना विचारे कहा है। अभिन्न प्रदेशमे अभिन्न इद्रिय द्वारा ग्राह्य शब्दोमे आवरणके भेद अथवा अभिव्यञ्जक करने वाले पदार्थका भेद प्रतीत नही होता जैसे कि घडा सकोरा आदिक पदार्थोंमें उन उन प्रकारके आवरणों को व्यञ्जित करने वाले भेद देखे गये हैं अथवा कुछ पदार्थ रखे हुए है और उनपर पर्दा डाल दिया, कागज ढक दिया, ऐसे नाना आवरण होते हैं इस प्रकारसे शब्दोके आवरकमे और अभिव्यञ्जकमे भेद नही है, इस हीको अनुमान द्वारा देखिये ! शब्द प्रतिनियत व्यञ्जकोके द्वारा व्यग्य नही होते, क्योकि समान देशमे और एक ही इद्रियके द्वारा वे शब्द ग्राह्य हैं घट आदिककी तरह। जैसे एक ही जगह घट रखा हो और वह सब एक आंखके द्वारा ही ग्राह्य हो जाता है तब वहा यह तो नही कहा जा सकता कि प्रतिनियत व्यञ्जकोके द्वारा प्रकट हुए या प्रतिनियत आवरणोके द्वारा वे ढके गए। तो इसी तरह शब्द भी जब समान देशमे और एकेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य होते है तो वे प्रतिनियत आवरणोके द्वारा आवार्य नही होते। जो आवार्य वर्ण माने हैं उनमे देश का भेद करना युक्त नही है। ढके हुए वर्णोंमे अगर देशभेद हो जाय, ये यहाके ढके वर्ण हैं, ये यहांके ढके वर्ण हैं आदिक तो वर्ण व्यापक न रह सकेंगे क्योकि जो देशभेद हुआ करता है, परस्पर एक दूसरेके देशके परिहारसे रहा करते हैं। जैसे गाय अलग खडी, हाथी अलग खडा, तो गायके देशमे ही तो हाथी नही आया, हाथीके ही देशमे गाय तो नही आयी ? तो देशभेद बन गया। तो इस प्रकार आवरक भेद जब न रहा तो वहा जातिभेदकी कल्पना करना और उन आवरणोको हटाने वाले पदार्थमे जातिभेदकी कल्पना करना कैसे ठीक बन सकती है, जिससे कि जातिभेद वाली बात बने और जातिभेदसे शब्दका भिन्न भिन्न प्रकारका सस्कार बने यह नही हो सकता।

एकेन्द्रिय ग्राह्य व्यङ्ग्यमे व्यञ्जकभेदकी मीमासा शकाकार कहता है कि एकेन्द्रियके द्वारा भी ग्राह्य हो कोई व्यग्य तो भी उसमें व्यञ्जकका भेद देखा गया है। जैसे कि पृथ्वीकी गध एकेन्द्रियके द्वारा ग्राह्य है अर्थात् घ्राणेन्द्रियसे गधका ज्ञान किया जाता पर उसका व्यञ्जक है जलका सीचना, अर्थात् जमीनपर कुछ थोडे जलके कण सीचने से जमीनमेसे गध निकलती है। गर्मीके दिनोमे कहीकी जमीन बहुत तप्त हो गयी हो और उसमे जलके छीटे डाले जायें तो उसमेगध प्रकट होती है। तो देखो भूमिकी गधको प्रकट करने वाला तो है जल सिञ्चन पर शरीरके गधका प्रकट करने वाला जल सिचन नही हो सकता। शरीरकी गधका व्यञ्जक तो दवाइयो सहित तैल का मालिस करना बन सकता है, वह भूमिके गधका व्यञ्जक नही है। देखिये—गध एकेन्द्रियके द्वारा ग्राह्य भूमिकी गध भी घ्राणेन्द्रियसे ग्रहणमे आती है और शरीरकी गध भी घ्राणेन्द्रियसे ग्रहणमें आती है किन्तु भूमिकी गधका व्यञ्जक तो है जलसिंचन और शरीरके गधका व्यञ्जक है तैल मर्दन। तो एकेन्द्रियके द्वारा ग्रहण होने पर भी

व्यग गधका वन व्यञ्जनोमें भेद पाया गया है तो इसी तरह व्यग्य वर्ण एकेन्द्रियके द्वारा ग्राह्य है सो रहा आये तो भी व्यञ्जकभेद पाया जाता है। समाधानमे कहते हैं कि तुम्हारी बात दृष्टान्तमे किसी दृष्टिसे सत्य है। यह बात देखी गई है कि एकेन्द्रिय के द्वारा ग्राह्य भूमिगध और शरीरगध इन दोनोके द्वारा व्यञ्जक अलग-अलग है लेकिन वह सब तो विषयोके सस्कार करने वाले व्यञ्जकोकी बात हुई, पर आवरण के हटनेके कारणमे तो भेद नही आया। यह तो विषयके सस्कार करने वाले व्यञ्जक का भेद हुआ, आवरणके हटानेका भेद तो नही हुआ। अथवा गधके अभिव्यञ्जक जल सिचन आदिक नही है, क्योकि गधके कारक हैं। जलसिचन करनेसे भूमिगधकी उत्पत्ति हुई है यह नही, इस ही प्रकारकी गध भूमिमे थी। जल सिचनमे पहिले अब जलसिचन ने उस ढंकी हुई गधको व्यक्त कर दिया वह बात नही, किन्तु जलकी सेंकने उस उत्पन्न हुई भूमिमें गधको उत्पन्न कर दिया। क्योंकि उस गधको उत्पन्न करनेमे सहकारी कारणोसे पहिले उस प्रकारकी गंध न थी। तब और प्रकारकी गध थी, जो घ्राणेन्द्रिय के द्वारा ग्राह्य होती थी अब जल सिचन करनेसे अन्य प्रकारकी गध बन गई तो कारकोके सम्बन्धमे तो यह नियम बन जाता है कि एकेन्द्रियके द्वारा ग्राह्य अर्थमें समान देशमे कारकोका नियम देखा गया है। जैसे कि एक जगह स्थित होने वाले जौ गेहूँ चावल आदिकके बीज सभीके सभी एक दूसरेको उत्पन्न नही कर सकते। चावल चावलके ही अकुर उत्पन्न करते हैं, जो जौके ही अंकुर उत्पन्न करते हैं तथा गेहूँ गेहूके ही अकुर उत्पन्न करते हैं। जब कारण भिन्न भिन्न हो, कारक भिन्न भिन्न हों तो कार्य भी भिन्न भिन्न प्रकट हो जाता है।

शब्दके कार्यत्वका विवरण—शब्द एक है, नित्य है, व्यापक है और फिर उसको व्यञ्जक प्रकट करदे यह बात नही बनती। सीधी बात और सबके अनुभवमे आने वाली स्पष्ट बात है कि तालू आदिकके व्यापारके अनन्तर भाषा वर्गणा जातिके पुद्गल स्कधसे शब्दकी उत्पत्ति होती है और तभी जिस प्रकारके तालू, कठ, ओठ मूर्धा आदिक चलें और उन स्थानोमें ऊपरके भागसे, नीचेके भागसे शब्द चलें तो उन शब्दोमे अल्प, महान, उदात्त अनुदात्त आदिक भेद बन जाते हैं। तो यों शब्द कोई नित्य व्यापक नही है जिससे नित्य व्यापक शब्दसे भरे होनेके कारण आगमको नित्य माना जाय। अपौरुषेयताकी मान्यता करके आगममे प्रमाण करार किया जाय। आगम तो वचनरूप है। वचन जितने होते हैं वे किसी न किसीके द्वारा किए गए होते हैं। तो उन वचनोका कर्ता यदि गुणवान पुरुष है प्रभुसर्वज्ञ है तो वह आगम वाक्य प्रमाण है। यदि उन आगम वाक्योका कर्ता दोषवान है तो फिर उससे उन की प्रमाणता नही आ सकती है? तो आगममे प्रमाणताका आना न आना, गुणवान और दोषवान वक्ताके आधारपर है वचनोको नित्य सिद्ध करके फिर उसमे प्रमाणताकी सिद्धि करनेका व्यर्थ कष्ट न करना चाहिये।

इन्द्रियसस्कारसे भी प्रतिनियत शब्दाभिव्यक्तिके पक्षका निराकरण—

शब्द संस्कारके जो ७-८ विकल्पोमे पूछा गया था वे कोई विकल्प सिद्ध नही होते, इसलिए शब्द संस्कार होनेसे कहीं शब्द सुनाई देता है कही नही सुनाई देता है, तो कोई शब्द सुनाई देता है कोई नही, यह व्यवस्था नही बन सकती है। यह व्यवस्था तो शब्दकी उत्पत्ति माननेपर ही बन सकती है। शब्दकी उत्पत्ति होनेके स्थान हैं तालु आदिक स्थान उन स्थानोंका जैसा संयोग अथवा वियोग होता है दोनो ही स्थितियोके निमित्तसे शब्दवर्गणा जातिके पुद्गलमें शब्दरूप परिणमन होता है। तो शब्द संस्कार होना और शब्द नित्य होना ऐसी व्यवस्था नही बनती। अब यदि इन्द्रिय संस्कार मानते हो अर्थात् श्रोत्र इन्द्रियमे संस्कार होनेसे ये शब्द कोई सुनाई देते हैं कोई नही सुनाई देते हैं यह व्यवस्था बनती है जो कान असंस्कृत हैं, जिसके कर्ण इन्द्रियके भीतर की शष्कुली एक गोल रचना संस्कृत नही है ऐसा श्रोत्र शब्द नही सुनता है, इस तरह अधिष्ठान भेदसे भी अधिष्ठानके संस्कारसे भी शब्दोमे कुछ शब्द सुनाई देते कुछ नही सुनाई देते, यह व्यवस्था बनती है। यद्यपि शब्द व्यापी है, एक है लेकिन ध्वनिमे तो संस्कार होता है सो वह संस्कार जिस अधिष्ठानमें है उसके भेदके अनुसार शब्दका ज्ञान होगा। ऐसा श्रोत्र संस्कार माननेसे शब्दमें प्रतिनियत व्यवस्था बननेका प्रकाश करना व्यर्थ है, कारण यह है कि यहा भी एक बार जो श्रोत्रइन्द्रिय संस्कृत हो जाय तो वह एक साथ समस्त वर्णोंको सुन लेगा। जैसे कि अजन आदिकसे चक्षुका संस्कार कर दिया जाय तो वह चक्षु निकट वर्ती समस्त संस्कारोको देख लेता है। वहाँ ऐसा भेद नही पड़ता कि इन सन्निहित पदार्थोंमेसे अमुक पदार्थको तो चक्षु देखें और अमुक को न देख सके। जैसे संस्कृत चक्षुमें यह भेद नही है कि वह किसी पदार्थको देखे और किसीको न देखे। एक बार संस्कार कर दिया नेत्रमें देखनेकी योग्यता आगयी, तो जो भी सामने हो उसे देख लेगा। सामने आये हुए पदार्थोंमे से किसीको न देखे यह भेद नही बन सकता। इसी प्रकार किसी औषधि वाले तैलसे श्रोत्रको संस्कृत कर दिया जाय तो वह श्रोत्र किन्हीं वर्णोंको सुननेमें समर्थ है और वर्ण हैं सर्वत्र रहने वाले, तब श्रोत्र इन्द्रिय सभी वर्णोंको एक साथ सुनले। इसीसे यह कहना भी निराकृत हो जाता है कि जैसे प्रदीप आदिक घट आदिकका अभिव्यञ्जक है नेत्रके अनुग्रहसे इसी प्रकार यह ध्वनि श्रोत्रमे संस्कार करनेसे यह वर्णादिकका अभिव्यञ्जक है क्योकि शब्द सर्वत्र है और संस्कार हो गया श्रोत्रइन्द्रियका, तो सभी शब्द एक साथ सुननेमे आने चाहियें ना? जैसे प्रदीप जल रहा है और चक्षुका भी अनुग्रह बन रहा है नेत्रइन्द्रिय भी जानने के लिए तैयार है तो वहाँ घट पट आदिक अनेक पदार्थोंको ग्रहण कर लिया जायगा।

इसीप्रकार श्रोत्रइन्द्रिय जब ध्वनिसे अनुगृहीत हो गई तो एक ही समयमे श्रोत्रइन्द्रिय अनेक शब्दोंको सुन ले ऐसा प्रसग आ जायगा। उसका प्रयोग भी बना लीजिये। श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा प्राप्त और अभिन्न देशमें अवस्थित पदार्थोंके ग्रहण करनेके लिये प्रतिनियत संस्कारोसे संस्कार नही होता इन्द्रिय होनेसे चक्षुकी तरह। इसका भाव यह है कि जैसे आंखमे अजन सुरमा लगा लिया जाय जिसके द्वारा आंखका अनुग्रह

ही जाय। आंखमें अतिशय आ जाय ऐसा आंखके द्वारा अब यह न होगा कि सामने रहने वाले पदार्थोंमेसे किसी पदार्थको जाने और किसी स्थूल पदार्थको न जाने क्योंकि जब आंख निर्मल होती है, दोष दूर कर दिया। आंखसे अब दिखने लगा तो जो भी सामने हो सब दिख जायगा। इसी प्रकार श्रोत्र इन्द्रियका संस्कार कर दिया, शब्द सर्वत्र है तब फिर क्या वजह है कि वहां सारे वर्ण ही एक साथ सुननेमें नही आते। वहां यह भेद न बन सकेगा कि इस तरहका संस्कार करें तो अमुक वर्ण सुनाई दे, इस तरह वह संस्कार करे तो अमुक वर्ण सुनाई दे, ऐसा भेद नही हो सकता है। तो इस तरह श्रोत्र इन्द्रियका संस्कार करनेसे नित्य व्यापक वर्णोंमेसे कोई वर्ण सुनाई दे कोई न सुनाई दे, यह व्यवस्था नही बनाई जा सकती।

उभयसंस्कारसे भी प्रतिनियत शब्दाभिव्यक्तिकी असिद्धि—अब यदि तीसरा पक्ष लेते हो कि इन्द्रिय और शब्द दोनोका संस्कार होता है तो वहां प्रतिनियत वर्णका श्रवण होता है। यद्यपि उभयसंस्कार पक्षमें यह कह सकते कि केवल इन्द्रिय संस्कार माननेपर दोष आता है जिससे प्रतिनियत शब्दका अभिव्यञ्जक नही बनता। और केवल शब्दसंस्कार माननेसे भी दोष आता है तो अब दोनो ही संस्कार एक साथ माने जायेंगे कि शब्दमें भी संस्कार हो और श्रोत्र इन्द्रियमें भी संस्कार हो तो प्रतिनियत वर्ण सुनाई देनेकी व्यवस्था बन जाती है। केवल एक संस्कारसे जैसे कि शब्द संस्कार किया तो शब्दसंस्कारमात्र माननेपर दोष आता है और इन्द्रिय संस्कार किये बिना तो उसमें भी दोष आता है तो जो इन्द्रिय संस्कार माननेपर आता था वह दोष शब्द संस्कार माननेपर दूर हो जाता है। जो दोष शब्द संस्कार माननेपर दूर हो जाते हैं, इस कारण उभय संस्कारसे प्रतिनियत वर्णके सुननेका विधान बनता है और इसी कारण सबके द्वारा समस्त शब्द नही सुनाई देते। क्योंकि वहां कोई एक संस्कार शेष रह गया है, यह कहना भी अयुक्त है क्योंकि जिस समय एक वर्णको ग्राहकपनेरूपसे श्रोत्रइन्द्रियका संस्कार किया जाय तो जब श्रोत्रसंस्कारसे संस्कृत वर्ण जाना जा रहा है तो उस समय वहीं ही रहने वाले सब वर्णोंको क्यो न जाना जाय? क्योंकि वर्ण नित्य है। तो वर्ण संस्कार भी सदा सब जगह ज्योंका त्यों हो रहा है। तो शब्द संस्कार भी है और जिस समय श्रोत्र संस्कार किया जा रहा तो उस समय समस्त शब्द ग्रहणमें आ जाना चाहिये। इस कारण व्यंग्यमें व्यंजक भावक धर्मके आरोप करनेकी युक्ति सिद्ध नही बैठती तो व्यंजक व्यक्तियोंके आधीन भिन्न देश काल स्वभाव होनेसे शब्दकी उपलब्धि होती है यह बात युक्त नही है। प्रत्युत ध्वनियोंके स्वभाव भेदके कारण यह प्रतिनियत वर्णकी व्यवस्था बनती है।

शब्दोंकी अनेकता सिद्ध करने वाले हेतुमें जलपात्रादित्यके साथ व्यभिचारका अभाव—अब शंकाकार कहता है कि जैसे सूर्य तो एक है और जलसे

भरी हुई थालियां १० रखदी जायें तो एक होनेपर भी सूर्य १० जगह दिखाई देता है। इसी प्रकारसे वर्ण तो गांवमे एक है पर ध्वनिके भेदसे, अधिष्ठानके भेदसे नाना जगह वे शब्द-प्रतीत होते हैं। यह कहना भी अयुक्त है। क्योंकि उन जलपात्रोमें पाये जाने वाले जो सूर्यका प्रतिबिम्ब है वह एक नही है। यदि १० जगह जलपात्र हैं तो उन १० मे प्रतिबिम्ब पडे हुए हैं तो वह प्रतिबिम्ब अपने आधारभूत प्रत्येक जलपात्रोमे पाया जा रहा है। उस समय यह कहना कि उन १० जलपात्रोमे भी गगनमे रहने वाला एक ही सूर्य उपलब्धिमे आ रहा है। क्योंकि इसमे कोई बिगाड नही है यह ठीक नही। १० जलपात्रोमे जो सूर्य प्रतिबिम्ब नजर आ रहा वह सूर्यकी बात नही है किन्तु १० जलपात्रोकी बात है। सूर्यका सन्निधान पाकर वे १० जलपात्र उनमे भरा हुआ जो जल है उन जलोमे जलका ही प्रतिबिम्बरूप परिणमन हुआ है। कही उन १० थालियोको देखकर ऊपरका सूर्य नही दिख रहा है बिना ऊपर नेत्र किये ? तो उन जलपात्रोमे आकाशमे रहने वाला ही सूर्य दिख रहा है इस बात को न तो प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्धि करता है न अन्य प्रमाण। जो जलपात्र दिख रहे हैं वे जलपात्र ही उन प्रतिबिम्बोरूप परिणमा है। सो नेत्र उन जलपात्रोकी ही चीज को देख पाता है। सूर्यका स्वरूप तो एक है और जो आसमानमे उपस्थित है वह स्वरूप इन थालियोमे प्रकट नही हो रहा। जो कुछ अवभासमान हो रहा है, वह जलपात्रमे रहने वाला प्रतिबिम्ब जो कि अनेक रूप है वह प्रतिभासमे आ रहा है। जल से भरी हुई थालियोको देखकर जलमे उठे हुए जलके आश्रयमे रहने वाले प्रतिबिम्बो का तो दर्शन हो रहा है पर आकाशतलमे रहने वाले सूर्यका वहां दर्शन नही है।

वृक्ष और वृक्षछायावत् सूर्य और सूर्यप्रतिबिम्बमे भेद — जैसे वृक्ष और वृक्षकी छायामे वृक्ष तो वृक्षमे है—वृक्षकी प्रत्येक बात वृक्षमे है और वृक्ष कितना है जितना कि तना, शाख, डाली, झोका, पत्ता, फूल, फल आदिक जो कुछ उस वृक्षमे हैं वे ही वृक्षके है। अब वृक्षके पत्ते शाखेसे बाहर जो भी चीज हो वह वृक्षकी नही है। तो, अब देख लीजिये कि वृक्षकी छाया वृक्षसे ही बाहर तो हो रही है, जमीनपर हो रही है, किसी किसी वृक्षकी छाया वृक्षसे कितनी ही गुनी बडी देखी जाती है। वृक्ष तो है सडकके बाहर या पृथ्वीतलपर जो छाया पड रही है वे वृक्षकी नही है। निमित्त तो वृक्ष हुआ, पर वह छाया पृथ्वीका परिणमन है। इसी तरहसे सूर्य एक है आसमानमे। अब यहा पानीसे भरी हुई १० थालियां रख दी तो, उनमे जो प्रतिबिम्ब पड रहा है वह सूर्यकी चीज नही है किन्तु जलकी चीज है। जलका ही भासुर रूप एक चमकदार स्वरूप छायारूपमे प्रतिबिम्ब रूपमे बन गया है। तो वहा जो १० जलपात्रोमे जो कुछ दिख रहा वह जलपात्रकी ही चीज दिख रही है सूर्य तो गगनतलमे मौजूद है। ऐसा नही हो सकता कि अन्यका प्रतिभास होनेपर अन्यका प्रतिभास हो जाय। अर्थात् जलपात्रोमे रहने वाली छायाका प्रतिभास होनेपर सूर्यका प्रतिभास हो जाय, यह बात नही बन सकती। और, न ऐसा भी कह सकते कि जलभानुका गुण भानुके साथ

सादृश्य होनेसे एकत्व हो गया। अर्थात् उन १० जलपात्रोंमें जो सूर्यका प्रतिबिम्ब आया उसमे तो जल सूर्य है। आकाश सूर्य नही है। जलके आधारमे प्रकट हुने वाला सूर्य प्रतिबिम्ब है। आकाशके आधारमें आकाशमें उस ऊची जगह पर रहने वाला सूर्य इन जल पात्रोंमें नही है और न सदृशता होनेसे एकत्व कहा जा सकता है। क्या जो एक समान हो वह एक हो जाता है। जैसे जल पात्रोंमें उठा हुआ प्रतिबिम्ब सूर्यके और गगन तलमे रहने वाला वह एक सूर्य क्या ये दोनों एक हो सकेंगे ? अगर यो सदृशता होनेसे एक मान लिये जायें तो मनुष्य, औके किसीके भी नेत्र जो कि दो दो होते हैं वे दोनो नेत्र एक समान हैं या नही ? एक समान नजर आ रहे। किसी एक पुरुषके दो नेत्र दायाँ बायाँ दोनो एक तरह हैं तो एक तरह हैं तो एक तरह होनेसे एक न बन जायेंगे। इसी तरह जल पात्रोंमें उठे हुए जलबिम्ब सूर्यबिम्ब और गगनतलमे रहने वाला सूर्य, ये दोनो एक समान हैं, इनका आकार सदृश है तो भी यह एक न हो जायगा। और, यह भी नही कह सकते कि जलपात्रमे जो जलमानु विकार आया है, प्रतिबिम्ब आया है वह सूर्यके कारण आया है। इस कारण एकपना हो जाय, क्योकि यो एकपना माननेसे वृक्ष और वृक्षकी छायामें भी एकपना आ जाना चाहिये। इससे यह बात कहना कि जैसे जलपात्रमें भिन्न भिन्न सूर्य दिखाई देते हैं। है सूर्य एक। इसी तरह भिन्न भिन्न श्रोत्रोंमे नाना वर्ण सुनाई देते हैं। है वर्ण केवल एक। नित्य व्यापक। यह बात यो नही बनी कि दृष्टान्तमे वे जल प्रतिबिम्ब अनेक हैं और उस समय वे अनेक जल प्रतिबिम्ब ही दिखाई देते हैं। सूर्य नही दिखाई देता।

सूर्यप्रतिबिम्बोकी उत्पत्तिके साधनोपर विचार— शंकाकार कहता है कि उन सूर्यके प्रतिबिम्बोंको सूर्यसे भिन्न माननेपर फिर उन प्रतिबिम्बोकी उत्पत्ति कैसे होगी ? यदि सूर्य न्यारो चीज मानते हो और जलपात्रमें उठने वाला प्रतिबिम्ब न्यारा पदार्थ मानते हो तो यह सम्बन्ध बतावो कि उन प्रतिबिम्बोकी उत्पत्ति होगी कैसे ? समाधानमे कहते हैं कि पानी सूर्य आदिक जो कुछ प्रतिबिम्बकी निज सामग्री है उस सामग्रीसे प्रतिबिम्बोकी उत्पत्ति हो जायगी। यह तो निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धकी बात है। पूछा जाय कि दर्पणमे जो मुखका प्रतिबिम्ब आया है वह मुख प्रतिबिम्ब न्यारा है और मुख न्यारा है या नही ? एक तो न हो जायेंगे। यदि एक बन जाय तो फिर दर्पणमे जो मुखका प्रतिबिम्ब आया है उसमे जो मुख बना है उस मुखपर भोजन करते जावो। दर्पणपर भोजन रखते जावो और यहाँ पेटपर जाना चाहिये। तो एक नही है। दर्पणमें आया हुआ मुख प्रतिबिम्ब इस देहपर रहने वाले मुखसे न्यारी चीज है। उन प्रतिबिम्बोकी उत्पत्ति हुई है इन दोनों बातोमे। वहाँ दर्पण तो उपादान है और देहका मुख निमित्त है। निमित्तका सन्निधान होनेपर दर्पण छायारूप परिणमन गया। ऐसी ही बाते उन जलपात्रोमे आये हुए प्रतिबिम्ब अनेक हैं और उनकी उत्पत्ति उपादान दृष्टिसे तो जलसे हुई है और निमित्त दृष्टिसे सूर्यसे

हुई है पर वह सूर्य गगनतलमे ही रहता है। जलपात्रोंमें नही आता। तो ये जो प्रतिबिम्ब हुए हैं वे जल और सूर्यका अपनी सामग्री विशेषसे हुए है।

नैमित्तिकोंकी सदा उपलब्धि न होनेका कारण—शंकाकार कहता है कि तब तो फिर स्वच्छता विशेष होनेसे मुख या सूर्यके प्रतिबिम्बोके आकार विकार धारण करने वाले ये जल और दर्पण आदिक क्यो नही सर्वदा उपलब्ध होते हैं ? उत्तर देते हैं कि अपनी सामग्रीका अभाव हुआ शब्दोकी तरह। कोई विकार तो सहकारी कारणोकी निवृत्ति होनेपर भी निवृत्त होता हुआ नही देखा जाता। और कोई विकार ऐसे होते हैं कि सहकारी साधनोके हटनेके बाद हट जाया करते हैं। जैसे मिट्टीका घडा बनाया तो घडा बननेमें साधन क्या था ? कुम्हारका चका तो घडा बन चुकनेपर क्या कुम्हार व चका आदि घडेके साथ लगा फिरता है ? तो कोई कार्य ऐसा होता है कि कारण हट पर कार्य नही हटता है और कोई कार्य ऐसा होता है कि कारण हटनेपर कार्य भी विकार भी हट जाता है शब्दादिक ऐसे पदार्थ हैं कि शब्दके कारण हट जायें तो शब्द भी हट जायें। क्योकि तालू आदिकका व्यापार अब नही रहा। तो यह पदार्थोंकी शक्ति अचिन्त्य है। तालू आदिक व्यापार ये हैं सहकारी कारण, उनकी निवृत्ति हो जाती है। फिर सुनाई नही देता। तो इसी तरह जो जलपात्रमे सूर्यका प्रतिबिम्ब हुआ है उसका सहकारी कारण है गगनतलमें रहने वाला सूर्य। जब हट जाता है या जलपात्र सूर्यके सन्निधानसे अलग हटा दिया जाता है तो वहां फिर सूर्यका प्रतिबिम्ब नही रहता। यह तो पदार्थोंकी अपने अपने अलग अलग स्वरूपकी बात है तो जो प्रतिबिम्ब हुए जलपात्रोमें उनके उत्पन्न होनेका उपादान कारण तो जल है जिसका कि प्रतिबिम्ब रूप परिणमन हुआ है और निमित्त है गगनतलमे रहने वाला सूर्य। तो उस सूर्यसे और जलपात्रमे होने वाला सूर्य प्रतिबिम्ब बिल्कुल अलग है। यद्यपि अन्वय व्यतिरेक है। सूर्यके साथ जल सूर्यबिम्बोमें सूर्य बिम्ब नही रहता। ऐसा अन्वय व्यतिरेक होनेपर भी सूर्यमे यह सूर्य प्रतिबिम्ब बिल्कुल भिन्न चीज है। तो यह कहना भी ठीक नही बनता कि जलपात्रोमे अनेक सूर्य दिखते हैं तिसपर भी सूर्य वास्तवमे एक है। इसी तरह तालू आदिकके व्यापार होनेपर अनेक वर्ण सुनाई देते फिर भी वर्ण एक ही है यह बात घटित नही होती। जो बात सर्व जनसाधारणके चित्तमे सुगम समाई हुई है, क्या कि तालू आदिकका व्यापार करनेसे वर्णकी उत्पत्ति हो जाती है। इस ही सुगम बातको मेटकर एक कठिन बात जिसमे कि नाना विचार बनाने पडते हैं। विचार बनाना और कठिन बात असम्भव बातको सिद्ध करना यह विवेक नही है। आगमकी प्रमाणता शब्दके नित्य होनेके कारण नही है, किन्तु गुणवान वक्ता होनेके कारण आगमकी प्रमाणता हुआ करती है।

सौर्य तेजसे चाक्षुष तेजकी नाना रूपोमें प्रवृत्तिके मंतव्यकी मीमासा—

शङ्काकार यहाँ यह कह रहा था कि जलमे सूर्यके प्रतिबिम्ब यदि सूर्यसे अलग चीज हैं तो उन प्रतिबिम्बोंकी उत्पत्ति किससे होती है और फिर वे सदैव क्यों नही रहा करते उसका उत्तर दिया गया है कि उन प्रतिबिम्बोकी उत्पत्ति जल और सूर्य आदिक सामग्री विशेषसे हुई है और वे सदा यो नही पाये जाते कि कोई विकार तो ऐसे होते हैं कि सहकारीकी निवृत्ति होनेपर भी निवृत्त नही होते अर्थात् कारणके हटनेपर भी कार्य नही हटता। जैसे घट आदिक, घडा कार्य बन गया और वह बना है दण्ड चक्र आदिकसे तो दण्ड चक्र आदिक अब हट गए तो भी घडा बना हुआ है। घडेका हटाव नही हो रहा पर कोई कार्य ऐसे होते हैं कि सहकारी कारणके हट जानेपर वे हट जाया करते हैं। जैसे तालु आदिकका व्यापार शब्दविकारका कारण है, तो तालु आदिकका व्यापार बन्द हो जाय, हट जाय तो शब्द भी सुननेमे नही आता अथवा जैसे माला पहिनना एक यह प्रसन्नताका कारण होता है तो माला उतार देनेपर उस प्रकारकी प्रसन्नता भी हट जाती है। दर्पणमें हाथका प्रतिबिम्ब आया। हाथके हटते ही दर्पणका प्रतिबिम्ब हट जाता है इसी प्रकार यहा सूर्यप्रतिबिम्ब होनेपर सूर्यके हटते ही या जलपात्रके वहांसे अलग कर देनेपर प्रतिबिम्ब भी हट जाया करता है। शङ्काकार कहता है कि जलमें जो प्रतिबिम्ब है वह प्रतिबिम्ब ही नही वह तो सूर्य है और वहा सूर्य सम्बन्धी तेजसे चक्षुका तेज भिन्न भिन्न जगहमें प्रवृत्त हुआ है तो भले ही सूर्य भिन्न भिन्न जल पात्रोमें प्रकट हुए हैं लेकिन अनेक प्रकारसे वे सूर्यके देश उस एक सूर्यको ही ग्रहण कर रहे हैं। उत्तर देते हैं कि उस समय जब कि कोई पुरुष जलपात्र मे प्रतिबिम्ब निरख रहा है तो वह पुरुष सूर्यकी जगहमें रहते हुए उससे सूर्यका ग्रहण नही कर रहा है, किन्तु वह जलपात्रको ही निरख रहा है। यदि कहो कि चाक्षुष तेज नानारूपोमे प्रवृत्त होता है तो यह बात बिलकुल असङ्गत है। नाना रूप हो रहा है और उन नानाको जान रहा है, एक सूर्यको जान रहा है और नानारूपसे जान रहा है इसमे कोई प्रमाण नही है। चक्षुकी किरण जलसे सम्बद्ध होकर फिर सूर्यके प्रति जाना हो ऐसा प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणसे प्रतीत नही होता। चक्षुकी किरणें विषयोंके प्रति नही जाना करती। चक्षुमे किरणें नही हैं। जैसे अन्य इन्द्रिय इन्द्रिय हैं इसी तरह चक्षु भी एक इन्द्रिय है। जैसे अन्य इन्द्रियसे कुछ भी अग अवयव अणु स्कध बाहर निकलकर विषयोमे रमे ऐसा नही होता। इसी प्रकार चक्षुसे भी कुछ भी निकलकर पदार्थोंमे जाय ऐसा भी नही होता।

शब्दोकी अनेकता और शब्दोंसे अर्थप्रतिपत्ति होनेमें सादृश्य प्रत्यभिज्ञानका सहयोग—शंकाकार कहता है कि शब्दको नित्य एक सिद्ध न करनेके लिए जो एक सूर्यमे और शब्दमे भेद डाला है, शब्दको अनित्य मानने वालोंने कि जो सूर्य नाना देशोंमे रहने वाले पुरुषोंके द्वारा भिन्न-भिन्न देशोंमें जाने जाते हैं तो ऐसी बात शब्दमें नही है। सो सूर्य एक तो रह सकता है पर शब्द वर्ण एक नही। सो बात यह है कि देशसे जो सूर्यकी भिन्नता है वह आनुमानिक है। उसका बाधक तो प्रत्यक्ष है। सूर्य

गमन करता है और कहीसे कही चला जाता है इसी प्रकार शब्द गमन करता है और कहीसे कही आया करता है, ऐसी समता नही बन सकती, क्योकि सूर्यके गमन करनेमे प्रत्यक्ष ही बाधक है, प्रत्यक्षसे तो सूर्य गमन करता हुआ दिखाई नही देता शंकाकारका यह कहना भी अयुक्त है क्योकि यदि ऐसा नियम हो कि प्रत्यक्ष ही अनुमानका बाधक होता है, अनुमान प्रत्यक्षका बाधक नही होता ऐसा नियम यदि बना दिया जाय तब तो सूर्य चन्द्र आदिकमे स्थिरताकी प्रत्यक्षता एक देशसे दूसरे देशमे चन्द्र सूर्य जाया करते है इसको सिद्ध करने वाले अनुमानके द्वारा यह प्रत्यक्ष बाध्य नही होता लेकिन ऐसा तो नही है। कही अनुमानका विषय प्रत्यक्षसे बाधा जाता है और कहीं प्रत्यक्षका विषय अनुमानसे बाधा जाता है। जैसे यहा प्रत्यक्षसे तो यो नजर आता कि चन्द्र सूर्य जहा है वहीं है, वे गमन नही किया करते लेकिन अनुमानसे उसमे बाधा आती है। एक देश से दूसरे देशमें आ चन्द्र पहुँच जाता है इससे यह सिद्ध होता है कि सूर्य चन्द्र स्थिर नहीं हैं, ये चला करते है इनमे गतिकी शक्ति पायी जाती है। यदि कहो कि यहाँ प्रत्यक्ष करता ही नही है किन्तु बाधिक विषय भी स्थिरताको निराकृत कर देता है। उत्तरमे कहते हैं कि यह बात प्रकृत बातमे भी समान है। जैसे नखको काट दिया और कुछ समय बाद फिर नख बढ जाते हैं, तो जो नख कट गया था पहिले उसके सम न है यह नख जो अब और बढा है, न कि वही नख है। अरे, वह नख तो कट करके गेर ही दिया, अलग ही हो गया। वह तो यह नही है, तो जिस सादृश नखमे एकताका बोध होता है तो इस एकताकी प्रतीति बाधित विषय हो जाता है अर्थात् बढे हुए नखमे यह, वही नख है ऐसा ज्ञान बाधित है क्योकि यह नख तो उसके सदृश है जो पहिले था। उस सदृशताकी रीतिसे नखका नानापन सिद्ध होता है, सो यह प्रतीत एकत्व बाधित बन गया। इसी प्रकार शब्दोमे जो हम शब्द सुना करते हैं वे शब्द वही नही है जो पहिले थे किन्तु पहिले बोले गए शब्दके समान हैं ये शब्द। शब्द एक नित्य व्यापक नही है।

शब्दोकी सावयवताका प्रतिपादन—शंकाकार कहता है कि शब्दमे तो यही बुद्धि होती है कि यह वही है। सदृशताकी कोई बुद्धि नहीं करता कि यह ग शब्द पहिले बोले गये, ग शब्दके समान है। तो सादृश्य इन ग ए आदिक शब्दोमे नही है। ये वर्ण तो अवयव सामान्यके बिना है। इन वर्णोमे कोई अवयव ही नही है। तो सदृशता की बात कैसे कही जाय? कोई चीज किसी दूसरी चीजके समान है यह बात तब ही कही जा सकती है जब उन दोनो चीजोंमे अवयव पाये जाते हैं और फिर वे अवयव सदृश मिलते हैं, पर वर्णोमे तो अवयव होते ही नही हैं। समाधान करते हैं कि यह बात अयुक्त है। वर्णोमें अवयव सामान्य है। वह सदृशताकी प्रतीतिसे प्रसिद्ध हो जाता है। वर्णोमे अवयव है अन्यथा सदृश शब्दोकी प्रतीति न हो सकती थी। यह वर्ण पूर्व बोले गए शब्दोके सदृश है। ऐसी सदृशताका जो बोध होता है वह अवयवोंके कारण होता है। शब्द जो बोले गये हैं वे कार्य हैं और उनमें अंश हैं उनकी समानता है इसलिए

सादृश्य बोधसे अर्थका ज्ञान हो जाता है। शंकाकारने जो यह कहा था कि जैसे एक देवदत्त क्रमसे गमन करता है तो बहुत देशोमे चल फिर आनेपर भी क्रमसे गमन करने पर भी यही वही देवदत्त है ऐसा बोध होता है, तो ऐसे क्रम भेदसे भिन्न-भिन्न देशोंका प्राप्त होता हुआ देवदत्त नाना तो नही हो गया। वह एक ही है इसी प्रकार शब्दक्रम से भिन्न देशको जा करके भी उसमे भेद नही हो जाता, वही एकता ही है। इस प्रकार दृष्टान्त बनाना यों युक्त नही है कि देवदत्तमे तो है एकत्व प्रत्यभिज्ञानकी बात और शब्दमे है सादृश्य प्रत्यभिज्ञानकी बात देवदत्तमे तो यह ज्ञान होता है कि यह वही है, पर यहाँ तो यह वर्ण उसके सदृश है ऐसा प्रत्यय होता है। सादृश्यके ज्ञान होनेसे कही एक न मान लेना चाहिए। जो सादृश्यके बोधसे मान लिया जाय तो गाय और रोझ ये भी सदृश लगते हैं। इनमें सादृश्य प्रत्यभिज्ञान जगता है तो यह भी सादृश्य बन बैठेगा इसकारण वर्ण उत्पन्न होता है और ये वर्ण पूर्व बोले गए वर्णोंके समान हैं ऐसी व्यवस्था माननेपर कहीं भी व्यवस्था विरुद्ध विवाद नहीं हो सकता।

शब्दोंका निष्पाद व गमन तथा अन्य शब्दव्यञ्जनासे तरङ्गप्रवाह—शब्द उत्पन्न होते हैं और जिन पुद्गल स्कन्धोंमें शब्द परिणमन होता है वह शब्द पुद्गल स्कंध जाया भी करता है और शब्द पासकी भाषा वर्गणा पुद्गल स्कन्धमे परिणत शब्दसे बनाकर वह अगले शब्दको बनाकर यों तरंगरूपसे भी शब्द जाया करते हैं। यहा शङ्काकार कह रहा है कि ऐसा कहना कि शब्द श्रोताके कानोके पास जाता है, शब्द वक्ताके पास आता है अथवा शब्दोकी तरह बनकर ये शब्द जाया करते हैं। यह बात ठीक नही बैठती क्योंकि शब्द अमूर्त है और अमूर्त शब्दका गमन नही बन सकता। शब्दका आगमन अप्रमाणित है किसी भी प्रमाणसे सिद्ध नही है और वह कल्पनाकी चीज़ है। शब्दमे मूर्ति होना, शब्दका स्पर्श होना यह सब कल्पनाकी बात है। शब्द तो हैं सदैव और उनका भींट आदिकसे अभिभव हो जाता है। तो जब शब्द स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा ग्राह्य नही है और शब्दके अन्तर्भाव वर्णरूप सूक्ष्म है, निरंश हैं तो उन आवान्तर शब्दोंकी रचना विधि कैसे बन सकती हैं? और जब रचना नही बनती तो वर्णभेद कैसे बन सकते? इससे शब्दोका आना मानना शब्दोकी उत्पत्ति मानना यह प्रमाणविरुद्ध है। वह कल्पना भरकी चीज है। इस शङ्काका उत्तर करते हैं कि ये सब बातें व्यञ्जक वायुके गमनमें भी लगा सकते हैं व्यञ्जक वायुका आगमन यथार्थ नही है, अदृष्ट है, केवल कल्पना भरकी बात है। व्यञ्जक वायुमे न मूर्तपना है न स्पर्शपना है, वह तो सर्वत्र है और उसका अभिभव रहता है आदिक बातें जो जो शब्दके सम्बन्धमें कही हो ठीक उसीके पटतरके रूपमें हम यहा व्यञ्जक वायुमें भी लगा सकते हैं।

शब्दके अमूर्तत्व आदिके भ्रमका कारण—शब्द अदृश्य चीज है और ऐसा लगता है कि आकाशमे ये शब्द मालूम पडते हैं सो यह कह देते हैं कि शब्द

आकाशका गुण है और अमूर्त है तथा आकाशकी तरह नित्य व्यापक है, ऐसा भ्रम हो गया है किन्तु सब लोगोंकी यह प्रतीति है कि शब्दकी उत्पत्ति कंठ तालू आदिकके व्यापारसे होती है और इसीकारण जैसे तीव्र मंद तालू आदिकका व्यापार होता है ऐसे ही तीव्र मंद शब्द उत्पन्न होते हैं। तथा तालू आदिकके ऊंच नीच स्थानमे जिस प्रकारसे प्रयोग होता है उस प्रकारसे वर्णोमे उदात्त अनुदात्त आदिक प्रकार हो जाया करते हैं, और भी देखिये जो शकाकारने अदृष्ट कल्पना और गौरव दोष दिया हैं वह शकाकार के यहाँ ही दोष आता है। अदृष्ट कल्पनाका अर्थ है कि प्रमाण प्रतीति सिद्ध नही हैं। शब्दका आना प्रमाण सिद्ध नही है, तो शब्दका सदा रहना प्रमाण सिद्ध नहीं है और यह कहना कि शब्द यदि मूर्तिक है तो उसमे गौरवता आती है। भारी वजन बन जायगा। अरे शब्द सदा है, व्यापक है तो इसमे भारपन सदा रहेगा। देखिये शब्द जो कि शब्द देशमे नही पाया जा रहा उसका आवरण करने वाला तुम मानते हो स्तब्ध-वायु, वायुका निषेध यह भी प्रमाणसे नही जाना जाता है वह कल्पना ही है और उस स्तब्ध वायुको हटाने वाली व्यञ्जक ध्वनियाँ होती हैं वह भी एक कल्पनाकी बात है। जो जो कुछ भी शब्दको नित्य माननेपर माना जायगा वे वे सब चीजें कल्पनाकी चीजें बनेंगी और इस तरहसे तो उन सब चीजोमे शब्दोमे आवरणोमें, व्यञ्जकोमे नाना शक्तियाँ माननी पड़ेगी। बात तो सीधा यह है कि शब्द पौद्गलिक चीज है इस शब्द मे माना था कि स्पर्शनसे भी जुदा है। यह कहा था कि स्पर्शमे व्यञ्जक ध्वनि जानी जाती है। शब्द नही जाना जाता है। यह भी अयुक्त बात है क्योंकि ध्वनि और शब्द मे अन्तर क्या है ? अपरिणाम है। तो ये सब शब्द पौद्गलिक है क्योंकि शब्दोंका आघात होता है, शब्दोका रुकावट किया जा सकता है और इस शब्दको कही रोका भी जा सकता है। इससे शब्द पौद्गलिक हैं और जैसे चक्षु आदिक के व्यापारकी क्रिया है घट इसी प्रकार तालू आदिकके व्यापारकी क्रिया है शब्द बिल्कुल स्पष्ट विदित होता है सबका चक्र आदिकका व्यापार किए बिना। कुम्हारके उस ज्ञान श्रम इच्छा आदिकके किये बिना घटकी उत्पत्ति तो नही होती है। घट इन सब व्यापारोसे बना है इसी प्रकार तालू कठ आदिक साधनोके व्यापारसे ये सब कार्य बने हैं। शब्द नित्य व्यापक है और अकृत्रिम है, यह बात सही नही बैठती। तो जिन जिनमे भेद पाया जाना, जिनमे नाना दशायें पायी जाती जिनमे अनेक रूप पाये जाते वें चीज तो कृत्रिम हैं। किसी न किसीके द्वारा की गई है। तो यहाँ शब्द कृतक हैं। अपौरुषेय नही हैं। जिनमे शकाकार यह सिद्ध करनेका प्रयास करे कि आगममे जो शब्द है वह नित्य है। अपौरुषेय है। और अपौरुषेय होनेसे आगममे कहे गए शब्दोकी प्रमाणता है।

आगमकी प्रमाणताका वास्तविक कारण— कोई आत्मा परमात्मा होता है, सर्वज्ञ होता है, निर्मल होता है ऐसा नही है किन्तु शब्द ही एक प्रमाणभूत है और उन शब्दोसे फिर धर्मकी व्यवस्था बनती है। ये सब बातें कहना असगत है यहाँ

ही देखा जा रहा है कि कुछ लोग रागद्वेषमे बहुत रहित हैं। पक्षपात किया नही करते हैं तो ऐसे पुरुषोके शब्द भी प्रमाणभूत मान लिये जाते हैं। अमुक भाई इस विषयमे जो बात कहेगा, वह प्रमाणिक कहेगा ऐसा लोगोमे श्रद्धा पाई जाती है। तो शब्द गुणवान पुरुषके द्वारा बोला गया हो वह तो प्रमाणभूत है। जब लोकमे यह देखा जाता है कि किसी पुरुषमे राग कम है किसीमे बहुत कम है, तो औपाधिक होनेपर कमी नजर आये तो उससे यह निर्णय होता है कि ये रागादिक विकार कही बिल्कुल ही समाप्त इनका सर्वथा अभाव हो जाता है इसी प्रकार जब लोकमे हम यह निरखते हैं कि किसीका ज्ञान बडा है किसीका ज्ञान उससे भी बडा है तो जब ज्ञानमें वृद्धि हम देखते हैं और ज्ञान है आत्माका स्वरूप। तो आत्माका स्वरूप होते हुये फिर ज्ञानमें जा वृद्धि विकास देख रहे हैं उससे यह सिद्ध होता है कि किसी आत्मामें ज्ञान परिपूर्ण विकसित है बस ये दो बातें किसीमे भी एक आत्मामे पायी जा सकती हैं। रागादिक विकारोका सर्वथा अभाव और ज्ञानादिक गुणविकाशकी परिपूर्णता, ये दोनो बाते जो देखी जायें वही पूर्ण ज्ञानवान पुरुष है। आप्त भगवान सर्वज्ञ किन्हीं भी शब्दोमे कहो उन गुणवान पुरुषोके चरण सन्निधानमे जो वार्ता उपदेश निकलता है वह प्रमाणभूत है। हा, दोषवान वक्तासे निकले हुए वचन प्रमाणभूत नही है, इस प्रकार आगमका जो यहा लक्षण बताया गया था कि आप्तके वचन आदिक कारणसे जो अर्थ ज्ञान होता है उसे आगम कहते हैं। यह बात पूर्णतया सगत हो जाती है। सर्वज्ञ आप्त है कोई और उनके निकट रहने वाले जो महापुरुष गणधर आदिक हैं उनकी ध्वनिसे अपने ज्ञानकी पुष्टता समीचीनता दृढता उत्पन्न करते हैं फिर उनके प्रवाहसे उन गणधरोने किन्ही आचार्योंको बताया, उन आचार्योंने किन्हीं अन्य आचार्यों का बताया। इस तरह परम्परासे गुणवान पुरुषोके द्वारा प्रणीत जो धर्मशास्त्र हैं वे प्रमाणभूत होते है। यो परोक्ष प्रमाणके भेद स्मृति प्रत्यभिज्ञान तर्क अनुमान और आगम प्रमाणता बताकर इस समय आगम प्रमाणकी प्रमाणता बतायी जा रही है। जैसे स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान य परोक्ष होकर भी ज्ञाताके उपभोगर सब स्पष्ट प्रमाणभूत विदित होता है इसी प्रकार आगम भी परोक्षभूत होकर भी आगम प्रणेताके निर्दोषपनकी श्रद्धा करने वाले मनुष्योंके उपयोगमे प्रमाणभूत ही है इसप्रकार ज्ञानकी यहाँ प्रमाणता सिद्ध की जा रही है।

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[सप्तदश भाग]

●

प्रवक्ता– अध्यात्मयोगी, पूज्य श्री १०५ मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

●

आगम प्रमाणके लक्षणसे अर्थज्ञानकी मान्यतामे आशङ्का– आगम प्रमाणके स्वरूपके वर्णनमे यह प्रसङ्ग आया कि शब्द और अर्थका सम्बन्ध हुआ करता है और गुणवान पुरुषके द्वारा प्रणीत शब्दोसे यथार्थ अर्थकी उत्पत्ति होती है और दोषवान वक्ताके वचनोसे अयथार्थ उत्पन्न रहता है। तो शब्द और अर्थके सम्बन्धमे यहा एक शङ्काकार कहता है कि शब्द और अर्थका सम्बन्ध बन ही नही सकता, फिर आप्तके द्वारा प्रणीत भी शब्द हो तो भी अर्थके ज्ञानको करदे यह बात बन नही सकती फिर आगमका लक्षण बताना कि आप्तके वचन आदिकके कारणसे जो अर्थज्ञान होता है उसे आगम कहते हैं, यह तो कैसे शोभाको प्राप्त हो सकता है? इस तरह शङ्काकार की आशङ्काको दूर करनेके लिए सूत्र कहते हैं :—

सहजयोग्यतासकेतवशाद्धि शब्दादयः वस्तुप्रतिपत्तिहेतवः ।।३-१००।।

शब्दसे अर्थप्रतिपत्ति होनेके लिये शब्द और अर्थके सम्बन्धका विवरण सहज योग्यता और सकेतके वशसे शब्दादिक वस्तुकी प्रतिपत्तिके कारण होते हैं। यहा केवल शब्दको ही वस्तुकी प्रतिपत्तिका कारण नही बताया किन्तु हस्तपादादिकके सकेत भी वस्तुके परिज्ञानके कारण होते हैं सहज मायने स्वाभाविक। किसीसे उधार ली हुई नही किन्तु खुद द्रव्यमेंसे प्रकट हुई जो योग्यता है वह क्या ? शब्द और अर्थमे प्रतिपाद्य प्रतिपादनकी शक्ति होना अर्थात् शब्दमे प्रतिपादक शक्ति है, यह बताता है और अर्थमे प्रतिपाद्य शक्ति है अर्थ समझा जाता है ऐसी शक्तिका होना यह है सहज योग्यता। सो जिस ज्ञान और ज्ञेयमे ज्ञाप्य ज्ञापक शक्ति है ज्ञान तो होता है ज्ञापक और ज्ञेय होता है ज्ञाप्य तो ज्ञान ज्ञेयमे ज्ञाप्य ज्ञापक शक्तिकी तरह शब्दमे प्रतिपादक शक्ति और अर्थमे प्रतिपाद्य होती है। सो वहाँ निमित्त योग्यतासे अतिरिक्त अन्य और कोई सम्बन्ध नही है। शब्द और अर्थके बीचमे जो सम्बन्ध है वह प्रतिपाद्य प्रतिपादक सम्बन्ध है। कार्य कारण अभिव्यञ्जक आदिक सम्बन्ध नही है। अर्थात् शब्द कारण हो। अर्थ कार्य हो या शब्द कारण हो, ऐसा सम्बन्ध नही है दोनो भिन्न भिन्न स्थानोमें

अपनी सत्ता लिए हुए पृथक स्वतन्त्र पदार्थ हैं। शब्द और अर्थमें प्रतिपाद्य प्रतिपादकत्वका सम्बन्ध है। उस योग्यताके होनेपर सङ्केत बनता है कि इस शब्दका यह अर्थ है इसका यह अर्थ है गाय शब्दका अर्थ है सासना सहित कोई वस्तु। इससे सकेत उत्पन्न होता है। फिर सकेतके वशसे देशरूपसे शब्दादिक वस्तुके ज्ञान करानेमें कारण होते हैं। शब्द ही वस्तुका ज्ञान करायें प्रतिपादक बने सो इतना ही नहीं किन्तु हाथ अगुलियोंके सकेत भी वस्तुके ज्ञान करानेमें कारण होते हैं। इस तरह जो शका की गई थी शब्द और अर्थमें सम्बन्ध नहीं है उसका निराकरण किया है। शब्द और अर्थमें प्रतिपाद्य प्रतिपादक सम्बन्ध है और यह सम्बन्ध सकेतके कारण बना है और यह सकेत सहज योग्यता के कारण बन गया है। यो शब्द वस्तुका ज्ञान करानेका कारण है। जैसे कि हाथ, अगुली आदिकका सकेत वस्तुका ज्ञान करानेका होता है। इसी विषयमें अब दृष्टान्त देते हैं।

यथा मेर्वादय सन्ति ॥ ३-१०१ ॥

दृष्टान्त पूर्वक शब्द और अर्थके सम्बन्धका प्रतिपादन जैसे मेरु आदिक है—यहाँ अर्थ हुआ मेरु और शब्द हुआ मेरु तो मेरु ये शब्द, इनमें ऐसी योग्यता है, ऐसा सकेत बना है कि मेरु शब्दके कहनेसे वह बडा विशाल जम्बू द्वीपके बीचमें पडे हुये मेरु पर्वतका ज्ञान हो जाय। यहाँ शकाकार कहता है कि यह सहज योग्यता जिससे सकेत बना, यह योग्यता अनित्य है अथवा नित्य है? यदि इस सहज योग्यताको अनित्य मानते हो तो इसमे अनवस्थाका दोष हो जायगा, वह किस तरह कि जिस प्रसिद्ध सम्बन्धके द्वारा यह कूप दिक शब्द अप्रसिद्ध सम्बन्ध वाले घट आदिकका शब्दका सम्बन्ध किया जाता है उसका भी अन्य प्रसिद्ध सम्बन्धसे सम्बन्ध बनेगा। उसका भी अन्यसे बनेगा तो यदि सहज योग्यता अनित्य मानते हो तो सहज योग्यताके मायने है कि जिसका सम्बन्ध प्रसिद्ध है ऐसी योग्यता तो जिस प्रसिद्ध सम्बन्ध वाले सकेतसे अब इस शब्दसे अप्रसिद्ध सम्बन्धका बोध कराते हुयेको देखा जाय, मिट्टीसे बना हुआ घडा यह शब्द कहा जाता है उससे इस पदार्थका बोध होता है। इस तरह सम्बन्ध जिसका सिद्ध नहीं है उसका ज्ञान कराया जाता है तो फिर उस प्रसिद्ध सम्बन्धका सम्बन्ध कैसे प्रसिद्ध हुआ? उसके लिए दूसरे सम्बन्ध वाला सकेत होना चाहिये। इस तरह सहज योग्यताको अनित्य माननेपर अनवस्था दोष हो जाता है। उसे यदि नित्य मानते हो नित्यत्वके सम्बन्धसे शब्दोमे वस्तुके ज्ञानका कारणपना आता है, यह बात तो हम मान ही रहे हैं, अर्थात् शब्द नित्य है। शब्द और अर्थका सम्बन्ध नित्य है। इस तरह मीमासक लोग यहाँ अपनी शका रख रहे हैं। समाधानमे कहते हैं कि सम्बन्ध अनित्य होनेपर भी उसमे अर्थज्ञानकी कारणता होती है। जैसे कि हाथ सैन आदिकके सम्बन्ध अनित्य हैं तो भी अर्थकी प्रतिपत्तिके कारण होते हैं। मुहसे कोई नहीं बोलता, केवल हाथसे ही इशारा करके बताता है तो उस बातको लोग समझ जाते हैं। यदि हस्ता-

दिकके संकेत अनित्य हैं तो भी पदार्थकी तिपत्तिके कारण होते हैं। ठायसैन आँख आदिकका चलाना इन सबका जो अपने वाच्य अर्थसे सम्बन्ध है वह नित्य तो नहीं है वह अनित्य है। जब हाथ सैन आँखका चलाना आदिक ये खुद अनित्य है तो फिर अनित्यके आश्रय रहने वाला सम्बन्ध नित्य कैसे हो सकता है ? तो शब्द अनित्य है और शब्द अर्थका सम्बन्ध भी अनित्य है। ऐसा तो नहीं होता कि भीट तो गिर जाय और भीटके आश्रय रहने वाले चित्र नष्ट न हो। जब आधार ही नष्ट हो गया तो आधेय कहा विराजेगा ? तो फिर जब हस्तपाद शब्द सज्ञा ये ही स्वय अनित्य हैं तो इनमे जो पदार्थका सम्बन्ध बना है वह नित्य कैसे हो सकता है।

अनित्य होनेपर भी शब्दोमे अर्थप्रतिपत्ति हेतुता—शकाकार कहता है कि जब शब्द हस्त सैन आदिक अनित्य हैं तो ये अर्थ ज्ञान करानेके कारण न हो सकेंगे। समाधान—यह शका युक्त नही इसमे प्रत्यक्ष विरोध है। अर्थात् दिखता ही है कि हम सबके हाथ पैर आदिकके सैनसे अर्थका ज्ञान बराबर हुआ करता है। तो जिस प्रकार हस्त पाद आदिक सैनोका स्वार्थसे सम्बन्ध है ये अपने अर्थका बोध करा देते हैं इसी प्रकार शब्दार्थके सम्बन्धमे भी जानना चाहिये। शब्दार्थका सम्बन्ध अनाश्रित तो होता नहीं। किसी न किसीके आश्रयसे तो सम्बन्ध बनता है तो शब्द और अर्थके सम्बन्धका आधार स्वय शब्द और अर्थ है। जो अनाश्रित होता है उससे सम्बन्धपना सम्भव ही नहीं। जैसे आकाश अनाश्रित है तो आकाशका किससे सम्बन्ध बताया जाय ? तो अनाश्रितमें तो सम्बन्धपना होता नहीं, सम्बन्ध तो होता है। तो जब सम्बन्धपन आश्रित है तो सम्बन्धके आश्रयके सम्बन्धमे विकल्प किया ही जा सकता है, कि सम्बन्धका आश्रय जो पदार्थ है वह नित्य है या अनित्य है ? यदि कहो कि नित्य है तो नित्यपनेसे बताये जाने वाले आश्रयका नाम क्या है ? अर्थात् वह नित्य चीज क्या है जो आश्रयसे सम्बन्ध रखती है ? क्या वह जाति है अथवा व्यक्ति है ? जातिको तो कह नहीं सकते। यदि जातिमें शब्दार्थपना हो गया तो प्रवृत्ति निवृत्तिका अभाव बन बैठा। क्योंकि जातिका सम्बन्ध शब्दार्थसे है तो उसका काम जानना हुआ। प्रवृत्ति करना, निवृत्ति करना यह जातिमे अर्थक्रिया नहीं होती है। यदि कहो कि वह आश्रय व्यक्ति है जिसको नित्य माना है और शब्दार्थके सम्बन्धका आधार माना है तो व्यक्ति यदि सम्बन्धका आश्रय कहा जाय तो फिर उसमे नित्यपना कैसे रहा ? व्यक्ति नित्य नहीं। यदि शब्दार्थका सम्बन्धका आश्रय व्यक्ति है तो सम्बन्ध नित्य न रहा, और ऐसी प्रतीति भी नहीं हो रही है। यदि कहो कि वह आश्रित अनित्य है तो सम्बन्धका आश्रयपना भी अनित्य बन गया क्योंकि जब शब्दादिक अनित्य हैं तो उनका विनाश होनेपर सम्बन्धका भी अपाय हो जाता है। जैसे भीटके नष्ट होनेपर भीटके चित्रोंका भी विनाश हो जाता है इस कारण यह कहना अयुक्त है कि शब्दार्थके सम्बन्ध नित्य हुआ करते हैं।

नित्यानित्यात्मक पदार्थोंमे अर्थक्रियाकी सम्भवता—शब्दार्थके सम्बन्ध

नित्य क्यो नही होते सो देखिये सदृश परिणामसे युक्त पदार्थ हैं और शब्दका शब्दके आश्रय रहने वाले सम्बन्धका एकान्तसे नित्यपना नहीं हो सकता। सर्वथा नित्य वस्तु मे क्रमसे और अक्रमसे अर्थक्रिया सम्भव नही होती, इस कारण सर्वथा नित्य कुछ होता ही नही। जो कुछ नही होता उसमें नित्य अनित्यकी क्या बात चलेगी। दूसरे इसमे अनवस्था दोष बताना भी अयुक्त है। शकाकारने कहा था कि यदि शब्दार्थका सम्बन्ध नित्य है या अनित्य। अनित्यमे दोष कहे नित्यमे दोष कहे तो सदृश परिणाम युक्त अर्थमें और शब्दमे एकान्तसे अनित्यत्व नही होता और अनवस्था दोप देना यह नित्यमे दिया जा सकता है। किस तरह कि जिनका सम्बन्ध प्रकट नही ऐसे शब्द का प्रकट सम्बन्ध वाले शब्दके साथ सम्बन्धकी अभिव्यक्ति करना चाहिये तो उस अभिव्यक्त सम्बन्धके सम्बन्धका भी ज्ञान किसी अन्य अभिव्यक्त सम्बन्धसे करना चाहिये। इस तरह अनवस्था दोष तो अभिव्यक्तिवादमे भी हो सकता है। यदि कहो कि किसीके स्वत. ही सम्बन्धकी अभिव्यक्ति होती है तो फिर दूसरेके भी सम्बन्धकी अभिव्यक्ति स्वत ही मान लीजिये। फिर सकेत क्रिया करना व्यर्थ है। सम्बन्ध विभाग की कल्पना करनेपर कि शब्दका अय आदिक शब्दसे सम्बन्ध होता है इस प्रकार शब्द विभाग माननेपर फिर सम्बन्धमे नित्यपना माननेकी कल्पना करनेसे क्या लाभ, और कल्पना करोगे ही कि यह नित्य है तो जिसका सकेत ग्रहण नही किया गया ऐसे अर्थकी प्रतिपत्ति हो जाना चाहिये। बात यहाँ यह चल रही है कि शब्द नित्य माननेपर शब्दमे प्रतिपादकता भी नही बनतो, सर्वथा नित्यमें कोई अर्थक्रिया नही है तो वह वस्तु ही नही है। फिर सकेतकी व्यवस्था नित्य शब्दसे बन नही सकती। यदि कहो कि सकेत उसका व्यञ्जक है तो यह भी कहना अयुक्त है। जो नित्य पदार्थ है उसमे व्यगता नही हो सकती अर्थात् पहिले प्रकट नहीं हुआ, अब प्रकट हो जाय, यह बात नही बनती। जो भी वस्तु नित्य होती है वह यदि व्यक्त है तो व्यक्त ही है और यदि अव्यक्त है तो वह अव्यक्त ही है। नित्यका तो एक स्वभाव हुआ करता है, जिसमे स्वभावभेद हो वह वस्तु फिर नित्य ही क्या होगी शब्दकी अभिव्यक्ति पक्षमे दिये गए दोषका सम्बन्ध यहाँपर भी बराबर लग जायगा।

सकेतके पुरुषाश्रितत्वकी अनिवार्यता—शब्द व अर्थका जो सम्बन्ध बनता है उस सम्बन्धका बनाने वाला वस्तुत न शब्द है न अर्थ है। वह तो कोई चेतन आत्मा ही है। पर यह चेतन आत्मा उन शब्दोमेसे यह सकेत रखता है कि अमुक शब्दसे बोला जाय तो इस पदार्थका मतलब समझना चाहिये। यों शब्द और अर्थमे सकेत कराया जाता है अथवा चला आ रहा है जिसकी वजहसे शब्दोंके द्वारा अर्थका बोध होता है। संकेत जो हुआ करता है वह चेतनके आश्रयसे हुआ करता है। जो समझता है जिसके बुद्धि है वही तो सकेतकी बात कह सकेगा अब वह पुरुष है अतीन्द्रिय अर्थके ज्ञानसे रहित तो वह वेदमे अन्य प्रकारका भी सकेत कर देगा तो कैसे नही मिथ्यात्व लक्षण होनेसे अप्रमाणता आ जायगी ? यह निश्चित है कि सकेत

होता है पुरुषोके अधीन । जो सज्ञी जीव है, सकेत कर सकता है उसके आधीन है सकेतका होना और यह है अतीन्द्रिय अर्थके ज्ञानसे रहित तो फिर वैदिक शब्दोमे जो सम्बन्ध सकेत बनाया जाता है वह कैसे नही मिथ्या हो जायगा ? कितने ही शब्द अर्थके सम्बन्ध तो उस जीवको परम्परासे ही विशद ज्ञानमे रहा करते है । छोटे छोटे बालक भी पानी, बिस्तर, नीद आदिक अनेक शब्दोके वाचक शब्दोका समझते हैं । वे भी उसमे सकेत मान रहे है । तो सकेत पुरुषोके ही आधीन होता है । अब उस सकेतको निरखकर उन शब्दोको सुनकर जो अर्थके सम्बन्धमे प्रमाणता आती है वह गुणवान वक्ताके कारणसे आती है । जैसे शास्त्रमें प्रमाणीकता है । अब भी लोग शास्त्र स्वाध्यायकी बात आनेपर यह जानना चाहते हैं कि इस शास्त्रको किसने बनाया कब बनाया । यदि गुणवान् वक्ता है तो आगममे भी प्रमाणता है । इसमे सदृश परिणमन वाले पदार्थमें सकेतके बराबर बनते चले जानेमे किसी भी प्रकारका विरोध नही है । शब्द अनित्य हैं । जो शब्द बोले जाते हैं वे बोलनेके बाद नष्ट हो जाते हैं । अब नष्ट शब्द तो अर्थका प्रतिपादन क्या करे ? और शब्द नित्य होता है तो वह भी अर्थका प्रतिपादन क्या करे ? शब्द नित्य है या अनित्य है इस चर्चाकी जरूरत न थी । यह तो अर्थ प्रतिपादनकी बात कही जा रही है । सकेत बननेसे कि इस शब्दका अर्थ यह है इस शब्दसे कहा जाय तो इस वस्तुको लेना । इस तरह शब्दोमे सकेत होनेसे फिर शब्दो द्वारा व्याख्यान चलता रहता है ।

नित्यत्ववादमे शब्दसकेतकी एकार्थनियतता व अनेकार्थनियतताकी असिद्धि— अब और सुनिये ! यह सकेत नित्य सम्बन्धकी वजहसे एकार्थमे नियत है अथवा अनेकार्थमे नियत है ? जो लोग सम्बन्धको नित्य मानते हैं और उस नित्य सम्बन्धके कारण उनमे सकेत समझते हैं तो जो भी सकेत मिला वह सकेत एकार्थमे नियत है या अनेकार्थमे नियत है ? याने इस सकेतसे किसी एक पदार्थका ही बोध होता है या अनेक पदार्थोंका बोध होता है ? यदि कहो कि एक ही पदार्थका बोध होता है, सकेत एकार्थ नियत है तो वह एकार्थनियतता क्या एक देशसे है या सर्वात्मक रूपसे ? सर्वात्मकरूपसे एकार्थका नियम माननेपर अन्य अर्थमे फिर वेदका परिज्ञान न होगा क्योकि यहाँ सकेतको सर्वात्मकरूपसे एकार्थनियत माननेकी बात कह रहे हो । और जब उस वेदसे अर्थान्तरमे ज्ञान न होगा तो वेदमे अज्ञानरूपता और अप्रमाणरूपता आ जायगी । कारण कि वह तो कुछ बता ही न सकेगा । यदि कहो कि एकार्थनियत है वह भी एक देशसे है तो वह एक देश क्या इष्ट एकार्थमे नियत है या अनिष्ट एकार्थमे नियत है ? यदि कहो कि अनिष्ट एकार्थमे नियत है तो क्यो ही अप्रामाण्य हो गया ? यदि कहो कि इष्ट एकार्थमे नियत है तो वह पुरुषके द्वारा है या स्वभावसे ? यदि कहो कि पुरुषसे है तो फिर अपौरुषेयका समर्थन करनेका प्रयास करना व्यर्थ हो गया । यहा तो देखो —पुरुषोसे अभिमत एकार्थनियत सकेत बन गया । यहा यह तर्क किया गया कि सकेत कोई सा भी हो एकार्थमे ही नियत हो

जाता है या अनेक पदार्थोमे नियत हो जाता है ? यदि कहो कि एकार्थमे नियत होना है तो उसका दोष दिया, अनेकार्थ नियत होता है तो उसका भी दोष दिया जायगा। अन्तमें आखिर यह कहना ही पडेगा कि वह नियतपना, वह सकेत, वे सब पौरुषेय हैं, पुरुषका तो रागादिकमे अधा हो जानेसे निराकरण किया, इसी कारण यदि वेदका एक देश अर्थनियमका प्रतिपादन करता है तो यह तो शब्दकी शक्ति हुई। तो फिर अपौरुषेयत्व कहनेसे लाभ क्या है ? तात्पर्य, सकेत एकार्थमे नियत होगया यह बात तो नही बनती। अब दूसरी बात यदि मानते हो कि एक सकेत अनेकार्थमे नियमित होता है तो इस तरह विरुद्ध भी अर्थ सम्भव हो जायगा और इस प्रकार इस वेदके आगमसे मिथ्यापन हो जायगा।

शब्दनित्पत्ति व आगमकी प्रमाणताका निर्णय—बात तो स्पष्ट यह है कि तालु आदिक व्यापारसे शब्दकी उत्पत्ति है और ऐसे शब्दकी बहुत बार उत्पत्ति हुई है। तो उन शब्दोमे अर्थ प्रतिपादकताका सकेत है। इस तरह ये सब वचन रचनामें चलती हैं। उनमे सम्बन्धका सकेत चलता है। सो वह सकेत सहशताके कारणसे उस प्रकारके अनेकार्थसे जान लेता है लेकिन सम्बन्ध मान लिया जाय तो उसमे इस विकल्पसे घटित करनेकी समीचीनता नही होती। नित्य सम्बन्ध सकेत यदि अनेकार्थमे रहता है तो फिर विरुद्ध अर्थ भी सम्भव हो सकता। इससे गुणवान पुरुषके द्वारा प्रणीत शब्दोमे प्रमाणता मानो। दोषवान वक्ता द्वारा प्रणीत शब्दोंमे अप्रमाणता मानो। दोषवान वक्ता द्वारा प्रणीत शब्दोमे अप्रमाणता मान लीजिये। अनाश्रित सम्बन्ध मान लिया, उनका फिर सम्बन्ध मानना और इस तरह कितनी ही बातोको घटाकर जो एकबार अपने भावोमे आये उसको सिद्ध करनेका कठिन प्रयत्न करना यह तो विवेक नही है। सीधा जिसे सब कोई जानता है कि शब्दमे प्रतिपादकता है और अर्थमें प्रतिपाद्यता है, यही सम्बन्ध मानना चाहिए और इस तरह शब्दार्थका सम्बन्ध होनेसे फिर लोक व्यवहार चलता है, उपदेश परम्परा चलती है। इससे शब्द पौरुषेय हैं और उन शब्दो द्वारा रचित आगम पुराण ये भी पौरुषेय हैं। पौरुषेय होनेसे अप्रमाणता नही किन्तु गुणवान वक्ता न होनेसे अप्रमाणता आती है। तब आगमको प्रमाण यह निःसन्देह सिद्ध होता है कि जो आप्तके वचन आदिकके कारणसे अर्थज्ञान होता है वह आगम है।

इन्द्रियगोचर व अतीन्द्रिय शब्दार्थसम्बन्धका अभाव—अच्छा अब यह बतलावो कि शब्द और अर्थका सम्बन्ध क्या इन्द्रियका विषयभूत है अथवा अतीन्द्रिय है याने इन्द्रियका विषयभूत नही है, या अनुमान द्वारा गम्य है ? यदि इन्द्रियका विषयभूत मानते हो तो यह बात तो स्पष्ट घटित नही होती क्योकि अपनी भी इन्द्रियमे अपने ही रूपसे सम्बन्ध प्रतिभास नही होता। तो कहाँ इन्द्रियसे शब्दार्थ सम्बन्ध ज्ञात नही हो सकता क्योकि वाच्य वाचककी समर्थता अतीन्द्रिय हुआ करती है, वे इन्द्रियो द्वारा कैसे जाने जा सकते हैं ? यदि कहो कि शब्द अर्थका सम्बन्ध अतीन्द्रिय है तो

जब म-ीन्द्रिय है तो वह सम्बन्ध उत्पत्तिका कारण कैसे हो सकता है, क्योंकि जो ज्ञापक हुआ करता है प्रतिबोधन करने वाला हुआ करता है वह निश्चयकी अपेक्षा रखता- अर्थात् पहिले ज्ञात हो जाय तब तो वह किसी वस्तुके परिज्ञानका अग बन सकता है, जब कि नहीं मान रहे हैं सम्बन्ध और सम्बन्ध हो रहा है अतीन्द्रिय तब फिर वह ज्ञापक कैसे हो सकता है ? यदि कहो कि शब्द और अर्थकी सदृशता होनेसे सम्बन्ध ज्ञापक करने वाला हो जायगा तो इतने सन्निधिमात्रसे यदि अर्थका ज्ञान मान लेते हो तो इसमे यह भी दोष हो सकता कि जैसे मीमासकको ये वेद अपना अर्थ समझा दे इसी प्रकार सौगत आदिकको भी समझा देवे। इससे सम्बन्ध अतीन्द्रिय होकर फिर वस्तुका प्रतिपादन करे यह बात युक्त नही हो सकती।

शब्दार्थ सम्बन्धके अनुमानगम्यत्वकी असिद्धि—यदि कहो कि शब्दार्थका सम्बन्ध अनुमान गम्य है सो भी बात युक्त नही बनती क्योकि उसका कोई साधन नही है। अनुमानमे साधनसे साध्यका विज्ञान होता है। तो शब्दार्थके सम्बन्धमे यदि अनुमान गम्य सिद्ध कर रहे हो तो उसमे साधन बताओ जिससे कि साध्य सिद्ध हो। उसका साधन क्या ज्ञान है ? अथवा पदार्थ है ? या शब्द है ? ये तीन विकल्प किये गए है। शब्दार्थमे सिद्ध करने वाले साधनके सम्बन्धमे उनमेसे ज्ञान तो लिंग हो नही सकता, क्योकि जब सम्बन्ध ही सिद्ध नही है तो सम्बन्धका कार्य था ज्ञान, अर्थात् शब्दार्थका सम्बन्ध सिद्ध हो तब उससे ज्ञान उत्पन्न होता है। सो सम्बन्ध सिद्ध करनेके लिये ज्ञानको तुम साधन कह रहे हो वह ज्ञान अभी सिद्ध है नही, इस कारण ज्ञानरूपलिङ्ग तो सम्बन्धको सिद्ध कर नही सकता। अर्थके सम्बन्धको सिद्ध करनेके लिये अर्थ लिङ्ग बनाया जाता है सो नही बन सकता, क्योकि बतलावो फिर कि सम्बन्ध और अर्थ इन दोनोके बीच क्या तादात्म्य सम्बन्ध है। यहा अनुमानमे सम्बन्ध तो साध्य है और अर्थका साधन बना रहे तो साध्य और साधनमे या तो तादात्म्य सम्बन्ध हो या तदुत्पत्ति कोई सम्बन्ध तो हो जिससे साधन साध्यको सिद्ध करदे। तो यहाँ सम्बन्ध और अर्थमे तादात्म्य सम्बन्ध तो है नही क्योकि फिर सम्बन्ध अनित्य बन जायगा। क्योकि अर्थ अनित्य है और अर्थका सम्बन्धके साथ तादात्म्य हो गया तो सम्बन्ध भी अनित्य हो जायगा। तब फिर कही सम्बन्ध होगा, कही न होगा उससे फिर अर्थ ज्ञान नही बन सकता, इसी प्रकार सम्बन्ध और अर्थके साथ तदुत्पत्ति सम्बन्ध भी नही है क्योकि सम्बन्धसे अर्थकी उत्पत्ति मानी नही गयी तो इस तरह अर्थका और सम्बन्धके साथ कोई सम्बन्ध ही नही बन सकता और असम्बद्ध अर्थ सम्बन्धको कैसे बता सकता है ? यदि सम्बन्ध और अर्थमे तादात्म्य तदुत्पत्ति आदिक कोई सम्बन्ध न होनेपर अर्थका बोध करादे तो इसमे अनेक दोष आ सकते हैं। जो वस्तु नही है—जैसे गधेके सीग, आकाशके फूल आदिक। इनके विषयमें भी सम्बन्धका ज्ञान करा दे और यदि असम्बद्ध अर्थके द्वारा सम्बन्धका ज्ञापन हो जाय तो सम्बन्धरहित शब्द ही क्यो न सीधा अर्थका ज्ञान करा दे ? फिर शब्द और अर्थमे

नित्य सम्बन्धको सिद्ध करनेकी क्या आवश्यकता ? अर्थ भी लिंग नहीं है। सिद्ध करनेके लिये अनुमान बनाया जाय और उसमे अर्थका साधन बनाया जाय तो यों अर्थ की साधकता घटित नहीं हो सकती। इस प्रकार शब्दार्थके सम्बन्धमे सिद्ध करनेके लिये शब्द भी साधक नहीं बन सकता है। इस विषयमें भी अर्थका विकल्पमे दूषण दिये गये थे वे सभी दोष यहां भी घटित होते हैं। यहाँ पूछा जा सकता है कि सम्बन्ध का और शब्दका क्या तादात्म्य सम्बन्ध है या तदुत्पत्ति सम्बन्ध है ? दोनो प्रकारके सम्बन्ध तो हैं नही और असम्बद्ध होकर यदि शब्द शब्दार्थके सम्बन्धका सिद्ध करदे तो सम्बन्ध रहित ही शब्द सीधा क्यों नहीं अर्थका प्रतिबोधन कर देगा ? इस कारण नित्य सम्बन्ध तो सिद्ध होता नही जिस सम्बन्धके द्वारा वेदको अर्थका प्रतिपादक माना जाय।

अन्तिम चर्चापूर्वक शब्दार्थसम्बन्धका निर्णय यदि कहो कि यह वेद स्वभावत ही अर्थका प्रतिपादक होता है तो यह बात घटित नही होती क्योंकि मेरा यह अर्थ है मेरा यह अर्थ है इस तरह तो वेद बतला नही सकता, क्योंकि शब्द तो ऐसा बोलता नही है कि मेरा यह अर्थ नही है। जो कोई कल्पना करने वाला है कि इस शब्दका यह अर्थ है वह कल्पना करने वाला है पुरुष और पुरुष है रागादिकसे सहित। इस कारण वेदमे प्रमाणता नहीं आ सकती है। यदि आगममे प्रमाणता मानना है तो सब बातें सीधी मानो चाहिये कि चाहे लौकिक शब्द हो चाहे वैदिक शब्द हो, शब्द मात्र सहज योग्यताके संकेतके वशसे अर्थका प्रतिपादन करता है, क्योंकि शब्दार्थका प्रतिपादन करदे, शब्दके द्वारा हम किसी वस्तुको जान जायें ऐसा जाननेमें अन्य कोई प्रकार सम्भव नही है। जब शब्द ही योग्यता और संकेतके वशसे अर्थका प्रतिपादक होता है तो अब यह मानना चाहिये कि उस शब्दका रचने वाला यदि कोई गुणवान पुरुष है यदि सर्वज्ञदेवके चरणोंके सन्निधानमे वे समस्त शब्द रचनायें रची है तो प्रमाणभूत हैं। यदि उस शब्द रचनाका वक्ता असर्वज्ञ है सदोष है, रागादिमान है तो उस शब्दमे प्रमाणता नही आ सकती। इस प्रसगमें यह निर्णय रखना है कि शब्द अर्थका प्रतिपादक होता है और वह सहज योग्यता और अपने संकेतके वशसे अर्थका प्रतिपादन करनेमे साधन बनता है।

शब्दके अन्यापोहमात्राभिधायकत्वकी आशङ्का अब यहां अपोहवादी इस प्रकार शंका करता है कि शब्दोंके अर्थकी प्रतिपादकता सम्भव नही है क्योंकि जो ही शब्द रचना है वह पदार्थोंके होनेपर भी और न होनेपर भी देखी गई है तथा भविष्यकालमे और अतीत कालमे अर्थ नही है तब भी शब्द देखा गया है और जिसके अभावमे जो कुछ देखा जाता है उसका उससे सम्बन्ध नही कहा जा सकता। जैसे घोडेके अभावमें भी गाय देखी जा रही है तो इससे यह ही निर्णय होता है कि घोडा गायसे प्रतिबद्ध नही है। इसी प्रकार शब्द, अर्थके सद्भाव होनेपर भी देखा

जाता है । इससे शब्दका और अर्थके साथ सम्बन्ध नही माना जा सकता इस तरह जब पदार्थोंके अभावमे भी देखा गया और शब्दार्थके प्रतिपादक नही बन सके, तो शब्द किसका प्रतिपादन करता है ? मात्र अन्यापोहका अर्थ है कि अन्यका परिहार करदे । जैसे गो शब्द कहा तो गो मायने गाय । गायमे अन्य हुअ घोडा भैसा आदिक । गाय शब्द कहनेसे घोडा भैसा आदिकका बोध नही होता । तो क्षणिकवादी जो अपोहवाद मानते है वे शका कर रहे हैं कि शब्द सीधा अर्थका ज्ञान नही कराता किन्तु अन्यापोह का ज्ञान कराता है इसलिये शब्दमे अर्थ प्रतिपादकता नही है ।

अन्योपोहवादके निराकरणका उपक्रम अब इसका समाधान करते हैं कि शब्द अर्थका प्रतिपादक है । कोई शब्द अर्थवान है कोई शब्द अर्थ रहित है । अर्थात् पदार्थके सद्भाव होनेपर भी शब्द हुआ करते है वह तो अर्थवान शब्द है और पदार्थके न होनेपर भी शब्द उत्पन्न होता है यह अर्थरहित शब्द है । सो अर्थवान शब्दमे अर्थरहित शब्द भिन्न हुआ करता है । किसी अन्यमे व्यभिचार आनेपर अन्य मे व्यभिचार नही लगाया जाता । यदि अर्थरहित शब्दमे व्यभिचार किया गया तो अर्थवान शब्दमे व्यभिचार नही लगाया जा सकता । अन्यथा अर्थात् किसी अन्यमे व्यभिचार आनेपर अन्यमे व्यभिचार लगा दिया जाए तो गोपाल घटिकामे रहने वाले धूमका अग्निके साथ व्यभिचार देखा गया तो गोपाल घटिकामे धूमसे अग्निका व्यभिचार देखा जानेपर पर्वत आदिकमे धूमका अग्निसे व्यभिचार कर दिया जायगा पर होता तो नही । यदि अन्यके व्यभिचार होनेपर अन्यका व्यभिचार मानते हो तो पर्वत आदिक प्रदेशोमे रहने वाला धूम और अग्निमे भी व्यभिचार बन बैठेगा । इस तरह फिर कोई कार्यहेतु ही न बन सकेगा क्योकि जो भी कार्य हेतु देगा उसमे यह कह दिया जायगा कि एक जगह व्यभिचार कहीं पा जाता है तो इसमें भी व्यभिचार आ जायगा । और इससे अतिरिक्त अन्यका व्यभिचार आनेपर अन्यका व्यभिचार मान लिया जाय तो सकल शून्य हो जायगा । फिर कुछ भी सिद्ध न किया जा सकेगा, जैसे कि स्वप्नादिकमे जो ज्ञान उत्पन्न होते हैं उनमें तो कही विभ्रम पाया जाता है ना । अर्थात स्वप्नमे पर्वत, शेर, मंदिर आदिक अनेक चीजोका ज्ञान तो हो रहा है पर वहाँ वे चीजे पायी नही जा रही तो स्वप्न आदिकके ज्ञान जैसे विभ्रमरूप होते हैं उनका अर्थके साथ व्यभिचार पाया जाता है सो समस्त ज्ञानोमे अर्थ व्यभिचारका प्रसंग आ जायगा । क्योकि अब तो इस हठपर उतर आये कि किसी भी जगह व्यभिचार होनेपर अन्य जगह व्यभिचार हो जाता है । यदि कहो कि बडे यत्नसे परीक्षा किए कार्य कारणका उल्लघन नही करना अर्थात् अन्यके व्यभिचार होनेपर अन्यके व्यभिचारका दोष बताना, जो यह कह दिया है कि फिर तो कोई कार्य हेतु ही सिद्ध नही हो सकता । सो कार्य हेतु यो सिद्ध हो सकता है कि परीक्षा करके जिस मे हमने निर्दोष कार्यपना जान लिया है वह कार्य कारणका उल्लघन नही कर सकता । अर्थात् उस कार्यहेतुसे कारण साध्यकी सिद्धि हो जायगी । तो उत्तर देते हैं

कि यह बात तो शब्दमे भी कही जा सकती है । शब्दमे भी यह परीक्षा गहनसे कर लीजिये कि यह शब्द अर्थवत्ताका स्वभाव नही रखता और यह शब्द अर्थवान है यह शब्द अर्थवान नही है, इस तरहसे परीक्षा करके जिस शब्दको समझ लिया है वह पदार्थका व्यभिचार नही करता, अर्थात् उस शब्दके द्वारा उस पदार्थका बोध होता ही है । और फिर जिस विधिसे तुम अन्यापोह कहते हो, जिस अगोव्यावृत्तिको गो शब्दका अर्थ वाच्य कहते हो याने गो शब्दका गाय नही किन्तु अगाय व्यावृत्ति है तो इस तरह शब्दोसे अन्यापोह मात्रका कहना अर्थात् शब्द केवल अन्यका अपोह करता है, किसी वस्तुका प्रतिपादन नही करता है । यह बात तो केवल तुम्हारा विश्वास भरको है । वस्तुतः ऐसा नही है । लोग तो उस शब्दको सुनकर उसका अर्थ अन्यापोह नही लगाया करते ।

अन्यापोहमात्रमे प्रतीतिका विरोध और प्रवृत्तिनिवृत्तिका लोप—अन्यापोह मात्र कहनेमे प्रतीतिका भी विरोध है । किसीने गो शब्द कहा तो उस शब्द से विधिरूप गायका ही ज्ञान बनता है । यदि शब्द अन्यका निषेध करे तो शब्द तो अन्यका निषेध करने मात्रमे ही चरितार्थ हो गया अर्थात् शब्दका तो इतना ही मात्र प्रयोजन बना कि उस शब्दने अन्यका निषेध कर दिया, तब शब्दसे फिर सास्नादिमान गौका बोध न होना चाहिये याने शब्द यदि अन्यापोह मात्रको कहता है जैसे कि गो शब्दने जो गाय नही है ऐसे समस्त अर्थोका प्रतिषेध किया, इतना ही मात्र यदि अर्थ है तो गो शब्दके बोलनेसे अन्यापोहका बोध हो गया, इससे ही गाय शब्द बोलने का अर्थ समाप्त हो गया । फिर गो शब्दसे उस गाय अर्थका प्रतीति न होना चाहिए और फिर गाय शब्द बोलकर अर्थके प्रति व्यवहार न करना चाहिये । जैसे किसीने कहा कि गायका दूध लावो तो गायका अर्थ तो अन्यापोह मात्र रह गया [illegible] वाली गायका अर्थ तो नही बनता तब उसका दूध दुहा कैसे [illegible] फिर तो गो अर्थको जाननेके लिए गो विषयक भी बुद्धि [illegible] अन्य शब्दोकी खोज करनी चाहिये क्योंकि गो शब्दसे [illegible] फि[illegible] गया तो जिससे अर्थका होगा, उन अर्थका वाचक [illegible] अपोह जाना [illegible] बोलना चाहिये । यदि कहो कि एक ही शब्द [illegible] बुद्धि उत्पन्न हो जाती है अर्थात् गो शब्दके बोलनेसे अन्यापोह [illegible] फिर गो अर्थ भी जाना गया इस कारणसे गो अर्थको जाननेके लिए [illegible] ढूढनेकी जरूरत नही रहती । उत्तर मे कहते है कि यह बात यु[illegible] [illegible] शब्द जो या तो विधिकारी है या निषेधकारी है याने उस शब्द[illegible] किसीका अस्तित्व जाना जा रहा है या किसीका नास्तित्व जाना जा [illegible] तो ऐसी एक ध्वनि एक साथ इन दोनो विज्ञानोको उत्पन्न करदे यह बात नही बन सकती अर्थात् एक ही शब्द विधिको सिद्ध करे और निषेधको भी सिद्ध करे यह बात नही पाई जा सकती । जैसे कि गाय शब्द अगोव्यावृत्तिका विषय अर्थात् जो गौ नही है ऐसे अन्य अनेक विषयोका परिहार भी बनाये और गौ

जा रहा है कि अपोहरूप सामान्य जो कि शब्दका वाच्य माना गया है वह पर्युदास रूप है या प्रसज्यप्रतिषेधरूप है ? गो शब्दके कहनेसे गाय नहीं जानी जाती है, किन्तु जो गाय नहीं है जैसे घोड़ा, बकरी, भैंस आदिकका परिहार है यह जाना जाता है इसे कहते हैं अपोह अर्थात् शब्दके द्वारा अपोह जाना जाता है, चीज नहीं जानी जाती है। सो उस सम्बन्धमें पूछा है कि अपोह पर्युदासरूप है क्या ? अर्थात् जो गाय नहीं है उनका अभाव अर्थात् गाय। तथा इस तरह अपोहका विशिष्ट अभाव है या प्रसज्यरूप अर्थात् गाय नहीं इस तरह केवल निषेधमात्र यह अपोहका अर्थ है ? यदि कहा कि अपोहका पर्युदास अर्थ है तो यह तो हम भी मानते हैं। अगोपोह जो गाय नहीं है उनका अभाव अर्थात् गाय, तो ऐसा तो सभी लोग मानते हैं जो ही अपोहका परिहार है और उसे कहते हो आप अपोह सामान्य, वही गो शब्दसे कहा गया है और हम भी गो सामान्य गोशब्दके द्वारा वाच्य है ऐसा कहते हैं। आप लोग अगोपोह कहकर गोपर ही आये और हम गो शब्द कहकर सीधे गायको वाच्य मानते हैं मगर वाच्य माने गए दोनों जगह विधिरूप। अभाव अन्य भावरूप होता है यह व्यवस्थित बात है।

अन्यापोह कल्पनाके समुचित आधारकी किसी झलककी संभावना— यहां एक बात चिन्तनमें लाना है कि आखिर क्षणिकवादियोंका यह धुन क्यों समाई कि गाय शब्द कहकर गायका बोध नहीं होता किन्तु अगाय व्यावृत्तिका बोध होता है, जो गाय नहीं है उनका अभाव है, इस तरहसे वे गोशब्दका वाच्य मानते हैं तो ऐसी ही क्लिष्ट कल्पनायें कर कैसे ली ? यद्यपि दार्शनिकोंकी कुछ बातें मिथ्या भी होती हैं लेकिन कोई न कोई स्रोत हो, कोई थोड़ा बहुत तथ्य हो तो उसपरसे बढ़ बढ़कर विपरीतता आ जाय, किन्तु कुछ भी मूलमें तथ्य न हो तो एकदम विपरीत कल्पनायें कैसे की जा सकती हैं ? जैसे चार्वाक सिद्धान्तने माना कि जीव भौतिक है, पृथ्वी जल, अग्नि, वायुका जो समूह हो उसीको चेतन कहा जाता है तो प्रत्यक्षसे ऐसा ही दीखता, चेतन प्रत्यक्षसे दीखता नहीं तो कुछ स्रोत तो मिला तब तो ऐसी उन्हें विपरीत कल्पनायें करनेका साहस बना ! जो लोग जगतको ईश्वरकृत मानते हैं तो बात यह है कि जितने भी आत्मा हैं वे सब प्रभु हैं और उनके खुदका परिणमन भी उनके द्वारा हुआ और लोकमें जो अनेक काय हैं पुद्गल हैं जो दिखने वाले शरीर हैं, उनका भी परिणमन उस चेतनके सम्बन्धसे हुआ और चेतन ही ईश्वर है तो कुछ स्रोत तो था जिससे बढ़कर वे ईश्वर कर्तृत्व तक आ गए। तो कोई न कोई बात तथ्यमें थोड़ी सी हुआ करती है। चाहे वह अन्य रूपसे हो, उसपर ही लोग बढ़कर विपरीत कल्पनामें पहुँचा करते हैं। तो यहां शब्द अन्यापोहवाचक है ऐसा कहनेमें तथ्य क्या था मूलमें ? तो तथ्य यह था कि पदार्थ स्वरूप चतुष्टयसे अस्तिरूप हैं और पर चतुष्टय से नास्तिरूप हैं, ऐसी विधिनिषेधात्मकता प्रत्येक पदार्थमें है। अब वस्तुके इन दो स्वरूपोंमें कि अपने चतुष्टयसे अस्तिरूप रहना और पर चतुष्टयसे नास्तिरूप रहना, इनमें से पर चतुष्टयसे नास्तिरूप रहना इसको मुख्य कर लिया है और मुख्यतासे अन्यापोह

की बात मानी गई है। खैर अभी इस प्रसङ्गमे अन्यापोहको पर्युदासरूप मान रहे हैं तो थोडी देर तो हुई मगर आये हैं परमार्थस्वरूपपर ही। अगोपोह अर्थात् जो गाय नही है उसका अभाव माना है परके अभावरूप, तो इसका अर्थ भी गाय ही हुआ। पर्युदासमे अभावको भावरूप माना जाता है। जो गाय नही है उनके अभावका अपोह याने गायका सद्भाव।

क्षणिकवादियोके अश्वादिनिवृत्तिस्वभाव भावकी मीमासामे स्वलक्षणात्मकताका निराकरण – और भी बात सुनो। इस पर्युदासरूप अगोपोहके प्रसगमे अगोपोहका अर्थ है – जो गाय नही हैं उन सबकी निवृत्ति अर्थात् अश्वादिक की निवृत्ति। तो अश्वादिककी निवृत्तिका स्वभावरूप भाव आपके सिद्धान्तमे क्या हुआ? जब यहा अगोपोहको पर्युदासरूप मान रहे हो तो अश्व आदिककी निवृत्ति है किसी भावरूप तो वह भावरूप तो वह भावरूप क्या चीज है? वह भाव असाधारण गौका स्वलक्षण स्वरूप तो हो नही सकता क्योकि स्वलक्षणता समस्त विकल्पो के अगोचर है। इस विकल्पका यह भाव है कि क्षणिकवाद सिद्धान्तमे वस्तुका स्वरूप केवल स्वलक्षणात्मक माना है, इससे अधिक कुछ नही। जैसा आत्माका स्वरूप क्या, आत्माका वह स्वलक्षण जो क्षणिक हो, निरश हो, निरन्वय रूप हो पदार्थका स्वरूप क्षणिकवादमे क्षणिक माना है। एक क्षण ही पदार्थ ठहरता है दूसरे क्षण पदार्थ नही रहता। इस प्रकार पदार्थका स्वरूप निरश माना है। पदार्थमे अंश नही हुआ करते। अर्थात् एक प्रदेशी जैसा पदार्थ होता है पदार्थका स्वरूप निरन्वय माना है। पदार्थ अगले समयमे यदि नही है तो ऐसा क्षणिक निरश निरन्वय गौ तो अश्वादिक निवृत्ति का भावमे आता नही क्योकि ऐसा असाधारण भाव किसी भी विकल्पके गोचर नही होता अश्वादिक निवृत्तिरूप भावसे क्या जाना गया इस सम्बन्धमे चर्चा चल रही है। थोडे समयको इस प्रसगमे ३ बातें समझ लीजिये–एक तो नाना प्रकारकी गायें–चितकवरी, कालो, लाल खडी मुडी आदिक और एक गाय जाति और एक क्षणिक निरश निरन्वय गौ स्वलक्षण इन तीनमेसे पहिली दो बातें तो समझमें आगयी होगी। चितकबरी लाल पीली आदिक गायें वे सब ठीक हैं ना? और दूसरी बात कही गौ जाति उन चितकबरी गायोमे समान रूपसे धर्म देखा जाय तो उसने गौ जाति समझी जाती है। अब यह तीसरी बात स्वलक्षण है। है गौस्वलक्षण किन्तु क्षणिक है, निरश है, निरन्वय है। तो यो समझिये कि वस्तुको टाला है कुछ कर कर तो इसमेसे अश्वादिक निवृत्ति रूप भावसे यह स्वलक्षण तो जाना नही गया।

क्षणिकवादियोके अश्वादिनिवृत्तिस्वभाव भावकी मीमासामे व्यक्ति विशेषात्मकताका निराकरण—यदि कहो कि सावलेय आदिक व्यक्ति जाने गए हैं गो शब्दसे जाना अश्वादिक निवृत्ति और अश्वादिक निवृत्ति है यहाँ भावस्वरूप। वह भाव है चितकबरी लाल पीली आदिक गायें अनेक। तो कहते कि तुम्हारे सिद्धान्तसे

समझमे आने वाली बात मान लीजिये तो इसमे कोई आपत्ति नही रहती।

चर्चाके आधारभूत मूल प्रकरणका स्मरण— यह प्रकरण मूलमे चल रहा है आगम प्रमाणपर आगमका लक्षण किया था कि सर्वज्ञदेवके वचन आदिकके कारण उत्पन्न हुआ जो अर्थज्ञान है सो आगम है। इस आगमके लक्षणपर पहिले तो यह शका की गई थी कि आप्त कोई होता ही नही है। उसका निराकरण किया गया, फिर यह शका उत्पन्न की कि आप्तकी वजहसे आगमकी प्रमाणता नही होती किंतु आगम अपौरुषेय होता है इस कारण प्रमाणता होती है इसका निराकरण किया। आगमकी अपौरुषेयता सिद्ध करनेके लिए शब्दोकी नित्यता मानना आवश्यक है। शब्द नित्य हो तो वह शब्द अपौरुषेय कहलाये। आगममे शब्द ही तो लिखे गए हैं। यदि ये शब्द अनित्य ठहरते हैं तो आगम फिर नित्य तो न ठहरेगा; इस कारण शब्दको नित्य सिद्ध करनेकी शकाकारको आवश्यकता पडी। तब शब्द नित्यत्वका निराकरण किया। फिर यह शका हुई कि शब्द और अर्थका सम्बन्ध कैसे है? जिस कारण शब्द अर्थका वाचक बन जाय तो शब्द और अर्थमे सम्बन्धकी सिद्धिकी। शब्द वाचक है और पदार्थ वाच्य है, इस प्रसगपर क्षणिकवादी यह शका रख रहे हैं कि शब्द तो वाचक है पर शब्द पदार्थका वाचक नही किन्तु अपोहका वाचक है। जैसे गौ शब्द बोला तो उससे गाय अर्थका ज्ञान न होगा, किन्तु जो गाय नही है ऐसे सारे पदार्थोंका निषेध ज्ञात होगा।

अन्यापोहको तुच्छाभाव माननेपर समस्त अपोहोंकी पर्यायवाचिता होनेसे सकलशून्यतापत्ति - अब यहा शकाकारसे पूछा जा रहा है कि तुम्हारे जो विभिन्न सामान्य शब्द है, गौ, अश्व, महिष अज आदिक तथा चितकबरी मुडी आदिक जो विशेष शब्द है तो ये दोनो प्रकारके शब्द अर्थात् सामान्य शब्द, जिनसे अनेकका बोध होता है, जो जातिरूप है और विशेष शब्द जिनसे किसी व्यक्तिका ही बोध होता है ये दोनो प्रकारके शब्द आपके अभिप्रायसे पर्याय वाचक ठहरेंगे। क्योकि पदार्थमें अब भेद रहा ही नही। जैसे वृक्ष कहो, पादप कहो, तरु कहो, इन सब का अर्थ एक ही हुआ ना तो ये पर्यायवाची शब्द कहलाये। तो अन्यापोह सिद्धान्त मानने वालोके यहा चाहे गौ शब्द कहो, चाहे अश्व कहो, चाहे चितकबरी गाय कहो चाहे मुडी कहो, सारे शब्द पर्यायवाची कहलायेंगे, क्योकि शब्दका वाच्य तो है अन्यापोह। अन्यका परिहार और अन्यापोह है तुच्छाभावरूप याने किसी पदार्थको वह नही कहता जैसे अश्वादि निवृत्ति अर्थात् अश्वादिका अभाव। अरे अश्वादिकका अभाव है तो कुछ तो होगा। सो कुछ नही मानते, किन्तु एक तुच्छाभाव ही मानते, प्रसज्य प्रतिषेध ही मानते तो दुनियाके जितने भी शब्द है। चाहे जाति वाचक शब्द हो अथवा व्यक्ति वाचक, सभी शब्दोका अर्थ एक रहा—तुच्छाभाव। तो सारे शब्द पर्यायवाची हो गए। तुच्छाभावमें भेद क्या? भेद तो वस्तुमे ही प्रतीत होगा। जो विधिरूप हों उस हीमें एकत्व नानात्व आदिक सारी बातें लगा सकते हो। तुच्छाभावमें

मायने कुछ नही, केवल निषेध । उसमें कोई भेद ही नही किया जा सकता । तो क्या आपत्ति आयी अन्यापोह शब्दका वाच्य माननेपर कि जितने भी शब्द हैं चाहे जाति वाचक हों या व्यक्तिवाचक हो सभी शब्दोंका अर्थ जब तुच्छाभाव है और कुछ नही है तो सब शब्द पर्यायवाची कहलाने लगे फिर न प्रवृत्ति हो सकती न निवृत्ति हो सकती न अर्थक्रिया कर सकते । किसीने कहा कि गायका दूध लावो तो अर्थ क्या हुवा ? तुच्छाभावका तुच्छाभाव लावो । गाय शब्द मायने तुच्छाभाव अगोपोह प्रसज्य प्रतिषेध और दूध मायने भी अदुग्धनिवृत्ति तो चीज क्या रही ? कुछ व्यवहार भी न चल सकेगा । सो जितने अपोह हैं अर्थात् जितने शब्द बोले जाते हैं उतने अन्यापोह है, गोशब्द अर्थात् अनश्वापोह । तो जितने भी अपोह है, उन सबमें अब भेद तो कुछ रहा नही, क्योकि समस्त अपोहोका अर्थ है तुच्छ भाव । फिर वस्तु तो कोई वाच्य न रही सारे शब्द अनर्थक रहे ।

अपोहोमे भेद माननेपर वस्तुरूपताकी सिद्धि और सीधे व्यवहारका अनुरोध —यदि उन अपोहोमे भेद मानोगे कि अनश्वापोह और बात है अगोपोह और बात है तो इससे फिर अभावकी वस्तुरूपता सिद्ध हो गयी । अब यह अभाव तुच्छाभावरूप न रहा, क्योकि जो जो परस्परमे भिन्न होते हैं वे वस्तुरूप हो हुआ करते हैं । जैसे कि क्षणिकवादियोंके माने गए स्वलक्षण यद्यपि स्वलक्षणमे कोई वस्तु ज्ञात नही होती लेकिन कहने मात्रको ना है, तो वह परस्परमें भेदको प्राप्त है तो विधिरूप है, तो इसी प्रकार यदि ये सारे अन्यापोह परस्परमें भेद । प्राप्त हैं तो ये सब भी विधिरूप होने चाहियें । यहा तक जा वर्णन किया गया है उसमे मूल भाव यह है कि क्षणिक वादमे शब्दको अर्थका वाचक नही माना है किन्तु अपोहका वाचक माना है । गो शब्द बोलकर गौका बोध नही होता किन्तु अगापोहका बोध होता है । सो प्रथम तो यह प्रतीति विरुद्ध बात है । जो लोग भी गाय शब्द सुनते हैं वे घोडा आदिक नही है ऐसा ख्याल तो नही करते किन्तु सीधा गायको ही जानते है और फिर यदि अन्यापोह ही वाच्य है तो पहिले गो शब्द बोला तो उसका ही अर्थ अगो शब्दापोह हो गया । तो सर्वप्रथम अगो शब्द उसके सुननेमें आना चाहिये । फिर यह पूछा गया कि अश्वादिक की निवृत्ति कहनेपर अभावरूप चीजका अर्थ हुआ या केवल अभावमात्र । यदि भावरूप चीज है तब कोई विवाद नही है । शङ्काकार और उत्तरकार दोनोका एक ही परिणाम हो गया । यदि अभावमात्र है, तुच्छाभावरूप है तब फिर जितने भी अपोह हैं गोशब्दसे बोलकर अगोपोह आया, अश्व शब्द बोलकर अनश्वापोह आया । तो जितने भी अपोह हैं उन सबका एक ही मतलब हुआ । तुच्छाभाव तो वे सब पर्यायवाची शब्द हो गए । तब कोई वस्तु ही न रही, कोई प्रवृत्ति निवृत्ति इसकी नही बन सकती । तो तुच्छाभावरूप अन्यापोहको माननेपर समस्त व्यवहारका लोप होता है और ज्ञानका भी लोप होता है, इस कारण शब्द अन्यापोहका वाचक नही, किन्तु शब्द सीधा अर्थका वाचक होता है ।

सम्बन्धिभेदसे भी अपोहोमे भेदकी असिद्धि किसी भी वस्तुका वाच्य वस्तुभूत अर्थ न माननेपर और अन्यापोह माननेपर चूँकि वह अन्यापोह तुच्छाभावरूप है अतः उन अपोहोंमे कोई भेद नही रह सकता। जब भेद नही रहा तो आप जितने भी शब्द बोलेंगे सबके अपोह पर्यायवाची कहलायेंगे तब फिर किसी भी अर्थका किसी भी प्रकारसे बोध नही हो सकता और कदाचित् उन अन्यापोहोमे भेद मानोगे तो अभाव वस्तुरूप बन जायगा, सो ठीक है फिर सर्वथा अन्यापोहकी बात तो न रही। अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि अपोहोमे वस्तुभूत भेद तो नही है किन्तु जिसका अपोह किया जा रहा है, जिसका हटाव बनाया जा रहा है उन सम्बन्धियोके भेदसे अपोहोमें भेद हो जाता है। जैसे गो शब्द कहा तो उसका अर्थ हुआ अगोपोह। मायने अश्वादिनिवृत्ति। तो यहाँ अपोह्य हुये अश्वादिक उनमे भेद पाया जाता है। अतएव अपोहोंमे भेद हो जायगा। उत्तर देते हैं कि इस तरह अपोह्यरूप सम्बन्धीके भेदसे अपोहोमे भेद नही किया जा सकता। अन्यथा प्रमेय अभिधेय आदिक शब्दोकी प्रवृत्ति ही न हो सकेगी। जैसे कि अभिधेय शब्द कहा। अभिधेय मायने कहे जाने योग्य तो अभिधेयका अर्थ क्या हुआ क्षणिकवादमे १ – अनभिधेयापोह, अर्थात् जो अभिधेय नही है उसकी व्यावृत्ति तो जो अपोह्य है मायने अनभिधेय है वह तो कुछ है ही नही। तब फिर उसमे भेद डाला ही नही जा सकता है। जैसे कि गो शब्दका अर्थ अश्व आदिककी निवृत्ति कहा तो अश्व तो कोई चीज है वहाँ तो तुम कुछ कुछ बोलने लगे, पर अभिधेय शब्द कहा जाय तो उसका अर्थ है अनभिधेयापोह। सो अनभिधेय तो अवस्तु है, उसमे सम्बन्धी भेदसे भेद क्या बनेगा? अथवा जैसे प्रमेय शब्द कहा तो प्रमेय शब्दका क्या अर्थ हुआ क्षणिकवादमे? अप्रमेयापोह। जो प्रमेय नही है उसकी व्यावृत्ति सो जो प्रमेय नही है ऐसा तो कुछ है ही नही, फिर सम्बन्धी भेद तो नही फिर सम्बन्धी भेद तो नही बना। तो यह कहना कि अपोह्य स्वरूप सम्बन्धी भेदसे अपोहोमे भेद होता है यह कहना गलत रहा। क्योंकि अप्रमेय आदिकका जो अपोह किया है प्रमेय शब्द बोलकर सो प्रमेय आदिक शब्दोमे जो कुछ हटाये जाने रूपमें कल्पित किया है याने अप्रमेयको हटाया जानेरूपसे कल्पित किया है तो वह सब हटाये जानेके आकारसे जो कुछ भी आलम्बित हो वह प्रमेय आदिक स्वभावरूप ही तो हुआ, याने अप्रमेयका व्यवच्छेद इसका विषय कौन बना? प्रमेय। जब तक विधेयभूत चीज न जान लेवे तब तक उसका हटाव भी नही किया जा सकता। जिसका विषय ही कुछ नही है उसका हटाव कैसे किया जा सकता है?

सम्बन्धिभेदोंमें अपोह भेदकताकी असिद्धि– एक तो सम्बन्धीभेदसे अपोहोमें भेद होता नही और फिर सम्बन्धी भेद अपोहोका भेदक बन ही नही सकता, क्योंकि यदि सम्बन्धी भेद अपोहोका भेदक बन जाय तो जैसे बहुत सी गायें खडी हैं चितकबरी, लाल, काली, पीली आदिक अनेक गौ व्यक्तियोमे एक अगोपोहका अभाव हो जायगा, क्योंकि देखो ना कि उन गायोमें भी तो भेद है ना। जो चितकबरी है सो

मान्न नही, जो लान्न है सो चितकबरी नही, तो उन व्यक्तियोमे भी तो भेद पडता है। तो सम्बन्धी भेद जब भेदक बन गया मान लिया तो शावलेय आदिक अनेक व्यक्तियो मे भी भेद आ जायगा अर्थात् गाय गाय जातियोमे भी अपोह एक न रह सका। भला जिसका अन्तरङ्ग शावलेय आदिक व्यक्ति विशेष भेद करने वाला न रह सका उसके बहिरङ्ग अश्व आदिक भेद करने वाले हो जायें यह तो केवल एक कहने भरका साहस किया जा रहा है। और सम्बन्धीके भेदसे तो वस्तुमे भी भेद नही रहता है। अवस्तुकी तो बात ही क्या कहें, किसी चीजका सम्बन्ध हो जाय तो उस सम्बन्धवाले को कहते हैं सम्बन्धी। तो सम्बन्धीके भेदसे वस्तुमे भेद न हो जायगा। जैसे एक देवदत्त नामका पुरुष है। वह एक साथ अथवा क्रमसे नाना रूपसे अनेक शृङ्गार वस्त्र, आभूषण आदिकसे सम्बन्धित हो रहा है अर्थात् कभी कोई कपडा पहिन लिया, कभी कुछ पहिन लिया, कभी कोई आभूषण पहिना, इस तरहसे उन आभूषण आदिक से सम्बन्धित हो रहा है फिर भी देवदत्तमे कोई भेद पडता है क्या ? पुरुष तो वहीका वही है ना ? तो सम्बन्धीके भेदसे वस्तुमे भी भेद नही होता। अवस्तुमे भेदकी कल्पना करना तो व्यर्थ है यहाँ पर शंकाकारको यह पड गयी है कि जितने शब्द बोले जाते है, उतने ही हैं अन्यापोह। और, अन्यापोहका अर्थ किया जाय केवल तुच्छाभाव, मायने, अन्यका निषेध भर। वस्तु न मानी जाय तो अन्यका निषेध भर ये तो सब एक समान हुए। गो कहा तो अगोपोह मायने अगोपोह मायने अनश्वका निषेध। तो ये सब अभाव जब तुच्छरूप हो सके तो फिर भेद कैसे बन सका। और, यो भेद न बन सका, तो कुछ सकेत न रह सकते। तो क्षणिकवादी जिस किसी प्रकार अन्यापोहमे भेद सिद्ध करना चाह रहा पर, वस्तुभूत पदार्थ न माननेपर भेद नही सिद्ध हो सकता।

सम्बन्धीकी असिद्धिमे सम्बन्धिभेदसे अपोहभेदकी असिद्धि—अब कहते हैं कि मान लो सम्बन्धी भेदसे भेद भी हो गया तो भी पहिले सम्बन्धि सिद्ध तो कर लो। वास्तविक सामान्य न माननेपर अर्थात् अनेक वस्तुओमे सदृश धर्म न मानने पर आप जिसका आश्रय करना चाहते है वह सम्बन्धी भी सिद्ध नही हो सकता। फिर किसका भेद सिद्ध करोगे ? जिस सम्बन्धीके भेदसे तुम अपोहोमे भेद सिद्ध करना चाहते हो वह सम्बन्धी तब तक सिद्ध नही हो सकता, जब तक वास्तविक सामान्य अर्थात उस जाति वाले पदार्थोंमे सदृश धर्मको मान न मानोगे। अब उस ही का खुलासा सुनो। गो आदिक पदार्थोंमे यदि सदृशरूप सामान्य प्रसिद्ध हो तब तो अगो का अर्थात् अश्वादिकके अपोहका आश्रयपना इन पदार्थोंमे सिद्ध बनेगा। यदि सदृश धर्म न माना जाय तो अपोहका आश्रयभूत सम्बन्धी सिद्ध नही किया जा सकता। देखो, गो शब्द कहकर अगोपोह अर्थ ले रहे हो तो प्रथम तो वस्तुभूत गो ही नही पहिचान पाया और फिर उसकी निवृत्ति करना चाहते हैं तो अश्वादिकको भी न जान पाया। तो सदृश धर्म न माननेपर जो भी विवक्षित अपोहका आश्रयभूत सम्बन्धी हो उसकी सिद्धि नही होती इस कारणसे जो अपोहका विषयपना अश्वादिकमे चाहते हैं

उनको सदृश धर्म अवश्य मानना चाहिये, और वही सामान्य वस्तुभेद कहलायेगा, फिर अपोहकी कल्पना व्यर्थ है। जैसे ही शब्द बोले वैसे ही उसका वाच्यभूत अर्थ विदित हो जाता है उसमें यह कौन सोचता कि अन्य शब्दका अभाव है यह नहीं है शब्दमें। तो सदृश धर्म माने बिना वाच्य वाचक सम्बन्ध नहीं बन सकता और सदृश धर्म माने बिना अन्यापोहकी कल्पना की नहीं जा सकती।

सारूप्यके न माननेपर अपोहकी अव्यवस्था – यदि सदृश धर्म न होनेपर भी चितकबरी लाल पीली आदि गायोंमें अगोपोहकी कल्पना करते हो तो फिर अगोपोह कहकर जैसे चितकबरी गायको समझना चाहिये तो यो अगोपोह कहकर घोड़ा क्यों नहीं समझमें आ जाता क्योंकि सदृश धर्म तुम मानते ही नहीं। जैसे चितकबरी गायको देखकर कोई कहे अगोपोह तो चितकबरीका ही तो सम्बन्ध रहा अगोपोह कहनेमें। तो चितकबरीसे अतिरिक्त जितने भी पदार्थ हैं उनका अपोह हो जायगा। तब फिर अन्य गायोंका ग्रहण न हो सका अगोपोह कहनेसे अथवा जब सामान्य नहीं मानते, सदृश धर्म नहीं मानते तो गो शब्द बोलकर अगोपोह कहकर गायसे भिन्न पदार्थोंका व्यवच्छेद कैसे कर दिया जाय, क्योंकि सादृश्य तुम मान ही नहीं रहे तब फिर जैसी गाय तैसा घोड़ा, इस कारण शब्दका वाच्य अगोपोह नहीं।

स्वलक्षणवत् अगोपोहमें भी संकेतका अभाव – क्षणिकवादी लोग यह कहते हैं कि जो वस्तुका असली स्वरूप है उस स्वरूपका न कोई उपचार कर सकता, न उसकी चर्चा कर सकता न उसमें कोई संकेत बन सकता, क्योंकि वस्तु स्वरूप है स्वलक्षणात्मक। एक क्षण रहने वाला निरन्वय निरंश वस्तुका स्वरूप होता है। अब ऐसी वस्तुका संकेत बन सकता है क्या? जितने समझे जाने वाले ज्ञान हैं, संकेत वाले ज्ञान हैं वे सारे ज्ञान अनुमान होते हैं, प्रत्यक्ष नहीं होते। क्षणिकवादियोंका प्रत्यक्ष निर्विकल्प हुआ करता है। जहाँ कुछ समझमें आया प्रत्यक्ष न रहा, अनुमान बन गया। तो जैसे स्वलक्षणादिकमें संकेत सम्भव नहीं है इसलिए शब्दका अर्थपना घटित नहीं होता इसी प्रकार अपोहका भी संकेत नहीं सम्भव हो सकता, इसलिए वह भी शब्दका वाच्य नहीं हो सकता। किसी भी शब्दके द्वारा क्षणिकवादमें अर्थका ज्ञान नहीं होता, क्योंकि अर्थ पदार्थ क्षणिक निरन्वय निरंश है। उसका तो विकल्पसे बाह्य होता ही नहीं निर्विकल्प प्रत्यक्ष गोचर है। जहाँ हो कुछ समझ बनी, विकल्प हुआ वहाँ अनुमान प्रमाण बन गया। सविकल्प ज्ञान बना, तो वस्तुके स्वलक्षणमें स्वरूपमें जैसे संकेत नहीं मानते क्षणिकवादी और इसी कारणसे शब्दका वाच्य नहीं होता है पदार्थ किन्तु काल्पनिक तत्त्व शब्दका वाच्य होता है तो इसी प्रकार अपोहमें भी संकेत सम्भव नहीं है इसलिए अपोह भी शब्दका वाच्य नहीं हो सकता। जब कोई पुरुष शब्दके अर्थका निश्चय करने कि इस शब्दका यह अर्थ है तो ऐसा संकेत कर सकने वाला पुरुष ही तो संकेत कर सकता है पर अपोहका किसी भी पुरुषके द्वारा इन्द्रियसे

निश्चय नहीं किया जा सकता, क्योंकि अपोह अवस्तु रूप है। अपोह, अभाव, व्यवच्छेद, निषेध यह क्या इन्द्रियके गम्य हुआ करता है। इन्द्रिय तो वस्तुको जानती है तो अपोह का पहिले निश्चय हो नहीं हो सकता, ज्ञान ही न हो सका। अपोहका ज्ञान प्रत्यक्ष व अनुमान द्वारा नहीं — था, क्योंकि वस्तुभूत सामान्यके बिना अनुमानकी अप्रवृत्ति है। अनुमान कब बनता है ? जब सदृश धर्म मानें किसी भी साध्यको सिद्ध करनेके लिए जो भी साधन ला या जायगा वह साधन दृष्टान्तमे पाये गए साधनके समान है। यह बोधमे आये तब अनुमान बनेगा। जैसे इस पर्वतमें अग्नि है धुवां होनेसे तो स धर्मभूत जो धुवां देखा गया उस धुवेंके सादृश्यका भी तो ज्ञान है इसका कि रसोई घरमें भी ऐसा ही धुवां पाया जाता है। तो सादृश्य धर्म माने बिना अनुमानकी प्रवृत्ति नहीं होती। क्षणिकवादमे सदृशता नहीं मानी गयी। सब निरंश है, विलक्षण है, क्षणिक हैं। उनकी सदृशता क्या है। तो अब अपोहकी ही सिद्धि नहीं हो सक रही तब फिर शब्दका वाच्य अपोह है यह कहना तो व्यर्थ है।

अन्यापोहमात्रमे सकेतकी अव्यवस्था—अच्छा मान लो कि अपोहमे भी सकेत भी बन गया तो भी गो शब्द कहकर अश्वादिक अभिधेय हैं अर्थात् गो के कहने से अश्वका ग्रहण नहीं होता। यह तुमने कैसे जाना ? सकेत भी मान लो तो शब्द बोलकर गाय अभिधेय है। घोडा अभिधेय नहीं है अर्थात् गो शब्दसे घोडा नहीं कहा गया, यह ज्ञान कैसे करोगे क्योंकि गो शब्दका अर्थ तो अगोपोह है, अभाव है। उसमे प्रत्यक्षसे तो सकेत है नहीं। यदि कहोगे कि जब सम्बन्धका अनुभव हुआ उस कालमे शब्दके विषयरूप अश्व आदिक नहीं देखे गए। उत्तरमें कहते हैं कि यह भी तुम्हारा कथनमात्र है। सही उत्तर नहीं बनता, क्योंकि गो शब्दके सकेतके समय जो कुछ देखा गया उसको छोडकर अन्य जो अश्व है उसमें यदि गो शब्दकी प्रवृत्ति नहीं मानते तो एक ही उस ही एक सकेतके द्वारा विषय किया गया। जो चितकबरी गाय है, उस से जो अन्य भिन्न गायें हैं लाल पीली आदिक वे भी गो शब्दसे क्यो अपोह न होगी अर्थात् जब यह मान रहे हो कि जो शब्द बोला गया है जिस चीजको देख करके उस के अलावा अन्य वस्तुवोंमें हम गो शब्दकी प्रवृत्ति नहीं मान रहे ऐसा शकाकार कह रहा तो देखो तो गई चितकबरी गाय और उसको देखकर बोले गो तो चितकबरी गायके अलावा अश्वादिक तो अपोह हो गए। तो लाल पीली गायका अपोह हो जायगा। उनका भी हटाव हो जायगा। गो शब्दसे फिर अन्य गायका ग्रहण न होगा। जिस ही गायको देखकर बोला है उसमे ही रह जायगा। तो फिर उस शब्दसे अश्व की भी निवृत्ति हुई और अन्य गायकी भी निवृत्ति हो जायगी। इस कारण ऐसी क्लिष्ट कल्पना करना कि गो शब्द यदि बोला तो उसका अर्थ हुआ गोसे भिन्न, अनेक का अगोपोह। ऐसे शब्दका वाच्य कोई भी प्रतीत नहीं करता।

अन्यापोहमें इतरेतराश्रय दोष—और भी देखिये गो शब्दसे वाच्य हुआ

अगोपोह और अगोपाह समझकर गौमें बनावोगे संकेत तो इसमें इतरेतराश्रय दोष हो जायगा, क्योंकि अगोके हटावसे तो गायकी प्रतिपत्ति होगी। जितने अगो हैं। जो गाय नहीं हैं ऐसे अश्व आदिक उन सबका व्यवच्छेद होगा तब तो गायका ज्ञान होगा और अगोके व्यवच्छेदमें कहा यह है कि जो गाय नहीं है, तो जब पहिले गायका बोध होगा तब ही तो निषेधके लिये समझ पायेंगे कि अगो यह कहलाता है तो फिर वहाँ गो का अर्थ जानना पड़ेगा। जिस गो का इतना प्रयास करके निषेध कर रहे हो अगो तो जब अगोका निषेध हो तब गायका ज्ञान हो, जब गायका ज्ञान हो तो अगोका व्यवच्छेद हो सके कि यहाँ यह नहीं है। तो इसमें इतरेतराश्रय दोष क्या होगा, क्योंकि जिसका स्वरूप ज्ञात नहीं किया गया उसका निषेध किया ही नहीं जा सकता। यदि कहो कि अगो निवृत्त स्वरूप ही तो गो है तो इसमें भी वही इतरेतराश्रय दोष है। अगोनिवृत्त स्वभाव होनेसे गायके अगोके ज्ञानसे प्रतीति बनगी। जब पहिले हम जान लें कि यह यह है अगो इसको हटाकर गायका ज्ञान हुआ तो अगो निवृत्त स्वभाव होनेसे गायका ज्ञान अगोके ज्ञानसे हुआ और अगोका ज्ञानसे हुआ और अगोका ज्ञान कि यहाँ यह गाय नहीं है यह कब होगा ? जब गायका ज्ञान होगा। तो गाका ज्ञान होनेपर गौका ज्ञान हुआ। इस तरह यहाँ भी इतरेतराश्रय दोष आ जाता है। शब्द बोलकर सीधा अर्थका ज्ञान न माननेपर तो बड़ा विलम्ब होगा और स्पष्टता भी नहीं आ सकती। और प्रतीति विरुद्ध भी बात है। जितने ये शास्त्र आगम पढ़े जा रहे हैं उनमें जो जो बातें सुनी समझी जा रही हैं उन सबका ज्ञान क्या इस तरह अन्यापोह लगा लगाकर हुआ करता है ? चौकी बोला तो शीघ्र चौकी अर्थका बोध हो गया। जो शब्द बोला उसके द्वारा संकेत किए गए अर्थका बोध हो जाता है। तो सहज योग्यता और शब्द संकेतकी वजहसे शब्द पदार्थका प्रतिपादक बन जाता है। और शब्द होता है पुरुषके द्वारा उच्चारण किया गया, सो जो पुरुष गुणवान हो उसका वचन प्रमाणभूत होता है। जो पुरुष दोषवान हैं उनके वचन अप्रमाण होते हैं। शब्द सीधे ही अर्थके प्रतिपादक बनते हैं, अन्यापोहके प्रतिपादक नहीं हुआ करते।

इतरेतराश्रयदोषको दूर करनेके लिये बीचमें गो शब्दका वाच्य विधि माननेपर अपोह कल्पनाकी व्यर्थता शंकाकार कहता है कि अगो शब्दसे अर्थात् "गाय नहीं है" इस शब्दमें जिस गायका निषेध किया जा रहा है वह गाय विधिरूप ही प्रतीत होती है और उस निषिद्ध गायकी विधिरूपता प्रतीत होनेका एक यह भी कारण है कि अगोव्यवच्छेद रूप अगोपोहकी सिद्धि हो जाती है, इस कारणसे इतरेतराश्रय दोष न होगा। और जो इतरेतराश्रय दोष दिया है कि जब गौका ज्ञान हो तो अगोव्यवच्छेद बने जब अगोव्यवच्छेद बने तब गौका ज्ञान हो, तो इसमें जब व्यवच्छेद का प्रसंग आता है कि इसमें किसका व्यवच्छेद किया जा रहा है तो वहाँ विधिरूप ही मानी जाती है, इस कारणसे यह इतरेतराश्रय दोष नहीं हो सकता। उत्तर देते हैं कि यदि ऐसी बात है अर्थात् उस बीच गो विधि रूप मान गया तो फिर यह बात तो न

वस्तुकी अन्यव्यावृत्त स्वभावता शंकाकार कहता है कि यह प्रसग तो स्याद्वादियोके यहाँ भी लग सकता है क्योंकि वे भी तो वस्तुको अस्तिनास्तिरूप मानते हैं। वस्तुका अस्तिरूप विशेषण भी है और वस्तुका नास्तिरूप भी विशेषण है। समाधानमे कहते हैं कि स्याद्वादी लोग अनीलकी व्यावृत्तिसे विशिष्ट नील है ऐसा नही कहते या अकमल व्यावृत्तिसे विशिष्ट कमल है ऐसा नही कहते. ऐसा कहनेमे ही तो वह दोष आ रहा था कि अनील व्यावृत्ति तो अभावरूप है और उसमे फिर विशेषित कर रहे हो नीलको भाव और अभावमे सम्बन्ध कैसे बन सकता है ? तो स्याद्वादमे इस प्रकार नही कहा है कि अनील व्यावृत्तिसे विशिष्ट नील है और अकमल व्यावृत्तिसे विशिष्ट कमल है। तो फिर क्या कहा गया है कि नील ही अनीलसे व्यावृत्त स्वरूप है इसमे विशेषण विशेष्यकी बात आयी है। कमल ही अकमलसे व्यावृत्त स्वरूप है। पदार्थ है और वह अपने द्रव्य क्षेत्र, काल भावसे है। यह पदार्थके स्वरूपकी ही बात है। और, वह पदार्थ अन्य पदार्थोंके द्रव्य, क्षेत्र, काल भावसे ही नही है। यह उस पदार्थके ही स्वरूपकी बात है इसमे विशेषण विशेष्यकी बात नही कही गई है। वस्तुस्वरूप स्वयं के अस्तित्वरूप है और परके नास्ति स्वरूप है। शकाकार कहता है—तो फिर यही बात तो "अर्थान्तरकी व्यावृत्तिमे विशिष्ट है" इस शब्दसे कह रहे है। जिसको तुम वस्तुका स्वरूप मानकर कह रहे हो कि अन्यके नास्तित्वरूप है पदार्थ उस ही को हम अर्थान्तरको निवृत्तिमे विशिष्ट कह रहे हैं। यह वस्तु विशेषित हुई है अर्थान्तरके अभावसे। उत्तर देते हैं कि यह बात क्षणिकवादमे बन नही सकती, क्योकि क्षणिकवादमे है वस्तु स्वलक्षणरूप। क्षणिक निरन्वय निरंश, यो समझिये कि कथनमात्र। उस वस्तुको शब्दसे कहा ही नही जा सकता। क्योकि शब्द द्वारा उस वस्तुका संकेत नही बनता। जो क्षणिक है, निरन्वय है, निरश है उसका संकेत क्या ? स्वलक्षणमें व्यावृत्तिसे विशिष्टता सिद्ध नही हो सकती। क्षणिकवादके सिद्धान्तके अनुसार संकेत तो उसमें बना करते हैं, जो अन्यापोहसे विशिष्ट हो क्योकि शब्दका वाच्य है अन्यापोह, पर स्वलक्षणमे अन्यापोह है, स्वलक्षणमे अन्यापोह सिद्ध नही हो सकता, क्योकि अन्यकी व्यावृत्ति रूपको कहते हैं सामान्य और सामान्य अथवा सारूप्य क्षणिकवादमे माना ही नही गया। तो जब स्वलक्षणमे अन्यापोह नही बना तो यह सिद्ध हुआ कि वस्तु अपोहरूप नही है, किन्तु वस्तु असाधारण है। अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल भावको लिये हुए वस्तु है। वस्तु अन्यापोहात्मक नही है। अर्थात् केवल अन्यके अभाव मात्र हो सो नही किन्तु वस्तु विधिरूप है। और उस विधिरूप वस्तुका फिर अन्यकी व्यावृत्ति रूपसे परिज्ञान होता है। तो अन्यापोह हुआ अवस्तु और यह पदार्थ है सब वस्तु तो वस्तु और अवस्तुका सम्बन्ध बन नही सकता, क्योकि सम्बन्ध हुआ करता है दो वस्तुवोमे। एक अवस्तु हो तो उनका सम्बन्ध क्या बनेगा ? शकाकार का आशय था कि हम जो भी शब्द बोलते हैं, शब्दका जो सकेत होता है उससे जो वस्तु जानी जाती है वह वस्तु अन्यापोहसे विशिष्ट है। जैसे कहा—चौकी, तो चौकी

का विशेषण क्या हुआ ? अश्वोंका व्यवच्छेद। तो जितने भी शब्द हैं वे तो हैं विशेष्य और अर्थान्तर व्यावृत्ति, यह है उसका विशेषण, इसपर बात बतायी गई थी कि देखो—विशेष्य तो हुआ विधि रूप, जैसे यह गौकी और जिसे तुम विशेषण कह रहे हो अश्वोंका अभाव वह है अभावरूप, तो भावरूप और अभावरूपमें सम्बन्ध नहीं बन सकता। सम्बन्ध वहां ही बना करता जहाँ दोनों भावरूप हों।

अपोहके विशेषणत्वकी असिद्धि अथवा सम्बन्ध मान भी लो तो भी अपोहकी विशेष्यता नहीं बन सकती, क्योंकि इतना कहने मात्रसे कि अपोह है, इतने अस्तित्व मात्रसे कोई विशेषण नहीं बन जाया करता, किन्तु किस तरह कोई विशेषण बनता है कि ज्ञात होकर फिर अपने आकारसे अनुरक्त बुद्धिके द्वारा विशेष्यको रंजित करे तो वह विशेषण होता है। जैसे नील कमल कहा तो नील, यह जाना गया ना। नेत्र इन्द्रियसे जो नील देखा है तो विदित हुआ कि यह नील है, फिर अपने आकारसे अनुरक्त बुद्धिके द्वारा अर्थात् नीलका जो स्वरूप है उस स्वरूपमें यह बुद्धि जम गयी अर्थात् बुद्धिने खूब परिज्ञान किया—यह नील, अब उस बुद्धिसे याने नील रूपसे विशेष्यको रंजित करदे अर्थात् नील बुद्धिमें कमलको जान ले नील कमल इस तरह विशेषण बना करता है पर अपोहमें तो यह विधि बन ही नहीं सकती। प्रथम तो अपोह ज्ञात नहीं है क्योंकि अवस्तु है और फिर अपोहके आकारसे अनुरक्त बुद्धि नहीं बनती जिस बुद्धिसे पदार्थको रंजित किया जाय इस कारण अपोह पदार्थका विशेषण नहीं बन सकता शङ्काकारका यह आशय है कि जैसे कहा है ना नीला कमल, तो यहाँ नीला विशेषण है कमल विशेष्य है इसी तरह प्रत्येक शब्द इकहरा भी हो तो भी वह विशेषणसे सहित होता है। जैसे कहा कमल तो इसमें यह जाना गया कि अकमलकी निवृत्तिसे विशिष्ट कमल। तो कमल हुआ विशेष्य और अकमलकी निवृत्तिसे विशिष्ट यह हुआ विशेषण। याने प्रत्येक शब्द अन्यापोह विशेषणको लिए हुए होता है लेकिन कुछ भी विचार करनेके बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि अन्यापोह विशेषण नहीं बन सकता क्योंकि ज्ञात होकर अपने आकारसे आसक्त बुद्धिके द्वारा विशेष्यको रंजित करे उसे विशेषण कहते हैं यह बात अपोहमें सम्भव ही नहीं है। अपोहमें हम जितना व्यवच्छेद करते हैं जैसे गौ शब्द कहा तो उससे अश्वादिककी निवृत्ति करते हैं। तो अश्वादिककी बुद्धिमें, अश्वादिकका अभाव ऐसा कहनेसे जो अश्वादिक शब्द जाना और तुरन्त बुद्धि हुई उस बुद्धिने अपोह नहीं जाना जा रहा, किन्तु क्या जाना जा रहा ? वस्तु। प्रत्येक जगह वस्तु ही जानी जाती, अवस्तु, अभाव, अपोह नहीं जाना जाता। जैसे किसीने कहा कि उस कमरेमें अमुकचन्द बैठे हैं, बुला लाओ। देखने वाला गया, वहाँ अमुकचन्द मिले नहीं तो वह कहता है कि वहाँ तो नहीं है। अरे तू अच्छी तरहसे देख आया ? तो उत्तर देता है हाँ, मैंने खूब अच्छी तरह देखा, वहाँपर नहीं है। तो अमुकचन्दके निषेधको आँखोसे देखा क्या ? अमुकचन्द रहित पृथ्वीको देखा। देखनेमें भावरूप चीज आई या अभावरूप ? भावरूप आई। हाँ यह

अभावकी कल्पनासे सहित हो। तो जब यह कहा—गौका अर्थ क्या अश्वादिककी निवृत्ति ? किसकी निवृत्ति ? अश्वादिककी ! यह कहकर अश्वादिक जाने गये। जिसकी निवृत्ति करना है वह वस्तुरूप जानी गयी, यो ही गौ जब कहा तो गौ भी वस्तुरूप जानी गई। अपोहका ज्ञान ही सम्भव नही है। और जो अज्ञात हो वह विशेषण नही बन सकता। यह कहना कि जितने भी शब्द होते हैं वे सब विशेषण सहित होते है। जैसे पीली चौकी, तो इसका अर्थ है अचौकीकी व्यावृत्तिसे विशिष्ट, यह तो हुआ विशेषण और चौकी हुई विशेष्य। अगर वह विशेषण अपोह है, अग्रहीत है, जिसका विशेषण ग्रहण नही होता उसकी बुद्धि विशेष्यमे कैसे बन सकती है ? इस कारण अपोहका ज्ञान ही सिद्ध नही है।

अर्थमे अपोहकारबुद्धिके अभावसे अविशेषणता—अथवा मानलो अपोह का ज्ञान हो गया, गौ कहनेसे जो वाच्य अगोपोह बनाया उसका ज्ञान हो गया तो भी अगोपोह गौका विशेषण नही बन सकता, क्योकि विशेषण वह बना करता है कि जिस आकारकी बुद्धि पदार्थमे जाय जैसे पीली चौकी, तो पीले स्वरूपकी बुद्धि चौकीमे पहुँच गयी, तब चौकीका विशेषण पीला बना। समस्त वस्तुवें स्थिर स्थूल आकार रूपसे जानी जाती हैं न कि अन्यापोहरूपसे जानी जाती हैं। जैसे गाय कहा तो उस का जैसा स्थिर स्थूल चार पैर, बडा पेट, सीग आदिक आकार है उस आकार रूपसे गाय जानी गयी। स्थिर स्थूल आकार रूपसे पदार्थ जाना जाता है अन्यापोहरूपसे नही जाना जाता है वह तो तर्कणाके बाद ज्ञात होता है तो पदार्थ उन क्षणिक वादियोके द्वारा माने गए स्वलक्षणरूप पदार्थमे अर्थात् क्षणिक, निरन्वय, निरंशरूप अर्थमे स्थिर स्थूल आकारकी भी बुद्धि नही और अभावरूप अपोह आकारकी भी बुद्धि नही। उसमे विशेष्यता क्या बनेगी ? सारे विशेष्य अपने आकारके अनुरूप विशेष्यमे बुद्धि उत्पन्न करते हुए देखे गए हैं। जिस पदार्थका जो विशेषण बनाया जाय, जैसे कहा कि यह पुरुष मोटा है तो मोटा विशेषण मोटाईके अनुरूप बुद्धिमे विशेष्यको ला देता है अर्थात् मोटा जहां ऐसी बुद्धिको उत्पन्न करे वह तो विशेषण है, पर अन्य प्रकारका विशेषण अन्य प्रकारकी बुद्धिमे उत्पन्न करदे यह बात नही बन सकती। अर्थात् अन्यापोहमें तुम विशेषणको कहते हो अभावरूप और विशेष्य है भावरूप। तो अभावरूप विशेषण भावरूप बुद्धिको विशेष्यमें कैसे उत्पन्न कर देगा ? जैसे नील कमल कहा तो नीलकमलमे उस नील बुद्धिको ही उत्पन्न करेगा कि लाल इस बुद्धिको उत्पन्न कर देगा ? कहा तो है नीलकमल और बुद्धि बनायी जाय लाल कमल, तो यह तो नही बनता, तो इसी प्रकार विशेषण तो है अभावरूप और विशेष्य उसका बन जाय भावरूप तो यह नही हो सकता।

भावाकाराध्यवसायके बिना वस्तुत्वका अभाव—शंकाकार कहता है कि गौ शब्द कहते हो उससे अगोपोह जाना है। अश्व आदिककी निवृत्ति जाना है

तो वहाँ होता क्या है कि अश्व आदिक उसके अभावसे अन्य ऐसी बुद्धि गौमें होती है। कहते हैं कि यह बात ठीक नहीं। अश्व आदिकमें अभावानुरक्त शाब्दी बुद्धि नहीं होती किन्तु भावाकारका निश्चय कराने वाली शाब्दी बुद्धि उत्पन्न होती है। गौ कह कर उस गायमें जो अवयव पाये जाते हैं जो स्थिर स्थूल आकार पाया जाता है उस समस्त आकारका निश्चय कराने वाली शाब्दी बुद्धि बनती है। तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि विशेषण विशेष्य वहाँ बना करते हैं जहाँ अपने आकारके अनुरूप बुद्धि जगती है। अपने आकारके अनुरूप बुद्धिको न उत्पन्न करनेपर भी यदि अपोहको विशेषण मान लिया जाय तो सब सभीके विशेषण बन जायेंगे। क्योंकि विशेषणका कोई अर्थ न रहा। विशेषणका महत्त्व यह था कि विशेषणमें जो बात कही गई उसके अनुरूप बुद्धि विशेष्यमें जगी। अब अपोहकार बुद्धि माना नहीं अपोहकार बुद्धि क्या पदार्थमें जगती है। भावाकार निश्चय करने वाली बुद्धि जगती है। अब तुम मान रहे हो कि न भी जगे स्वाकारके अनुरूप बुद्धि तो भी विशेष्य बन जाता है तो फिर जिस चाहेका विशेषण बन जाय। क्योंकि विशेषण विशेष्य भावकी कोई व्यवस्था मानी ही नहीं जा रही और फिर अश्वादिकमें शब्दजन्य बुद्धिके साथ अनुराग माना जाय तो वस्तु स्वलक्षणके अभावरूपसे प्रतीति हुई तो वह वस्तु ही फिर न रही। जब पदार्थका अभावरूपसे प्रत्यय हुआ फिर पदार्थ ही क्या रहा। क्योंकि भावमें और अभावमें विरोध है। अभावरूपसे पदार्थ जाना गया इसका मतलब क्या? पदार्थ ही न रहा। तो इसी प्रकार भाव विशेष्य हो और अभाव विशेषण बन जाय, यह किसी प्रकार युक्त नहीं है। तब निष्कर्ष यह निकला कि शब्दका वाच्य पदार्थ है, अन्यापोह नहीं है।

शब्दसे अवाच्य होनेसे स्वलक्षणको व्यावृत्तिसे विशिष्ट जाननेकी अशक्यता - अपोहसे असाधारण वस्तुका विशेष्य विशेषण भाव नहीं बन सकता। क्योंकि जब असाधारण वस्तु अर्थात् स्वलक्षण क्षणिक निरन्वय-निरंश शब्दके द्वारा जाना ही नहीं जा सकता तो फिर अज्ञात स्वलक्षणमें व्यावृत्तिसे विशिष्टता करना कैसे जाना जा सकता है? जब विशेष्य ही शब्दसे नहीं जाना गया तो अभावरूप विशेषणसे उसको विशिष्ट करना कैसे युक्त हो सकता है? स्वलक्षण क्षणिक माना है। क्षणमें हुआ नष्ट हो गया, उसकी शकल ही न पहिचानी जा सकी। उसका निरन्तर ग्रहण भी न किया जा सका। स्वलक्षण है निरन्वय। कुछ भी क्षणमात्र अपना अन्वय न रख सका। तो जो दूसरे क्षण भी अपना अन्वय नहीं रखता, किसीमें नहीं रहता तो उसकी शकल भी क्या समझी जाय और शब्द भी उसका क्या मारा करे? स्वलक्षण माना गया है निरंश। जब उसमें कुछ अंश ही नहीं कुछ स्थिर स्थूल आकार ही नहीं तो शकल विषय किया जाय? जो असाधारण वस्तुमें सब संकेत ही नहीं बनता, वह शब्दसे जाना ही नहीं जाता तो उसको अन्य व्यावृत्तिसे विशिष्ट करना यह कैसे समझा जा सकता है?

विध्यात्मक पदार्थकी शब्दविषयता . शब्दका विषय क्षणिक निरन्वय निरंश तो नहीं है, किन्तु उस शब्द द्वारा वाच्य सारूप्य विशिष्ट अर्थ है। सामान्य पदार्थ शब्दका विषय होता है, और ये व्यक्तियाँ भी, जनके नाम रखे गए हैं लोक व्यवहारमे वे भी शब्दके विषय होते हैं। जो सारूप्यवान हैं स्थिर, स्थूल आकार वाले है वे सब शब्दके विषय होते हैं, पर अत्यन्त असाधारण कथन मात्र क्षणिक निरन्वय निरंश स्वलक्षण वस्तुका विषय नहीं होता। जो ऐसी असाधारण वस्तु है वे शब्द द्वारा वाच्य नहीं होते। तो जो वाच्य ही नहीं है शब्दके द्वारा उसका निराकरण ही क्या किया जा सकता है ? यहाँ यह बात विशेष जानना कि क्षणिकवादियो द्वारा अभिमत असाधारण वस्तु जो स्वलक्षणमात्र है, क्षणिक निरन्वय निरंश है उसके सामने लोकव्यवहारमे माने गए व्यक्ति भी सामान्यरूप हैं, क्योकि इनमे सारूप्य पाया जाता है। तो शब्द द्वारा वाच्य ये अर्थ सामान्य हुए किन्तु, क्षणिक वादियोद्वारा अभिमत असाधारण स्वलक्षण विशेष शब्दो द्वारा वाच्य नहीं होता और फिर अपोहोंकी बात तो अभावरूप है। अपोह भी कुछ चीज है या नहीं ? ऐसा प्रश्न करनेपर उस अपोह शब्दको वाच्य मानना पडेगा अनपोह व्यावृत्ति, तो जब अपोह ही स्वय अभावरूप है तो अभावको यह कहना कि अन्याभाव व्यावृत्ति रूप है अर्थात् अभावमें अन्य अभाव का व्यवच्छेद है तो इसका अर्थ ही क्या हुआ ? अभाव कहीं अपोह्य होता है। अभाव का कहीं अभाव भी होता है। अरे प्रतिषेध भी किया जाय तो वस्तुका ही किया जा सकता है। तुच्छ भावरूपका प्रतिषेध क्या ? और फिर अवस्तुका प्रतिषेध करना, अभावको अपोह्य बतलाना इसका अर्थ है वस्तुपना। अभावका अभाव क्या है, कोई वस्तु है भाव है तो शब्दका वाच्य विध्यात्मक वस्तु माने बिना तो कहीं टिकाव ही नहीं हो सकता अब बतलावो—अपोहोंका अपोहपना क्या रहा ? इस कारणसे अश्वादिकसे गो आदिकका अपोह होता हुआ वह अपोह सदृशपरिणाम धर्मवानका ही तो होगा, क्योकि स्वलक्षण अवस्तु है सारूप्यवान वस्तु है। वह ही अपोह्य बतायी जा सकती है। गो है वह सामान्य है, अश्व है वह सामान्य है। यहाँ सामान्यका अर्थ स्वलक्षण क्षणिक निरंश रूप असाधारणमे विलक्षण तत्त्व है, इस कारण शब्दका वाच्य अपोह नहीं माना जा सकता। शब्दका वाच्य तो सीधा विध्यात्मक पदार्थ है।

अपोहोंमे अभावरूपसे अपोह्यत्वकी असभवता अब और बतायो कि अपोह तो नाना हो गए जितने अर्थ हैं उतने अपोह हैं अर्थ अनन्तानन्त हैं तो उनके वाच्य शब्द जो भी बोले जायेंगे उन शब्दो द्वारा वाच्य अनन्तानन्त अपोह होंगे। तो उन अपोहोमे परस्पर कुछ भिन्नता है या नहीं ? यदि कहो कि अपोहोमे परस्पर भिन्नता है, विलक्षणता है तो अभाव भी अपोहशब्दके द्वारा अभिधेय है, गो शब्द कहने पर अगोव्यावृत्ति जो वाच्य कहा जा रहा है उसमे जो अगोशब्दके द्वारा अभिधेय अभाव है उसका अभाव क्या ? वह गो शब्दके द्वारा अभिधेय माना तो वह अभाव पूर्वोक्त अभावमे भिन्न है यदि तो उसका अर्थ भाव हो कहलाया, क्योंकि अभावकी

निवृत्ति मायने भाव । भाव अभावकी निवृत्तिरूप हुआ करते हैं यदि कहो कि अगो शब्द द्वारा अभिधेय अभागका अभाव यदि पूर्वोक्त अभावसे विलक्षण नही है । अभाव से अभाव अभावसे जुदा नही है, तो इसका अर्थ हुआ कि गो भी अगो बन गयी, क्यों कि अभाव समस्त एक स्वरूप हैं और तुच्छाभाव रूप हैं । तो अ गोशब्द द्वारा वाच्य जो अपोह है उससे भिन्न बन गया गो शब्द द्वारा वाच्य अपोह, तो जब ऐसी अभिन्नता बन गयी तो गो शब्दमें और अगो शब्दके द्वारा वाच्य अपोहमें तादात्म्य बन बैठेगा। इससे अर्थ रूपसे माने गये अपोहोमे भेद सिद्धि नही होती ।

वाचकाभिमत अपोहोंमें भेदकी असिद्धि—यहां अपोह दो प्रकारसे देखे जा रहे हैं । वाचक अपोह और वाच्य अपोह । वाच्यरूपसे माने गए अपोहोंमे भेदकी सिद्धि न हो सकी । अब यदि कहो कि वाचक शब्दरूपसे माने गए अपोहोंमें भेद सिद्ध कर लिया जायगा तो भी बात युक्त नही है, क्योंकि शब्द हैं दो प्रकारके एक तो सामान्यवाची और दूसरा विशेषवाची । जैसे गाय, अश्व, ये सामान्यवाची शब्द हैं। इन शब्दो द्वारा जो जातिमात्रका बोध होता है, अश्व जाति मात्रका परिज्ञान होता है और विशेषवाची शब्द हैं—खण्डी मुण्डी शावलेय गाय आदिक । जैसे गाय तो सामान्यवाची शब्द और विशेषवाची खण्डी मुण्डी शावलेय आदिक इन शब्दोका जो परस्पर मे अपोह भेद है तो यह भेद हुआ कैसे ? क्या वासनाभेदके कारण हुआ या वाच्यभूत अर्थके अपोहभेदके कारण हुआ ? वासना कहते हैं पूर्व विकल्पादिक ज्ञान जो शब्दका विषयभूत है, शब्दका आलम्बन लेकर पहिले हुए विकल्पके सम्बन्धमें जो ज्ञान चलता रहता है उसको वासना कहते हैं । क्या इस वासनाभेदके कारण शब्दापोहोंमें भेद पडा है ? या वाच्यभूत अर्थके अपोहके भेदसे शब्दापोहोंमें भेद पडा है ? पहिली बात तो अयुक्त है अर्थात् वासनाभेदके कारण वाचकापोहोमे भेद पडा है, यह बात यों अयुक्त है कि वाचकापोह भी तो अवस्तु है । अपोह मायने अभाव, तुच्छाभाव, निषेध मात्र । तो अवस्तुमें वासना ही कैसे सम्भव हो सकती है ? वासनाकी असम्भवता अवस्तुमें यों है कि जहां विषय ही कुछ नही, वासनाका कारण ही कुछ नही, वहां वासनाका ज्ञान सविकल्प ज्ञान कैसे बन सकता है ? तो यह कहा कि शब्दापोहोंमें जो परस्पर भेद हुआ है वह वासनाभेद निमित्तक है सो ठीक नही । यदि कहो कि वाच्य अपोहके भेद के कारण शब्दापोहोमे भेद पडा है तो यह बात तो अब तक निराकृत ही निराकृत की गई अर्थात् किसी भी पदार्थका अर्थान्तर व्यावृत्ति बताया है, अन्यापोह बताया है, उसका तो निराकरण भली प्रकार कर दिया गया है ।

अवस्तुरूप वाचकापोह व वाच्यापोहोंमें गम्य गमकभावकी असिद्धि—अब शंकाकार कहता है कि शब्दोका भेद प्रत्यक्षसे ही सिद्ध है क्योंकि शब्दोके कारणों मे भेद पाया जा रहा हैं तालु ओठ ये हैं शब्दोके कारण और जब ये कारण नाना हैं और उनका प्रयोग करनेसे नाना तरहकी ध्वनियां बनती हैं तो शब्दोका भेद तो अपने

आप सिद्ध हो गया । दूसरी बात यह है कि शब्दोमे भेद प्रत्यक्षसे ही यो प्रसिद्ध है कि शब्दमे विरुद्ध धर्मोका हुए पाया जा रहा है। ये भिन्न-भिन्न शब्द हैं ना, ?-१६ स्वर ३३ व्यञ्जन और अनुस्वार आदिक और स्वरोमे ह्रस्व दीर्घ उदात्त, अनुदात्त स्वरित आदिक जो धर्म पाये जाते हैं उनके ग्रहणसे यह सिद्ध होता है कि शब्दोमे भेद है। उत्तर कहते हैं कि यह बात तुम्हारे सिद्धान्तमे अयुक्त है। यद्यपि यह बात भली कही गई है वाचक शब्दको अगीकार करके यह कहा गया है। लौकिक जन भी यों जानते है कि शब्द नाना प्रकारके हैं और कर्णेन्द्रिय द्वारा नाना शब्द ग्रहणमे आते हैं तो शब्दभेद वास्तविक है, और यह शका क्या, यह तो सबका सिद्धान्त रख दिया, किन्तु क्षणिकवादमे यह भी बात नही बनती क्योकि शब्द क्या है ? एक स्वलक्षण जो श्रोत्रज्ञानमे प्रतिभास होता है किन्तु जिसकी सकल सूरत आकार ग्रहण कुछ भी न हो, ऐसा स्वलक्षणात्मक क्षणिक निरन्वय निरश शब्द वाचक नही बन सकता क्यो, कि जब शब्दका सकेत किया उस कालमे जो पदार्थ आया तो जब उसके समझनेका समय हुआ तब वह पदार्थ नष्ट हो गया। जब पदार्थ क्षणिक है, क्षणमे ही रहता है और नष्ट हो जाता है तो उनका वाचक शब्द कैसे बन सकता है ? जिस कालमे शब्द वाचक हुआ और मान लो उस क्षणमे पदार्थ भी है, सकेत बना पाया कि जब उसके समझनेका समय आया तो वह पदार्थ ही न रहा। तो आपके सिद्धान्तमे शब्द स्वलक्षण का वाचक नही बन सकता है तब शब्द भी अन्यापोह रूप हुआ और अर्थ भी अन्यापोह रूप हुआ। तो दोनो अवस्तु हो गए, दोनो अभावरूप हो गए। जो जो अवस्तुयें हैं उनमे गम्य गमक भाव नही होता। जब दोनो अभाव तुच्छ हैं, कुछ वस्तु ही नही है तो उनमे कोई गमक और कोई गम्य बन जाय यह बात नही बन सकती। जैसे आकाश का फूल और गधेके सीग। बताओ इनमें कौन तो गमक है और कौन गम्य है ? न आकाशका फूल ही वस्तुरूप है और न गधेका सीग ही वस्तुरूप है। तो अवस्तुमे गम्य गमक भाव नही हो सकता। तुम्हारा वाच्यापोह और वाचकापोह ये दोनो अवस्तु हैं। वाच्यापोह समान जो गौ पदार्थ है वह क्या है ? अगोपोह। अगोव्यावृत्ति, और जो गो शब्द है वह क्या है ? अगोशब्दव्यावृत्ति। तो शब्द भी अन्यके अभावमात्र हुये। जो अभाव केवल एक तुच्छ प्रतिषेध मात्र है और पदार्थ भी अन्यके अभावमात्र हुए तो वाच्यापोह और वाचकापोह तब दोनों अवस्तु हो गए तो फिर इसमें गम्य गमक भाव नही हो सकता।

अभाव अभावोंमे गम्यगमकत्वके अभावपर प्रश्नोत्तर—अब शकाकार कहता है कि यह कहना तो अयुक्त है कि अभावसे अभाव जाना नही जाता अर्थात् अभाव अभावमे गम्य गमक भाव नही होता। होता है, अभाव गमक होता है और अभाव गम्य होता है। जैसे कहा कि मेघका अभाव होनेसे वर्षाका अभाव है। जहा मेघ ही नही है तो वर्षा कहासे होगी ? ऐसा सब जानते हैं। तो वहा मेघके अभावसे वर्षाके अभावका जो ज्ञान किया गया सो अभावसे अभावका ज्ञान किया गया ना, तो

न रही कि अभाव और अभावमें गम्य गमक भाव नही होता। सो तुम्हारे इस कथनमे दोष आता है, क्योकि यहां तो मेघका अभाव वर्षाके अभावका गमक बन गया। उत्तरमें कहते हैं कि यह भी बात तुम्हारी अयुक्त है क्योकि मेघका अभाव भी किसीके सद्भावरूप माना गया है और वृष्टिका अभाव भी किसीके सद्भावरूप माना गया है। जैसे मेघका अभाव क्या ? मेघसे विविक्त आकाश प्रकाश। इसका नाम है मेघका अभाव। जैसे घटका अभाव क्या ? घटसे विविक्त जो कमरे आदि विवक्षितकी जमीन है वह घटका अभाव है। जैसे कोई पुरुष कमरेको देखकर कहता है कि यहाँ घडेका अभाव है, तो उसने देखा क्या ? अभाव देखा। मायने घट रहित पृथ्वी दिखी। तो इसी तरह मेघके अभावके मायने क्या ? मेघरहित आकाश प्रकाश देखा। तो मेघका अभाव भी वस्तुरूप हुआ और वैसा ही वृष्टिका अभाव। तो स्यादवाद सिद्धान्तमें इस प्रयोगमे भी वस्तुस्वरूप आया। मेघका अभाव होनेसे वर्षाका अभाव है ऐसा प्रयोग करनेपर वस्तु ही आयी क्योकि अभाव भावान्तरके स्वभावरूपसे बनाया गया है। किसीका अभाव अन्यके सद्भावरूपसे समझा जाता है लेकिन क्षणिकवाद सिद्धान्तमें जहाँ केवल अपोहरूप ही अर्थ है, वाच्य है, मेघका अभाव मायने मेघका प्रतिषेध मात्र, तुच्छाभाव मात्र। और कुछ नही। वर्षाका अभाव। वर्षाका प्रतिषेध, मात्र तुच्छाभाव और कुछ नही। अथवा मेघाभाव मायने अमेघाभाव व्यावृत्ति और वृष्टिभाव मायने अवृष्टिभाव व्यावृत्ति। तो जहाँ केवल अपोह ही तत्त्व है जो कि इस समय विवेचनमें चल रहा है ऐसे अभावरूप अपोहमें गम्यगमक भाव नही बन सकता और अपोहोंमे ही गम्यगमक भावका अभाव होना इतना ही नही किन्तु वर्षाके अभावमे और मेघके अभावमे भी गम्य गमक भाव नही बन सकता। जिसे लौकिक जन बहुत जल्दी समझ लेते हैं कि मेघका अभाव होनेसे वर्षाका अभाव है लेकिन अपोहवादमे तो इसका भी गम्यगमक भाव नही बन सकता।

अपोहकी विधिरूप व व्यावृत्तिरूप दोनो रूपोंसे अवाच्यता—और भी बताओ कि अपोह वाच्य है अथवा अवाच्य ? अर्थात् अपोह भी शब्दके द्वारा कहा जा सकता है अथवा नही ? यदि कहो कि वाच्य है तो विधिरूपसे वाच्य है या अन्य व्यावृत्तिरूपसे वाच्य है ? अर्थात् अपोह शब्द सीधा अपोह कह देता है या अपोह व्यावृत्ति इस शब्दसे कहेगा यदि कहो कि अपोह विधिरूपसे वाच्य है तब फिर सब शब्दोका एकार्थ अपोह कैसे बन गया ? जब यहाँ अपोहका विधिरूप मान लिया तो टेक तो न चल सकी कि विधिरूप कुछ नही होता। सब कुछ अन्यापोहरूप होता। तो अपोहविधिरूपसे वाच्य तो माना नही जा सकता, क्योंकि इससे तो अपोहका खण्डन ही हो जाता है। यदि कहो कि अन्यकी व्यावृत्तिसे अपोहका भी जो अन्य अपोह है उसकी व्यावृत्तिसे जाना जायगा अपोह। तब तो इसका अर्थ यह हुआ कि अपोह भी सबके द्वारा जाना गया। कोई मुख्य तत्त्व नही है। यह सब अभाव रूप पड़ता है और उसमें कुछ समझा नही जा सकता। देखिये—सीधी स्पष्ट बातके

प्रसंगमें क्यो ऐसी क्लिष्ट कल्पना की गयी कि गो शब्द कहनेसे अगोपोह विदित होता है, यह पैर पेट वाली गाय विदित नही होती। इतनी क्लिष्ट कल्पना करनेका क्या प्रयोजन ? अथवा यो कह सकते है कि दार्शनिक लोग जो अपनेको विद्याविशारद समझते है ऐसी ही बात लोगोंके सामने रखना चाहते हैं कि जो बात अब तक सुनी न हो जैसी कोई तर्कणा कर सकता न हो उसमें ही तो विद्वत्ता दार्शनिकता, विद्या-विशारदता समझी जा सकती है। इस भावसे भी कुछ थोडा रास्ता देखनेपर क्लिष्ट कल्पना करके और उसका एक विवरण करके समर्थन करें यह भी तो दार्शनिक विद्या विशारदोकी एक रीति हो सकती है। शब्द द्वारा जो वाच्य है अपोह और अपोह भी वाच्य है अन्यापोहके द्वारा ऐसा माननेपर तो अनवस्था दोष हो जायगा। क्योकि अपोहकी व्यावृत्ति अन्य व्यावृत्तिके द्वारा कही जायगी। तो यो अपोहको वाच्य तो कह नही सकते। यदि कहो कि अपोह अवाच्य है शब्दके द्वारा कहा जाने योग्य नही है तो अन्य शब्दार्थके अपोहको शब्द बता देते है। इस मतका फिर घात हो गया। यह कहना कि शब्द जितने हैं वे अन्य शब्दके अर्थके अपोहको कहते हैं। अब यहा मान रहे हो कि अपोह शब्दके द्वारा अवाच्य है फिर यह कथन कैसे सिद्ध होगा।

शब्दसे स्वचतुष्टयवृत्त और परचतुष्टयवृत्त अर्थकी वाच्यता—इस अन्यापोहके सम्बन्धमें यदि कुछ तत्त्वका सम्बन्ध रखा होगा, तब इस ही तत्त्वका रखा होगा कि स्याद्वादमे भी तो वस्तु स्वचतुष्टयसे अस्तिरूप और परचतुष्टयसे नास्तिरूप कहा गया है। तो परचतुष्टयसे नास्तिरूप है इस अंशकी मुख्यता देकर यह बढावा किया गया कि शब्द द्वारा बोध होता है तो परचतुष्टयकी नास्तिका बोध होता है पर यह ध्यानमे नही लाया गया कि वस्तुका स्वरूप है यह कि अपने चतुष्टयसे हुआ और परके चतुष्टयसे नही हुआ, इस शब्द द्वारा वाच्य तो वही पदार्थ है विधिरूप, जिसके विषयमे यह तर्कणा की गई कि पदार्थ अपने चतुष्टयसे तो अस्तिरूप है और परके चतुष्टयसे नास्तिरूप है यह वस्तुस्वरूप ध्यानमे न रखकर एक अन्यापोहकी सिद्धि करनेमे मति लग गयी। शब्दसे कोई विधिरूप भाव ही ज्ञात होता है। कही अन्यापोहरूप अभाव तुच्छाभाव ज्ञात नही हुआ करता।

अनन्यापोह शब्दकी विधिरूपता—और भी सुनिये अनन्यापोह शब्दका भी कोई वाच्य कहोगे अनन्यापोह व्यावृत्ति तो अनन्यापोह व्यावृत्ति तो अनन्यापोहमे विधि रूपसे भिन्न कुछ वाच्य नही पाया जाता क्योकि जहा दो प्रतिषेध होते हैं वहा विधिका ही निर्णय होता है। जैसे अश्व नही उसका नाम हुआ अनश्व लेकिन अनश्व नही, इसका अर्थ अश्व ही होता है। तो अन्यापोहका अर्थ अन्यकी व्यावृत्ति यह अर्थ हुआ और अन्यापोहका अर्थ अन्य व्यावृत्ति नही। तो जब दो प्रतिषेधोसे विधिका ही निश्चय होता है, तब अनन्यापोह शब्दका अर्थ क्या हुआ ? विधिरूप। तब किसी शब्दका वाच्य विधिरूप माननेपर ही ठीक बैठ सकता है। सर्वथा अपोह माननेपर

कोई व्यवस्था नहीं बन सकती। अन्यापोह शब्दका वाच्य अर्थ यहां और कौन हो सकता है जिसमें अन्यापोह नाम रखा जाय? ऐसी कौन सी वस्तु है जिसका नाम अन्यापोह रखा जाय? अन्यापोह शब्द कहकर किसी वस्तुका तो बोध होना चाहिए। शंकाकार कहता है कि विजातीयसे व्यावृत्त अर्थका आश्रय करके अनुभव आदिकके क्रमसे जो विकल्प ज्ञान उत्पन्न होता है उस विकल्पज्ञानमें जो कुछ प्रतिभात होता है ज्ञानात्मभूत विजातीय व्यावृत्त, अर्थाकारसे सुनिश्चित अर्थ प्रतिबिम्बरूप, उस विकल्पज्ञानमें अन्यापोह यह नाम पड़ता है। शंकाकारका यह अभिप्राय है कि जैसे अगोपोह कहा तो इसमे विजातीय हुये अश्व आदिक। उनसे व्यावृत्त अर्थ हुआ, खण्ड मुण्ड आदिक स्वलक्षण, जिसे लोग गाय कहते हैं, उन अर्थोंका आश्रय करके अनुभव आदिक क्रमसे विकल्प ज्ञान उत्पन्न होता है। वह इस प्रकार कि पहिले तो खण्ड मुण्ड आदिकका अनुभव हो जिसका नाम है निर्विकल्प दर्शन शुद्ध प्रत्यक्ष, उसके पश्चात् विकल्प वाला उद्बोध हुआ कि यह है उसके बाद संकेत कालमें ग्रहीत वाच्य वाचकका स्मरण हुआ, इस शब्दसे यह कहा जाता है इस प्रकार वाच्य वाचक शब्दका बोध हुआ। उससे अन्वित, युक्त वाच्य वाचक ऐसी योजना बनी, उसके बाद विकल्प हुआ कि यह गौ है सो इस विकल्प ज्ञानमें "अन्यापोह" यह नाम रखा जाता है। तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि विजातीयसे व्यावृत्त पदार्थोंके अनुभव द्वारा जो शाब्दिक ज्ञान उत्पन्न हुआ है वह ज्ञान उस ही प्रकारके अर्थका निश्चय कराता है तो इसमें किसी किस्मका विवाद ही नहीं। जिस शब्दको बोलकर जो अर्थ ज्ञात होता है वह अर्थ उससे भिन्न अन्य पदार्थोंका परिहार स्वरूप है ही। ऐसे अनुभव द्वारा जो कुछ ज्ञान हुआ वह सही ज्ञान है इसमें क्या विवाद है। किन्तु वह उस प्रकारके पारमार्थिक पदार्थोंको ग्रहण करने वाला मानना चाहिये। क्योंकि जितने निश्चय होते हैं, ज्ञान होते हैं वे ग्रहण रूप हुआ करते हैं और विजातीय व्यावृत्ति तो समान परिणामरूप वस्तुके धर्मरूपसे व्यवस्थित है अर्थात् ये है यह कहो कि गौमें अश्वादिककी व्यावृत्ति रूप पदार्थ है चाहे यह कहो अमुक स्थिर स्थूल आकार वाला पदार्थ। कुछ कहकर भी तो गौमें जो परिणाम पाये जाते हैं उनके समान परिणाम रूप धर्मोंका ही तो समावेश है। उस रूपसे व्यवस्थित होनेसे केवल नाम मात्रका ही भेद रहा। अन्यापोह कहकर भी गौ गौ रूपसे ही जाना और सीधा गौ शब्द कहकर गौ वाच्यको मानकर गौ रूप मानें इसमें अन्तर क्या आया? केवल नाम मात्रका फर्क है।

प्रतिबिम्बकी अन्यापोहरूपतापर विचार—और जो कहीं यह कहा है शंकाकारने कि ज्ञानमें जो प्रतिबिम्ब है वह शब्दके द्वारा उत्पन्न होता है। शब्दसे उस अर्थज्ञानकी उत्पत्ति हुई है इसलिये वह प्रतिबिम्ब तो शब्दका ही कार्य है। तो शब्दका यह अर्थ प्रतिबिम्ब कार्य है ऐसा कार्य कारणभाव बतानेका ही नाम वाच्य वाचक भाव है ऐसा जो कहा है वह अयुक्त है, क्योंकि विशिष्ट संकेतकी अपेक्षा रखने

वाले शब्दसे बाह्य अर्थमें विज्ञानकी प्रवृत्तिकी प्रतीति होती है इसलिये बाह्य अर्थ ही उस शब्दका अर्थ है। शब्द बोलकर जो ज्ञान उत्पन्न होता है उस ज्ञानसे ऐसे ही अर्थ की प्रतिपत्ति होती है। ज्ञान होना है और फिर उसमें प्रवृत्ति होती है। तो समस्त लोक जानता है यह कि शब्द बोलते ही एकदम उस वस्तुका बोध हुआ अब उसके अन्दर दार्शनिकताकी गहरी छानका भेष बनाकर अन्य क्लिष्ट कल्पनायें करना यह तो एक सुगम मार्गसे बहिर्भूत बात है। इसी कारण यह भी अयुक्त बात है जो कहा कि प्रतिबिम्बको अन्यापोहपना तो मुख्य है और विजातीय व्यावृत्ति स्वलक्षणमे अन्य की व्यावृत्ति बनाना यह औपचारिक कथन है। अर्थात् अन्यापोहको ही जो प्रधानता देते हो वह भी अयुक्त है, अरे अन्यापोहको पहिले वाच्य तो सिद्ध कर लो फिर मुख्य उपचारकी कल्पना करो। अन्यापोह ही सिद्ध नही हो रहा है। हाँ तर्क करके उस वस्तुमे विजातीय अन्य धर्मोंका प्रतिषेध करना यह तो युक्त है। पर शब्द द्वारा वाच्य अर्थ नहीं होता, इससे शब्दका अर्थ अन्यापोह होता यह बात अयुक्त है।

शब्दज ज्ञानका विषय वस्तुभूत अर्थ—भैया! सीधा यह मानना चाहिये कि प्रतिनियत शब्दसे प्रतिनियत अर्थमे प्राणियोकी प्रवृत्ति देखी जाती है इस कारण यह सिद्ध है कि शब्दज ज्ञान वस्तुभूत अर्थको विषय किया करता है और उसका प्रयोग भी इस प्रकार होगा कि जो परस्पर असंकीर्ण प्रवृत्ति वाले हैं वे वस्तुभूत अर्थ के विषयभूत हैं, जैसे श्रोत्रादिक ज्ञान। जैसे श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा जो ज्ञान बना उन ज्ञानोमे परस्पर असंकीर्ण प्रवृत्ति है, वह भिन्न भिन्न रूपसे समझी जा रही है अथवा नेत्र इन्द्रियके द्वारा जिस पदार्थका भी बोध हुआ वह वस्तुभूत अर्थके सम्बन्धमे हुआ, क्योंकि असंकीर्ण प्रवृत्ति हो रही, अस्पष्ट प्रवृत्ति नहीं हो रही। गायका दूध दुह लावो, ऐसा कहने पर कोई पत्थर नही दुहने लगता। गायके समीप जाता है, वहाँ दूध दुहता है तो यो जो विभिन्न प्रवृत्तियाँ होती हैं शब्द ज्ञान द्वारा उससे सिद्ध है कि शब्दके द्वारा वस्तुभूत अर्थ ही विषय किया गया। जितने भी शब्द बोले जाते हैं उन सब शब्दोसे भिन्न भिन्न बुद्धि उत्पन्न होती है। कोई विशेषण वाले भी शब्द है। किसी ने बोला डंडी अर्थात् डंडा वाला तो डंडा उपाधिको लिए हुए जो पुरुष है उस पुरुषका उसे बोध हुआ। किसीने कहा विषाणी सीग वाला, तो सींग द्रव्य उपाधियुक्त वस्तुका बोध हुआ तो भिन्न-भिन्न प्रकारसे सब शब्दो द्वारा प्रत्यय हुआ करता है तो कैसे न शब्दको वस्तुभूत अर्थका विषय करने वाला माना जाय? कोई शब्द गुणनिमित्तक हुआ करता है। जैसे कोई कहे सफेद, कोई कहे काला या सफेद चक्र घूम रहा है। यह काली गाड़ी चल रही है, तो सफेद और कालापन ये गुणबोधक चीजें हैं। भिन्न भिन्न प्रकारसे प्रत्यय और प्रवृत्तियां हो रही हैं। किसीने कहा गौ तो वह सामान्य विशेषात्मक वस्तुका ग्रहण कर रहा है। किसीने कहा इस आत्मामे ज्ञान है तो वहां स्वरूप सम्बन्धकी बात चल रही है। तो जब शब्द सुनकर ऐसे भिन्न-भिन्न प्रत्यय होते हैं तो उससे सिद्ध है कि शब्दसे सीधा उसीप्रकारका अर्थ जाना जाता है।

संकेतके आधारके शब्दमे शंकाकारकी आशंका — अब शंकाकार कहता है कि यह तो बतलावो कि ये ध्वनियां जिन्हें तुम कहते हो कि ये सीधे ही वस्तु या अर्थको बता देती है तो ये ध्वनियां संकेतकी हुई होकर अर्थको बताने वाली हैं या बिना संकेत किये हुए ये ध्वनियां अर्थकी प्रतिपादक हैं? यदि कहोगे कि बिना संकेत किए हुए ये ध्वनियाँ अर्थका प्रतिपादन करती है तो इसमें तो बहुत बड़ा दोष किया गया। घट शब्द कहा और उससे पटका बोध हो जाना चाहिये। घट पटका वाचक बन जाय, क्योंकि अब तो बिना संकेत किये हुये ही शब्द अर्थके अभिधायक होने लगे। यदि कहो कि नहीं—संकेतकी हुई ध्वनियां ही अर्थका अभिधान करती हैं तो यह बतलावो कि उन ध्वनियोंका किस प्रकारके अर्थोंमें संकेत होता है? क्या स्वलक्षणमें होता है अथवा जातिमे ध्वनियोंका संकेत होता है या स्वलक्षण व जातिके योगमें ध्वनियोंका संकेत होता है या जातिमान अर्थमें अथवा बुद्धिके आकारमें, किसमें ध्वनियों का संकेत होता है? इस प्रकार ५ विकल्पोंमे ध्वनियोंमे संकेतकी बात पूछी जा रही है। उनमेसे यदि कहो कि स्वलक्षणमें ध्वनियोंका संकेत हुआ है तो उस विषयमें अब सुनो।

शङ्कामें स्वलक्षणके सम्बन्धमे शब्दका संकेत न बननेका कथन—यहां शंकाकार कह रहा है कि ध्वनियोंका संकेत होकर फिर वह अर्थका प्रतिपादन करती है तो यह बतलावो कि ध्वनियोंका संकेत किसमे होता है? स्वलक्षणमें तो कर नहीं सकते, क्योंकि संकेत व्यवहारके लिए किया जाता है तो व्यवहारके लिए संकेत किया जाता है। तो व्यवहारके लिए किए हुये संकेतके व्यवहार कालमे जो वस्तु रह रही हो उसमे तो संकेत युक्त हो सकता है पर जिस वस्तुमें संकेत किया वह तो व्यवहार कालसे पहिले ही नष्ट हो गयी, क्योंकि वस्तु क्षणिक है, क्षण क्षण मात्रमें नवीन नवीन होती है। तो यो वस्तु मे जब संकेत किया तब तो व्यवहार न था और जब व्यवहार बना तब वस्तु नष्ट हो गयी। अब ध्वनियाँ स्वलक्षणमें संकेत कैसे करलें? स्वलक्षण कभी भी संकेतके व्यवहारकालमें व्यापक नहीं होता। वस्तु क्षणभरको हो, जब हो तब तो उसका निर्विकल्प दर्शन होता है। फिर निर्विकल्प दर्शनके बाद वासनावश जो तत्सम्बन्धमे प्रत्यय बनता है वह विकल्पक ज्ञान है। वहाँ व्यवहार बनता है। तो व्यवहारके कालमें स्वलक्षण रहता ही नहीं है इस कारण स्वलक्षणमें संकेत नहीं बन सकता और फिर शाबलेय खण्डी मुण्डी आदिक व्यक्ति विशेषका देशादिकके भेदसे, ये परस्पर अत्यन्त व्यावृत्त हैं इस प्रकार अन्वय उनमे नहीं बन सकता, क्योंकि जो जहां ही है वह वहीं है, है। जो जिस समय है वह उस ही समय है। तो अब देश में भी क्षेत्रसे क्षेत्रान्तरमे कोई चीज उत्पन्न न हो सके उस कालमें भी जब कोई एक क्षणसे दूसरे क्षणमें व्यापक न हो सका तब फिर वहाँ संकेत कैसे बन सकता है। और फिर व्यक्तियाँ तो अनन्त हैं, उनमें संकेत सम्भव ही नहीं हो सकता।

स्वलक्षणमे शब्दसंकेत न बननेकी शङ्काका विवरण—शङ्काकार कह

रहा है अपने अपोहवादके समर्थनकी ध्वनिया शब्दादि अर्थका अभिधान करती हैं, तो सकेत बिना किया हो तो व्यवहार होता नही, सकेत होनेपर ही शब्दोंमें व्यवहार चलता है तब वह व्यवहार किसमें चलेगा ? सकेत किसमे होगा ? कोई स्वलक्षण तो यों न हो सका कि व्यवहारके सम्बन्धमे वह वस्तु नही रहती। यदि कहोगे कि विकल्प बुद्धिमें व्यक्तयोका आरोप कर करके कि सब व्यक्तियों गो शब्दसे वाच्य हैं ऐसा आरोप करके सकेत बना लिया जायगा तो विकल्पसे आरोपित किए हुए अर्थके विषय मे ही शब्दका सकेत हुआ, वास्तविक अर्थके सम्बन्धमें तो सकेत न हुआ, जिसका कि यह भाव होगा कि शब्दने किसी अन्यको जाना और फिर उसका व्यवहारमे आरोप किया गया। यदि कहो कि स्थिर एकरूप होनेसे जैसे हिमाचल आदिक पदार्थोंमे संकेत व्यवहारकालमे वह है सो तो सकेत उनमे सम्भव है ऐसा मानना भी युक्त नही है, क्योकि वह हिमाचल आदिक पदार्थमे अपने अणुओंका समूहरूप है सो उनमे अणुओं का प्रादुर्भावके बाद विनाश होता रहता है। अतः सकेत वहा भी समारोपित पदार्थों मे विकल्पित मिथ्या पदार्थके सकेत आ गए। वस्तुतः सकेत परमार्थभूत पदार्थोंमे नही हो सकता। केवल एक कल्पनामे जच रहा है कि हिमाचल आदिक पर्वत स्थिर हैं। एक रूप हैं। वे वस्तुत पदार्थ ही नही हैं। उनमे जो अनेक परमाणु पडे हैं वे पदार्थ हैं।

वस्तुभूत स्वलक्षणमें शब्द सकेतकी असम्भवताकी शंकाका विवरण— शंकाकार कह रहा है कि यह बताओ कि शावलेय आदिक व्यक्तियोंमें जो समय किया जा रहा है, जो सकेत बनाये जा रहे हैं वे उत्पन्न पदार्थोंमें किये जा रहे हैं या अनुत्पन्नमें? यदि कहो कि अनुत्पन्नमे किये जाते तो यह बात अयुक्त है। तो असत् पदार्थ क्या किसी आधार बन सकता है ? नही। अतः अनुत्पन्न पदार्थोंमे सकेत की जानेकी बात कहना बिल्कुल अयुक्त है। वह संकेत उत्पन्न पदार्थोंमे भी नही किया जा सकता, क्योंकि सकेत होते हैं अर्थके अनुभव और शब्दके समर्थनपूर्वक। अर्थात् जो शब्द बोला जा रहा है उस शब्दका जो स्मरण हो और अनुभवमें प्रत्यक्षमें आये कोई पदार्थ तब उसका सकेत बने; किन्तु जब स्वभावका स्मरण करने लगे तब तो पदार्थका प्रध्वंस है। जब पदार्थका अनुभव था तब शब्दका स्मरण न था। तो शब्द स्मरण और अर्थानुभूति इन दोनोका भिन्न भिन्न काल होनेसे सकेत व्यवस्था बन ही नही सकती। जितने भी स्वलक्षण क्षण हैं, त्रिकाल त्रिलोकवर्ती जितने भी पदार्थ समूह हैं उनकी सदृशता ऐक्य रूपमे आरोपित करके संकेतका विधान करने लगेंगे। ऐसी भी सत्ता सही नही हो सकती। इसमें तो स्वलक्षण क्षणोंकी अवाच्यता है। बुद्धिमें जो सदृशता आरोपित की है। उस सदृशताका आरोपित करनेका कथन किया। परमार्थभूत वस्तुका कथन तो नही किया जा सकता। और, यदि तुम शब्द जन्य बुद्धिमें स्पष्ट प्रतिभास होता तब तो कह सकते थे कि इस शब्दके द्वारा गऊ वाच्य हुआ किन्तु ऐसा होता ही नही। जैसे इन्द्रिय बुद्धि स्पष्ट प्रतिभासरूप प्रतिभास

मे आती है इसी प्रकार शब्द बुद्धि स्पष्ट प्रतिभासमें नही आती। जो जिस कृत ज्ञान मे प्रतिभासित नही होता वह उसका अर्थ नही है। जैसे रूप शब्द बोलकर रूप शब्द से उत्पन्न हुआ जो ज्ञान है उसमें रसका प्रतिभास नही होता। इससे सिद्ध है कि रूप शब्दका अर्थ रस नही है इसी प्रकार शब्दजन्य ज्ञानमे स्वलक्षणका प्रतिभास तो नही होता। इससे सिद्ध है कि शब्दका अर्थ स्वलक्षण नही है।

शब्दजन्य ज्ञानमे स्वलक्षणके न प्रतिभासनेकी शंकाका समर्थन—जब भी कुछ शब्द बोला उस शब्दमे शब्दका संकेत कब बने ? शब्दका स्मरण किया फिर पदार्थका ज्ञान हुआ तो इसके अन्तरमे पदार्थ तो कभीका नष्ट हो गया। अब संकेत किसका किया जाय, किन्तु हो रहा है संकेत तो इसका कारण यह है कि जितने भी संकेत हैं, संकेत व्यवहार है वे सब विकल्पमें होते, मायारूपमे होते। वस्तुभूत पदार्थमें संकेत नही किया जा सकता। वस्तुभूत तो स्वलक्षण है और उसके निर्विकल्प दर्शन ही सम्भव है। उसके बाद जो कुछ तर्कभूत है, विकल्पभूत है उसमें यह कल्पना बनाते हो। पदार्थ हुआ और होकर नष्ट हो गया, तो शब्दका जो संकेत बना उन संकेतोंसे जो कुछ जाना वह सब विकल्प ही न जाना, आरोपित जाना, परमार्थभूत स्वलक्षण नही जाना। तो अब उसके वाच्यके सम्बन्धमें तर्कणा द्वारा बात कही जायगी कि जाना गया स्वलक्षण तो मिट गया, उससे अन्यकी व्यावृत्ति जानी। तो यो संकेतसे अर्थका प्रत्यय नही हो पाता किन्तु विकल्प ज्ञान उससे बनता है। निर्विकल्प दर्शन ही परमार्थभूत वस्तुको कहते हैं। विकल्पक ज्ञान तो मायारूप कल्पित आनुमानिक पदार्थ को कहते हैं। शब्द अर्थका अभिधायक है यह बात नही बनती किंतु शब्द अन्यापोहको कह रहा है यही ठीक बैठता है। ऐसा क्षणिक सिद्धान्तवादी अन्यापोहके समर्थनमें अपनी युक्तियाँ देकर सिद्धकर रहा है कि जब परमार्थभूत स्वलक्षणमें संकेत ही नही बन सकता तो फिर यह कहना कैसे युक्त हो सकता है कि शब्द अर्थका वाचक है ? देखिये-यहाँ स्वलक्षणमें शब्द संकेतके अभावकी बात कही जा रही है शब्द ज्ञानमे स्वलक्षणका रूप नही आता और एक वस्तुमें दो रूप आ नही सकते कि स्पष्टपना भी हो और अस्पष्टपना भी हो, और फिर उसमेसे शब्दो द्वारा वास्तविकके अस्पष्टपना वाच्य बन जाय यह नही हो सकता क्योकि एक रूपमे दो धर्मोका विरोध है इस कारण स्वलक्षणमें तो शब्दका वास्तविक संकेत नही बनता।

जातिमे, स्वलक्षण व जातिके योगमे तथा जातिमान अर्थमें भी संकेत की अशक्यताकी शंका—जातिमें भी शब्दका संकेत नही बन सकता, क्योकि यदि क्षणिक है तो स्वलक्षणकी तरह उसमे भी अन्वय नही रह सकता। फिर संकेतका कोई फल ही न रहा। जैसे क्षणिकमे स्वलक्षणमें संकेत कालमें तो अर्थ नही और संकेत कालके बाद होता है स्मरण उसके बाद होगा संकेतसे अर्थका ग्रहण तो संकेत से जैसे परमार्थभूत स्वलक्षण नही जाना जा सकता है क्योंकि स्वलक्षण तो होते ही

नष्ट हो गया था इसी प्रकार जाति भी क्षणिक है। तो जिस कालमें जाति निष्पन्न है उस कालमें तो उसका अनुभव हुआ और उसके बाद संकेत हुआ फिर संकेत स्मरण पूर्वक जब व्यवहारका समय आ गया उससे पहिले ही जाति नष्ट हो गयी तो जाति मे संकेत नही बन सकता। यदि जातिको नित्य मानते हो तो क्रमसे उसमें ज्ञानकी उत्पादकता नही बन सकती, क्योंकि जो नित्य है, एक स्वभावरूप है उसमें परकी अपेक्षा असम्भव है, इस कारण जातिमें भी शब्दका संकेत नही बन सकता। शंकाकार कह रहा है कि जैसे शब्दका संकेत स्वलक्षणमें और जातिमे नही बना इसी तरह स्वलक्षण और जातिके योगमे याने सम्बन्धमे भी संकेत नही बन सकता, क्योंकि स्वलक्षण और जातिमें सम्बन्ध क्या होगा? समवाय सम्बन्ध, अथवा संयोग सम्बन्ध या तादात्म्य सम्बन्ध? सो ये तीन प्रकारके सम्बन्ध स्वलक्षण और जातिमें बन नही सकते। जिस प्रकार स्वलक्षण और जातिके सम्बन्धमे संकेत नही बनता तो फिर जातिमान जो अर्थ है वह कुछ हो नही सकता, क्योंकि जातिका और अर्थका याने स्वलक्षणका कोई सम्बन्ध ही न रहा तब फिर उसमें संकेत कैसे हो सकता है?

बुद्धयाकारमें शब्दसंकेतकी अशक्यताकी शङ्का—अब ५ वें विकल्पकी बात पूछी जा रही है—बुद्धयाकारमें अर्थात् अर्थप्रतिबिम्बोमें क्या शब्दका संकेत हो सकता है। बुद्धयाकारमे भी शब्दका संकेत नही बन सकता क्योंकि बुद्धयाकार तो बुद्धिके तादात्म्यरूपसे रहता है। तो वह अन्य बुद्धि प्रतिपाद्य अर्थको नही ले जा सकती है क्योंकि बुद्धयाकार तो बुद्धिमें ही तादात्म्यरूपसे रह गया। अब वह अन्यव्यावृत्ति बुद्धिका कैसे बन जायगा? इसी विकल्पके सम्बन्धमें और भी सुनो! किसी विवक्षित शब्दसे अर्थक्रिया चाहने वाला, अपने प्रयोजनकी सिद्धि चाहने वाला पुरुष अर्थक्रियामें समर्थ पदार्थोको जानकर लगेगा ना, ऐसा जो लोग मानते हैं उन व्यवहारी जनोंने शब्दोंका नियोग किया। कहीं व्यसनी होनेके कारण शब्दोका नियोग किया, कहीं व्यसनी होनेके कारण शब्दोका नियोगन किया, निष्प्रयोजन नही किया, पर ये विकल्प यह बुद्धयाकार अर्थको, प्रयोजनवानको इष्ट कार्य करानेमें समर्थ नही है। जैसे अब ठंड लग रही हो तो क्या उस बुद्धयाकारके होनेसे ठंडका निवारण हो सकता है? नही हो सकता। तो जहां अर्थक्रिया नही बनती वहां संकेत क्या? और भी सुनो! बुद्धयाकारमें अर्थात् अर्थप्रतिबिम्बमें अर्थाकार प्रकारमें शब्द संकेत माननेपर अपोहवाद ही सिद्ध हुआ, क्योंकि अपोहवादी याने क्षणिक सिद्धान्त मानने वाले भी बाह्यरूपसे बुद्धयाकार मानते ही हैं और वे अन्यापोहरूप हैं सो वह शब्दका अर्थ हो यह बात अभीष्ट ही है। और फिर शब्दसे यदि अर्थ विवक्षाका ज्ञान होता है अर्थात् आन्तरिक अर्थको कहनेकी इच्छाका यदि ज्ञापन होता है तो सही है। शब्द कारण है और वह अर्थ विवक्षा कार्य है तो कार्य होनेसे शब्द अर्थविवक्षाका ज्ञापन कर देगा। जैसे धूम अग्निको सिद्ध कर देती है क्योंकि धूम अग्निका कार्य है किन्तु शब्द सीधा किसी पदार्थका संकेत करे सो नही कर सकता। इस प्रकार शङ्काकारने ५ विकल्पोंमें यह

सिद्ध करना चाहा है कि शब्दका संकेत किसी भी प्रकार वस्तुमें नही बनता। शब्दका वाच्य तो अन्यापोह है।

शब्द संकेतके विषयका समाधान—अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि शंकाकारका यह पूछना कि ये ध्वनियां संकेत युक्त होकर ही अर्थको वाचक हैं या संकेत बिना ही अर्थके वाचक हैं सो उन दो पक्षोंमें यही पक्ष युक्त है कि ध्वनियाँ संकेत युक्त होकर ही पदार्थकी वाचक होती हैं, और वह संकेत सामान्यविशेषात्मक में कहा जाता है। तब यह विकल्प उठाना कि क्या संकेत स्वलक्षणमें होता या जाति में होता अथवा स्वलक्षण एव जातिके सम्बन्धमें होता अथवा जातिमान अर्थमें होता या बुद्ध्याकारमें होता, यों विकल्प उठाकर शब्दके संकेतका निराकरण करना युक्त नहीं है। शब्दका संकेत सामान्य विशेषात्मक पदार्थमें हुआ करता है। जिसमें संकेत किया जाता है ऐसा सामान्य विशेषात्मक पदार्थ वास्तविक हैं और वह संकेत एवं व्यवहार कालमें व्यापक है, यह बात प्रमाण सिद्ध है। ये सामान्यविशेष धर्म वस्तुमें तादात्म्यरूपसे पाये जाते हैं। ये सब बातें प्रत्यक्षसे प्रसिद्ध हैं। किसी भी वस्तुको निरखकर उस वस्तुके समान अन्य वस्तुवोंका भी बोध किया जाता है और प्रयोजन वशसे असाधारण व्यक्तित्व देखकर कल्पनामें एकका ही बोध किया जाता है। किसी भी पदार्थके निरखनेपर सामान्य और विशेष दो प्रकारके प्रत्यय हो सकते हैं। यों सामान्य विशेषात्मक पदार्थमें शब्दका संकेत होता है। सामान्य विशेषात्मक पदार्थमें शब्दका संकेत होता है। सामान्य विशेषात्मक पदार्थ नित्यानित्यात्मक हुआ करता है वहाँ यह शंका नही उठायी जा सकती कि यदि पदार्थ अनित्य है तो उसमें संकेत नही बन सकता। यदि नित्य है तो क्रमसे ज्ञानकी उत्पादकता नही बन सकता। यदि नित्य है तो क्रमसे ज्ञानकी उत्पादकता नही बन सकती। ये दोनों विकल्प व्यर्थ हैं क्योंकि पदार्थ नित्यानित्यात्मक हुआ करते हैं। न सर्वथा नित्य हैं न सर्वथा अनित्य। और, फिर पदार्थ ज्ञानके उत्पादक नही होते, पदार्थ ज्ञानके विषयभूत एक सामग्री है।

सदृशपरिणामधर्मके कारण नाना व्यक्तियोंमें भी शब्दसंकेतकी संभवता—यहां यह भी नही कह सकते कि जब पदार्थ याने ये व्यक्तियां अनन्त हैं और व्यवहार कालमें उन अनन्त व्यक्तियोंका अनुगम नही होता। तब फिर इस शब्दका यह अर्थ है इस तरहका संकेत असम्भव है। यह बात यों युक्त नही कि समान परिणामकी अपेक्षासे देखा जाय तो उन व्यक्तियोंका तर्क नामक प्रमाणसे प्रतिभास होता है। तब उन व्यक्तियोंमें संकेत बन जाता है। यदि सदृश परिणामकी बात और तर्क नामक प्रमाणकी बात नही मानते तो अनुमानकी प्रवृत्ति भी नहीं हो सकती, क्योंकि अनुमानमें भी साध्य और साधन व्यक्ति अनन्त हैं उन शब्दोंका अनुगम बन नहीं सकता तब फिर उनमें अविनाभाव कैसे बनाया जा सकता है? यदि कहो कि उनमें अविनाभाव सम्बन्ध अन्य व्यावृत्तिसे जान लिया जायगा तो यह भी बात अयुक्त है

क्योंकि अन्य व्यावृत्तिमें सदृश परिणाम नहीं मानते हो या हो नहीं सकता है तो अन्य व्यावृत्ति भी नहीं बन सकती। सदृश परिणाम माने बिना अन्य व्यावृत्तिका भी तो परिज्ञान नहीं हो सकता। ऐसा भी नहीं कह सकते कि सामान्य विकल्पकी उत्पत्ति करने वाले अनुमान भी पदार्थोंमें विसदृश अर्थकी प्रतीति मात्रसे सदृश व्यवहारमें सहयोग मिलता है, वह बात भी युक्त नहीं है कि ऐसा माननेपर फिर नील आदिक विशेषणोंका अभाव हो चुकेगा। कैसे? जैसे कि खण्ड मुण्ड आदिक पदार्थ परमार्थसे असदृश होनेपर भी यदिसामान्य विकल्पके उत्पादक अनुभवके हेतु बनते हैं और सदृश व्यवहारके पात्र वे पदार्थ होते हैं तो उसी प्रकार स्वरूपसे अनील आदिक स्वभाव होनेपर भी नील आदिक विकल्पके उत्पादक अनुभवमें निमित्त होनेके कारण नीलादिक व्यवहार बन बैठेगा। फिर वास्तविक नीलादिक विशेषण ही क्या रहे?

सदृशपरिणाम न माननेपर अन्यव्यावृत्तिकी भी असिद्धि—सीधी बात यह है कि जब पदार्थोंमें सदृश परिणाम नहीं मानते तो ये पदार्थ सजातीय हैं ये विजातीय हैं। प्रथम तो यह व्यवस्था नहीं बनती। गौ गौ ये शब्द सजातीय हैं। अश्व, महिष आदि विजातीय हैं। इनका परिज्ञान तब होता जब कि सदृश परिणाम माना जाता है। सो सदृश परिणाम माननेपर यह बोध भी होगा कि ये सब गायें हैं क्योंकि इन सबका स्थिर स्थूल आकार एक समान है और यह सदृशता जहां जहां न मिलेगी, वहां विजातीय मान लिया जायगा कि यहाँ यह गौ व्यावृत्ति है, तो सदृश परिणाम तो अन्य व्यावृत्ति सिद्ध करनेके लिए भी मानना आवश्यक है। देखो, सदृश परिणाम होता है तभी तो अन्वय दृष्टान्त बनेगा और वहां तर्क नामक प्रमाणसे अविनाभाव जाना जायगा। तभी तो साधनसे साध्यका विज्ञान हो जाया करता है। यदि तर्क प्रमाण न मानकर व सदृश परिणाम न मानकर अन्य व्यावृत्तिसे ही साध्य साधनके सम्बन्धका ज्ञान मानते हो तब फिर यही सब बातें उन व्यक्तियोंके संकेतके सम्बन्धमें भी मान ली जायेंगी। जैसे अन्य व्यावृत्तिसे साध्य साधनका सम्बन्ध मान लिया जाता है इसी प्रकार अन्य व्यावृत्तिसे शब्द और अर्थका सम्बन्ध भी मान लिया जायगा और जब साध्य साधन व्यक्तियोंका सम्बन्ध जान लिया गया उसी प्रकार वस्तुमें शब्दका संकेत जान लिया गया, तब यह बात ठीक बैठ गई कि जिस वस्तुमें वास्तवमें कृत संकेत नहीं होते वे उसके वाचक नहीं होते। जैसे अश्व शब्दका संकेत सास्नादिमान गौ अर्थमें नहीं है तो अश्व शब्द सास्नादिमान गौका वाचक नहीं होता। तो इसी तरह परमार्थसे सभी वस्तुवोंमें सभी ध्वनियां सभी शब्द वाचक नहीं बनते। जो ध्वनि जिस अर्थके साथ अपना संकेत रखता है उस ध्वनिसे उस अर्थका ही बोध होता है। यों शब्दका पदार्थोंमें सीधा संकेत सम्भव है।

नित्यानित्यात्मक पदार्थोंमें शब्दसंकेत होनेके कारण अनेक प्रश्नोंका सुगम समाधान—शङ्काकारने जो यह कहा कि हिमाचल आदिक जो स्थिर पदार्थ हैं

उनमें जो एक एक करके अनेक परमाणु हैं वे परमार्थभूत वस्तु हैं और वे क्षणिक हैं। इस कारणसे इन स्थिर पदार्थोंका भी संकेत नहीं बन सकता। यह कहना शङ्काकार का अयुक्त है क्योंकि बाहरमें और अध्यात्ममें भी सर्वथा क्षणिक कुछ भी नहीं माना गया है। जो भी वस्तु होती है वह नित्यानित्यात्मक होती है। न सर्वथा नित्य है, कुछ न सर्वथा अनित्य है। तो उसके प्रत्यक्ष जो हिमाचल आदिक पर्वत हैं वे भी न सर्वथा नित्य हैं न अनित्य। सभी पदार्थ नित्यानित्यात्मक होते हैं और तब उनमें संकेत बनानेको कुछ भी विरोध नहीं है और जो शङ्काकारने यह कहा कि क्या उत्पन्न पदार्थमें संकेत होता है या अनुत्पन्न पदार्थमें? क्षणिकवादके सिद्धान्तके अनुसार कुछ युक्तियाँ देकर इन दोनों विकल्पोंका खण्डन करना चाहा है, लेकिन सभी जन स्पष्टतया जानते हैं कि उत्पन्न पदार्थोंमें ही संकेत सम्भव है। पदार्थ उत्पन्न होकर तुरन्त नष्ट नहीं हुआ करता, जिससे यह शङ्का की जाय कि उत्पन्न होकर जब पदार्थ नष्ट हो गया तो पहिले हुआ अनुभव, बादमें हुआ विकल्प, इसके बाद बना शब्दसंकेत फिर हुआ उसका स्मरण, तब जाकर व्यवहार बनता है। तो इतने समय पहिले तो पदार्थ ही उत्पन्न होकर नष्ट हो गया अब संकेत कहाँ है? यह कहना यों अयुक्त है कि पदार्थ नित्यानित्यात्मक होते हैं और मानो पर्यायमें उत्पन्न हुये पदार्थोंमें ही संकेत बनाया जाता है। इससे शब्द सीधा अर्थका प्रतिपादक है और इसी रूपसे शीघ्र शीघ्र शब्द बोलनेपर भी अर्थका अवबोध होता है और लोग शब्द बोलकर शीघ्र ही अर्थमें प्रवृत्ति किया करते हैं। इससे शब्दका सीधा अर्थमें संकेत होना युक्त बात है।

शब्दका अभिधेय अर्थको माननेपर इन्द्रियसमूहकी विफलताकी शंका और उसका उत्तर — शङ्काकार कहता है कि शब्दका अर्थ तो अन्यापोह है, अन्यकी व्यावृत्ति ही शब्दका वाच्य है। यदि शब्दका वाच्य पदार्थ मान लेंगे तो शब्दसे ही जब पदार्थका ज्ञान हो गया तो फिर इन इन्द्रियोंको इन्द्रियोंके सम्बन्धकी जरूरत ही क्या रही? फिर इन्द्रियोंका समुदाय विफल हो जायगा। उत्तरमें कहते हैं कि शब्दसे तो पदार्थका अस्पष्ट आकारमें ज्ञान होता है तब उसही पदार्थका स्पष्ट आकारमें ज्ञान करनेके लिए विशिष्ट इन्द्रियज्ञान उत्पन्न हुआ करता है इस कारण इन्द्रियोंके समुदाय की विफलता नहीं होती। किसी एक पदार्थमें पहिले अस्पष्टता झलके पीछे स्पष्टता झलके यह तो होता ही रहता है, क्योंकि ऐसा होनेमें सामग्री भेद कारण है। जब अस्पष्ट आकार झलका तब कुछ निर्बल सामग्री थी अथवा कोई पदार्थ बड़ी दूर था, वहाँसे दीखे तो अस्पष्ट आकार झलकता है। कुछ निकट गए तो निकटता होना यह दूसरी सामग्री मिली तो वहाँ स्पष्ट आकार झलका। एक ही आकारमें स्पष्ट प्रतिभास, अस्पष्ट प्रतिभास होना यह बराबर सम्भव है। सबके अनुभवकी बात है। जब कभी चल रहे हैं तो बड़ी दूरके पेड़ अस्पष्ट प्रतिभासित होते हैं। कुछ निकट पहुँचनेपर उनमें स्पष्ट प्रतिभास होता है। तो इसी प्रकार जब शाब्दिक ज्ञान हुआ तो अस्पष्ट आकार आया, जब अन्य इन्द्रियका विशेष उपयोग किया तब उसमें स्पष्ट आकार

आया, इस कारण यह कहना अयुक्त है कि शब्द यदि अर्थको कहने लगे, शब्दके द्वारा यदि प्रतिपाद्य अर्थ हो जाय तो जब शब्दसे साक्षात् अर्थका ज्ञान हो गया तो फिर चक्षु आदिक इन्द्रियकी विफलता हो जायगी। सो विफलता नहीं होती।

पदार्थके अभावमे भी शब्द होनेके कारण शब्दकी अर्थानभिधायकता का प्रश्न और उसका उत्तर अब शंकाकार कहता है कि पदार्थ नहीं भी है अथवा जो अतीत और भविष्यकी बात है सो अभी पदार्थ असत् है तो भी शब्दकी प्रवृत्ति होती है इस कारण शब्द अर्थका अभिधायक नहीं है क्योंकि अर्थ है ही नहीं, और शब्द हो रहा है इससे शब्दका वाच्य पदार्थ नहीं हुआ। अन्यापोह हुआ। उत्तर में कहते हैं कि यह बात कहना ठीक नहीं है क्योंकि जिस पदार्थके सम्बन्धमे शब्द बोले जा रहे वह पदार्थ नहीं है यहां कहीं। दूर रखा है अथवा अतीतकालमे हुआ है। भविष्यकालमे होगा। यदि नहीं हुआ वर्तमानमे तो भी वह अपने समयमे तो है। जैसे श्री रामचन्द्र जी शब्द बोला तो राम भगवान यद्यपि आजसे लाखों वर्ष पहिले हुए थे, वे इस समय नहीं हैं, पर उनके सम्बन्धमे कहा जा रहा है ऐसा तो शब्दका ज्ञान हो रहा। तो शब्द बोलनेसे जिस अर्थको कहा गया है वह अभी नहीं भी है तो भी वह पदार्थ अपने कालमे तो है। अन्यथा अतीतकालकी कोई चर्चा ही नहीं कर सकता क्योंकि चर्चा होगी शब्द द्वारा और अतीत कालकी बात कहता है तो वह पदार्थ है तो वह पदार्थ है कहां अब? तो अतीत भविष्यकी कोई बात नहीं कही जा सकती तब फिर व्यवहार ही क्या रहा। व्यवहारकी परिपूर्णता तब बनती है जब अतीत वर्तमान भविष्यत सबका उस वचनालापसे सम्बन्ध रहता है। तो पदार्थ वर्तमान काल में नहीं भी है जब कि शब्दका उच्चारण किया जा रहा है लेकिन वह अपने समयमे तो है अन्यथा अर्थात् पदार्थके वर्तमानमें अभाव होनेसे शब्द पदार्थका विषय करने वाला नहीं हो सकता, क्योंकि उस विषयका शब्दोच्चारण कालमें अभाव हो गया। क्षणिकवाद सिद्धान्तमें जब पदार्थका क्षण क्षणमें उत्पन्न होना, नष्ट होना मानते हैं तो जिस कालमें पदार्थ उत्पन्न हुआ उस कालमे तो शब्द नहीं बोला गया। अब शब्द बोलनेका समय आया उस पदार्थके बारेमे ज्यों कथनकी इच्छा उत्पन्न हुई तो वह पदार्थ न रहा। तो शब्दोच्चारणके समयमे पदार्थ कभी रह ही नहीं सकता। क्षणिक वाद सिद्धान्तमे तो इसका कभी योग ही नहीं जुड़ सकता तब उस अध्यक्षका विषय भूत कोई स्वलक्षण पदार्थ कैसे हो जायगा? क्षणिकवाद सिद्धान्तमे पदार्थ उत्पन्न हुआ, उसके बाद प्रत्यक्षसे उसका निर्विकल्प दर्शन हुआ। फिर प्रत्यक्ष ज्ञानसे विकल्प की उत्पत्ति हुई, फिर उस विकल्प ज्ञानसे शब्दमे वाच्य वाचक भावका परिज्ञान हुआ तो इतने सबके समयमें जब कि शब्द किसीका वाचक बने तो उससे कितना ही पहिले वह पदार्थ नष्ट हो गया जिसके बारेमें कुछ शब्द कहे जाते हैं। और शब्दकी भी बात न भी, केवल एक प्रत्यक्ष ज्ञानकी ही बात लो कि क्षणिक वादमें जब वस्तु उत्पन्न हुई तो वह आत्मावार करते ही नष्ट हो गई। द्वितीय क्षणमें किसी ज्ञानीने प्रत्यक्ष ज्ञान

किया तो प्रत्यक्ष ज्ञानके समय तो तुम्हारा स्वलक्षण क्षणिक निरन्वय निरंश पदार्थ ही नहीं रह पाता फिर प्रत्यक्षका विषय पदार्थ कैसे बनेगा ?

अविसंवादत्वकी प्रत्यक्षज्ञान और शब्दज्ञान दोनोंमें समानता—यदि कहो कि प्रत्यक्षका विषयभूत पदार्थ प्रत्यक्षके कालमें न रहा, मगर उस प्रत्यक्षसे प्रमाणान्तरकी प्रवृत्ति होनेरूप अविसंवाद तो बराबर चलता है। उससे यह सिद्ध होता कि अविसंवाद जिससे उत्पन्न हो वह ज्ञान प्रमाण है। और उसमें जो विषय किया वह नहीं है। क्षणिकवाद सिद्धान्तमें प्रत्यक्षज्ञानको निर्विकल्प कहा है। उसका स्वरूप अदाज करनेके लिये कुछ ऐसा समझ लो कि जैसे जैनोंने दर्शनका स्वरूप माना है—दर्शन निर्विकल्प होता है। विकल्प न होकर केवल प्रतिभास मात्र होना यह दर्शनका विषय है। इस ही किस्मका क्षणिकवादियोंके यहाँ प्रत्यक्षज्ञानका विषय होता है सो पदार्थ उत्पन्न हुआ उसके बाद प्रत्यक्षज्ञान हुआ तो उस प्रत्यक्ष ज्ञानने अपने कालमें विषयको न पाया वह पदार्थ तो नष्ट हो चुका लेकिन प्रत्यक्ष ज्ञानके बाद होता है सविकल्प ज्ञान अनुमान और उस विकल्पने ज्ञानमें अविसम्वाद पाया जा रहा है। प्रत्यक्ष ज्ञान अनुमान प्रमाणको उत्पन्न करता है इस कारण प्रमाण माना है तो इस तरह अविसम्वाद होनेसे यदि प्रत्यक्षमे कोई विपरता अनुभव करते हो तो शब्दजन्य ज्ञानमें भी प्रमाणान्तर की प्रवृत्ति रूप अविसम्वाद देखा जाता है ऐसे शब्दसे अर्थका प्रतिपादन होना भी अयुक्त नहीं है। जैसे कहीं ताजी भस्म दिखी तो झट अग्निका ज्ञान हो गया। अग्नि यद्यपि अतीत हो चुकी तो भी एक विशिष्ट भस्म अग्निका कार्यत्व उस कार्यके देखनेसे अनुमान उत्पन्न हुआ कि यहाँ अग्नि थी। क्योंकि उसका कार्यभूत विशिष्ट भस्म देखी जा रही है। तो इस अनुमानसे अग्नि थी इस ज्ञानमें सम्वाद पाया जा रहा है, और जैसे अमुक दिन अमुक समयपर चन्द्रग्रहण होगा, सूर्य ग्रहण होगा यों भविष्यकालके पदार्थके सम्बन्धमे भी प्रत्यक्ष प्रमाणका सम्वाद पाया जा रहा है। पत्रा वगैरह देखकर एकदम निर्णयके साथ कहते हैं ना कि अमुक दिन इतने बजे सूर्य ग्रहण पड़ेगा अथवा अमुक दिन इतने बजे चन्द्र ग्रहण पड़ेगा। और, जो बात कहा पहिलेसे वही बात समयपर नजर आती है तो इससे यह सिद्ध हुआ कि शब्दके उच्चारणके समयमे पदार्थ न हो तो भी शब्द उस पदार्थका बोधक होता है। जिस पुरुषने शब्दमे अर्थका संकेत ग्रहण किया है वह पदार्थ चाहे अब हो, अथवा आगे हो शब्द और अर्थका सकेत समझने वाला पुरुष तो शब्द सुनकर उस अर्थका ज्ञान कर ही लेगा। यदि कहो कि शब्दजन्य ज्ञानमे कभी कभी विसम्वाद भी देखा जाता यहो अर्थ हैं कि नहीं, इस कारण अप्रमाण है। तो भाई बात यह है कि शब्द जन्य ज्ञानमें यदि कहो अप्रमाणता नजर आये तो इसका अर्थ यह नहीं है कि सब जगह सदा उसमें अप्रमाणता मान ली जाय। नहीं तो कभी कभी प्रत्यक्ष ज्ञानमें भी विसम्वाद देखा जाता है तो कहीं प्रत्यक्ष ज्ञानमें विवाद पाया जानेसे यह तो नहीं हो जाता कि सभी जगह प्रत्यक्ष ज्ञान अप्रमाण हो जाय। यही बात इन सब ज्ञानोंमें

भी है। यहाँ शब्द जिस अर्थका प्रतिपादन करता है। कदाचित विसंम्वाद हो जाय तो कहीं हो गया इसके मायने यह नहीं कि उस शब्दमें प्रमाणता सब जगह रहे।

एक ही अर्थमे स्पष्टास्पष्टत्व प्रतिभास भेदका कारण, सामग्रीभेद— अब यह निर्णय हुआ ना कि एक ही पदार्थमें शब्दका जो बोध हुआ वह अस्पष्ट हुआ पीछे चक्षु आदिक इन्द्रियसे जो बोध हुआ वह स्पष्ट हुआ तब यह कहना तुम्हारा अयुक्त है कि इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य कुछ अन्य ही पदार्थ होता है और शब्दका विषयभूत कुछ अन्य ही पदार्थ हुआ करता है और यह भी कहना अयुक्त है कि तभी तो अंधा पुरुष शब्दसे कुछ जानता है मगर प्रत्यक्ष देख नही सकता और यह भी देखा जा रहा है कि अग्निका शरीरसे सम्बन्ध होनेसे जला हुआ पुरुष जिस दाहको समझता है उस दाहको क्या दाह शब्दके सुनने वाला व्यक्ति समझ सकता है? दाह शब्द बोलनेसे क्या उस तरहका ज्ञान हो जायगा जिस तरहका ज्ञान अग्निके हाथपर धर देनेसे होगा? नहीं हो सकता। तो इससे सिद्ध है कि इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य कुछ और है और शब्द द्वारा विषयभूत कुछ और है ऐसा जो शंकाकार कहता था वह बात सही नही है? क्योंकि पदार्थ में जो इस तरहके प्रतिभास भेद पा रहे हैं कि कोई स्पष्ट समझमें आ रहे कोई अस्पष्ट समझमें आ रहे तो यह सामग्रीके भेदसे भेद है, परन्तु पदार्थोंके भेदसे भेद नहीं है। कोई पदार्थ बहुत दूर है उसका ज्ञान अस्पष्ट होता, कुछ निकट जानेपर वही पदार्थ स्पष्ट हो गया। तो पहिले जो अस्पष्ट ज्ञान हो रहा और अब जो स्पष्ट ज्ञान हुआ है तो इन दोनोंका विषयभूत वही पदार्थ है या अन्य अन्य? वही पदार्थ है। स्पष्ट और अस्पष्टके जो ज्ञान बन रहे थे वे सामग्रीके भेदसे चल रहे थे। दूर होनेपर अस्पष्ट ज्ञान था निकट होनेसे स्पष्ट ज्ञान हो गया। जितने भी परिणमन होते हैं ज्ञान होते हैं केवल शब्दके ज्ञानकी ही बात नही, सभी ज्ञान सामान्य विशेषात्मक पदार्थका विषय करते हैं, इस कारण पदार्थमें भेदका अभाव है वही पदार्थ कभी अस्पष्ट ज्ञात होता कभी स्पष्ट ज्ञात होता। तो यो ही शब्द सुनकर जो तत्त्वका ज्ञान हुआ वह अस्पष्ट ज्ञान हुआ और नेत्रोंसे देखकर उस ही पदार्थका जो ज्ञान हुआ वह स्पष्ट ज्ञान हो गया तो शब्दज ज्ञानमे पदार्थका प्रतिभास बराबर सिद्ध है। इसी कारण शंकाकारने जो यह कहा कि जो जिस कुछ ज्ञानमे प्रतिभास नही होता वह उसका विषय नहीं है। उस अनुमानमे उनका हेतु असिद्ध है। देखो—शब्द जन्य ज्ञानमें सामान्य विशेषात्मक पदार्थ प्रतिभासित होता, बल्कि इस प्रयोगके साथ बोलिये कि जो ज्ञान जिस पदार्थमें निर्णयको उत्पन्न करता है व्यवहार करता है विकल्प ज्ञान उत्पन्न करता है वह ज्ञान उसको विषय कर रहा है। जैसे सामान्य विशेषात्मक पदार्थमे विकल्पोंसे उत्पन्न करता हुआ प्रत्यक्ष उस सामान्यविशेषात्मक पदार्थको विषय कर रहा है। इसी प्रकार शब्द भी सामान्य विशेषात्मक पदार्थमें व्यवहारको उत्पन्न करता है इस कारण शब्दका भी विषय भूत सामान्य विशेषात्मक पदार्थ है। इस प्रयोगमे हेतु असिद्ध नही है क्योंकि बहिरङ्ग पदार्थ जो अन्य घट पट आदिक विषयमें और अन्तरङ्ग पदार्थ आत्मामें विषयमे शब्द

जन्य व्यवहार उस ही प्रकारकी वस्तुमे, सद्भाव पाया जा रहा क्षणिक-शकाकार द्वारा कल्पित जो स्वलक्षण है, क्षणिक निरन्वय निरश जिसका अनुभव न हो। केवल प्रतिभास ही यह है पदार्थ, तो ऐसा स्वलक्षण नामक पदार्थ न तो प्रत्यक्षसे प्रतिभात होता है और न अनुमान आदिकसे प्रतिभात होता है। उसका तो स्व न भी नही होता। सामान्य विशेषात्मक पदार्थका बराबर सर्वत्र प्रतिभास होता है।

शब्दका वाच्य अर्थको न माननेपर शङ्काकी वकालतमें, फीकापन—शङ्काकारने जो पहिले यह कहा, कि इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य कुछ और ही पदार्थ है, शब्द का विषयभूत कुछ और ही तत्त्व है। तो पहिले आप अपने बोले हुए पदोको ही सिद्ध कर लीजिए। आप कह रहे हैं कि इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य कुछ और ही चीज है तो इस शब्दसे कई अर्थ कहा गया या नही? इन्द्रिय द्वारा गम्य कुछ अन्य ही है, तो कुछ अन्य ही है ऐसा कहनेमें, कोई पदार्थ कहोगे या नही? यदि कुछ न कहोगे तो फिर ये शब्द भी नही बोले जा सकते कि इन्द्रिय ग्राह्य कुछ और ही है। यदि इन शब्दोंसे कोई बात ही न कहेगे तो फिर इस शब्दके प्रयोगका यह कैसे ज्ञान हो सकेगा कि इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य पदार्थ कुछ भिन्न ही है। यदि कहो कि इस शब्दके द्वारा कोई पदार्थ कहा जाता है तो फिर सिद्ध हो गया कि शब्दसे पदार्थ कहा जाता है। शब्द पदार्थका वाचक होता है, इसीसे ही शब्दकी अर्थविषयता सिद्ध हो जाती है। फिर क्यो ऐसी प्रतिज्ञा किये फिरते हो कि शब्द पदार्थका वाचक नही है। यहाँ तो मान लो कितने ही घुमाव फेरसे शब्दका वाच्य अर्थ, किन्तु अन्यत्र न मानो, इसकी क्या व्यवस्था है? अन्यापोह सिद्ध करनेके प्रसगमें कई विडम्बना आती हैं तब उसका अनुसधान हुआ। तो बीचमे तुम्हें शब्दका वाच्य कोई पदार्थ मानना ही पड़ता है। तब फिर क्यो न समीजगह यह मान लें कि शब्द द्वारा अर्थ वाच्य हुआ करता है? यदि कहो कि यह शब्द साक्षात इन्द्रिय द्वारा ग्राह्यको अविषय करता है याने, इसका विषय साक्षात् इन्द्रियग्राह्य नही है तो परम्परासे इसका विषय इन्द्रियगोचर होता है कि नहीं? यदि परम्परासे भी इन्द्रियगोचर नही है वह अर्थ, तो साक्षात् विशेषण देना व्यर्थ है। और यदि परम्परासे पदार्थका बोध होता है तो चलो परम्परासे ही सही, अर्थात् पदार्थ जब उत्पन्न हुआ, उसके अनन्तर हुआ उसका प्रत्यक्ष। प्रत्यक्षसे हुआ विकल्प, विकल्पसे जाना वाच्य वाचक सम्बन्ध। उससे फिर स्मरण हुआ, तब जाकर पदार्थके शब्दके द्वारा यह कहा गया, यह जाना जाता है। यो बहुत बडी परम्परासे भी अर्थ का ज्ञान मान लो तो यह बतलावो कि परम्परासे जो हुई वह अर्थकी प्रतीति जो शब्द जन्य है, वह इन्द्रियज प्रतीतिके तुल्य है या इन्द्रियज प्रतीतिसे विलक्षण है? यदि कहो कि परम्परामें जो शब्द द्वारा अर्थका बोध होता है वह इन्द्रियज प्रतीतिके समान ही है तब फिर यह कहना कि शब्दसे कुछ और ही जाना जाता, इन्द्रियसे कुछ और ही जाना जाता यह खण्डित हो जाता है। क्योकि शब्दसे और परम्परा बढाकर भी जो अर्थ ज्ञान होता है वह अर्थका ज्ञान इन्द्रियज ज्ञानके समान माना है। यदि कहो कि

शब्दसे परम्परा देखकर जो अर्थका ज्ञान होता है वह इन्द्रियज ज्ञानसे विलक्षण है तो कहते हैं कि रहो विलक्षण लेकिन ऐसी प्रतीतिकी विलक्षणता होना पदार्थ भेदको सिद्ध नहीं करता। जिस शब्दका जो कुछ ज्ञान किया अमुक देश इस जगह है, इस तरह है, इससे जो बोध हुआ और उस ही देशको देखने गया तब जो उस देशका बोध हुआ तो इन दोनो भेदोमे प्रतिभास भेद तो है ही। शब्दसे जो जाना वह अस्पष्ट जाना और आँखोसे चलकर जो देखा वह स्पष्ट देखा। लेकिन देखा- जाना तो उस ही पदार्थको। प्रतीतिभेद विषयभेदका द्योतक नहीं है किन्तु सामग्री भेदका द्योतक है, एक भी पदार्थमे स्पष्ट और अस्पष्ट दोनो प्रकारके बोध होते हैं।

शब्दके द्वारा अर्थकी वाच्यता होनेसे तथ्यको छिपानेका असफल प्रयोग — अब शंकाकारके छद्म कहे हुए दाह शब्दका अर्थ पूछ रहे हैं। जो यह कहा शंकाकारने कि अग्निके सम्बन्धसे जला हुआ पुरुष दाहका कुछ और अर्थ समझता है और दाह शब्द सुनकरके दाहका कुछ और अर्थ समझता है सो कहो होगा कि दाह शब्द सुनकर यदि कोई उसका अर्थ न समझे तो उसके हाथपर आग उठाकर धर दो तो वह झट समझ जायगा। तो दाह शब्द सुनकर भिन्न अर्थ जाना गया। दाह शब्दका और दाहका शरीरमे सम्बन्ध होनेपर दाह शब्दका कुछ और ही अर्थ समझा। सो जो तुम जो दाह दाह बोल रहे हो तो पहिले दाहका ही अर्थ बताओ। दाह मायने क्या ? क्या दाह मायने अग्नि है या उष्णस्पर्श है या रूप विशेष है या फोड़ा है, या दाहका अर्थ दुःख है? कुछ भी अर्थ हो, शंकाकार कह रहा कि इन विकल्पोसे आपको क्या सिद्धि मिलती है ? चाहे अग्नि अर्थ हो चाहे फोडा अर्थ हो, इन विकल्पोसे आप कहना क्या चाहते ? उत्तरमे कहते कि इस अर्थके बीचमेंसे कोई भी अर्थ माना गया हो पर उससे इतना तो सिद्ध हो जाता कि शब्दसे अर्थका ज्ञान होता है, शब्द अर्थ बोध हुआ करता है शब्दका विषय पदार्थ नहीं होता यह बात तो असिद्ध हो जायगी। शंकाकार कहता है कि इस तरह तो दहनके सम्बन्धमे जैसे फोडा बन जाता है या दुःख उत्पन्न होता है वहाँ फोडा या दुःख दाह शब्द बोलने या सुननेसे भी क्यों नहीं हो जाता ? क्योंकि अर्थकी प्रतीति वहाँ भी है। जैसे जहाँ अग्निका सम्बन्ध शरीरसे हो रहा है और अर्थकी प्रतीति है ऐसे ही यहाँ भी अर्थ प्रतीति है जहाँ केवल दाह शब्द सुनकर अग्नि अर्थका ज्ञान हो रहा है। तो जैसे अग्नि छू जानेसे फोडा जानता आता है ऐसे ही दाह शब्द सुननेमे क्यो नहीं फोडा पैदा हो जाता? उत्तर देते हैं कि यह बात युक्त नहीं है। फोडासहित बन जाना शब्द जन्य ज्ञानका काम नहीं है। वह तो अग्निका काम है। अग्निके ज्ञान होनेसे कहीं फोडा कार्य नहीं बनता किन्तु अग्नि और दाहके सम्बन्धका काम है कि फोडा तैयार हो जाय। सो न भी हुआ ज्ञान अग्निका। कोई सो रहा है और उसके हाथपर आग धर दी जाय तो क्या वहां फोडा न बन जायगा। और कोई पुरुष दूरसे आँखोसे देख रहा है अग्निको लेकिन वहाँ फोडा कहाँ होता ? कोई मंत्र औषधिकी सामर्थ्यसे अग्निको छू भी रहा है तो भी फोडा नहीं

होता। इससे शब्द ज्ञानका काम और है और फोटा होना यह तो अग्निके सम्बन्धका काम है। एक ही पदार्थमे स्पष्ट और अस्पष्ट प्रतिभास होते हैं यह खण्डित नही हो सकता। प्रतिभास भेद होनेका कारण सामग्री भेद है, न कि भिन्न भिन्न पदार्थका होना। इससे सीधा मानना चाहिये कि शब्दसे अर्थका बोध होता है, अन्यापोहसे बोध नही होता।

सामग्रीभेदसे एक ही पदार्थमे स्पष्ट व अस्पष्ट दोनो प्रतिभासकी सिद्धि—जिस अर्थका वाचक शब्द बोला गया है उस शब्दसे जो अर्थ जाना जाता है तब तो वह अस्पष्टरूप है और उसी पदार्थको जब आंखोसे देखते हैं तब उसका स्पष्ट प्रतिभास भेद हुआ है यह पदार्थ भेदसे नही किन्तु सामग्री भेदसे हुआ है, इसी कारण शंकाकारका यह कहना अयुक्त है कि एक वस्तुमें दो रूप नही हो सकते। अर्थात् उसमे स्पष्टता भी हो और अस्पष्टता भी हो क्योंकि एक वस्तुमें दो रूपोंके होनेका विरोध है। यह बात यो अयुक्त है कि किसी एक ही अर्थको जब शब्दमात्रसे जाना तब वह अस्पष्ट होता है और उसीको नेत्रइन्द्रियसे जाना तो स्पष्ट होता है यो एक ही पदार्थमें अस्पष्ट और अस्पष्ट ये दोनो रूप बराबर रहते हैं और यह तो सर्वजनोंको विदित है कि दूरका पदार्थ जैसे वृक्ष देखा नेत्रइन्द्रियसे देखनेपर भी अस्पष्ट प्रतिभास होता है, बल्कि यह भी निर्णय नही हो पाता कि यह वृक्ष आमका है या जामुनका एक वृक्षाकार दिखता है। निकट पहुंचनेपर उस ही वृक्षका स्पष्ट प्रतिभास होता है और विशिष्ट निर्णय होता है तो एक पदार्थमें दो रूपोंका होना सम्भव है।

शब्दोको भाववाचक न माननेपर शास्त्रज्ञान, प्रवृत्ति धर्माचरण आदिके अभावका प्रसग—अब कहते हैं कि शकाकारने जो यह कहा था कि शब्दोंके द्वारा अभाव ही कहा जाता है अर्थात् अपोह वाच्य नही होता। क्योकि शब्दो द्वारा वाच्य अन्यापोह ही होता है यह कहना अयुक्त है। यदि शब्दो द्वारा पदार्थ वाच्य न हो और अपोह वाच्य हो तब फिर शब्दोने क्या किया? भावका तो प्रतिषेध कर लिया। सद्भावको तो शब्द बतायेंगे नही, फिर शब्दने किया क्या? और फिर जब शब्द कुछ नही कर सकता, किसी वस्तुका सकेत भी न बता सका तब फिर जो आगम मे नदी, देश, द्वीप, पर्वत, स्वर्ग, मोक्ष आदिकका वर्णन है उसकी प्रतिपत्ति कैसे होगी क्योंकि आप्तप्रणीत वाक्य भी आखिर शब्द हैं और शब्दोका वाच्य पदार्थ माना नही। अपोह माना जा रहा तो नदी देश आदिकका भी कैसे ज्ञान होगा? और मोक्षके साधनभूत क्रियावोमें प्रवृत्ति भी कैसे हो सकेगी, क्योंकि शब्दके अब बिल्कुल अकिञ्चित्कर बताया। उसमें कुछ भी नही किया और फिर भी अर्थकी प्रतीति मानो, अनुष्ठानोमें तपश्चरणमे, यज्ञ आदिकमे प्रवृत्ति मानो तब फिर सभी वाक्योका सभी पदार्थोंमें क्यो नही प्रतिपत्ति और प्रवृत्ति हो जाती क्योंकि शब्द तो कुछ करते नही।

तो शब्द सुनकर किसी भी शब्दसे कुछ भी कार्य कर बैठना चाहिये।

शब्दको अकिञ्चित्कर माननेपर सत्य असत्यकी व्यवस्थाका अभाव—और भी देखिए ! शब्द कुछ न करे और फिर भी पदार्थका ज्ञान मान लिया जाय तो तो इससे साँचे और झूठेकी व्यवस्था भी नही बन सकती, क्योकि सत्य क्या है असत्य क्या है ? इसकी प्रतिपत्ति न हो सकी। और जब सत्य असत्यकी व्यवस्था न बनी तो जो सत् है वह सबका सब नित्य है क्योकि क्षणिक होनेसे न क्रमसे अर्थक्रिया हो सकती न एक साथ अर्थक्रिया हो सकती ऐसा कोई अनुमान बनाता है और उस अनुमानको क्षणिकवादी असत्य कहता है तो क्षणिकवादियोके इस अनुमानको भी कि 'जो सत् हैं वे सब क्षणिक हैं, क्योकि नित्यमें न क्रमसे अर्थक्रिया बनती न एक साथ अर्थक्रिया बनती" इस अनुमानको भी असत्य कह दिया जायगा। अथवा नित्यवादियोके अनुमान को सत्य कह बैठे। अनित्यवादियोके अनुमानको असत्य कह बैठे क्योकि शब्दोंसे तो कुछ भी नही जाना और वहां शब्द सुनकर ज्ञान कर लिया जाता तो शब्दका और अर्थका सम्बन्ध बने बिना भी यदि अर्थज्ञान हो गया तब तो सत्य और झूठकी कोई व्यवस्था नही रह सकती, क्योकि शब्दका तो पदार्थोंने रचमात्र भी स्पर्श नही किया। अर्थात् शब्दोका विषय तो पदार्थ माना नही जा रहा। यदि कहो कि क्षणिकवादियोके द्वारा कहे गए अनुमान वचन तो किसी प्रकार परम्परासे अर्थका विषय करते हैं जैसे कि सबसे पहिले त्रैरूप्य साधनका दर्शन होता है उसके बाद सम्बन्धका स्मरण होता है, उसके बाद शब्दका प्रयोग होता है। यदि इस प्रकार किसी ढगसे क्षणिकवादियोके अनुमान वचन पदार्थको विषय कर लेते हैं तो उत्तरमे कहते हैं कि ऐसा कहनेपर तो फिर यह सिद्ध हो गया कि शब्द द्वारा फिर सर्वथा पदार्थ अवाच्य न कहलाया। देखो अभी शकाकारके अनुमान वचन पदार्थोंको विषय करने लगे।

शब्दोंसे तत्त्वसिद्धि अङ्गीकार करके भी शब्दको भाववाचक न माननेपर आश्चर्य—देखिये ! इस बातको कौन मानेगा कि क्षणिकवाद सिद्धान्तके बड़े २ आचार्य अपने पक्षकी भलाई बतानेके लिए अन्य पक्षकी असत्यता दिखानेके लिए शास्त्रोको तो रच रहे हैं और प्रतिज्ञा यह करते हैं कि वस्तु सर्वथा अनभिधेय है अर्थात् शब्दोंके द्वारा पदार्थ कहा नहीं जाता। तो इतने जो शास्त्र रच रहे हैं इन समस्त शास्त्रोकी शब्दोकी रचनाका क्या प्रयोजन है ? जब यह शब्द वस्तुको बताता ही नही क्योकि सर्वथा वाच्य रहित शब्दके द्वारा शास्त्रका प्रणयन किया नही जा सकता। कोई कुछ निबंध लिखे, शास्त्र रचना करे तो उसमे कुछ तो सोचता ही है। तो जो सर्वथा अभिधेय रहित हो शब्द तो कुछ शब्द रचना ही न बन सकेगी। देखो— वचनो द्वारा की गई तत्त्व सिद्धको तो अंगीकार करते हैं ये अर्थात् वचनोके द्वारा अपने सिद्धान्तकी सिद्धि पुष्टि तो कर रहे है, किन्तु पदार्थ शब्द द्वारा वाच्य है यह नही बताते। कितनी आश्चर्यकी बात है कि उन्ही शब्दोंको रच रचकर अपने तत्त्व

को सिद्धान्तकी सिद्धि करना चाह रहे और कह रहे हैं कि शब्द किसी पदार्थ का वाचक नही होता, यह म. महान आश्चर्यकी बात है शंकाकार कहता है कि परम्परासे वचनसे ये हेतु वचन उत्पन्न हुए हैं ऐसा वस्तुका सूचक है अर्थात् एक ऐसा सिलसिला होता है कि पहिले पदार्थका दर्शन होता उसके बाद विकल्पज्ञान होता फिर वाच्य वाचक सम्बन्ध होता सो अर्थसंकेत बनता है। इस तरहसे जो सज्जन शब्दरचना करते हैं शास्त्रप्रवचन करते हैं तो उनके वचन निरर्थक नही होते। वे परम्परासे पदार्थका अभिधान कर देते हैं। उत्तरमे कहते कि यह बात तो जो शंकित वादी नही है उनके यहा भी घटित होती है, यह कैसे कहा जा सकता कि उसका ही वचन तो पदार्थके दर्शनके सिलसिलेमे उत्पन्न हुआ और दूसरेका वचन पदार्थके दर्शनके अन्वयसे नही उत्पन्न हुआ और यदि कहेंगे तो दूसरे भी यो कहेंगे कि नही, हम साथ, उसका वचन वास्तविक दर्शनसे उत्पन्न हुआ, दूसरेका वचन नही हुआ। इसमे यदि शब्दका सीधा अर्थका अभिधायक मान लिया जाय तो इसमे कोई आपत्ति नही।

शब्दका विषय विवक्षामात्र माननेपर समस्त शब्दज्ञानोंकी निर्विशेष प्रमाणताका प्रसङ्ग—और भी देखिये। शंकाकारने समस्त वचनोंका विषय विवक्षामात्र माना है। वचन पदार्थका प्रतिपादन नही करते किन्तु वचन कहने वालेकी इच्छाको जाहिर करते हैं। तो जब समस्त वचनोंका विषय विवक्षा मात्र माना है तो वचन तो विवक्षामात्रको सूचन करके समाप्त हो गए। शब्दोंको शब्दजन्य ज्ञानकी प्रमाणता तो इतनेमे ही आई कि शब्द विवक्षामात्रकी सूचना दे। इसके आगे बात न हो तो सारा शाब्दिक ज्ञान प्रमाण हो जायगा, क्योंकि दूसरे आगम भी प्रतिवादीके अभिप्रायको बताने वाले हैं। जब शब्दका इतना ही काम हुआ कि विवक्षाको बतादे। तो जैसे कोई वादी शब्द बोलता है और वह शब्द उसकी विवक्षाको बता देता है इतने ही मात्रसे वह प्रमाण बन गया तो प्रतिवादी भी जो शब्द बोलेगा वहा प्रतिवादियोंकी विवक्षा ज्ञात हो जायगी और शब्द प्रमाण हो जायगा। तो इस तरहसे जितने भी शब्दजन्य ज्ञान हैं वे सब प्रमाण है, फिर न कोई सिद्धान्त रहा न असिद्धान्त रहा।

शब्दका विवक्षाव्यभिचारित्व—अब दूसरी बात एक यह है कि जैसे शङ्काकारने यह बतलाया है कि शब्द अर्थके प्रतिपादक नही होते अर्थ बताने वाले नही। शब्द पदार्थको नही बताते क्योंकि पदार्थके न होनेपर भी शब्द हो जाते हैं और कभी जिस प्रकारका शब्द होता है उस प्रकारका पदार्थ है नहीं और शब्द हो जाता है, जो पदार्थव्यभिचार हो गया। तो जैसे शब्दोंको पदार्थका व्यभिचारी कहा इसी तरह विवक्षामे भी व्यभिचार देखा जाता है। जैसे कि शङ्काकार कह रहा कि शब्द तो विवक्षामात्रका विषय करता है। तो शब्दोंमे भी विवक्षाव्यभिचार पाया जाता है फिर शब्द विवक्षाको कैसे बता सकेंगे ? फिर शब्दका विषय विवक्षा भी न रहा। देखो जब कभी बोलते बोलते कोई नाम स्मरणमे नही आ रहा है या स्खलित होगया

तब कहना तो है देवदत्त और कह बैठते हैं जिनदत्त तो देखो । विवक्षा कुछ और थी, कहना चाहिये था देवदत्तको और शब्द उठ गये जिनदत्तके, तो यो शब्दोमे विवक्षा व्यभिचार पाया गया — तब शब्द विवक्षाके प्रतिपादक नही हो सकते । यदि कहो कि भली प्रकारसे निर्णय किया गया कार्य कारणको व्यभिचारित नही करते हैं तो यह नियम अर्थ विशेषके प्रतिपादकत्वके सम्बन्धमे भी लगा लेना चाहिये अर्थात् अच्छी तरहसे निर्णीत किया गया शब्द अर्थको व्यभिचरित नही करता और पदार्थ, चाहे उपस्थित हो या न हो पर उस शब्दके द्वारा वही अर्थ जाना जाता है । ऐसा तो श्रोता समझ ही लेते । फिर पदार्थके साथ शब्दका व्यभिचार नही हुआ । सो यह मानना चाहिये कि शब्द पदार्थके वाचक होते हैं । जिस पदार्थमे जिस शब्दका सकेत सम्बन्ध किया गया है उस शब्दके द्वारा उस ही पदार्थका अविनाभाव होता है ।

शब्दसे प्रतिपत्ति प्रवृत्ति आदि देखे जानेसे शब्दकी अर्थप्रतिपादकता की सिद्धि — अब और भी सुनिये कि शब्द विवक्षाका प्रतिपादन करते हैं यह भी युक्त नही हो सकता और विवक्षामे बसाये गए पदार्थका भी प्रतिपादक नही हो सकता, क्योकि विवक्षासे तो ज्ञान व प्राप्ति नही देखी गई । किन्तु शब्दसे बाह्य अर्थमे घट पट आदिककी प्रतिपत्ति प्रवृत्ति और प्राप्ति बराबर देखी गई है । जैसे कोई कहे कि घट लावो । तो दूसरा समझ जाता है कि यह कहा गया है और झट घटके पास पहुचता है और घट लाकर दे देता है । तो देखो उस शब्दसे बाह्य अर्थमे प्रतिपत्ति, प्रवृत्ति हुई, प्राप्ति हुई । इससे शब्द अर्थका वाचक है प्रत्यक्षकी तरह । जैसे कि प्रत्यक्षसे ज्ञाताने अपने उपयोग सामग्रीकी अपेक्षा करके प्रत्यक्षभूत अर्थको जान लिया । आखे खोली, उपयोग लगाया, पदार्थको जान लिया । इसी प्रकार सकेत सामग्रीकी अपेक्षासे युक्त होकर शब्दसे शब्दार्थकी प्रतिपत्ति हुई, यह बात सभी मनुष्य जानते हैं । जिस शब्दका जिस अर्थमें सकेत समझ लिया है उस सकेतकी अपेक्षा रखकर उस शब्दके द्वारा अर्थका ज्ञान सभी मनुष्य किया करते हैं । यदि इस तरह अर्थका ज्ञान न हो सकेतसामग्रीकी अपेक्षा रखकर शब्दसे पदार्थका ज्ञान न हो तो फिर शब्दसे बाह्य अर्थमे प्रतिपत्ति, प्रवृत्ति, प्राप्ति कुछ भी नही हो सकती । तो शब्द सुनकर जब हम अर्थका ज्ञान करते, उसमें प्रवृत्ति करते तो इससे बढकर और प्रमाण क्या है इस बातका कि शब्द अर्थका प्रतिपादक है ?

शब्दसे प्रतिपत्ति प्रवृत्तिहोनेके विरोधमें शका व उत्तर — शकाकार कहता है कि पदार्थमे जो प्रवृत्ति हुई है सो शब्दने प्रवृत्ति नही करायी किन्तु चाहने वाले उस पदार्थमे चाह लगी हुई थी उस इच्छाके कारण उनकी प्रवृत्ति हुई है । तो उत्तरमे कहते हैं कि यों तो फिर प्रत्यक्ष आदिकमे भी अप्रवर्तकता हो जायगी । प्रत्यक्ष ज्ञानसे जो पुरुष पदार्थमे प्रवृत्ति करने लगता है वहां भी यह कह डालेंगे कि पदार्थमें प्रवृत्ति प्रत्यक्ष ज्ञानके कारण नही हुई किन्तु पदार्थकी अभिलाषा कर रहे थे वे मनुष्य

तो उसको जो उस पदार्थमें चाह लगी है इस चाहके कारण प्रवृत्ति हुई है। यदि कहो कि प्रत्यक्ष ज्ञानसे ज्ञाता पुरुष परम्परासे प्रवृत्ति कर लेता है अर्थात् प्रत्यक्ष इस अभिलाषाको उत्पन्न करता है, फिर अभिलाषासे पदार्थोंकी प्रवृत्ति हुई। तो देखो— पदार्थमें प्रवृत्तिका कारण प्रत्यक्षज्ञान ही तो हुआ उत्तरमें कहते हैं कि यह बात शब्दमें भी कही जा सकती है कि शब्द अभिलाषाको उत्पन्न करते हैं और अभिलाषासे फिर प्रवृत्ति बनती है क्योंकि जैसे परम्परया प्रवर्तकता प्रत्यक्षमें कहते हो उसी प्रकार परम्परया प्रवर्तकता शब्द विज्ञानमें भी सिद्ध होती है। इस कारण जो सीधा स्पष्ट सर्वजन जान ही रहे बिना समझाये कि शब्द बोलनेसे पदार्थका ज्ञान हो जाता है तो इस सुगमतत्त्वका क्यों लोप किया जा रहा है?

शब्दोच्चारणमात्र विवक्षा माननेपर शब्दकी विवक्षानभिधायकता— और भी देखिये शंकाकारने जो यह कहा है कि शब्द तो विवक्षामात्रको विषय करता है। किसीने कोई शब्द बोला तो उस शब्दसे वक्ता यह जान गया कि इस पुरुषके कहनेकी यह इच्छा है। शब्दसे पदार्थ नहीं जाना गया। यों शब्द विवक्षाका प्रतिपादक है ऐसा कहने वाले शंकाकारसे पूछा जा रहा है कि विवक्षा शब्दका अर्थ क्या है? क्या शब्दके उच्चारणकी इच्छा मात्र करना ही विवक्षा कहलाता है या "इस शब्दसे इस अर्थको मैं कहता हूँ" इस प्रकारके अभिप्रायका नाम विवक्षा है। यदि कहो कि शब्दके उच्चारणकी इच्छा मात्रको विवक्षा कहते हैं और इस विवक्षाका शब्द प्रतिपादक होता है तो देखिये फिर तो वक्ता और श्रोता दोनोंके शास्त्रादिकमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि शब्दने कहा क्या? शब्दके उच्चारणकी इच्छा मात्र बताया। शब्दमें कोई विशेषता तो नहीं आयी कि इस शब्दसे यह पदार्थ कहा गया है, इस शब्दसे यह बात कही गई है। ऐसी भिन्न भिन्न बातोंका बोध तो नहीं हो सकता। केवल शब्दके उच्चारणकी इच्छा मात्रको शब्दसे जाना गया है। तब फिर शास्त्र आदिकमें प्रवृत्ति तो हो ही नहीं सकती। ऐसा कोई होश वाला मनुष्य नहीं है, जो शब्द निमित्तक इच्छा मात्रको जाननेके लिये शास्त्रको, वचनोंको, बनाये या शास्त्रको सुने। तब शब्दका वाच्य इतना ही समझें कि शब्दके उच्चारणकी इच्छा भर तो किया। कोई शास्त्रको ऐसा नहीं पढता है कि शास्त्र बनाने वालेके शब्दोच्चारणकी इच्छा हुई यों समझें इस प्रयोजनसे कौन शास्त्र पढता है और इस प्रयोजनसे कौन वक्ता बोलता है क्योंकि यदि इच्छामात्र ही विषय है तो अटपट भी कोई शब्द बोले और कोई व्यवस्थित कोई निबंध हो, दोनोंका अर्थ बराबर है क्योंकि शब्दका अर्थ तो इतना ही रहा कि इच्छा। तो जो अटपट बक रहा है उससे भी जाना गया कि इसके उच्चारणकी इच्छा है। और जिसने बडे विवेक पूर्वक भी कोई युक्तिसे रचना की है तो उसके भी इतना ही जाना जायगा कि इसके शब्दोच्चारणकी इच्छा है। तो शब्दोच्चारणकी इच्छामात्र यदि विवक्षा है तो उससे कुछ भी प्रवृत्ति नहीं बन सकती, क्योंकि कुछ भी शब्द कोई बोल लेंगे उससे केवल एक यह अनुमान बनाना है कि

उनमे भिन्नता कुछ रही नही। तो सारे शब्दोके समूह अर्थके प्रतिपादक बन जायेंगे। तब फिर कोई भी पुरुष किसी भी भाषासे अनभिज्ञ न रहेगा। शब्द बोलना सब जानते ही हैं। कुछ भी बोले और वे शब्द बिना सकेतके अभिप्रायको बताते हैं तब फिर सभी लोग सभी भाषाके विद्वान कहलाने लगेंगे। इससे यह बात तो नही बनती कि सकेतकी अपेक्षा किए बिना ही वचन उस प्रकारके अभिप्रायका गमक हो जाय। यदि कहो कि सकेतकी अपेक्षा रखकर वचन उस प्रकारके गमक होते हैं तब तो सकेत की अपेक्षा रखकर वे शब्द सीधे ही पदार्थके गमक क्यो नही हो जाते। जैसे सकेत सापेक्ष होकर शब्द अभिप्रायके बोधक होते हैं वैसे ही सापेक्ष होकर शब्द सीधे पदार्थ के ही बोधक क्यो नही हो जाते जिस पदार्थको कहनेकी वक्ता इच्छा रख रहा है। शब्द कही पदार्थसे डरता नही है जो डरके मारे सारे शब्द पदार्थमे साक्षात् न प्रवर्ते।

शब्दमे अर्थवाचकताकी मान्यतामे ही सुव्यवस्था— जो बात समस्त जनोके चित्तमें सुगम प्रसिद्ध है उस बातको मना करके कल्पनायें करके अन्यापोह विवक्षा आदिक वाच्य बनाये जा रहे हैं इस श्रमसे क्या लाभ? यदि कहोगे कि पदार्थ तो अनन्त हैं। उन अनन्त पदार्थोमे सकेत कैसे किया जा सकता है? सो सकेतकी अशक्यता होनेसे शब्दकी प्रवृत्ति पदार्थमे नही हो पाती और यह न्यायकी बात है। उत्तरमे कहते हैं कि यह बात तो अभिप्रायमे भी लगा सकते हैं। अभिप्राय भी तो अनन्त होते हैं तब सकेत उन अभिप्रायोको कैसे ग्रहण करेगा? तब फिर शब्द अभिप्रायके भी गमक नही हो सकते हैं। इस तरह सामान्य विशेषात्मक स्वलक्षण पदार्थ को शब्दोंके द्वारा अनिर्देश्य कहना युक्त नही है। अर्थात् जो शकाकारका यह अभिप्राय है कि शब्द द्वारा पदार्थ निर्दिष्ट नही होता, किन्तु शब्द द्वारा अन्यापोह ही कहा जाता अथवा विवक्षा आदिक कहा जाता यह बात युक्त नही है किन्तु शब्द सीधा सामान्य विशेषात्मक पदार्थका गमक होता है। चौकी बोलनेसे तुरन्त लोग चौकीको समझ जाते हैं। शब्द अर्थके वाचक हैं इसमें कोई सदेह नही।

लक्षित अथवा अलक्षित वस्तुमे अनिर्देश्यत्व कथनकी असिद्धि—अब यह बतलावो जो यह कह रहे हो कि शब्द द्वारा पदार्थ अनिर्देश्य है ऐसा जो कह रहे हो याने वे पदार्थ शब्द द्वारा नही कहे जाते तो ऐसा बोलनेमे जिसको वह कह रहे हो तो उसे न समझकर अनिर्देश्य बतला रहे हो या उसे समझकर अनिर्देश्य बतला रहे हो? शकाकारने जो यह कहा है कि शब्द द्वारा वह पदार्थ वाच्य नही होता सो उसे न समझकर कह रहे हो कि वाच्य नही होता या समझकर कह रहे हो कि वाच्य नही होता जैसे कोई कहे कि यह घडा भला नही है तो जो भला नही है उसको समझो तो सही कि वह है फिर उसमे विशेषता लगाओ। तो जिसको अनिर्देश्य कह रहे हो उसको न समझकर कह रहे हो या समझकर कह रहे हो?—यदि कहो कि उसको न समझकर ही कह रहे हैं उसका प्रतिपादन किये बिना ही अनिर्देश्य शब्दसे कह रहे हो

तो इसमे बड़ा दोष आता है। तब तो घट पट आदिक अटपट सभी अनिर्देश्य हो जायेंगे। जब शब्द द्वारा किसीको न समझकर अनिर्देश्य बतलाने लगे तो न समझनेकी बात तो सबमें समान है। फिर वहाँ अतिप्रसंग दोष हो जायगा। यदि कहो कि उसको समझ करके अनिर्देश्य कह रहे उसका प्रतिपादन करते यह है, इसको अनिर्देश्य कहा जा रहा है, ऐसा प्रतिपादन करके अनिर्देश्य बनाया जायगा तो इसमे स्ववचन विरोध आता है। पहिले तो शब्दके द्वारा स्वलक्षणका प्रतिपादन कर लिया फिर उसीका प्रतिषेध करते हो। अनिर्देश्य बतानेसे पहिले जो तत् शब्द द्वारा जिसका प्रयोग किया है उसका प्रतिपादन करके ही तो कह रहे हो। तो अनिर्देश्य रहा निर्देश्य हो निर्देश्य मायने बताया जाने योग्य य ने वाच्य हो गया फिर अवाच्य अब कहाँ रहा, अनिर्देश्य तो रहा नही, हो तो गया निर्देश्य और फिर उसीका निषेध करते हो कि अनिर्देश्य है।

अनिर्देश्य शब्दसे कुछ निर्देश्य या कुछ अनिर्देश्य होनेके विकल्पोसे अनिर्देश्यताका निराकरण — अब यह बतलावो कि अनिर्देश्य शब्दका भी कुछ अर्थ है कि नही। अनिर्देश्य शब्दके द्वारा भी स्वलक्षण यदि नही कहा गया तो फिर अनिर्देश्यपनेकी सिद्धि ही क्या होगी? वह स्वलक्षण अनिर्देश्य है। अवाच्य है तो यह स्वलक्षण ऐसा कहकर कुछ समझा कि नही। समझा तो निर्देश्य हो गया। प्रतिपाद्य हो गया। फिर उसका निषेध करना कैसे सही बन सकता है? और, और, भी जाने दो पर यह तो बतलावो कि यह पदार्थ अनिर्देश्य है तो अनिर्देश्य शब्दसे भी यह कुछ न कहा गया तो अनिर्देश्य क्या रहा? कुछ तो ज्ञानमें आना चाहिये कि इस पदार्थ का अनिर्देश्य कहा जा रहा है? यदि कहो कि भ्रान्ति मात्रसे अनिर्देश्य अनिर्देश्यकी सिद्धि हो जाती है तो भ्रान्तिसे ही तो सिद्धि भई। वास्तवमे तो सिद्धि नही भई। परमार्थसे न अनिर्देश्य रहा, न असाधारण रहा। यदि कहो कि प्रत्यक्ष ज्ञानमे निर्विकल्प ज्ञानसे अनिर्देश्य असाधारण स्वलक्षणकी प्रसिद्धि हो जायगी। तो यह भी तुम्हारा केवल सोचना मात्र है। क्योंकि प्रत्यक्षके द्वारा निर्देश योग्य सामान्य विशेषात्मक पदार्थका ही साक्षात्कार होता है। तो इससे स्पष्ट सिद्ध है कि शब्दके द्वारा एकदम सीधे पदार्थका बोध होता है और संकेत अपेक्ष होकर होता है। यह शब्दोमे वाचकत्व शक्ति है, शब्द पदार्थका वाचक होता है। तो अब जो शब्द गुणवान पुरुषोंके द्वारा बोले गए हैं वे शब्द प्रमाणभूत होते हैं और जो दोषवान पुरुषोके द्वारा बोले गए है वे शब्द अप्रमाणभूत होते हैं।

शब्दकी निर्देशकताका कथन — शंकाकार कहता है कि निर्देशता और साधारणता वस्तुको छोड़कर और कुछ चीज नही मालूम होती। और वस्तु है अवाच्य तो अपने आप निर्देश्य हो गया। कहते हैं कि यह बात तो असाधारणपनेमे भी समान है। वहाँ भी यह कह दिया जायगा कि सुलभ स्वलक्षणसे अन्य अन्य कोई साधारणता कुछ भी नही प्रतिभात होती है। यदि कहो कि साधारणता तो

वस्तुका स्वरूप ही है तो यह बात अन्य जगह भी कह देंगे कि निर्देश्यता साधारणता भी वस्तुका स्वरूप है। यों शब्दके द्वारा पदार्थ अनिर्देश्य होता है यह बात कहना सगत नही होता। यदि अनिर्देश्य हो तो फिर वचन व्यवहार भी समाप्त। जैसा कीडा मकोडोंके वचन निकलते हैं उन वचनोके द्वारा कुछ निर्देश नही होता है। तो क्या उनसे व्यवहार चलता है? इसी तरह मनुष्योके शब्दोमे भी यदि कुछ निर्देश नही पडा है, कोई वाच्य वाचक भाव नही है तो फिर बोलनेका प्रयोजन क्या रहा? न कुछ निषेध कर सकेंगे न कोई विधि। बोलना ही व्यर्थ है जब शब्दके द्वारा बात ही नही कही जाती। पर ऐसा तो नही है। शब्दोकी तो ऐसी उत्तम उत्तम रचनायें चलती हैं कि जिन रचनाओंसे विद्वत् जन बडे बडे अर्थ मर्म समझकर प्रसन्न हुआ करते हैं। इससे यह सीधी बात माननेको इन्कार नही किया जा सकता कि शब्द अर्थके प्रतिपादक होते हैं।

निषेध्य वाच्यताके वस्तुगत या अवस्तुगत होनेके विकल्पोसे निषेधयत्वकी असिद्धि—अब एक दूसरी भी बात सुनो कि जिस वाच्यताका स्वलक्षणमे प्रतिषेध किया जा रहा है, कह रहे हो ना कि शब्द स्वलक्षणके वाचक नही हैं किन्तु अन्यापोहके वाचक हैं। तो अन्यापोहमे रहने वाली वाच्यता क्या वह विकल्पमे प्रतिभासित होने वाली है जिसका कि वस्तुमे निषेध किया जा रहा है अथवा वह अन्यापोहगत वाच्यता वस्तुगत है जिसका कि वस्तुमे निषेध किया जा रहा है। इन दो विकल्पोका सीधा अर्थ यह है कि केवल बुद्धिमे प्रतिभासित हुई अन्यापोहगत वाच्यता शब्दों द्वारा किसी प्रकार समझी गई वाच्यताका विरोध किया जा रहा है या वास्तविक वाच्यताका निषेध किया जा रहा है? यदि कहोगे कि विकल्पमें आने वाली परिकल्पित हैं, अन्यापोहगत वाच्यताका निषेध किया जा रहा है तो यह बात युक्त है। कल्पित विकल्परूप अटपट वाचकताका तो निषेध है ही। क्योंकि अन्यापोहमें रहने वाली वाच्यता कोई वास्तविक वाच्यता यदि वस्तुगत हो तो तो उसका निषेध ही नही किया जा सकता था। इससे परिकल्पित वाच्यताका प्रतिषेध किया जा रहा है। इस पक्षमे हमे कोई आपत्ति नही है। ठीक है। इससे तो यही सिद्ध होगा कि वास्तविक वाच्यता का निषेध नही किया जा रहा है किन्तु उपकल्पित वाच्यताका निषेध किया जा रहा है। यदि द्वितीय पक्ष मानोगे। अर्थात् वस्तुमे वास्तविक वाच्यताका निषेध किया जा रहा है तो ऐसा कहनेमे स्व वचन विरोध हो रहा है। पहिले तो कह रहे हो कि वास्तविक वाच्यता, फिर कहते हो उसका निषेध किया जा रहा है तो इस वाक्यमें प्रथम अश तो यह हुआ कि वास्तविक वाच्यता द्वितीय अश यह हुआ कि उसका निषेध किया जा रहा है तो वस्तुगत वाच्यता हो तो निषेध कैसे किया जा सकता है? वह तो वस्तुगत है। यथार्थ है। तो इस कारण आत्मा की प्रमाणीकता यदि चाहते हो तो प्रतीति सिद्ध अर्थकी बात तो अवश्य मान लेना चाहिये। सर्वजनोकी प्रतीतिमे यह बात बैठी हुई है कि शब्दमें अर्थकी वाचकता

पडी हुई है शब्द बोलते ही जैसे जो कुछ हित रूप अथवा अहितरूप हो, उस ढगसे उस पदार्थके प्रति व्यवहार करते हैं। इससे प्रकट सिद्ध है कि शब्द अर्थका वाचक है। और जब वचन पदार्थोके वाचक हुए तो यह सिद्ध हुआ कि वचन और संकेत आदिकके निमित्तसे अर्थ ज्ञान हुआ करता है। अब वह अर्थज्ञान यदि सर्वज्ञ पुरुषके वचन आदिकके निमित्तसे हुआ है तो वह आगम रूप है। और, यदि अनाप्त असर्वज्ञ पुरुषके वचन सकेत आदिकके निमित्तसे हुए हैं तो वे अयथार्थ हो सकनेके कारण अप्रमाण हैं अनागम हैं। यो आगमके लक्षणका यह मूल प्रकरण चल रहा है जिसमें कहा गया कि आप्तके वचन आदिकके निमित्तसे होने वाले अर्थज्ञानको आगम कहते हैं। आप्त है, सर्वज्ञ है इसको सिद्धि पहिले बडे विस्तारपूर्वक की गई है और वचन अर्थ के प्रतिपादक होते हैं। शब्दो द्वारा पदार्थोंका अवबोध होता है तो यो यह लक्षण पूर्ण सिद्ध हो जाता है कि सर्वज्ञके वचनके कारणसे जो अर्थज्ञान हुआ वह आगम है।

ज्ञानके भेदोके प्रकरणमे आगमप्रमाणका कथन - ज्ञानके मूलमे दो भेद किये गए थे प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्षके दो भेद किये गए—साव्यवहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक प्रत्यक्ष। साव्यवहारिक प्रत्यक्ष तो जो चक्षु इन्द्रिय द्वारा या अन्य इन्द्रिय द्वारा स्पष्ट जाना जाता है पदार्थ, वह तो है साव्यवहारिक प्रत्यक्ष और इन्द्रिय की सहायता बिना ज्ञानावरणके विश्लेषके कारण आत्मीय शक्तिसे जो अर्थज्ञान होता है परमार्थ प्रत्यक्ष। पारमार्थिक प्रत्यक्षके दो भेद हैं—एक विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष दूसरा सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष। विकल पारमार्थिक प्रत्यक्षमे अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान है। सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष केवलज्ञानको कहते हैं। यो प्रत्यक्ष ज्ञानकी व्याख्याके बाद इस तृतीय अध्यायमे परोक्षज्ञानकी चर्चा चली है। परोक्ष ज्ञानके सबंध में अनेक प्रकारके लोगोंके अभिमत हैं। कोई दो परोक्ष प्रमाण मानता कोई तीन चार मानता पर उनके नाम इस प्रकार बोले गये हैं कि जिससे सब परोक्षोका उन भेदोंमे ग्रहण नही होता और किसी किसी परोक्ष ज्ञानको दुबारा कह दिया गया है। तो उनकी विवेचनाके बाद यह सिद्धान्त प्रकट हुआ कि स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम ये परोक्षज्ञानके ५ भेद हैं। यह दार्शनिक विधिसे ज्ञानके भेदकी बात चल रही है, वस्तुत जिसे साव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा गया था वह भी परोक्ष ज्ञान है। इन्द्रिय और मनकी सहायता से जो ज्ञान किया जाता है उसे परोक्षज्ञान कहते हैं। साव्यवहारिक प्रत्यक्षमे इन्द्रियकी अपेक्षा स्पष्ट है फिर भी एक दार्शनिक पद्धतिसे इसे साव्यवहारिक प्रत्यक्षमे लेकर पारमार्थिक प्रत्यक्षमे न बताकर प्रत्यक्षत्वके निर्देश करने के दोषसे बचकर यहा परोक्षज्ञानमे ये ५ प्रमाण कहे गए हैं। ये ५ प्रकारके प्रमाण युक्तिसिद्ध हैं और इसको क्रमसे युक्ति सिद्ध की गई है। स्मृति प्रमाणभूत है। स्मृतिके बिना सकल व्यवहारका उच्छेद हो जायगा। प्रत्यभिज्ञान प्रमाणभूत है। प्रत्यभिज्ञान तो पद पदपर लोकव्यवहारमें आता है। कोई शब्द बोला तो उस शब्दके बोलते ही तुरन्त तो उस शब्दका प्रत्यभिज्ञान बनता है। यहा शब्दमे उस शब्दके

समान है जिसका कि संकेत और अर्थ यह है तो इसका भी संकेत अर्थ यही है ि प्रत्यभिज्ञान भी बड़ा जीवनमें उपकारी है। तर्क प्रमाणसे ये सब विचार और युक्तियां चलती हैं जिससे ज्ञानके सत्य और असत्यका भी निर्णय किया जाता है। अनुमान प्रमाण परोक्षज्ञान है क्योंकि चक्षुरिन्द्रियजन्य ज्ञानकी तरह प्रत्यक्ष के आगे गए साक्षी स्पष्टता नहीं होती। उन सब भेदोंका वर्णन करनेके बाद यह आगम प्रमाणका वर्णन चल रहा है।

शब्दके अर्थप्रतिपादकत्वकी सिद्धि होनेसे आगमप्रामाण्यव्यवस्था— आगम प्रमाणके वर्णनमें अनेक शंकायें आयीं। शब्द और अर्थका सम्बन्ध भी है क्या जिससे कि शब्द अर्थका प्रतिपादक बन जाय, इस शंकाका भी उत्तर दिया गया। अब यहाँ मुख्य यह शंका चल रही है कि शब्द अर्थका प्रतिपादक नहीं होता किन्तु अन्यापोहका प्रतिपादक होता है। जो भी शब्द बोला जाय उसका जो भी अर्थ है, भाव है वह भाव भी उस शब्दसे नहीं जाना गया, किन्तु उस पदार्थके अतिरिक्त अन्य पदार्थकी व्यावृत्ति है। इतना ही मात्र जाना गया। पदार्थके साथ यह भी जाना गया कि इस पदार्थके अतिरिक्त अन्य पदार्थोंका धर्म इसमें नहीं है। यह तो शोभा शृङ्गार की बात थी किन्तु जब यह एकान्त कर लिया गया कि शब्दके द्वारा तो अन्यापोह मात्र कहा गया है, शब्द द्वारा वस्तु वाच्य ही नहीं होता तो ऐसा माननेपर न तो शास्त्र रहता न आगम रहता, न लोकव्यवहार चलता। सबका लोप हो जाता। तो प्रतीतिसे युक्तिसे यह सिद्ध किया गया यहां कि शब्द अर्थका ही प्रतिपादक होता है। परिकल्पित अन्यापोह आदिकका प्रतिपादक नहीं होता। यों जिसको अपने ज्ञानकी प्रमाणताका निर्णय करना है, जिनको अपने ज्ञान आत्माकी प्रमाणिकताका निर्णय करना है उन्हें शब्दजन्य ज्ञानकी प्रमाणीकताकी बात तो पहिले ठीक कर लेना चाहिये, क्योंकि समस्त ज्ञानोंकी प्रमाणीकताका आधार तो ये सब शब्द रचनायें हैं। शब्दोंसे हम अर्थ जानेंगे और उससे द्रव्य गुण वाच्यता अवाच्यताकी सारी बात समझेंगे। उसीके आधारपर तो अनुमान प्रमाण है। आगम प्रमाण है। सभी प्रमाण चलते हैं, इससे यह ठीक निर्णय रखना चाहिये कि शब्द अर्थके प्रतिपादक हैं और गुणवान वक्ताके कहे गए शब्दोंके निमित्तसे जो अर्थज्ञान होता है वह अर्थज्ञान प्रमाणभूत आगमभूत है।

पदादिस्फोटमें अर्थवाचकत्वकी सिद्धिका शङ्काकार द्वारा पूर्वपक्ष— आगमके लक्षणके प्रकरणमें प्रसङ्गप्राप्त यह वर्णन चल रहा था कि शब्द तो वाचक होता है और अर्थ पदार्थ वाच्य होता है। इस सम्बन्धमें एक शङ्का तो यह चली थी कि शब्दका वाच्य पदार्थ नहीं होता किन्तु अन्यापोह होता विवक्षा होगी आदिक। सो इस विषयपर बड़ा विवेचन किया गया है। अब दूसरी प्रकारकी यहां शंका होती है कि पदार्थ तो वाच्य हैं किन्तु उनके वाचक शब्द नहीं हैं। पदार्थोंका वाचक पदादि-

स्फोट है। वर्णादिकके द्वारा प्रकट किया गया नित्य व्यापक पद आदिक जो अर्थ है उसको स्फोट कहते हैं। यह शंका मीमांसक सिद्धान्तके अनुसार है। शंकाकार यहाँ यह समझ रहा है कि पद ये जो कहेगा सो शब्दके द्वारा न कहेगा, किन्तु शब्दोंके द्वारा पदादिकका अर्थ अभिव्यक्त है। याने शब्द सुनकर उन पदोंका यह अर्थ है ऐसा ज्ञान हुआ और वह अर्थ जो कि स्फोटरूप है वह है पदार्थका वाचक न कि शब्द। यदि वर्णोंको पदार्थोंका वाचक मानोगे तो उसमें यह पूछा जायगा कि क्या वे वर्ण सब समुदित होकर पदार्थके वाचक होते हैं या वे वर्ण जुदे जुदे व्यस्त रहकर पदार्थोंके वाचक होते हैं ? जैसे किसी शब्दके कई वर्ण हैं। पुस्तक कहा तो पुस्तकमें : प् उ स् त् अ क् अ ये ७ वर्ण हैं। अब ये व्यस्त हुये पदार्थोंके वाचक होते हैं, अर्थात् इनमेंसे जुदे जुदे प् उ आदिक पदार्थके पुस्तकमें वाचक बन जाते हैं। तब तो एक ही वर्णसे पुस्तक आदिक पदार्थोंकी प्रतिपत्ति हो जानी चाहिये। जब वर्णादिक व्यस्त होकर भी पदार्थोंके वाचक रहे हैं तो एक ही वर्णसे पदार्थोंका ज्ञान हो जायगा फिर द्वितीय तृतीय आदिक वर्णोंका उच्चारण करना व्यर्थ हो जायगा। इससे यह तो कह नहीं सकते कि वर्ण व्यस्त होकर जुदे जुदे रहकर पदार्थोंके वाचक होते हैं। अब यदि कहोगे कि वे वर्ण समुदित होकर पदार्थोंके वाचक होते हैं तो यह बात भी ठीक नहीं है क्योंकि वर्णोंका समुदाय बन ही कब सकता है। जो कोई वक्ता पुरुष जो कुछ भी शब्द बोलेगा तो उनमें वे वर्ण क्रमसे बोलनेमें आये और क्रमसे जो वर्ण उत्पन्न होते हैं वे उसके बाद नष्ट हो गए तो जब वर्ण क्रमसे उत्पन्न हुए और उत्पन्न होकर नष्ट हो गए तब उनका समुदाय बन कब सकेगा ?

एक साथ उत्पन्न हुए वर्णोंमें अर्थप्रतिपादकत्वके हेतुभूत समुदितत्वकी अक्षमताका कथन— यह भी नहीं कह सकते कि एक साथ उत्पन्न होने वाले वर्णोंमें समुदायकी कल्पना होती है। क्यों नहीं यह बात युक्त है कि एक साथ वर्ण एक पुरुष की अपेक्षा तो उत्पन्न नहीं हो सकता क्योंकि वह पुरुष जब जिस स्थान करण प्रयत्न में लग रहा है तब अन्य स्थान करण प्रयत्न नहीं होते। जब जिस स्थान करणका प्रयत्न हो रहा है तब उसके अनुकूल वर्णकी उत्पत्ति होती है तो एक पुरुषके द्वारा समस्त वर्णोंकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। और, भिन्न भिन्न पुरुष बोल दें वे समस्त शब्द तो उनका समुदाय एक समयमें हो भी जायगा लेकिन वह शब्दोंका समूह अर्थ का प्रतिपादक नहीं हो सकता जैसे प् उ स् त् अ क् ये सारे वर्ण एक एक अलग अलग बोल दिये भिन्न प्राणियोंने तो उनका समुदाय तो एक समय बन गया पर अर्थ प्रतिपादक वह वचनसमूह न बना क्योंकि शब्दजन्य ज्ञान तो इस विधिसे होता है कि प्रतिनियत वर्णोंका क्रमसे ज्ञान होता जाय। उसके बाद शब्दज ज्ञान होता है। शब्द बोलकर जिस पदार्थका ज्ञान होता है वह इस रीतिसे होता है। तो ये वर्ण न व्यस्त होकर पदार्थोंके प्रतिपादक न हो सके और न समुदित होकर पदार्थके प्रतिपादक बन सके। इस कारण वर्ण पदार्थोंका वाचक नहीं है किन्तु पद आदिक अर्थ पदार्थोंके

उत्पन्न हुआ ज्ञान और उस ज्ञानसे उत्पन्न हुआ संस्कार यह भी अन्तिम वर्णके प्रति सहकारी नहीं बन सकता।

पूर्ववर्णसंवेदनप्रभव संस्कारसे भी वर्णोंके वाचकत्वकी व्यवस्थाकी असिद्धि — और भी सुनो। पूर्व वर्णोंके ज्ञानसे उत्पन्न हुआ संस्कार अपने उत्पादक पूर्ववर्णके ज्ञानविषयक अर्थात् पूर्व वर्णकी स्मृतिके हेतु होते हैं, सो वे पदार्थान्तरमें अन्य वर्णोंमें ज्ञानको उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं हैं। शंकाकार यह कह रहा है कि जो वर्ण बोला गया है, एक शब्दसे तो प्रत्येक वर्णका होता है ज्ञान और माना उससे उत्पन्न होता है संस्कार, तो वह अपने ही उत्पादक ज्ञानके विषयकी स्मृति करायेगा, अन्य पदार्थोंके विषयमें तो ज्ञान न करा देगा। जो संस्कार जिसके ज्ञानसे उत्पन्न हुआ है वह संस्कार उस ही के सम्बन्धमें स्मृति ज्ञान बना देगा, अन्यका ज्ञान नहीं करा सकता है। जैसे कि घटके ज्ञान करनेसे जो संस्कार बना है वह घटका स्मरण करायेगा या पट आदिकका? तो ऐसे यह समझना चाहिये कि पूर्व वर्णके सम्वेदनसे जो सस्कार उत्पन्न होगा वह पूर्व वर्णोंका ही स्मरण करायेगा, वह कहीं अन्य अर्थान्तरका अन्य वर्णका ज्ञान नहीं करा सकता। और, यह भी सम्भव नहीं है कि मेरे संस्कारसे उत्पन्न हुई स्मृतियां वे उत्तर वर्णके ज्ञानमें सम्बन्धकी सहकारी हो जायेंगी सो भी बात नहीं है, क्योंकि वे स्मृतियां एक साथ उत्पन्न नहीं होती। जब वर्ण क्रमसे बोले जा रहे हैं उन वर्णोंका भी क्रमसे बोध चल रहा है तो इस शंकाके प्रसङ्गमें उसकी आवश्यकता क्या रही? स्मृतियां एक साथ उत्पन्न होतीं और एक साथ उत्पन्न होने वाली स्मृतियोंसे फिर अवस्था सम्भव है क्योंकि जो जो वर्ण बोले गये वे बोलनेके ही साथ नष्ट होते गए। तो उन वर्णोंमें कैसे संस्कार बन सकता है? यह भी नहीं कह सकते कि समस्त संस्कारोंमें उत्पन्न होने वाली या समस्त संस्कारोंको उत्पन्न करने वाली या समस्त संस्कारोंमें उत्पन्न होनेवाली एक ही स्मृति हो सो बात नहीं है, क्योंकि परस्पर विरुद्ध अनेक पदार्थोंकी अनुभूतिमें उत्पन्न जो संस्कार होते हैं वे एक स्मृतिको उत्पन्न न करेंगे, लेकिन अब तुम्हारे इस कथनमें भी कैसे एक युक्ति बन सकती है? जैसे भिन्न भिन्न पदार्थोंके अनुभवसे स्मृति नहीं बना करती। नहीं तो सब जीवोंमें, सभी पदार्थोंके अनुभवसे उत्पन्न हुए संस्कार एक ही स्मृतिको उत्पन्न करे इससे पूर्व वर्णोंमें अन्तिम वर्ण कुछ भी अनुगृहीत होता है तब अन्तिम वर्ण शब्दका प्रतिपादक है यह बात सम्भव नहीं होती।

अन्यवर्णनिरपेक्ष होकर भी अन्त्य वर्णमें अर्थप्रतिपादकताका अभाव — यह भी नहीं है कि अन्य वर्णोंकी अपेक्षा न रखकर अन्तिम वर्ण पदार्थका प्रतिपादक हो जाये। जैसे पुस्तक शब्दमें पूर्वके ६ वर्णोंकी अपेक्षा न रखकर अन्तिम वर्ण जो अ है वह अर्थका प्रतिपादक बन जाय यह बात भी युक्त नहीं है। यदि अन्तिम वर्ण पूर्व वर्णोंकी अपेक्षा न रखकर पदार्थोंका प्रतिपादक हो तब फिर पूर्व वर्णोंका उच्चारण

करना व्यर्थ है । और, फिर जो अन्तिम वर्ण है वह तो अव्यवस्थित रहेगा । अनेक जगह पाया जाता है, तो किसी भी शब्दमें रहने वाला जो अन्तिम वर्ण है वह यदि अर्थका प्रतिपादक है तो दुनियामें जितने भी पदार्थ हैं, पुस्तक चौकी गाय, भैंस आदिक सभी पदार्थोंका बोध हो जाना चाहिये । इससे यह बात एकदम स्पष्ट है कि वर्ण न तो समुदित होकर याने समस्त रूपमें आकर पदार्थका प्रतिपादन कर सकता है और न वर्ण अलग-अलग रहकर अर्थके प्रतिपादक हो सकते हैं और होती तो है शब्दोंसे अर्थ की प्रतीति । पुस्तक कहा तो झट सब लोग पुस्तक समझ गए । गौ कहा तो सब लोग गौ समझ गए । इस तरह जब वर्ण समूह समस्त या व्यस्त होकर भी अर्थके प्रतिपादक नहीं हैं और उन शब्दोंसे अर्थकी प्रतीति होती है तब अन्यथानुपपत्तिसे यह सिद्ध हुआ कि वर्णोंसे अतिरिक्त कोई स्फोट नामक तत्त्व है, वह पदार्थके ज्ञानका कारण होता है । पदार्थका वाचक शब्द नहीं है किन्तु पदार्थका वाचक पदस्फोट है । शब्दोंसे तो पदका अर्थ व्यक्त किया जाता है । अब जो कुछ अर्थ समझा गया वह अर्थ पदार्थका वाचक है ।

वर्णसे अर्थसंवित्ति होनेमें बाधा देकर स्फोटके पदार्थवाचकत्वका समर्थन—शंकाकार कह रहा है कि वाचकत्वके सम्बन्धमें दूसरी बात यह है कि इन्द्रियजन्य ज्ञानमें यह वर्ण निरन्वय होता हुआ बिना क्रमके प्रतिभासमान होता है अर्थात् निरंश होता हुआ वर्ण श्रोत्रविज्ञानमें प्रतिभासित होता है सुननेके व्यापार के भी अनन्तर भिन्न अर्थको प्रकट करने वाली ज्ञप्तिका अनुभव होता है । इससे यह सिद्ध हुआ कि वर्ण निरंश होकर एक साथ प्रतिभासमान होता है । यह अनुभव वर्ण विषयक नहीं है, क्योंकि वर्ण तो परस्पर एक दूसरेसे हटे हुए हैं तब वे वर्ण एक प्रतिभासको उत्पन्न नहीं कर सकते व और यह जानकारी सामान्य विषयक भी नहीं है क्योंकि वर्णत्वको छोड़कर अन्य कुछ सामान्य उन वर्णोंमें नहीं पाया जाता । जैसे पुस्तक शब्द बोला और उसमें प् उ आदिक ७ वर्ण हैं तो उन वर्णोंमें सामान्य और क्या चीज है ? वर्णोंके वर्णत्वको सामान्य कहते हैं और वर्णत्व कभी प्रतिनियत अर्थ का परिज्ञान करने वाला हो नहीं सकता । और, इस प्रतीति जानकारीको भ्रान्त भी नहीं कह सकते । जो हम शब्द सुनकर जानकारी किया करते हैं वे जानकारियां भ्रान्त हों सो बात नहीं, क्योंकि वे तो बाधा रहित जानकारी हैं । अबाध्यमान हैं अतएव ये जानकारियां भ्रान्त नहीं हैं । और, यह भी नहीं कह सकते कि भले ही यह स्फोट अबाध्यमान ज्ञानका विषय है तो भी इसका असत्त्व है । है ही नहीं यह बात नहीं कह सकते । क्योंकि इस तरहसे तो अवयवी द्रव्यादिकका भी असत्त्व बन बैठेगा । जो प्रत्यक्षज्ञानके विषयभूत हैं घट पट आदिक पदार्थ, ये हैं सब अवयवी पदार्थ । इनके छोटे छोटे अंश हो जायें तो अनेक हो सकते हैं । तो यों ये अबाध्यमान ज्ञानका विषयभूत होनेपर भी उसे असत् मान लिया जाय तो ये सब घट, पट भोजन वस्त्र आदिक अबाध्यमान ज्ञानके विषयभूत हैं तिसपर भी इनका असत्त्व हो जायगा ।

इस तरह वर्ण अर्थके वाचक नही हुआ करते । किन्तु वर्णोंसे अभिव्यज्जमान, व्यक्त हुआ जो पद दिकका अर्थ है वह अर्थ पदार्थका वाचक होता है।

स्फोटके नित्यत्वका शकाकार द्वारा समर्थन—वर्णादिकके द्वारा अभिव्यज्यमान पदादिकोके अर्थका नाम है स्फोट और उस स्फोटको नित्य मानना चाहिये । वर्ण बोलकर, सुनकर जो पदादिकका अर्थ प्रतिभासमें आया वह अर्थ नित्य है। जैसे कि कभी कभी शब्द व्यक्त होते हैं तिसपर भी शब्दोको नित्य माना गया है। इसी प्रकार वर्णादिकसे जो अर्थ प्रकट होता है क्योकि स्फोटको अनित्य मानकर कभी उस स्फोटसे पदार्थकी प्रतीति ही नही हो सकती क्योकि सकेत कालमे जिस स्फोटका अनुभव किया था, सकेतकालमे अनुभव किया गया स्फोट तो उसी समय नष्ट हो गया। फिर वह वाचक कैसे बन सकता । यदि नित्य नही मानते, अनित्य माना जा रहा हो उस बीचकी शकाये हैं ये सकेतके समयमें अनुभव किया गया स्फोट तो उसी समय नष्ट हो गया । अब अन्य समयमे अन्य देशमे उसी शब्द को सुना। पुस्तक शब्दको सुना तो उससे पुस्तकत्व धर्म वाले अर्थकी प्रतीति न होगी क्योकि असकेतित शब्दसे जिस शब्दका कोई सकेत नही बना उसमे अर्थका ज्ञान असम्भव है । यदि कहो कि जिन शब्दोंके सकेत नही किए गए जैसे असकेतित शब्दोसे ऐसे अर्थका ज्ञान होना है तो अन्य द्वापसे आये हुए पुरुषको भी पुस्तक आदिक अर्थों की प्रतिपत्ति हो जाना चाहिये । और, अब असकेतित शब्दसे भी पदार्थोंका ज्ञान होने लगे; अपरिचित मनुष्य भी शब्द सुनकर उसका अर्थ समझने लगे फिर उसमे सकेत का करना भी व्यर्थ हो जायगा। इससे यह बात सिद्ध हुई कि जाना तो जाता है पदार्थ ही मगर उन पदार्थोंका वाचक शब्द नही किन्तु शब्दो द्वारा अभिव्यज्जमान पदादिकका अर्थ ही वस्तुका वाचक होता है। इस तरह पदार्थ तो वाच्य हुआ किन्तु उसका वाचक शब्द नही किन्तु स्फोट होता है। इस तरह मीमांसक सिद्धान्तानुयायी ने वाच्य तो पदार्थको माना किन्तु उसका वाचक शब्द नही है। वर्णोंसे व्यक्त किया गया पदादिकका अर्थ जो बुद्धिगत होता है वह पदार्थोंका वाचक है यह सिद्ध किया गया।

वर्णकी अर्थप्रतिपादकताके प्रतिविधानमें पूर्ववर्णाभावकी कार्यजनकता की सिद्धि — वर्णोंके द्वारा अर्थ वाच्य नही होता है किन्तु पदस्फोट ही वाच्य हुआ करता है ऐसी आशंकाका अब उत्तर देते हैं। जो बात सब जनोमें प्रतीयमान है उस को न मानकर किसी अघटित तत्त्वकी कल्पना करना विवेक नही है। ज्ञान आत्महित के लिए किया जाता है। सब ज्ञानको इतना दुरूह कठिन बना लेना यह शान्तिमार्गके अनुसार बात नही है। स्पष्ट विदित होता है कि सुने हुए शब्दके पूर्व वर्णोंके ध्वससे सहित अन्तिम वर्णसे अर्थप्रतीति जानी जाती है। इस कारण वर्णोंसे अर्थकी अभिव्यक्ति माननेमें अर्थकी वाच्यता माननेमे जो दोष दिया गया था कि वर्ण ध्वस्त होकर

वर्ण अर्थके प्रतिपादक होते है या समस्त समुदित होकर अर्थके प्रतिपादक होते है और उनमे दोषकी कल्पना की, ये कोई दोष नही लगते। पूर्व वर्णके ध्वस्त होनेकी अन्तिम वर्णमें सहकारिताका विरोध नही है क्योंकि देखा जाता है कि डठल और फलका जब सयोग नही रहता। पेड़में कोई आमका फल लगा है तो जब तक डठलका सयोग है टहनीमे जब तक वह फल ऊपर लगा हुआ है और जब डठलका और फलका संयोग मिट जाता है तो सयोगका अभाव भी कुछ काम कर रहा है कि फल गिरनेके कार्यमें काम कर रहा है अर्थात् जब डठलका और फलका संयोग नही रहा तो फलमें जो गुरुता थी, जो डंठलके सम्बन्धसे प्रतिबद्ध थी, गुरुताका काम है नीचे गिर जाना, सो नही हो रहा था। ज्यों ही डठल और फलके संयोगका अभाव हुआ कि गुरुता अप्रतिबद्ध होनेसे अब वह सयोगका अभाव फल गिरानेके कार्यकी उत्पत्तिमे कारण बन रहा है। और, यह तो सब पदार्थोंमें सिद्धान्तकी बात है कि पूर्वपर्यायका अभाव उत्तर पर्यायकी उत्पत्तिका कारण बनता है। उत्तरमे होने वाला संयोग, उसका करने वाला कौन? पूर्वपर्यायके संयोगका अभाव। जब किसी वस्तुका और अग्निका सयोग होता है जैसे जलभरी बटलोही और अग्निका संयोग होता है तो देखो उस कालमें पानीमें जो शीतपर्याय हो रही थी उसका प्रध्वस हो जाता है और उष्णताकी उत्पत्ति हो जाती है। उस कच्चे घटेका अग्निसे सयोग होनेसे उस घडमें जो पूर्वरूप था काला, पीला आदिक जो मिट्टीका रूप था वह प्रध्वंससे युक्त होता है और ललाईकी उसमें उत्पत्ति देखी जाती है। तो देखो! जो लालिमाकी उत्पत्ति हुई वह पूर्वरूपके प्रध्वस से विशिष्ट है तो इसी प्रकार शब्दोमे जो अंतिम वर्ण है वह पूर्व वर्णोंके प्रध्वससे विशिष्ट होते हैं तो अर्थकी प्रतीति उससे होती है यह बात सबकी बुद्धिमे आ रही है।

पूर्व वर्ण विज्ञानाभाव विशिस्टपूर्व वर्णज्ञानज संस्कारापेक्ष अन्तिम वर्णमे अर्थप्रतीत्युत्पादकत्व—अथवा पूर्व वर्णके विज्ञानके अभावसे सहित, पूर्व वर्ण के ज्ञानसे उत्पन्न हुए संस्कारकी अपेक्षा रखने वाला अन्तिम वर्ण पदार्थ प्रतीतिका उत्पादक होता ही है यहाँ यह समझना कि जब शब्द बोले जाते हैं तो उनमे वर्ण जैसे ६-७ भी हों तो जब बोलना शुरू करते हैं और अगला वर्ण बोलते हैं तो पूर्व वर्णका तो ध्वंस हो गया। यों ७ वा वर्ण जब बोला तो पूर्व वर्ण जो बोले गये थे उनका उस समय उस प्रकारका ज्ञान था। पूर्व वर्ण ध्वस्त हुए, उसके साथ पूर्व वर्णके विज्ञानका भी अभाव हुआ। अब उस स्थितिप विशिष्ट जो अन्तिम वर्ण बोला जा रहा है जो कि पूर्व वर्णोंके ज्ञानसे उत्पन्न हुए सस्कारकी अपेक्षा रख रहा है तो उस क्रममें उत्तरोत्तर वर्ण बोले जा रहे हैं। तो यो वह अन्तिम वर्ण अर्थ प्रतीतिका उत्पादन करने वाला है। शंकाकार कहता है कि पूर्व वर्णोंका संस्कार विषयान्तरमे ज्ञान कैसे पैदा कर देगा? अर्थात् जिस अर्थको समझनेके लिए शब्द बोले जा रहे हैं वे अर्थ तो हैं विषयान्तर क्योकि संस्कार तो किया गया पूर्व वर्णोंका। तो पूर्व वर्णोंका सस्कार अन्य पदार्थोंमे विज्ञान कैसे उत्पन्न कर देगा? उत्तर देते हैं कि यह प्रश्न यो युक्त नही

है कि ऐसा देखा जा रहा है । सस्कारके होनेपर पदार्थका ज्ञान हो रहा है । शब्द सुनते ही पूर्व वर्णोका तो सस्कार रहता है उससे सहित जो अन्तिम वर्ण बोला गया उसके अनन्तर ही पदार्थका बोध हो जाता है । इस तरह पूर्व वर्णके ज्ञानके संस्कार की अपेक्षा रखते हुए यह अन्तिम वर्ण पदार्थोंकी प्रतीतिका उत्पादक हो जाता है।

पूर्ववर्णज्ञानप्रभावसस्कार द्वारा अन्तिम वर्ण सहायता पूर्व वर्ण अन्तिम वर्णके सहकारी किस तरह होते हैं और पूर्व वर्णोंके विज्ञानसे उत्पन्न हुआ सस्कार भी किस विधिसे अन्तिम वर्णकी सहायता किया करता है इसकी भी विधि सुनो । किसी शब्दमें मान लो ६–७ वर्ण हैं तो प्रथम वर्णमे तो उस प्रथम वर्णका विज्ञान हुआ और उस विज्ञानसे फिर प्रथम वर्णका सस्कार उत्पन्न हुआ । अब प्रथम वर्ण तो बोलते ही नष्ट हो गया, लेकिन उसका ज्ञान सस्कार अभी बन रहा है । तो उस प्रथम वर्णके सस्कारसे द्वितीय वर्णका विज्ञान चला । तब यहाँपर पूर्व ज्ञानसे जो सस्कार उत्पन्न हुआ था उस सस्कारसे सहित इस द्वितीय वर्णके द्वारा विशिष्ट सस्कार उत्पन्न हुआ है, अर्थात् पूर्व वर्ण जितने बोले जाते हैं उनके ज्ञानका संस्कार रहता है और वह सस्कार अन्य वर्णोंके ज्ञानमे कारण बनता है, इसी तरह तृतीय चतुर्थ आदिक वर्ण बोलते जाइए वहाँ पूर्व वर्णोंको ज्ञानका सस्कार चलता रहता है । और, जब अन्तिम वर्णका सस्कार हो जाता है तब उस अर्थ प्रतीतिकी उत्पत्ति करने वाले अंतिम वर्णकी सहायता पूर्व वर्णोंमे समझ ली जाती है । इससे पूर्व वर्णोसे प्राप्त किया है सस्कार जिसने ऐसा यह अन्तिम वर्ण पदार्थका प्रतिपादक होता है । वर्णोंसे स्फोट मानें और स्फोटसे फिर अर्थकी प्रतिपत्ति करें इसकी आवश्यकता नहीं है।

क्षयोपशमके अनुसार सस्कार व्यवस्था—अथवा देखिये ! किस प्रकार पूर्व वर्णोंके द्वारा अन्तिम वर्णमे सस्कार आते हैं । सज्ञी जीवोमें शब्दार्थकी उपलब्धिके निमित्त क्षयोपशम पाया जाता है उसके नियमसे वे वर्ण ज्ञान अथवा सस्कार अनिवष्ट कहे गए हैं । तो लब्धिकी अपेक्षा, द्रव्यत्व स्वरूपकी अपेक्षा ही पूर्ववर्णोका ज्ञान और उन पूर्व वर्णोंके ज्ञानके सस्कार वे विशिष्ट हैं, वे ही अन्तिम वर्ण उस सस्कारको किया करते है । तब सस्कारकी अपेक्षा रखने वाला अन्तिम वर्ण पदार्थका कारण हो जाता है क्योंकि वर्णज्ञानका सस्कार चला, धारणा चली और उन वर्णोंके ज्ञानकी स्मृति रही । उस स्मृतिसे युक्त अन्तिम वर्ण पदार्थकी प्रतिपत्तिका कारण होता है । जैसी बात पदके अर्थके सम्बन्धमे कही गई है वही बात बहुत पदोका मिलकर जो वाक्य बनता है, उस वाक्यार्थकी प्रतिपत्तिमे भी न्याय ऐसा ही चलता है । तो पूर्व वर्णोंसे अन्तिम वर्णका सस्कार कैसे बन सकता है, यह कहना अयुक्त है ।

वर्णकी उत्पत्ति और पदार्थ प्रतिपत्तिका साधन—इस प्रसगमे जो यह दोष दिया कि वर्णसे वर्णकी उत्पत्ति नही होती, क्योंकि वर्ण जब बोला तो बोलते ही उसका प्रत्यक्ष हो गया । अब नवीन वर्ण आया तो नवीन वर्णकी पूर्व वर्णने उत्पत्ति

वर्ण पर्यन्त नही सकता क्योंकि तब वह रहा ही नहीं। तो वर्णमें वर्णकी उत्पत्ति नहीं उनमें ऐसा कहना तो सिद्ध साधन है। हम भी तो यह मानते हैं कि वर्णमें वर्णकी उत्पत्ति नहीं होती। किन्तु तालु आदिक जो स्थान हैं उन स्थानोंका संयोग वियोग होनेसे वर्णकी उत्पत्ति होती है। तब यह समझना कि जिस प्रकार अन्य संस्कार विज्ञान आदिककी अपेक्षा रखकर पूर्व वर्णोंका सहकारिता बतायें ऐसा सहकारी कारणोंकी अपेक्षा रखकर जो अन्तिम वर्ण उत्पन्न होता है, उस अन्तिम वर्णसे अर्थ की प्रतिपत्ति होती है। और, वह अर्थप्रतिपत्ति अन्वयव्यतिरेकोंसे निश्चित है। अर्थात् अन्तिम वर्णके सद्भाव हो पर अर्थकी प्रतिपत्ति होती है और अन्तिम वर्णके अभावमें अर्थकी प्रतिपत्ति नहीं होती। जैसे पुस्तक कहा तो अन्तिम वर्ण क अथवा अ बोल चुकनेके बाद ही तो अर्थकी प्रतिपत्ति होती है। तो अब अन्वयव्यतिरेकसे इस बातका निश्चय हो गया कि शब्दमें पदमें जो अन्तिम वर्ण है उससे पदार्थका अवबोध होता है तो स्फोटकी कल्पना करना तो असम्भव बात है। स्फोटकी कल्पना न करनेपर भी अन्तिम वर्णसे ऐसे ही अन्वयव्यतिरेकसे पदार्थकी प्रतिपत्ति हो जाती है। जब बिल्कुल स्पष्ट विदित देखे गए कारणोंसे कार्यकी उत्पत्ति जाना जा रहा है तब किसी अदृष्ट कारणान्तरकी कल्पना करना युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि देखे गए कारणोंसे जो कार्य हो रहा है उसको न माना जाय तो कभी जलसे भी धूम की उत्पत्ति होने लगना चाहिए। तो तालु आदि स्थानोंसे ना शब्दकी उत्पत्ति होता है और उन वर्णोंका उच्चारण करते करते पद सम्बन्धी अन्तिम वर्णके उच्चारण होनेसे पदार्थका अवबोध होता है, तो ऐसा देखा गया जो विधान है उसे न मानकर किसी अदृष्ट अन्य कारणकी कल्पना करना युक्त नहीं है, अन्यथा दृष्ट सुनिश्चित कारणोंकी व्यवस्था समाप्त हो जायगी।

वर्णोंसे स्फोटकी अभिव्यक्तिका अघटन—अब और भी बात विचारें कि जो वर्णोंमें अर्थप्रतिपत्तिमें दोष दिया जा रहा था वह दोष तो वर्णोंमें स्फोटको अभिव्यक्त माननेपर भी आता है। तब वर्णोंसे स्फोटकी अभिव्यक्ति भी सिद्ध नहीं का जा सकती। अच्छा बताओ कि वह वर्ण समस्त समुदित होकर स्फोटकी अभिव्यक्ति करता है क्या? अथवा व्यस्त होकर एक एक वर्ण स्फोटमें अभिव्यक्ति करता है? समुदित होकर वे समस्त वर्ण स्फोटकी अभिव्यक्ति नहीं कर पाते। क्योंकि उन वर्णोंमें समुदितता हो ही नहीं सकती। वे वर्ण क्रमसे बोले जा रहे हैं तो वर्ण वे इकट्ठे कहां हो पायेंगे और अनेक जगहोंमें अनेक पुरुष उन शब्दोंको बोलें उससे स्फोटकी अभिव्यक्ति मानी जाय तो इसमें बड़ा दोष होगा। ऐसा होता भी नहीं कि भिन्न भिन्न शब्दोंके द्वारा एक एक वर्ण जो बोले गए उनको जोड़ करके किसी पदार्थका ज्ञान किया जाता हो। तो समस्त समुदित होकर भी एक एक प्रत्येक वर्ण स्फोटमें अभिव्यक्ति नहीं कर सकते। यदि एक एक वर्णसे स्फोटकी अभिव्यक्ति करें तब तो अन्य वर्णोंका उच्चारण करना व्यर्थ हो जायगा क्योंकि एक ही वर्णके द्वारा

सर्व रूपसे इस स्फटकी अभिव्यक्ति हो गई। यदि कहो कि पदार्थ है। जो गुणवान के विनाशक लिये वर्णोका उच्चारण किया जाता है अर्थात् कहीं अन्य ज्ञान कहते हैं। न हो जाय इसके लिये इन समस्त वर्णोका उच्चारण करना पडता है विकल्पोंमें अभिव्यक्ति तो एक वर्णसे हो गयी किन्तु अनेक वर्णोके उच्चारण करनेका प्रयोजन यह है कि अन्य पदार्थोमे कहीं अन्य पदार्थकी प्रतिपत्ति न हो जाय यह कहना भी ठीक नहीं हैं क्योंकि समस्त वर्णोमे उच्चारण करनेपर भी उन शब्दोका अर्थ जो कुछ है उसकी प्रतिपत्ति होती ही है। यदि किसी शब्दके कई अर्थ हैं तो उस शब्दके द्वारा कई अर्थोकी प्रतिपत्ति हो जायगी। व्यस्त वर्णसे स्फोटकी अभिव्यक्तिमे एक एक वर्णके उच्चारणसे पदार्थमे प्रतिपत्ति होती है ? तो उसमे जितने वर्ण है उतने ही उसके वाच्य पदार्थ हैं जैसे कि एक गौ शब्द बोला तो गौ शब्दमे दो वर्ण है—ग और औ। गौ इसमे ग के उच्चारणमे तो गायकी प्रतीति हुई और औ के उच्चारणसे औशनस अर्थात् वीर्यकी प्रतीति हुई। इस तरह गौ एक पदके बोलनेसे दो अर्थोकी प्रतिपत्ति हो गई। ग से गाय माना ही है और औ शब्दसे औशनस वीर्य नामक पदार्थकी प्रतीति होगी या उसमे संशय हो जायगा कि क्या एक पदस्फोटकी व्यक्तिके लिये ग आदिक वर्णोका उच्चारण अन्य पदान्तरस्फोटके व्यवच्छेदसे किया गया है या अनेक पद स्फोटकी अभिव्यक्तिके लिये अनेक आद्य वर्णोका उच्चारण किया गया है ? यों शब्दोंसे स्फटकी अभिव्यक्ति माननेपर संशय भी हो जायगा। इससे यह मानना युक्त है कि एक पदमे जितने वर्ण हैं जिस क्रमसे वर्ण हैं उस क्रमसे उन वर्णोका उत्पाद हुआ फिर उन वर्णोके अभावसे विशिष्ट जो अन्तिम वर्ण है और पूर्व वर्णके विज्ञान के संस्कारसे सहित जो अन्तिम वर्ण है उससे पदार्थकी प्रतिपत्तिकी व्यवस्था होती है।

व्यस्त वर्णसे स्फोटाभिव्यक्तिमें अन्य वर्णके उच्चारणकी व्यर्थताका कथन—शङ्काकार यहा कहता कि पूर्व वर्णोके द्वारा संकेतका संस्कार बनाया जाता है उस स्फोटका संस्कार बननेपर अन्तिम वर्ण स्फोटका अभिव्यञ्जक हो जाता है। इस कारणसे अन्य वर्णोका उच्चारण करना व्यर्थ नहीं हो पाता। शङ्काकारका अभिप्राय यह है कि स्फोटकी अभिव्यक्ति तो अन्तिम वर्णसे हो जाती है अथवा किसी भी एक वर्णसे हो जाती है, पर उस स्फोटका संस्कार बनानेमे अनेक वर्णोके पूर्व वर्णोकी आवश्यकता यों होती है कि जब पूर्व वर्णोके द्वारा स्फोटका संस्कार बन जाय तो अन्तिम वर्ण स्फोटका अभिव्यञ्जक होता है, यों अन्य वर्णोका उच्चारण करना व्यर्थ नहीं है, सप्रयोजन है, ऐसी शंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि स्फोटका संस्कार चीज ही और क्या है ? जो अभिव्यक्ति है उसका प्रकट होना, वही तो संस्कारका स्वरूप है। प्रकट होनेके अतिरिक्त संस्कारका अन्य स्वरूप कुछ नहीं है।

स्फोटसंस्कारके स्वरूपकी असिद्धि—कदाचित् मान लो कि पूर्व वर्णोके द्वारा स्फोटका संस्कार किया गया तो उन पूर्व वर्णोने अंतिम वर्णमें संस्कार क्या

वर्ण अर्थ नहीं-स

उनमें को विशेषता तो बताओ। क्या वेग नामक संस्कार रचा गया ऐसा कहकर उत्पत्ति नहीं। स कार रचा गया अथवा स्थितको ठहरानेरूप सस्कार रचा? होनेसे कह नहीं सकते अर्थात् पूर्व वर्णोंने वेग नामका सस्कार रचा हो अर्थात् विस- संबन्ध बन गया तो यह बात यो युक्त नहीं है कि वेग तो मूर्त पदार्थोंमें ही हुआ करता है? तुम्हारे सिद्धान्तमे वर्ण मूर्त तो नहीं है। वर्णोंको माना है आकाश का गुण और आकाश है नित्य व्यापक। यो ही वर्ण भी नित्य व्यापक माना गया। तो नित्य व्यापक वर्णोंमे वेग नामक सस्कार तो रचा नहीं जा सकता। यदि द्वितीय पक्षकी बात कहोगे अर्थात् वर्णोंके द्वारा वासनारूप सस्कार रचा गया है तो यह भी युक्त नहीं है वर्ण तो अचेतन है और वासना चेतना है। तो चेतनरूप वासना अचेतन वर्णोंमें कैसे समा जायगी? यदि उस स्फोटको ही चेतन मान लोगे तो तुम्हारे ही सिद्धान्त का विघात हो जायगा। शब्दाकारक सिद्धान्तमे स्फोटको चेतन नहीं माना गया है। इन दो प्रकारके सस्कारोका रचना तो वर्णोंके द्वारा किया गया सिद्ध नहीं होता। अब तृतीय विकल्पकी बात सुनो। क्या सस्कार स्थित स्थापक है? अर्थात् स्थित हुए पदार्थोंको, पहिलेसे ही रहने वाले पदार्थोंको और ठहरा देने, उनमे कोई हीनता न आ पाये ऐसा सस्कार बन जाता है वर्णोंके द्वारा। यदि यह तृतीय विकल्प अङ्गीकार करोगे तो यह भी युक्त नहीं है क्योंकि स्थित स्थापकरूप सस्कार भी मूर्त द्रव्योमे रहा करता है पर स्फोट तो अमूर्त माना गया है। शब्दाकरने जैसे वर्णोंको अमूर्त माना है इसी प्रकार वर्णोंके द्वारा अभिव्यक्त होने वाले स्फोटको भी अमूर्त माना है तो अमूर्त स्फोटमे स्थित स्थापक नामका सस्कार भी नहीं रचा जाता। जैसे कोई भौतिक पदार्थ हो और वह कहीं चलित न हो जाय इसलिए वह वहीं स्थित ही बना रहे ऐसा सस्कार बनाया किसी साधनके द्वारा तो वह तो समझमें आ सकता है क्योंकि वह मूर्त पदार्थ है, लेकिन वर्णादिकमें रचना किया जाने वाला स्फोट स्वयं अमूर्त है तो अमूर्तमें सस्कार क्या किया जा सकता है?

सुगम स्पष्ट प्रकरण न माननेपर कल्पनाओंका व्यर्थ श्रम देखिये। कितनी परम्पराकी कल्पना करके शब्दोंके द्वारा पदार्थका प्रतिपादन करनेकी बात कही जा रही है। पहिले वर्ण बोले गये उन सब वर्णोंसे पद बना, पदोंका वाक्य बनेगा, उन सबको जानकर जो अन्तिम वर्ण होगा उस अन्तिम वर्णसे स्फोटकी अभिव्यक्ति होगी। फिर उस स्फोटसे पदार्थका ज्ञान होगा। ऐसा बीचमें एक स्फोटकी कल्पना करना और शब्दोंसे सीधा अर्थका प्रतिपादन होता है इसे अङ्गीकार न करना यह तो सीधे सुगम तत्त्वको कठिन बनाकर एक व्यर्थका जबरदस्ती सिक्का जमानेका प्रयत्न है। उपदेश तो होता है जीवोंके भलेके लिए तब जो बात सीधी कारण कार्यकी, प्रतिपादक प्रतिपाद्यकी सर्व जनसाधारणमें सुप्रसिद्ध है उसे न मानकर अन्य प्रकारकी कल्पना करना और फिर विषयकी उससे व्यवस्था बनाना यह तो करुणावानोंका काम नहीं है। अब थोड़ा समझना चाहिये कि पूर्व वर्णके विज्ञानके सस्कारसे युक्त अन्तिम

वर्ण पदार्थका प्रतिपादक होता है, इस तरह वचनोंसे अर्थज्ञान चलता है। जो गुणवान आप्तके वचन आदिक हैं उनके निमित्तसे जो अर्थज्ञान होता है उसे आगमज्ञान कहते हैं।

स्फोटसस्कारका स्फोटस्वरूपत्व व स्फोटधर्मत्व इन दो विकल्पोंमें निराकरण—अब यह बताओ कि पूर्व वर्णोंके द्वारा जो स्फोटका संस्कार माना जा रहा है वह संस्कार क्या स्फोटस्वरूप है, या स्फोटका धर्म है ? यदि कहा कि वह संस्कार स्फोटस्वरूप है तो इसका अर्थ यह हुआ कि पूर्व वर्णोंके द्वारा स्फोट संस्कार किया इसके मायने है कि स्फोट ही किया गया। तब यों स्फोट वर्णके द्वारा उत्पाद्य बन गया। और, जब स्फोटकी वर्णके द्वारा उत्पत्ति हुई तो जो उत्पन्न होता है वह नित्य नहीं हुआ करता तो यों स्फोट अनित्य बन गया। यदि कहो कि वर्णोंके द्वारा किये गए स्फोटका संस्कार स्फोटका धर्म है तो यह बतलावो कि स्फोटका वह धर्म स्फोटसे भिन्न है अथवा अभिन्न है ? यदि कहो कि स्फोटका वह धर्म, स्फोटसे अभिन्न है तो इसका अर्थ भी यह हुआ कि वर्णोंने स्फोटका धर्म क्या किया ? स्फोट ही कर दिया। क्योंकि किया गया स्फोटका धर्म संस्कार स्फोटसे अभिन्न मान लिया गया। तो इसका अर्थ हुआ कि धर्म किया याने स्फोटको ही किया और इस प्रकार स्फोट फिर अनित्य बन गया, तो इसमें शङ्काकारक सिद्धान्तका ही घात हो गया। शङ्काकारक सिद्धान्तमें स्फोटको नित्य माना है। लेकिन यहाँ अनित्य बन गया। यदि कहो कि पूर्व वर्णोंके द्वारा जो स्फोट संस्कार किया गया वह स्फोटका धर्म है और स्फोटसे वह धर्म भिन्न है। तो जब स्फोटका धर्म स्फोटसे भिन्न रहा तो अब स्फोटमें और धर्ममें अथवा संस्कारमें सम्बन्ध नहीं बन सकता क्योंकि जब भिन्न ही चीज है तो वह उपकारक नहीं बन सकती। स्फोटका संस्कार जब स्फोटसे भिन्न है तो वह संस्कार स्फोटका उपकार क्या करेगा ? और यदि मानते हो कि स्फोटके धर्मरूप संस्कारने स्फोटका उपकार किया है तो उस उपकारके सम्बन्धमें भी बतलावो कि वह उपकार उस स्फोटसे भिन्न है अथवा अभिन्न है ? यदि उस उपकारको स्फोटसे अभिन्न मानोगे तो वही आपत्ति आयी कि उपकार किये गए स्फोटको ही उत्पन्न कर दिया गया। यदि उपकारसे भिन्न मानोगे तो उसमें स्फोट और उपकारका सम्बन्ध न बन सकेगा।

स्फोट संस्कारमें उत्पादव्ययकी अनिवार्यता होनेसे अनित्यत्वका प्रसंग—अच्छा, अब यह बतलावो कि संस्कारमें न हले तो स्फोट अनभिव्यक्तस्वरूप है सो अनभिव्यक्तस्वरूपका अपरित्याग अब भी है या परित्याग होता है ? यह तो नहीं कह सकते कि भिन्न धर्मका सद्भाव होनेपर भी स्फोटका जो अनभिव्यक्त स्वरूप पहिले था उस स्वरूपके अपरित्यागमें ही वैसा अर्थप्रतीतिका कारण बन जाय। क्यों यह युक्त नहीं, यों कि संस्कारसे पूर्व जैसे असंस्कार वाले स्फोटमें पदार्थोंके परिज्ञान करनेका कारणपना नहीं था उसी प्रकार इस स्फोटमें अब भी अर्थकी प्रतिपत्तिका कारणपना नहीं बन सकेगा अर्थात् स्फोटमें पूर्व अव्यक्त स्वरूपका परित्याग न हो तो अर्थका

प्रतीतिमे कारणता नही बन सकती और स्फोट अपने अव्यक्त स्वरूपका त्याग करदे तो इसके मायने है कि स्फोट अनित्य हो गया। जो यह कहा जा रहा है शंकाकार द्वारा कि स्फोटसे पदार्थकी प्रतिपत्ति होती है और स्फोटका संस्कार वर्णोंके द्वारा किया जाता है तो संस्कार करनेका अर्थ यही तो हुआ कि संस्कारसे पहिले स्फोटका अव्यक्त स्वरूप था। संस्कार करनेसे स्फोटका व्यक्त स्वरूप बन गया। तो जब स्वरूपमे फर्क आ गया, पहिले अव्यक्त था अब अव्यक्त 'स्वरूपका' विनाश हो गया। व्यक्त स्वरूपकी उत्पत्ति हो गयी तो यह उत्पादव्यय ही तो अनित्यताको सिद्ध करता है तो यो स्फोटमे अनित्यत्वका प्रसग आ गया।

एकदेश अथवा सर्वात्मना स्फोटसंस्कार किया जानेका निराकरण— और भी सुनो पूर्व वर्णोंके द्वारा जो स्फोटका संस्कार किया जा रहा है वह क्या एकदेशसे किया जा रहा है या सर्व देशसे किया जा रहा है? यदि कहो कि स्फोटका वह संस्कार एक देशमे किया जा रहा है तो उसका वह एक देश इस स्फोटमे भिन्न है अथवा अभिन्न? स्फोटमे जो एक देशमें संस्कार किया गया वह एक देश यदि स्फोटसे अभिन्न है तो एक देश क्या रहा? वह तो पूर्णमे स्फोट हो गया। यदि कहो कि स्फोटका वह एक देश स्फोटसे भिन्न है तो उस एक देशका स्फोटसे सम्बन्ध नही बन सकता। यो पूर्व वर्णोंके द्वारा स्फोटका एक देशसे तो संस्कार किया गया नही बनता। यदि कहो कि स्फोटका वह संस्कार सर्वात्मक रूपसे किया गया तो इसके मायने यह हुआ कि फिर सब जगह सभी प्राणियोको उसमे अर्थकी प्रतिपत्ति हो जानी चाहिये। क्योकि स्फोट तो सर्वात्मक रूपसे संस्कृत हुआ है और स्फोट है व्यापक एव नित्य। तो जब समस्त व्यापक स्फोटमे संस्कार बन गया तो सभी जगह सभी प्राणियोको अर्थकी प्रतीति हो जानी चाहिये क्योकि सब जगह स्फोटका संस्कार बन गया।

स्फोटसंस्कारके स्वरूपके स्फोटविषयक ज्ञानोत्पादकत्व विकल्पोका निराकरण— अब और भी बात सुनो। स्फोटके संस्कारका अर्थ क्या है? क्या स्फोट विषयक ज्ञानका उत्पन्न करना यह स्फोट संस्कारका अर्थ है या आवरणको दूर कर देना यह स्फोट संस्कारका अर्थ है? यदि कहो कि आवरणको दूर कर देनेका ही नाम स्फोट संस्कार है तब तो एक जगह एक समय आवरणका विनाश हुआ तो सर्व देशोमे रहने वाले सर्व प्राणी सब समय उसको प्राप्त करलें क्योकि स्फोट तो व्यापक और नित्य है। नित्य और व्यापकरूपसे माने गये निरावरण इस स्फोटकी सर्व जगह सब समय उपलब्धि हो जाना चाहिये। तो जब स्फोट नित्य है। व्यापक है और अब हो गया निरावरण आवरण रहा नही तो अब उसमे कौन सी कमी रही कि जो सब जगह सब समय उसकी उपलब्धिया न हो। और, यदि स्फोटकी अनुपलब्धिका स्वभाव पडा है कि उसकी उपलब्धि नही हो सकती तब फिर किसी

भी जगह किसी भी समय किसी भी पुरुषके द्वारा स्फोटकी उपलब्धि न होना चाहिये, जो नित्य व्यापी होता है उसका एक स्वभाव होता है। स्फोट नित्य और व्यापी है। तो यह बतलावो कि वह उपलभ्य स्वभाव वाला है या अनुपलभ्य स्वभाव वाला है यदि अनुपलभ्य स्वभाव वाला है तो फिर स्फोटकी उपलब्धि कभी भी किसी भी समय किसी भी पुरुषको नहीं हो सकती। और, यदि स्फोट उपलभ्य स्वभाव वाला है और हो गया निरावरण तो अब कौन सी ऐसी गुंजाइश है कि स्फोट सब जगह सब समय सब प्राणियोंको व्यक्त नहीं हो।

आवरणापनयनरूप स्फोट संस्कारका निराकरण -यदि कहो कि आवरणके हटनेका नाम तो है स्फोट संस्कार लेकिन आवरणका हटना एक देशसे होता है। सर्वात्मक रूपसे आवरणका अवगम नहीं किया जाता। तो उत्तरमे कहते हैं कि फिर यों तो जो स्फोट एक माना है तो उसमे सावयवपना लग जायगा। स्फोट अब निरंश न रह सकेगा क्योंकि स्फोटके एक देशमे तो आवरणके न होनेसे वह अनावृत बन गया और अनेक जगह आवृत होनेसे ढका हुआ है। तो यों एक देशसे आवरणका अपनयन माननेपर उस स्फोटमे दो भेद हो जायगे आवृत स्फोट और अनावृत स्फोट। तो स्फोटके कुछ अवयव आवृत हो गए और कुछ अनावृत हो गए। तो यों स्फोटमे सावयवताका दोष आ जायगा। यदि कहो कि स्फोट तो निरंश है, भाग रहित है. अन एक देशमे अनावृत होनेपर सर्वत्र अनावृत ही माना जा रहा है, तो वही दोष आ गया कि फिर सभी देशोमे सभी समयोमे, सभी प्राणियोको स्फोटकी उपलब्धि होना चाहिये। तब जैसे निरवयव होनेसे एक जगह अनावृत होकर सब जगह अनावृत हो जाता है तो इसी प्रकार निरवयव होनेके ही कारण अगर एक जगह आवृत हो जाता है तो सब जगह आवृत होना चाहिये। तो आवरणका अवगमरूप स्फोट संस्कार मानने पर यह दोष आता है कि या तो वह स्फोट सब जगह सब जीवोको सब समय उपलब्ध होना चाहिये अथवा किसी भी समय कहीं भी किसी भी जीवको उपलब्ध न होना चाहिये।

स्फोटविषयसंवेदनोत्पादरूप स्फोटसंस्कारकी अयुक्तता – अब शंकाकार कहता है कि पूर्व वर्णोंके द्वारा जो स्फोट संस्कार किया उसका अर्थ आवरणका अपनयन नहीं है किन्तु स्फोट विषयक सम्वेदनका उत्पाद होना है अर्थात् स्फोटसंस्कार यह कहलाया कि स्फोटविषयक ज्ञानकी उत्पत्ति हो गयी। उत्तरमे कहते हैं कि यह विकल्प भी अयुक्त है। जैसे कि शंकाकारने अपने पूर्वपक्षमे कहा था कि वर्ण अर्थको प्रतिपत्तिके जनक नहीं हो सकते। वर्णोंमें अर्थकी प्रतिपत्तिके जनक होनेका सामर्थ्य नहीं है। सो यही बात शंकाकारके इस द्वितीय विकल्पमे आती है कि वर्णोंका सामर्थ्य स्फोटकी प्रतिपत्ति उत्पन्न करनेमे भी नहीं है। जो भी दोष दोगे वह दोनो जगह समान हो सकेगा। न्याय दोनो जगह समान बैठ सकता है। जैसे कहा था कि वर्ण

यदि अर्थकी प्रतिपत्ति करता है तो वह समस्त समुदित होकर करता है या व्यस्त होकर करता है ? ऐसे ही ये सब दोष स्फोटविषयक सम्वेदनकी उत्पत्तिमे भी घटित होते हैं। वे वर्ण यदि स्फोटविषयक सम्वेदनकी उत्पत्तिरूप संस्कारको करते हैं तो व्यस्त होकर वह संस्कार करता है या समुदित होकर ? दोनो पक्षोमे विकल्पोंमे स्फोट संस्कारकी सिद्धि नही होती।

स्फोटाभिव्यक्तिकी विधिपर शङ्का-समाधान—अब शङ्काकार कहता है कि सुनिये ! वर्णोंके द्वारा पदादिकके स्फोटकी अभिव्यक्ति किस तरह होगी। इस प्रकार होगी कि पूर्व वर्णोंके सुननेसे जो ज्ञान हुआ उस ज्ञानने जिसमे संस्कार उत्पन्न किया ऐसे पुरुषके जब अन्तिम वर्णके श्रवण होनेमे ज्ञान होता है तो उस ज्ञानके अनन्तर ही पदादि स्फोटकी अभिव्यक्ति हो जाती है। तो स्फोटकी अभिव्यक्ति ना हुई अन्तिम वर्णसे लेकिन उस पुरुषके अन्तिम वर्ण ज्ञानसे स्फोटको व्यक्ति हुई है जिसने कि पूर्व वर्णके श्रवणसे संस्कार उत्पन्न कर लिया था इस प्रकार स्फोटकी अभिव्यक्ति माननेपर यह दोष नही आता कि वर्णोंसे यदि संस्कार किया गया तो व्यस्त वर्णोंसे किया गया या समुदित समस्त वर्णोंसे किया गया ? उत्तरमे कहते हैं कि ऐसा कथन भी असगत है। पदार्थोंकी प्रतिपत्ति ही इसी प्रकारसे हुआ करती है, अर्थात् पूर्व वर्णके सुननेसे जो ज्ञान उत्पन्न हुआ है उस ज्ञानसे जिसने संस्कार पाया है ऐसा पुरुष जब अन्तिम वर्णको सुनता है तो उसके ज्ञानके बाद ही पदार्थकी प्रतिपत्ति हो जाती है और यह बात सर्व साधारण जनोंके सुप्रसिद्ध है फिर स्फोटकी कल्पना करना अनर्थक है। वर्ण और अर्थप्रतिपत्ति, उनके बीचमे स्फोटका डालना अनावश्यक है। अर्थका ज्ञान कराने वाला तो आखिर पुरुष ही है। यह जीव पूर्व वर्णोंमे जो ज्ञान उत्पन्न करता है उससे तो संस्कार बना है जो कि धारणा नामक मतिज्ञानका चतुर्थ भेद है। यो संस्कार बनने पर जब अन्तिम वर्णको सुनते हैं तो उस अन्तिम वर्णके ज्ञानके बाद चूंकि पहिले संस्कार सब थे, उन संस्कारोसे विशिष्ट अन्तिम वर्ण ज्ञान है, उससे पदार्थका परिज्ञान हो जाता है। स्फोटकी फिर बीचमें आवश्यकता क्या है ?

स्फोटकी चेतनस्वरूपताका प्रतिपादन—और देखिये पदार्थका जो परिज्ञान हुआ है वह परिज्ञान किसमे हुआ है ? आत्मामे। और, उस पदार्थके परिज्ञान की सामर्थ्य किसमे हुई ? आत्मामे। तो चैतन्यस्वरूप आत्माको छोडकर अन्य किसी पदार्थमे अचेतनमें अर्थके परिज्ञानकी सामर्थ्य असम्भव ही है। इस कारणसे चैतन्यात्मक ही यह पुरुष विशिष्ट शक्तियुक्त हुआ स्फोट कहलायेगा। स्फोट किस वस्तुका नाम है इसका उत्तर शङ्काकारके यहा क्या रखा है ? स्फोट इस ही जीवका नाम है जिस जीवने पूर्व वर्णोंके बोलने अथवा श्रवणसे उनका ज्ञान उत्पन्न किया। फिर पूर्व वर्णोंके ज्ञानका संस्कार धारण किया। वही पुरुष जब अन्तिम वर्णको बोलता है सुनता है तो उसके ज्ञानके बाद ही उस पुरुषके अर्थका परिज्ञान हुआ। तो अर्थका

पदार्थ नही जाने जाते किन्तु शब्दोसे पहिले पदादिकोका अर्थ समझा जाता है उसे कहते है स्फोट और फिर उस स्फोटसे पदार्थ जाने जाते है। तो शब्द और पदार्थ इन दोनोंके बीच जो स्फोट डाला है, उसके सम्बन्धमें विचार चल रहा है। यदि वायु स्फोटकी व्यञ्जक हो जाय तो फिर शब्दोंकी कल्पना करना ही व्यर्थ है और स्फोटकी अभिव्यक्ति होनेपर जब पदार्थका ज्ञान हो गया तब वर्णोंका कोई उपकार ही न रहा दूसरी बात यह है कि स्फोटके लेकर ही स्फोट यदि वायुमे पहिले है तो स्फोटकी अभिव्यक्ति कही जायगी। क्योकि स्फोटको अभिव्यक्ति तब मानी जायगी कि जब वायुके उत्पन्न होनेसे पहिले स्फोट मौजूद हो और फिर वायु उसकी अभिव्यक्ति करे तब तो स्फोटकी अभिव्यक्ति है जैसे कि बहुतसे बर्तन रखे है, उनके ऊपर रख दिया कपडा तो कपडेने बर्तनको ढक दिया। अब कपडा उघाडते हैं तो वे सब बर्तन दिख जाते है तो इसको कहेगे अभिव्यक्ति। तो कपडा उघाडनेसे पहिले वे सारे बर्तन हैं तब तो उन्हें अभिव्यक्ति माना जायगा, इसी प्रकार वर्णोंमे अभिव्यक्ति हो तब, वायुसे अभिव्यक्ति हो तब, दोनो ही दशावोंमें वर्ण और वायुसे पहिले स्फोट होना चाहिये तब तो उसकी व्यक्ति बनेगी पर स्फोटका सद्भाव किसी भी प्रमाणसे सिद्ध नही होता। अर्थात् वर्ण बोलनेसे पहिले या वायु आनेसे पहिले स्फोट होता इसकी सिद्धि कुछ नही है। और जब तक वर्ण और वायुसे उत्पादकसे पहिले स्फोटकी सत्ता न मानी जाय तब तक अभिव्यक्ति भी नही कहला सकती।

वर्णोंके निमित्तसे अर्थप्रतिपत्तिकी विधि—जब वायुसे स्फोटकी अभिव्यक्ति सिद्ध न हो सकी तो इससे यह भी निराकृत हो जाता है जो कि यह कहा है कि पूर्व वर्णमे अथवा वायुमे जब संस्कार उत्पन्न हो जाता है तब अन्तिम वर्णसे या या अन्तिम वायुके साथ जब सबका उच्चारण बन गया तब ज्ञानमे वह स्फोट प्रतिभासमान होता है यह बात यो निराकृत होती है कि वर्णोंसे पहिले, ध्वनियोसे पहिले स्फोटकी सत्ता होना चाहिये तब तो स्फोटका आवरण कहलाये और स्फोटकी अभिव्यक्ति कहलाये। यह कहना भी अयुक्त है कि अगर अर्थप्रतिपत्ति अनित्य है। वर्ण अनित्य है तो अर्थकी प्रतिपत्ति कैसे बन सकती है। अरे, नित्यत्वके बिना भी पदार्थकी प्रतिपत्ति होती है इस बातको वर्णके स्वरूपके विचार करते समय बताया ही था कि वर्ण नष्ट हो गया। तो वर्णसे किस तरह पदार्थ जाना जाता है ? शंकाकार यह कह रहा था कि जैसे पुस्तक शब्द बोला तो पुस्तक शब्दमें कितने अक्षर हैं, प् उ स् त् अ क् अ ७ अक्षर हैं तो जब प् उ आदिक बोले गए तो बोलते ही वे वर्ण नष्ट हो गए। बोलते-बोलते जब अन्तिम वर्ण बोला अ तो उससे पहिले ६ वर्ण बोले जा चुके थे और खतम हो गए। तो जब वे वर्ण खतम हो गए और अब केवल अ ही रह गया अंतिम तो उस अ से पुस्तक पदार्थका ज्ञान कैसे हो सकता है ? शंकाकारका कहना यों युक्त नही है कि वे वर्ण तो खतम हो गये जो पहिले बोले गये थे, किन्तु उन वर्णोंका ज्ञान तो कर लिया गया था। जब वर्ण बोला था। और, वर्ण भी

खतम हो गया लेकिन उससे संस्कार बन गया है कि हम ये ये वर्ण बोल चुके हैं। ये मेरे ध्यानमें है और इन ध्यानोके साथ जब आखिरी अक्षर भी बोल चुके तब स्मरणमें पूरे शब्द हैं पूर्वक। फिर उन शब्दसे संकेतके अनुसार घटादिक पदार्थोंका बोध हो जाता है। तो इस तरह वर्ण यद्यपि नष्ट हो जाते हैं शब्द अनित्य हैं तो भी जो वक्ता है, श्रोता है उस पुरुषके तो संस्कार रहता है, उन संस्कारके कारण स्मृति रहती है, उससे फिर पदार्थका ज्ञान होता है।

अनेकोमें भी एक प्रतिभासकी साधनता अब शंकाकारने जो यह कहा था कि सुननेके व्यापारके बाद अर्थात् सुननेके बाद बहुत बड़ा शब्द जो बोले गए उनसे अभिन्न एक अर्थका जो बोध होता है सो वह बोध पूर्ण विषयक तो नहीं रहा। जैसे पुस्तकमे ७ वर्ण हैं। ७ वर्णोंको हमने सुना तो सुन करके वर्ण तो हैं वे ७ मगर जानी गई चीज एक। जैसे चन्द्रमा कहा तो चन्द्रमामें ७ वर्ण हैं बहुत मगर उनसे जाना गया एक ही चन्द्रमा। तो एक चन्द्रमाका विज्ञान वर्णविषयक नहीं है क्योंकि वर्ण हैं परस्पर एक दूसरेसे अलग। वे अलग वर्ण एकका प्रतिभास नहीं कर सकते। तब स्फोट मानना ही चाहिए कि वर्णोंमें जो हुआ बुद्धिमें एक प्रतिभास स्फोट, उससे जाना गया पदार्थ। उत्तरमें कहते हैं कि ये भी असार बात हैं। घट आदिक शब्दोंमें जैसे घट बोला तो घट मायने घड़ा तो घटमें दो शब्द हैं मानलो घ और ट और ये दोनो भी एक दूसरेसे अलग हैं और इनका काल भी अलग है। घ का उच्चारण पहिले हुआ ट का उच्चारण बादमे हुआ किन्तु उसकी प्रत्यासत्ति (निकट होना) तो है। घ के बाद ही तो एकदम ट बोला गया। बीचमे और कोई स्थान तो नहीं पड़ा, तो उस प्रत्यासत्तिसे युक्त वर्णके सिवाय स्फोट स्थक और कुछ चीज नहीं है। अर्थका प्रकाश करने वाला जो एक अवस्था का उपयोग है वही तो स्फोट है और प्रत्यक्ष ज्ञानके विषयरूपसे वही प्रतिभासमान होता है और यह बात नहीं कि अभिन्न प्रतिभास होनेसे अभिन्न अर्थकी व्यवस्था हुई। जैसे कि कई बहुत दूरसे खड़े कर बहुत दूरके वृक्ष दिखनेमें आ रहे तो वे सारे वृक्ष एकसे लग रहे हैं। हैं वे वृक्ष १०-२० मगर दूरसे दिखनेके कारण वे सब वृक्ष एकसे लग रहे हैं। तो एक प्रतिभास होनेसे क्या वे एक मान लिए जायेंगे? नहीं माने जायेंगे। इसी तरह अभिन्न प्रतिभास होनेसे अभिन्न अर्थकी ही व्यवस्थायें की जायें सो तो बात नहीं। यदि कहा कि दृष्टान्तमें जो वृक्षकी बात कही कि दूरसे वृक्ष तो दीखे बोसो मगर वे इकट्ठे घने दीखे तो उसमें एक मानना पड़ रहा है पर एक नहीं है। तो इस समझनेमें जो बाधा आती है बादमे जब निकट पहुंचते हैं तो वहां जान जाते हैं कि यहां तो वृक्ष बीसों हैं, एक तो नहीं है कहते हैं कि यही बात तो स्फोटके प्रतिभासमें भी है। वहांपर भी बाधा आती है। ऐसे निरवयव अक्रम नित्य व्यापक धर्मसे सहित स्फोट कभी भी ज्ञानमें नहीं आ रहा। ज्ञानमें जब आता है तो पदार्थ आता है।

किसीने बीचमें गढ़ दिया है उसकी पहिचान यह है कि वाक्यसे राग करनेकी प्रेरणा मिलती है तो वह प्रभुवाक्य नहीं है, वह वाक्य यदि वस्तु स्वरूपके विपरीत लिख गया हो तो भी प्रभुवाक्य नहीं है। प्रभुके वचन निर्विरोध होते हैं। पहिले कुछ कहा बादमें कुछ कहा ऐसा पूर्वापर विरोध नहीं होता और ज्ञान व वैराग्यके बढ़ाने वाला होता है। जिसमें मोह छोड़नेकी रागद्वेष विषय कषाय इच्छायें छोड़नेकी प्रेरणा भरी हो समझा करके, यथार्थ ज्ञान कराकर, समझिये कि वह प्रभुवाक्यकी परम्परा है। तो शास्त्रकी प्रमाणता तो इस कारण बनती है कि शास्त्रका जो मूल वक्ता है वह सर्वज्ञदेव है। पर मीमांसक सिद्धान्तमें ऐसा नहीं माना है। उनके शास्त्र सर्वज्ञदेव द्वारा रचे गए नहीं हैं किन्तु अनादिसे चले आये मानते हैं अपौरुषेय मानते और वर्ण, हैं शब्द उनको भी अपौरुषेय नित्य मानते हैं। तब यह शंका होना स्वाभाविक है कि जब शब्द नित्य है तो सदा क्यों नहीं ये प्रकट होते हैं? तो उसका कुछ जवाब तो देना पड़ेगा। जवाब यह हुआ कि शब्द तो नित्य है। जैसे आकाश सदा रहने वाला है तो आकाशका गुण शब्द और शब्द भी सदा रहने वाला है लेकिन उसकी अभिव्यक्ति हुआ करती है। शब्द भी सदा रहने वाला है लेकिन उसकी अभिव्यक्ति हुआ करती है। तो यों शब्द की भी अभिव्यक्ति मानना पड़ेगा। और शब्द सीधे पदार्थका ज्ञान नहीं कराते ऐसे शब्द में स्फोटकी अभिव्यक्ति माननी पड़ी और फिर स्फोटसे पदार्थकी प्रतीति मानी है।

प्रसक्त विविध स्फोटोंका विवरण—यहां स्फोटके बारेमें कह रहे हैं कि यदि स्फोट बीचमें माना है तो शब्द और पदार्थके बीच ही क्यों माना? गंध और पदार्थके बीच भी स्फोट अर्थ, रूप और पदार्थके बीच भी स्फोट, यों अनेक स्फोट मानने पड़ेंगे। यदि कहो कि गंध स्फोट नहीं होता तथा यों ही हस्तस्फोट, पादस्फोट, इन्द्रियस्फोट आदिक ये सब केवल कल्पनामात्र हैं। यों पदस्फोट भी कल्पनामात्र है। क्योंकि जैसे तुम पदस्फोटका स्वरूप बनाते हो इसी प्रकार इन स्फोटोंका भी तो स्वरूप बनता है। जैसे हस्तस्फोट क्या चीज हुई? कोई नृत्यकार है और वह अपने हस्त पैर गले आदिक अवयवोंकी क्रिया करेगा है तो जहां उसने हस्तकी नाना क्रियायें की तो उस क्रिया विशेषसे व्यक्त हुआ हस्त स्फोट। पाद स्फोट क्या है? जैसे नृत्य करने नृत्यमें बड़ा भ्रमण किया तो उस भ्रमणके समयमें उसके पाद स्फोट हुआ और उसकी नृत्य कलामें हाथ और पैरका एक साथ व्यापार होता है उस व्यापारका नाम है करणस्फोट। और जब यह करण स्फोट लगातार हुआ दुबारा हुआ तो दो करणरूप मात्रिका समूह बनानेमें, भ्रमणमें समस्त स्फोटोंका समस्त दृष्टिको लेकर जो समझा गया है वह अंगहार स्फोट है। तो इसमें पदस्फोटको तो मानना कि यह सही है और शेष स्फोटोंको कहना कि यह कुछ नहीं है तो यह तो तुम्हारी कल्पनामात्र है, क्योंकि अपने अपने अवयवोंमें जो व्यक्त होते हैं ऐसे और अपने अभिनेय अर्थकी प्रतिपत्तिके कारणभूत हैं वे स्फोट, उनका निराकरण नहीं किया जा सकता। और यदि उनका निराकरण करना हो तो शब्द स्फोटका अभिप्राय भी दूरसे ही छोड़

देना चाहिये । सब बातें दोनों जगह समान बैठती हैं । यदि कहो कि अवयवोंकी क्रियायें उससे जो अभिनय करना है, जो बात अभिनयमें दिखाना है वह ही पदार्थ तो अवयवी अवयवकी क्रियासे अभिधेय जो अर्थ हुआ उससे अलग अन्य कुछ नहीं जैसे हस्तस्फोट, पादस्फोट आदिक नाम धरा । तो उत्तरमें कहते हैं कि यही बात तो प्रकृतमें है । वर्णोंका जो अर्थ हुआ उस अर्थके सिवाय अन्य कुछ स्फोटरूप चीज प्रतिभासमें नहीं आती । वर्ण है । अर्थ है फिर स्फोट क्या चीज रही ? तिसपर भी यदि स्फोटको वस्तुभूत मानते हो तब फिर ये नाना स्फोट भी वस्तुभूत हो जायेंगे । तो इस प्रकार जब स्फोट होंका विचार करना है तो वह कुछ सिद्ध नहीं होता ।

आगमज्ञानके प्रसङ्गमें तीन वस्तुवोंकी ज्ञेयता—इस प्रसंगमें तो और तीन वस्तुवोंका सही ज्ञान कर लीजिये शब्द वस्तु आत्म वस्तु और पदार्थ वस्तु । शब्द वस्तु तो है वाचक, पदार्थ वस्तु है वाच्य और आत्मवस्तु है समझने वाला तो वह पुरुष एक है ही । तो उनकी बात सुप्रसिद्ध ही है । वही तो व्यवस्था करने वाला है । किस शब्दसे कौनसा अर्थ जाना गया उसकी व्यवस्था कौन करता है ? यह आत्मा । तो शब्दोंसे अर्थोंका प्रतिबोध किया आत्माने । पर शब्द और अर्थ का परस्परमें क्या सम्बन्ध है । शब्दोंका क्या सकेत बनता है, प्रसंग तो यह था । याने वचनके निमित्तसे अर्थका ज्ञान होता है, चर्चा तो यो चल रही थी ज्ञान करने वाला आत्मा है और आत्मा हितके लिए ही समस्त दर्शनोंकी रचना हुई । वह तो ज्ञात है । वह जिस तरह जानता है । शब्दो द्वारा, पदार्थोंसे । चर्चा तो यह है । इस बीच स्फोटको क्या जरूरत है । तो जब शब्द स्फोटके स्वरूपपर विचार करते हैं तो वह अवस्तुरूप है । वस्तुरूप तो यह दुनिया है । शब्द यो वस्तु हैं वे, भाषावर्गणा जातिके पुद्गल स्कन्धोंके परिणमन हैं । वे वस्तुभूत हैं चीज हैं कुछ । और वे मूर्तिक हैं । कर्णोंमें आते हैं । कर्णोंपर उनका आघात होता है, और उन मूर्त शब्दोंमें जो सकेत बनाया है । बनाया जीवने तो किस सकेतसे कि पदार्थका बोध होता है, बात तो यह कही जा रही है अर्थात् बात तो इन तीन वस्तुवोंमेंसे दो वस्तुवोंकी की जा रही है शब्दवस्तु और अर्थवस्तु । स्फोट अलगसे क्या चीज रही ? कुछ भी नहीं । शब्द उत्पन्न हुये और उनको सुना इस जीवने और इसने उन शब्दोंका सकेत समझा, उन सकेतोंके अनुसार पदार्थोंका ज्ञान किया । तो शब्द हुए और अर्थ हुए । ज्ञाता हुआ यह आत्मा । तो शब्द और अर्थसे अतिरिक्त कुछ तृतीय चीज मानेंगे तो आत्मा मानो । उस ही का नाम यदि स्फोट रखा है तो रख लीजिये कुछ हर्ज नहीं पर उसका तात्पर्य यह होगा कि शब्दको सुनकर बालकर इस जीवने सकेतवश उन शब्दों द्वारा अमुक पदार्थोंका समझा तो वाच्य वाचक सम्बन्ध किसमें रहा ? शब्द और पदार्थमें । जब स्फोट स्वरूप कुछ अलग सिद्ध न हो सका तब यह स्फोट पदार्थके परिज्ञानका कारण है ऐसा कोई बुद्धिमानजन नहीं मान सकते । पदार्थका प्रतिभास का उपादानभूत कारण तो आत्मा है, क्योंकि प्रतिध्वनि है ज्ञानस्वरूप है यह आत्मा ।

तो अर्थ यह हुआ कि आत्माने पदार्थका ज्ञान किया, किन्तु वह ज्ञान किन शब्दोंको सुनकर हुआ। उन शब्दोंमें क्या संकेत भरा पड़ा इसका बोध करनेके लिये कहा गया है कि शब्द वाचक है और अर्थ वाच्य है। इसी कारण आगमके लक्षणमें स्फोट को नहीं माना, किन्तु आप्तके वचन आदिकके कारणसे जो अर्थज्ञान होता है उसको कहते हैं आगम। तो पदार्थोंकी प्रतिपत्तिका कारण स्फोट नहीं हुआ। निमित्त दृष्टि से पदार्थोंकी प्रतिपत्तिका कारण पद अथवा वाक्य ए ऐसा ही समझना चाहिये पदोंसे तो केवल व्यक्तिगत पदार्थ जाने गए। और वाक्योंसे, उस पदार्थके सम्बन्धमें क्या कहा गया है, यो उद्देश्य और विधेय दोनोंकी बात वाक्यसे जानी जाती है तो पदार्थकी प्रतिपत्तिका निबंध पद और वाक्य है। इसीसे यह लक्षण बिल्कुल युक्त है कि आप्तके वचनादिकके निबंधनसे हुए अर्थके ज्ञानको आगम कहते हैं। आप्तके वचन अर्थादिकके संकेतादिकसे जो बना अर्थज्ञान है उसको आगम कहते है। यो पदवाक्य तो अर्थप्रतिपत्तिके कारण हैं स्फोट नहीं।

पद और वाक्यका लक्षण—यहां कोई जिज्ञासु प्रश्न कर रहा है कि फिर वह पद और वाक्य क्या चीज है जिसके कारण अर्थकी प्रतिपत्ति हुआ करती है? इस प्रश्नके उत्तरमें कहते हैं कि पद तो कहलाता है परस्परापेक्ष वर्णोंका निरपेक्ष समुदाय और वाक्य कहलाता है परस्परापेक्ष पदका निरपेक्ष समुदाय। इस लक्षणका भाव यह है कि जैसे कोई वाक्य बोला मैं मन्दिरको जाता हूं—तो इसमें तीन पद हैं मैं, मन्दिरको जाता हू तो एक पद कितना है? जैसे कि "मैं"। तो 'मैं' में दो वर्ण हैं म् और ऐ। इसमें एक अनुस्वार भी है। तो ये दोनों वर्ण परस्पर अपेक्षा रख रहे हैं। सिर्फ म् या ऐ कहनेसे कुछ पदार्थ नहीं आया और 'मैं' के द्वारा क्या समझा गया यह जाननेके लिए दूसरे पदकी अपेक्षा नहीं करनी पड़ी। "मैं" कहते ही मैं का जाना गया। इसमें पदान्तरकी अपेक्षा नहीं पड़ी। जब "मन्दिरको" शब्द बोला तो मन्दिरसे क्या अर्थ है यह समझनेके लिए मन्दिर शब्द बोलना ही काफी है और उसमें जो म् अ न् द् इ र् अ ये जो ७ वर्ण पड़े हैं इन ७ वर्णोंकी अपेक्षाकी तो जरूरत रही मन्दिर शब्दका अर्थ समझनेके लिए, लेकिन अन्य शब्दकी अपेक्षा नहीं होती। मन्दिरका अर्थ जाननेके लिए मन्दिर शब्द ही काफी है। तो पद उसका नाम है कि जो अनेक वर्णोंकी अपेक्षा तो रखे, पर दूसरे पदमें रहने वाले वर्णोंकी अपेक्षा न करे। इसी प्रकार वाक्यको भी देखिये मैं मन्दिरको जाता हूं, यह एक वाक्य है। वहां पूजा करूंगा यह दूसरा वाक्य है। अब मैं मन्दिरको जाता हूं। इतनेका क्या भाव है यह समझनेके लिये तीनो पदोंकी अपेक्षा पड़ती है। यदि उन तीन पदोंमेंसे कोई भी पद कम कर दिया जाय तो वाक्य न बनेगा। जैसे मैं मन्दिरमें, इतनेका क्या अर्थ रहा? मैं जाता हू, इससे पूरा भाव नहीं आया, जो कुछ कहना था। तो जितने शब्दोंके पदोंके बोलनेसे बोलने वालेका पूरा भाव जान लिया जाय, उतनेको वाक्य कहते हैं। मैं मन्दिरको जाता हूं इतना कहनेसे वाक्यका पूरा भाव समझमें आ गया। अब इस वाक्यके भावको समझनेके लिए दूसरे

वाक्यलक्षणमें अभिप्रेत निराकांक्षताकी ज्ञातृधर्मता और भी इस सम्बन्धमें यह समझिये कि निराकांक्षता होना अर्थात् अन्य पद वाक्योंकी अपेक्षा न रखना यह तो ज्ञाताका धर्म है। शब्द तो अचेतन हैं। शब्दोंका धर्म नहीं है इस वाक्योंका धर्म नहीं है कि वह अन्य पद और वाक्यकी अपेक्षा न रखे। वर्णान्तरोंकी अपेक्षा रखे यह भी धर्म नहीं है शब्द और वाक्योंका और अपेक्षा न रखे यह भी धर्म नहीं है शब्द और वाक्योंका। किन्तु यह तो प्रतिपत्ताका धर्म है। चेतनका धर्म है। तो चेतनके इस धर्मका हम वाक्योंमें आरोप करते हैं। तब इसमें वाक्य कितनेमें पूरा हुआ यह समझनेके लिये शब्दोंपर जोर नहीं देना है जितना कि वक्ता श्रोताके शब्दोंके आशयपर जोर देते हैं। सो यदि कोई पुरुष इतने ही शब्दमें अर्थका ज्ञान करता है, तो अन्यकी क्या इच्छा करेगा ? फिर वह अपेक्षा न रखेगा। किसीने इतनेसे ही समझ लिया कि जो सत् है वह सब अपरिणामी हैं उसके लिये इतना ही साधन वाक्य है ? कोई दृष्टान्तको और साथ लेकर समझता है तो उसके लिए उतना साधन वाक्य है। कोई उपनयको भी साथमें लेकर समझता है तो उसके लिए उतना साधन वाक्य है। जैसे जो शंकाकार ने आक्षेपके लिए दृष्टान्त दिया है, साधन वाक्यका प्रयोग किया है कि जो सत् है वह सब परिणामी है जैसे घट और शब्द सत् है इसमें उपनय तक बोला गया है तो कोई पुरुष उपनय तककी ही बात सुनकर भाव समझ जाता है तो किसीको उपनय पर्यन्त साधन वाक्यसे अर्थका ज्ञान हो जाता। इतनेपर आप यदि यह शंका रखते हो कि अभी निगमन वचनकी भी तो अपेक्षा रखी जा रही है तो ऐसी शंका करनेपर हम इसके आगे यह भी कह सकेंगे कि कभी निगमन पर्यन्त पांच अवयव वाले वाक्य बोलनेसे भी अर्थकी प्रतिपत्ति करता है उसमें भी किसी दूसरेकी अपेक्षा करनेका प्रसंग आ जायगा तब फिर किन्हीं भी वचनोंमें निरपेक्षताकी सिद्धि नहीं हो सकती। कितने भी वाक्य बोल लें, साधन वाक्य कह लें कोई इतनेपर भी न समझे तो उसके लिये कह सकते हैं कि अभी इसे समझनेको और कुछकी अपेक्षा पड़ रही है। तब तो कहीं भी, निरपेक्षता और निराकांक्षताकी सिद्धि नहीं हो सकती। और जब कहीं भी कितना ही बोलनेमें निराकांक्षताकी सिद्धि न हुई तब वाक्यका स्वरूप न बना। जब वाक्य भी पद मात्र रहे तो वक्ताके अर्थकी प्रतिपत्ति नहीं हो सकती। तब फिर सारा व्यवहार उपदेश, शास्त्र ये सब व्यर्थ कहलाये। क्योंकि उनमें कुछ ज्ञानकी सिद्धि ही नहीं हो पा रही है।

पद और वाक्यके लक्षणकी समीचीनताका प्रतिपादन पदका और वाक्यका जो इस प्रकरणमें लक्षण कहा है वह बिल्कुल सही समझना चाहिये। जिस पुरुषको जितने परस्परापेक्ष पदोंमें मात्र आकांक्षा और अन्य पदोंकी आकांक्षा न रहे इतने ही पदोंमें वाक्यपनेकी सिद्धि होती है। यह वाक्यका लक्षण दार्शनिक विधिमें और व्यवहार विधिमें उतरने वाला कितना सुन्दर लक्षण है। पद कितनेका नाम है, उतने वर्णोंके समुदायका नाम पद है कि उस पदके द्वारा जो अर्थ कहा जाता है उस

अर्थके जाननेके लिये अन्य वर्णोंकी अपेक्षा न करनी पड़े । एक पदमें जितने वर्ण वाले जाने बिना पदार्थ नहीं जाना जा सकता, लेकिन उसके अतिरिक्त अन्य वर्ण सुनने बोलने जाननेकी जरूरत नहीं रहती । जैसे किसीने कहा तखत लो इतना शब्द सुनते ही तखत पदार्थको बोध हो गया । अब इस पदार्थको जाननेके लिए अन्य वर्णोंकी अपेक्षा तो न रही । और, तखत शब्दमें जितने वर्ण हैं उन सब वर्णोंके बोलने सुननेकी अपेक्षा आवश्यक है । उनमेंसे एक भी वर्ण अलग कर दिया जाय तो तखत पदार्थ न जाना जा सकेगा । जैसे कोई कहे तख, कोई कहे तत, कोई कहे खत । तो इससे पदार्थ तो नहीं जाना गया । तो एक पदमें जितने वर्ण बोलना अपेक्षित है उतने तो बोले ही जायेंगे लेकिन उसमें अन्य पदोंके वर्णका सम्बन्ध न किया जायगा । तो परस्परापेक्षा वर्णोंके निरपेक्ष समुदायको पद कहते हैं और इसी प्रकार परस्परापेक्ष पदोंके निरपेक्ष समुदायको वाक्य कहते हैं । वाक्यके स्वरूपमें जो अभी कहा गया है उस वाक्यकी सिद्धिके प्रसंगमें ही यह भी समझ लेना चाहिए कि किसी प्रकरण आदिकमें जाने गए अन्य पदोंकी अपेक्षा रखने वाले सुननेमें आए हुए निराकांक्ष वर्ण समुदायको वाक्य कहते हैं यह भी प्रतिपादित हुआ जानना चाहिए । जाननेमें प्रकरणगम्य पदान्तरसे अन्य वाक्यके पदकी अपेक्षा न रखनी पड़े, ऐसे पद बोले जायें तो उनमें भी वाक्यपना सिद्ध होता है जैसे प्रकरणमें जाना गया जो कुछ भी जिसका कि सम्बन्ध कुछ अन्य शब्दोंके साथ है तो उसे मिलाकर वाक्यपना बन जाता है ।

वाक्यके अन्य प्रकार कहे गये लक्षणोंपर विचारभूमिका—अब जो वाक्यका लोग दूसरी प्रकारसे लक्षण कहते हैं उनमें यह बतावेंगे कि वे लक्षण या तो घटित नहीं होते और घटित हो जायेंगे तो जो अभी वाक्यका लक्षण कहा गया है उसीमें गर्भित हो जाता है । लोग लक्षण इन नाना प्रकारोंमें करते हैं कोई तो कहते हैं कि आख्यात शब्दका नाम वाक्य है । कोई कहता है कि संघातका नाम वाक्य है । कोई संघातमें रहने वाली जाती को वाक्य कहते है । कोई अनवयव शब्दको वाक्य कहते हैं । कोई क्रमको वाक्य कहते हैं कोई बुद्धिको वाक्य कहते हैं । कोई पुरुष अनुसंहृतिको वाक्य कहते हैं और कोई यह कहते हैं कि पद ही वाक्य, अर्थको समझाता हुआ वाक्य कहलाता है । इस प्रकार अनेक प्रकारसे लोग वाक्यका लक्षण करते है । वे सब लक्षण या तो घटित नहीं होते या पूर्वोक्त लक्षणमें ही गर्भित हो जाते हैं । अब इन लक्षणोंका क्रमसे वर्णन और निराकरण सुनो ।

वाक्यके आख्यात लक्षणपर विचार—आख्यात शब्दको वाक्य माननेवाला पुरुष कहता है कि जो प्रसिद्ध शब्द हैं—भवति, गच्छति आदिक वे ही शब्द वाक्य कहलाते हैं अथवा यों समझ लीजिये कि जो प्रसिद्ध धातुपद हैं उनसे ही अर्थ समझने की प्राप्ति हो जाती इस कारण आख्यात ही वाक्य है, ऐसा कहने वालोंसे पूछा जा

रहा है कि जिसको सुनकर लोग अर्थ समझते हैं वह तुम्हारा आख्यात शब्द पदान्तर की अपेक्षा न रखकर वाक्य होता है या पदान्तरकी अपेक्षा रखकर वाक्य होता है? कोई प्रसिद्ध शब्द बोला गया और उसको तुम कहते हो, तो क्या वह अन्य पदोंकी अपेक्षा रखकर वाक्य बना? यदि कहो कि अन्य पदोंकी अपेक्षा न रखकर वाक्य बन गया, तो वह वाक्य ही न कहलाया, क्योंकि जो अन्य पदोंकी अपेक्षा नहीं रखता वह तो पदमात्र है, वाक्य नहीं है। जैसे मैं मन्दिरको जाता हूँ, इसमें मन्दिरको, यह शब्द बोला तो इसमें जो पदका अर्थ जाना गया उस जाननेमें अब किसी अन्य वर्णोंकी अपेक्षा तो नहीं रही। तो जिसमें अन्य पदोंकी अपेक्षा नहीं रही, उसे तो पद बोला करते हैं अन्यथा अर्थात् आख्यात शब्दको ही वाक्य मान लेवें पदान्तरकी अपेक्षा न रखें तो आख्यात पदका भी अभाव हो जायगा, क्योंकि उस पदसे भी हमने कुछ भाव आशय तो नहीं कर पाया। इससे पदान्तर निरपेक्ष होकर आख्यात शब्द वाक्य नहीं कहला सकते। यदि कहो कि पदान्तरकी अपेक्षा रखकर आख्यात शब्दको वाक्य कहते हैं तो यह बतलावो कि पदान्तरकी अपेक्षा तो रखी और रखते गये, पर कभी यह भी स्थिति होती है कि नहीं कि अन्य पदोंकी फिर अपेक्षाकी जरूरत नहीं रही। अर्थात् कहीं यह निरपेक्ष हो पाता है या नहीं? आख्यात शब्द भी पदान्तरकी अपेक्षा रखे। दो, तीन, चार पदोंकी अपेक्षा रखले, पर कहीं इसका विराम भी होगा या नहीं? ५-७ पदोंकी अपेक्षा करनेके बाद फिर उसे अन्य पदोंकी अपेक्षाकी जरूरत न रहे, यह स्थिति भी आती है या नहीं? यह प्रश्न किया गया। यदि कहो कि वह आख्यात शब्द पदान्तर की अपेक्षा रखकर भी कहीं पदान्तरकी अपेक्षा नहीं रखनी पड़ती है। वहाँ निरपेक्ष हो जाता है, यह पक्ष तो सिद्धसाधन है। हम भी मानते हैं और इसी आधारपर लक्षण बोला गया है कि परस्परापेक्ष पदोंके निरपेक्ष समुदायका नाम वाक्य है, याने कुछ पदोंकी अपेक्षा रहती है और जहाँ तक उनके बोलनेसे भाव आशय पूर्ण आ जाता है फिर अन्य पदोंकी अपेक्षा नहीं रहती। यही इस समय यह शंकाकार भी मान रहा है और यही वाक्यके लक्षणमें कहा गया है। यदि कहो कि आख्यात शब्द पदान्तरकी अपेक्षा रखकर वाक्य बनता है और वह कभी निरपेक्ष हो नहीं पाता तो जब पदान्तर की तो अपेक्षा रखी और कहीं भी निरपेक्ष न बन सका तो प्रकृत अर्थकी फिर समाप्ति ही न हो सकी। तब वाक्यरचना ही नहीं बन सकती। जैसे अर्द्ध वाक्य कोई वाक्य आधा बोला गया तो उससे कोई अर्थ तो नहीं जाना जाता क्योंकि वह अभी निरपेक्ष नहीं बन पाया। तो इसी तरह आप कह रहे हैं कि आख्यात शब्द पदान्तर की अपेक्षा रखते हैं और रखते ही चले जाते हैं, कहीं भी निरपेक्ष नहीं हो पाते, तो सदा अधूरा ही वाक्य रहा। वाक्य पूरा बन ही नहीं सकता। तो जैसे आधा ही वाक्य बोलनेपर उसका कुछ भाव समझमें नहीं आता इसी प्रकार अब कुछ भी बोलते रहनेपर भी जब कहीं निरपेक्षता आती ही नहीं तो उसका अर्थ भी कुछ समझ में नहीं आ सकता। इससे आख्यात शब्दका नाम वाक्य है यह लक्षण युक्त सिद्ध

नहीं होता।

आख्यात लक्षणके विश्लेषणोंका निर्देश—आख्यातके विश्लेषणमें जब विकल्पों द्वारा पूछा गया, एक विकल्प तो सही उतरा कि आख्यात शब्द विषयान्तर अपेक्षा रखता हुआ कहीं निरपेक्ष हो जाता है तो वह वाक्य कहलाता है। तो यह विकल्प वाक्यके लक्षणके अनुरूप ही है। यही बात वाक्यके लक्षणमें कही, यही बात इस विकल्प में मानी जा रही है। इसके अतिरिक्त इस प्रकरणमें जितने अन्य विकल्प बोले गए हैं वे सारे विकल्प लक्षणमें घटित नहीं होते इस कारण आख्यात शब्दका नाम वाक्य है, यह सही नहीं बनता किन्तु परस्परापेक्ष पदोंका निरपेक्ष समुदाय वाक्य है यह ठीक बनता है। क्योंकि जब तक निरपेक्षता नहीं आती तब तक वह वाक्य नहीं कहलाता। जैसे किसीने कहा देवदत्त गायको। अब इतना सुनकर कुछ भाव नहीं समझा गया। यह अधूरा वाक्य है। इसमें अभी कुछ पदोंकी आवश्यकता है। जैसे उसके बाद ही कह दिया जाय—लावो तो वह समझ गया कि देवदत्त गाय को लावो। अब इतना बोलनेके बाद इस भावको समझ लेनेमें किसी भी अन्य पदकी अपेक्षा नहीं करनी पड़ रही। इसमें वाक्यका लक्षण भली भाँति घटित हो गया कि परस्परापेक्ष पदोंके निरपेक्ष समुदायका नाम वाक्य है। वाक्य लक्षणमें दो बातें हैं। जितने पदोंके बोले बिना भाव नहीं आते, उतनेकी तो अपेक्षा रहती है और जितने पदोंके बोलनेसे भाव आ जाता है फिर उसके अन्य पदकी अपेक्षा नहीं रहती। यह बात आख्यात कह कर मानो या अन्य प्रकार, मानना यही पड़ेगा।

वाक्यके संघात लक्षणपर विचार—किन्हींने कहा है कि संघातको वाक्य कहते हैं संघात मायने समूह। तो इस विषयमें भी पूछा जा रहा है कि वह वर्णोंका संघात अथवा पदोंका संघात, क्या देशकृत है अथवा कालकृत है? याने एक स्थानमें वर्ण और पदका समूह हो गया, या कालकृत जो वर्ण हैं इन वर्णोंका समुदाय बन गया। इसमें देशकृत समुदाय तो कह नहीं सकते क्योंकि क्रमसे उत्पन्न होने वाले और ध्वस्त होने वाले वर्णोंका अथवा पदोंका एक ही क्षेत्रमें अवस्थित होने रूपसे समुदाय नहीं बन सकता। एक क्षेत्रमें सब वर्ण एक साथ रह जायें यह कैसे हो सकता क्योंकि वर्ण तो क्रमसे उत्पन्न हुआ करते हैं। यदि कहो कि वर्णोंका समुदाय कालकृत माना है तो पदरूपताको प्राप्त हुए वर्णोंसे यह संघात भिन्न है अथवा नहीं। यहाँ वह पूछा जा रहा है कि यदि कालकृत वर्णोंका संघात है तो वह वर्ण जो पदरूप परिणाम हुआ है उन वर्णोंसे यह संघात कालकृत भिन्न है अथवा अभिन्न? भिन्न और अनन्य तो कह नहीं सकते क्योंकि अभिन्न समुदाय कहीं पड़ा हो और वह निरपेक्ष पड़ा हो, वर्ण अलग हो, ऐसा प्रतीत ही नहीं हो सकता, और भिन्न हैं यदि तो फिर उन का संघात क्या हुआ? जैसे अन्य वर्ण हैं। अन्य पदोंके वर्ण हैं तो उनका संघात तो नहीं हुआ करता। तो यों कालकृत भिन्न संघात मानते हो तो संघातपना उनमें

क्या रहा ? यदि कहो कि संघात उन वर्णोंसे अभिन्न है तो सर्वथा अभिन्न है या कथंचित् अभिन्न है याने जो वर्ण बोले गए उनका जो समुदाय है वह समुदाय वर्णोंसे क्या सर्वथा अभिन्न है या कथंचित् ? यदि कहो कि सर्वथा अभिन्न है तो फिर वह संघात क्या हो सकता है ? संघात के स्वरूपकी तरह । जैसे कि संघात सर्वथा संघाती वर्णोंसे अभिन्न होनेपर भी यदि अलग बात रही तो फिर अभिन्नता क्या यदि संघतियोमे संघात अभिन्न होनेपर भी अलग अलग सत्त्व रखते हैं तो फिर प्रत्येक वर्णमें संघातत्वका प्रसंग आ जायगा । जितने वर्ण हैं वे सभी संघात कहलाये पर एक वर्ण को तो संघात नहीं कह सकते; क्योंकि यो तो एक पदार्थसे भी जुड़े कह बैठो । यदि एक वर्ण नाकर संघात हो गया तो एक व्यक्तिसे हम जाति भी कह बैठे । उसमें क्या विरोध आ जायगा ? यदि कहो कि संघात संघात संघातियोसे कथंचित् अभिन्न है तो यह तो जैन सिद्धान्तमे बात कही गई है । एक वर्णके प्रवर्तमान होनेपर संघात नहीं नष्ट होता इस कारणसे तो भिन्न है और वर्णोंसे भिन्नरूपसे संघात नहीं पाया जाता इस कारणसे अभिन्न है ? और इस तरह जो वाक्यका अर्थ किया गया कि परस्परापेक्ष पदोंका निरपेक्ष समुदाय वाक्य है और पदका लक्षण किया गया था परापेक्ष वर्णोंका निरपेक्ष समुदाय पद है तो यह बात भी तो कथंचित् भिन्न अभिन्न माननेसे व्यवस्थित होती है, क्योंकि प्रत्येक सापेक्ष और निरपेक्ष रूपसे प्राप्त हुए वर्णों से कोलप्रत्यासत्तिरूप संघात कथंचित् वर्णोंसे अभिन्न है व कथंचित् भिन्न है । यों पदोका निरपेक्ष समुदाय वाक्य है इस लक्षणका उल्लंघन न हो सका । वर्णोंका समुदाय वर्णोंसे भिन्न यो है कि जो समुदाय है उसको ही केवल वर्ण नहीं बोलते । और एक वर्ण है उसको समुदाय नहीं बोलते ऐसा समुदाय कथंचित् भिन्न हुआ और सब वर्णोंमे अलग कोई समुदाय पाया जाता हो सो भी बात नहीं है इस कारण समुदाय वर्णोंसे अभिन्न हुआ । तो यों जो साक्षात् है, परस्परापेक्ष हैं और अन्यकी अपेक्षा नहीं रखते उनको वाक्य कहा गया है । तो इसमे भी कोई दोष नहीं आता । इस तरह संघातका नाम वाक्य है, यह लक्षण सही नहीं बैठता ।

संघातवर्तिनी जातिरूप वाक्य लक्षणपर विचार—कोई पुरुष कहता है कि संघातमे रहने वाली जातिका नाम वाक्य है वह भी ठीक नहीं है क्योंकि संघातमें रहने वाली जाति, इससे क्या सिद्ध हुआ कि निरपेक्ष परस्परापेक्ष पदोंके समूहमे जो सदृश परिणमन लक्षण वाली जाति है वह कथंचित उन वर्णोंसे अभिन्न है और उस का नाम इसने वाक्य रखा है । समूहमे रहने वाली जाति । तो कितने समूहमे रहने वाली जितनेसे अर्थ निकलता है । तो यह तो हुआ परस्परापेक्ष और जिससे सम्बन्ध नहीं है, अन्य पदोंकी बात है अन्य वाक्यकी बात है तो उसमे वर्णत्वलक्षणाजाति इस सम्बन्धकी नहीं पायी गई तो इसमे यही तो सिद्ध हुआ कि परस्परापेक्ष और निरपेक्ष जो पद हैं वे वाक्य कहलाते हैं । उस जातिको संघातसे यदि कथंचित भिन्न अभिन्न न मानोगे तो संघात वाक्य है इस विकल्पमें जितने दोष बताये गए थे वे समस्त दोष

इसमें लागू हो जायेंगे।

अनवयव शब्दरूप व क्रमरूप वाक्यलक्षणोंपर विचार— कोई पुरुष कहता है कि एक निरंश शब्दका नाम वाक्य है। शब्दका अर्थ स्फोट यह भी एक कल्पना मात्र है क्योंकि स्फोट प्रमाणभूत ही नहीं हैं, यह बात पहिले बता ही चुके हैं। स्फोट अर्थका प्रतिपादक हैं, ज्ञाता है और वह ज्ञान होता है शब्दो द्वारा इस कारणसे व्यवहारसे शब्द अर्थका प्रतिपादक है। स्फोटका कोई स्वरूप ही सिद्ध नहीं होता। प्रतिपाद्य प्रतिपादककी बात कहना तो दूर है। तो निरवयव स्फोटका नाम वाक्य है, यह भी एक कल्पना मात्र है। कोई पुरुष कहता है कि वर्णोंके क्रमका नाम वाक्य है। एक वर्ण उत्पन्न हुआ फिर द्वितीय वर्ण उत्पन्न हुआ फिर तृतीय वर्ण उत्पन्न हुआ यों जो क्रमसे उत्पन्न हुए वर्णोंका समूह है इसका नाम वाक्य है। तो इस पक्षमे और संघात पक्षमे अन्तर कुछ न आया। क्रमसे उत्पन्न हुए वर्णोंके समूहका नाम वाक्य है इस अभिप्राय का क्रम रूप लक्षण वाक्यसे बनाते हो और संघात वाक्य है इस पक्ष वालेने उत्पन्न हुए वर्णोंके समूहका नाम वाक्य है यों कहा। जो दोष संघात पक्षमे था वही दोष क्रम लक्षण वाले वाक्यमे है इस पक्षमे प्राप्त होता है।

बुद्धिरूप व अनुसंहृतिरूप वाक्यलक्षणपर विचार— कोई पुरुष कहता है कि बुद्धि वाक्य है तो यहाँ यह बतलावो कि बुद्धिको भाव वाक्य कहते हो या द्रव्य वाक्य कहते हो? यदि बुद्धिवाक्य इसका अर्थ यह है कि बुद्धि भाव वाक्य है तो यह तो सिद्ध है। पूर्व पूर्व वर्णोंके ज्ञानमे जिसने बुद्धि- संस्कार प्राप्त किया है ऐसे आत्माके वाक्यके अर्थके ग्रहणमे परिणमे हुये उस आत्माके अन्तिम वर्णके सुननेके बाद जो बुद्धि उत्पन्न होती है जिससे कि वाक्यके अर्थका बोध होता है उस पदात्मक भाव वाक्यको जैनोने भी स्वीकार किया है। वाक्य अभिव्यक्तिके अभिप्रायका अनुसरण करते हैं और तभी वाक्य उतने माने गए हैं जितने शब्दोमे वक्ताके आशयकी पूर्ति हो जाय। तो वाक्य के प्रमाणकी निर्भरता वक्ताके आशयके ऊपर है। इस कारणसे बुद्धिको भाव वाक्य कहना इन लोगोंको भी अभीष्ट है; और, यदि बुद्धिको द्रव्य वाक्य बताते हो तो इसको कौन बुद्धिमान स्वीकार करेगा, क्योंकि इसमे प्रतीतिसे विरोध है। वाक्य अचेतन है और बुद्धि चेतन है। बुद्धि चेतन है तब बुद्धिको द्रव्य कैसे कहा जा सकता है? कोई पुरुष कहता है कि अनुसंहृतिका नाम वाक्य है, याने पदरूपतासे प्राप्त हुये वर्णोंका जो परामर्श है [illegible] उससे जो कुछ विचारका संहार होता है, निर्माण होता है वह अनुसंहृति वाक्य है तो यह भी कहना युक्त नहीं है, क्योंकि पदोंकी अनुसंहृति रूपका, जो कि भाव वाक्य कहना अभीष्ट है। जो परस्परापेक्ष पदोंका निरपेक्ष समुदाय है भाव वाक्य है उस ही का नाम अनुसंहृति है। तो उसका अर्थ यही तो निकला कि उन पदोको सुनकर जो एक बुद्धि बनती है वह वाक्य है। तो यों वाक्य वक्ताके आशयका ही सिद्ध कर रहा है।

पदान्तरापेक्ष किसी पदको व पदार्थ प्रतिपादक पदोको वाक्य लक्षण माननेपर विचार—कोई पुरुष कहता है कि पदान्तरकी अपेक्षा रखने वाला आदि पद अन्तिमपद अथवा अन्य ये सब वाक्य होते हैं—तो यह बात भी वाक्यके लक्षणसे भिन्न नहीं होती। परस्परापेक्ष पदोके निरपेक्ष समुदायको वाक्य बताया है। जो अन्य वाक्यके पदोकी अपेक्षा नही रखते सो इस वाक्यके अर्थमे भी यह बात आयी कि पदान्तरापेक्ष शेष जो पद हैं उनका नाम वाक्य है। यदि परस्परकी अपेक्षा रहित पद को वाक्य कह दिया जायगा तब फिर पदका हो लक्षण न रहेगा, क्योकि दूसरेकी अपेक्षा रहित पदका नाम वाक्य है, तो जितने भी पद हैं वे सारे वाक्य कहलाने लगेंगे उनमे फिर पदत्व कुछ नही रहा, सभी पद वाक्य बन बैठेंगे। कोई पुरुष मानता है कि पद ही पदार्थके प्रतिपादन पूर्वक वाक्यार्थके ज्ञानको बनाते हुए वाक्य नामको प्राप्त होते हैं। उनको भी आखिर वाक्यका लक्षण जो कहा गया था कि परस्परापेक्ष और अन्य निरपेक्षपद समुदायको वाक्य कहते हैं। तो पद ही वाक्योंके अर्थका ज्ञान कराता है इसमे भी वही बात आयी। कितने पद वाक्यके अर्थका ज्ञान कराते हैं कि जितने पद दूसरोको अपेक्षित रहते हैं और अन्यसे अनाकाक्ष रहते हैं। यही बात वाक्यके लक्षणमे कही गयी है। तो यो वाक्यके जो अनेक लक्षण कहे गए हैं उन अनेक लक्षणों में ये लक्षण घटित नही होते और कुछ घटित होते हैं, सो जो वाक्यका लक्षण कहा है उसका ही पोषण करने वाले हैं जैसे कि कहा गया है कि परस्परापेक्ष और वाक्यान्तर के पदोसे निरपेक्ष पदोके समुदायका नाम वाक्य है। इस तरह वाक्यके स्वरूपकी व्यवस्था की।

पदोके द्वारा पदान्तरार्थान्वित अर्थोका अभिधानरूप वाक्यार्थ माननेपर अन्यपदोंकी व्यर्थताका प्रसंग—अब वाक्यसे क्या अर्थ ध्वनित होता है, इसकी चर्चा चलती है कुछ लोग कहते हैं कि पदान्तरोंके अर्थसे सम्बद्ध ही अर्थका पदोंके द्वारा अभिधान होता है। तब ही पदोके अर्थ वाक्यके अर्थका ज्ञान होता है। इसे कहते हैं अन्विताभिधान अर्थात् अन्य पदोके अर्थसे सम्बद्ध होते हुए अर्थका पदोके द्वारा कथन होता है। यद्यपि बात बहुत कुछ ठीक है लेकिन इसमें प्रधानता किसी भी एक पदकी आयी। और वह पद अन्य पदोके अर्थसे अन्वित अर्थका अभिधान करता है। तो यों यदि पदान्तरके अर्थसे सम्बद्ध हुए अर्थका पदोके द्वारा कथन किया जाता है और उससे पदार्थोंकी प्रतिपत्ति होती है तब तो एक देवदत्त पदके ही द्वारा देवदत्तका अर्थ जाना गया जो कि गायको लावो इन पद वाक्य अर्थोंसे युक्त है। तो जब एक ही पदसे अन्य पदोके अर्थोंसे सहित अर्थका कथन हो गया तो शेष पदोका उच्चारण करना व्यर्थ हो जायगा। एक ही पदसे अपने अर्थको कहा तथा अन्य पदोंके अर्थसे सम्बद्ध अर्थको कहा तब तो प्रयोजन एक पदका ही रहा। एक पदके ही द्वारा वे समस्त अर्थ कह दिये गए हैं अथवा प्रथम पदको ही वाक्य कह दिया जायगा। जब एक पद समस्त अर्थोंको कह देता है अर्थात् अन्य पदोके अर्थसे सम्बद्ध अर्थको कह

कह देता है तो एक ही पद वाक्य बन ... पहिला पद बोलते ही सारा अर्थ
अवगत हो गया तो एक ही वाक्यरूप ... हो जायगा। तब जितने भी पद हैं
... वाक्यपना बन जायगा अथवा ... पदार्थ हैं उन सबका वाक्य
अर्थपना बन जायगा। यहाँ शंकाकार कहता ... पदोंका उच्चारण करना
इसलिये व्यर्थ नहीं है कि अविवक्षित पदार्थका ... करनेके लिये अन्य पद कहने
पढते हैं। तो उत्तरमें कहते हैं कि इस तरह उस ... किसी एक पद द्वारा
किया था। अब अन्य पदान्तरोंसे अर्थके व्यवच्छेद ... तो इसका
अर्थ यह हुआ कि उसके अर्थको दुबारा दुहराया गया ... दुहरा करके वाक्य
अर्थकी ... निवृत्ति करायी गई। प्रथम पदका जो अर्थ कह ... क्या कहा गया
था कि द्वितीय आदिक पदार्थोंके जो अर्थ हैं ... था अब
... बात एक ... बन गई। अब द्वितीय आदिक पदों ... बताना यह
तो उनकी आवृत्ति हुई।

स्वकीय पदके अर्थका प्रधानभावसे अवगम माननेपर ... अभि-
धानमें दोषनिराकरणका अभाव—अब शंकाकार कहता है कि ...
पदोंके द्वारा पूर्व और उत्तर पदोंके द्वारा अभिधेय अर्थोंमें सम्बन्धित अ...
प्रधान ... अभिधान होता है अर्थात् वे द्वितीय आदिक पद कहते तो हैं
अपना, किन्तु पूर्व आदिक पहले पदोंके अभिधेय अर्थसे सहित कहते हैं लेकिन
पदका प्रधान भावमें अभिधान करते हैं। उनका अभिधान प्रथम पदसे नहीं होता
कारण यह दोष नहीं है। जो दोष दिया था कि वही पूर्व पदने जाना और फिर
उत्तर पदने भी वही जाना तो एक पुनरावृत्ति हो गई। पुनरावृत्ति यों नहीं होती कि
प्रत्येक पद अपने अभिधेयको प्रधानरूपसे जानता है और जानता है अन्य पदोंके अभि-
धेय अर्थसे युक्त, किन्तु प्रधान और अन्य विधिसे जाननेके कारण यहाँ दोष नहीं है।
उत्तरमें कहते हैं कि तब तो जितने पद हैं उतने ही उसके अर्थ हो गए और वे पदान्तर
के अभिधेय अर्थसे सम्बद्ध हो गए। तो वे सबके सब प्रधानरूपसे जाने जाना चाहिए।
इसी प्रकार जितने पद हैं उतने ही वाक्य हो गए और उतने ही वाक्यके अर्थके ज्ञान
हो गए। तो सभी पद अपने-अपने अर्थको प्रधान भावसे जानते हैं और जानते हैं
पूर्वोत्तर अन्य पदोंके अभिधेय अर्थसे सम्बद्ध होकर। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक
अभिधेयसे पूरा वाक्य समझ लिया।

अन्तिमपदोच्चारणसे अन्विताभिधानकी वाक्यार्थता माननेमें भी
दोषोंका अनिराकरण—अन्तिम पदके उच्चारणसे शेष पूर्व पदोंके द्वारा अभिधेय
अर्थसे सम्बद्ध अन्तिम पदोंके अर्थका ज्ञान होनेमें वाक्यके अर्थका ज्ञान होता है। यह
बात युक्त नहीं है, क्योंकि अन्तिम पदसे ही समस्त पदोंके अभिधेय अर्थसे सहित अर्थ
का ज्ञान होनेसे वाक्यार्थका ज्ञान होता है और प्रथम पदके उच्चारणसे अन्य पदोंके

अभिधेयसे युक्त अपने अर्थका ज्ञान होनेमें व करके अर्थका ज्ञान नहीं हुआ या द्वितीय आदिक पदोंके उच्चारण। समस्त अन्य पदोंके अभिधेयोंसे सम्बद्ध अर्थका ज्ञान होनेसे वाक्यार्थका ज्ञान नहीं हुआ, इसमें क्रमसे कोई कारण नहीं दिख रहा है अर्थात् जब प्रत्येक पद अन्य पदोंके अभिधेयसे सहित अपने अर्थका ज्ञान करता है तो प्रथम पदोंसे ही पूरा वाक्य समझ लिया जायगा। उसमें यह अन्तर नहीं आ सकता कि अमुक अन्तिम पदोंके उच्चारणसे ही वाक्यार्थका ज्ञान होता।

गम्यमान अर्थोंसे ही उच्चार्यमाणकी अन्वितता माननेपर भी दोषों का अनिराकरण — शंकाकार कहता है कि गम्यमान पदान्तरोंके द्वारा उच्चार्यमाण पदोंके द्वारा गम्यमान पदोंके अर्थमें सम्बद्धता होती है। इस तरह यह दोष नहीं आता। शंकाकारका आशय यह है कि यहाँ दो प्रकारके पद हुए और उनका अर्थ हुए – एक तो अभिधीयमान और एक गम्यमान। जिस पदका उच्चारण किया है उस का तो अर्थ है अभिधीयमान और उच्चरित पदसे भिन्न अन्य पदोंका जो अर्थ समझा है वह है गम्यमान पद। उनमें उच्चार्यमाण पदके अर्थका सम्बन्ध है, पर उच्चार्यमान पदके अर्थसे गम्यमान पदके अर्थका सम्बन्ध नहीं है और इसी कारण दोष नहीं लगता। इसपर उत्तरमें पूछते हैं कि पदका अर्थ क्या अभिधीयमान ही हुआ करता है गम्यमान नहीं होता। एक वाक्यमें जैसे ५-६ पद हैं तो उनमें पदका अर्थ गम्यमान भी है अभिधीयमान भी है। किन्हीं पदोंका अर्थ गम्यमान है तो किन्हीं पदोंका अर्थ अभिधीयमान है। उनमेंसे क्या केवल अभिधीयमान ही पदका अर्थ होता है तब फिर अन्यका अभिधान कैसे बने? जब केवल पदका अर्थ गम्यमान नहीं है तो गम्यमान पदसे सम्बद्ध होकर ही तो अन्वितका अभिधान कहलाता है? गम्यमान अर्थ रहा नहीं तो अभिधान भी नहीं बन सकता क्योंकि जो विवक्षित पद है उसके गम्यमान पदान्तरके अभिधेय अर्थ विषय न रहे शंकाकारके इस आशयमें, तब फिर अन्वितका अभिधान सिद्धान्त ही नहीं बन सकता।

पदोंके व्यापारमें अर्थका अभिधान — अब शंकाकार कहता है कि पदोंके व्यापार दो होते हैं — एक अपने अर्थका अभिधान करना, दूसरे पदान्तरोंके अर्थका गमकत्व करनेमें व्यापार करना। अर्थात् पदके दो ही काम हैं — उनके द्वारा अर्थका अभिधान होता है और अर्थ गम्यमान भी होता है। तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो पदार्थोंकी उत्पत्ति दुबारा कैसे न होगी? जब पदका अर्थ अभिधान भी है गम्यमान भी है तो पहिले गम्यमान रूपसे जाना, तो उसके बाद अभिधानरूपसे जाना तो दुबारा जानना हो गया अथवा इसी तरह पहले जाना अभिधानरूपसे। फिर जान लिया गम्यमानरूपसे तो उसमें भी दुबारा प्रतीति हो गयी। तो पुनरावृत्तिका दोष बराबर हो रहा है। अब दोषनिराकरणार्थ शंकाकार कहता है कि पदोंका प्रयोग उन पदोंके अर्थकी उत्पत्तिके लिए है या वाक्योंके अर्थकी उत्पत्तिके लिए है?

शकाकार विकल्प उठा कर अपने दोषोंका परिहार करना चाहता है। पूछ रहे हैं कि पदोंका प्रयोग बुद्धिमान लोग किया करते हैं तो पदोके अर्थके ज्ञानके लिये किया करते हैं या वाक्योके अर्थके ज्ञानके लिये किया करते हैं ? यह तो कह नही सकते कि बोलने वाला जो कुछ बोला करता है पदोका प्रयोग किया करता है वह पदोके अर्थ के ज्ञानके लिये ही करता है। क्योकि पदोके अर्थका ज्ञान करनेसे कोई प्रवृत्ति नही होती। जैसे एक वाक्य है कि देवदत्त गायको लावो। तो इसमे केवल एक पद आप बोलें। 'देवदत्त" बोला। देवदत्त बोलनेसे देवदत्त पुरुषका ज्ञान तो हुआ मगर प्रवृत्ति कुछ नही हुई कि क्या करे ? केवल "गायको" इतना ही कहा तो पदके अर्थका ज्ञान तो हो गया। गायको कहा गया है। किन्तु क्या करना है वह प्रवृत्ति ज्ञात न हो सकी। लावो, इतना भी कह दिया। लावोका अर्थ तो ज्ञात हो गया कि लाना इसे कहते हैं पर किसे लाना है कौन लावे इसकी कुछ प्रवृत्ति न हो सकी। इस कारण पदका प्रयोग केवल पदके अर्थके ज्ञानके लिये होता है यह बात तो अयुक्त है। यदि कहो कि पदका प्रयोग वाक्योके अर्थके ज्ञानके लिये होता है तो सुनो—पद प्रयोगके बाद पदार्थमें उत्पत्ति साक्षात् होती है, यह है वहा पदके बोलनेका व्यापार। बोलेंगे तो पदके अर्थका ज्ञान होता है। शकाकार ही कह रहा है कि पदका प्रयोग यदि वाक्यके अर्थके ज्ञानके लिए है तो पद प्रयोगके बाद तो केवल पदके अर्थका ज्ञान होगा अन्य पदोके अर्थमे गमकपना नही हो सकता। अर्थात् अन्य पदोके अर्थकी प्रतीति करले यह बात नही बन सकती। अब इस शकाके उत्तरमे कहते हैं कि यह कहना भी अयुक्त है। बात तो सही है, पदका प्रयोग करनेसे केवल पदके अर्थका ही बोध हुआ। जैसे वृक्ष' पदका प्रयोग करनेपर सारवादिमान पदार्थका ही बोध हुआ और सारवादिमान पदार्थके ज्ञानसे फिर दूसरा पद जो बोला गया—तिष्ठति—(खडा है)। तो इसका वाक्यार्थ है वृक्ष खडा है, यह सामर्थ्यसे जान लिया कि इस पदमे यह कहा जा रहा है ? पद बोलते समय तो केवल उस ही पदके अर्थका बोध होता है, अन्य पदान्तरके अर्थका बोध नही होता। हर पहिले जाने गए पदके अर्थसे सस्कार रखकर जब दूसरे पदका अर्थ जाना गयातो उसका भाव पूरा आ जाता है। वहापर अन्य पदोके जाननेमे विवक्षित पदका साक्षात् व्यापार नही है। साक्षात् व्यापार तो उस पदके द्वारा उस पदके अर्थके ही जाननेमे है यदि परम्परासे वृक्ष पदका अन्य अर्थमें भी व्यापार मान लो—वृक्ष: तिष्ठति—इसमे दो पद हैं वृक्ष बोलनेसे यदि तिष्ठति, इस पदके अर्थमे भी परम्परया व्यापार मान लिया तब तो साधनके जुटनेसे साध्यकी प्रतिपत्तिमे व्यापार हो गया। तो, यो अनुमान ज्ञान शब्दजन्य ज्ञान बन गया। यह कोई हेतुजन्य ज्ञान नही रहा इसी भाति तो पदका परम्परा दूसरे अर्थके पदका भी व्यापार मान रहे हैं। जब साधन वाचक शब्दसे साध्यकी प्रतिपत्ति मे परम्परया व्यापार हो गया फिर शब्दजन्य ज्ञान वह कहलाया क्योकि साधनके वचनमात्रसे साध्यकी प्रतिपत्ति हो गई। इसमे अनुमान नामक ज्ञान कुछ नही रहा।

समाप्तकर निष्कर्ष यह निकला कि शब्द अर्थका प्रतिपादक तो नही है किन्तु जानने वाले ज्ञानी पुरुष इसको प्रतिपादन किया करते है। यदि कहो कि पदके अर्थमे उत्पन्न हुआ ज्ञान वाक्यके अर्थका निश्चय करने वाला होता है अर्थात् पदमे ज्ञान तो किया गया उस पदके अर्थ में उत्पन्न हुआ किन्तु उससे जान लिया गया समूचेका अर्थ। तो इसके उत्तरमे कहते हैं कि फिर तो चक्षुरिन्द्रियके द्वारा रूप ज्ञान उत्पन्न हुआ, वह रूप ज्ञान गंध ज्ञानका भी निश्चय करने वाले क्यो नही हो जाते ? यदि कहो कि यह चक्षु इन्द्रिय गंधादिकका साक्षात्कार नही करा सकता इस कारण यह दोष न बनेगा कि चक्षु इन्द्रियमे उत्पन्न जो रूपादिक ज्ञान है वे गंधका निश्चय करने वाले क्यो नही होते ? यह दोष नहीं आता। तो उत्तरमें पूछते हैं कि फिर तो पदके द्वारा उत्पन्न हुए पदके अर्थका अध्यवसायी निश्चय करने वाला पदको कैसे कह सकते हैं ? जैसे चक्षु इन्द्रिय गंधके ज्ञानमे समर्थ नही इसी प्रकार पद भी वाक्यके अर्थका सम्बन्ध निश्चय करनेमे समर्थ नही हो सकता। तो इस तरह जब एक पद अन्य पदोका प्रतिपादन नही करता तो अन्विताभिधान नही बन सकता याने केवल पदान्तर पदोसे सहित अपने अर्थका प्रतिपादन पद करता है यह सिद्धान्त सही नही बैठता।

अभिहितान्वयरूप वाक्यार्थपर विचार अब भट्ट मतका अनुयायी शंकाकार कह रहा है कि अभिहितान्वय वाक्यका अर्थ है अर्थात् पदोके द्वारा जो पदार्थ कहे गये हैं उनका तो नाम है अभिहित, मायने कहा गया वह कहा गया अर्थ अन्वयरूपमे जो लगता है बस उन्हीका नाम वाक्यका अर्थ है। उत्तरमें कहते हैं कि अभिहितान्वयमे बात यह कही कि अभिहितोसे अन्वय किया जाता है, सम्बन्ध बनाया जाता है। जैसे किसी वाक्यमें ५ पद हैं तो उन ५ पदोके अर्थ हुए अब उन अर्थोका परस्पर अन्वय मिलाना उसके मायने हैं अभिहितान्वय। इसके उत्तरमे पूछा जा रहा है कि इन पदोके द्वारा जो अर्थ कहा गया है वह शब्दान्तरसे जोडा जाता है या बुद्धिसे जोडा जाता है ? इसमें दो विकल्प ये किए गए कि उन अभिहित अर्थोका जो सम्बन्ध बनाया गया है वह किसी अन्य शब्दसे बनाया गया है या अपनी बुद्धिसे बनाया गया है। इनसे पहिला पक्ष तो युक्त नही है कि पदोके द्वारा कहा गया अर्थ शब्दान्तरसे अन्वित होता है क्यो अन्य शब्दमे इन समस्त पदोके अर्थके विषयका ऐसा सम्बन्ध नही है कि वह अभिहित पदार्थोके अन्वयका कारण बन सके। एक पदान्तरसे समस्त पदोके अर्थका ज्ञान होने लगे तो सम्बन्ध प्रतिपत्ति कहा जाय। पर न तो किसी पदान्तरसे पदोका ज्ञान हो सकता, फिर विषय ही नही। याने जिस किसी वाक्यमे ५ पद हैं—अब ५ पदोके अर्थका सम्बन्ध मिलानेके लिए कोई अन्य शब्द बोला तो अन्य शब्दका उसमें क्या रखना। वाक्यमे जितने पद हैं उतने ही पदोका वाक्यार्थ बनेगा। शब्दान्तरका विषय नही है कि उस वाक्यमें पदोके द्वारा कहे गये अर्थका अन्वय बना सके। यदि कहो कि उन अभिहितोका अन्वय पदोसे होता है तो इसके मायने यह हुआ कि बुद्धि ही वाक्य है, क्योकि बुद्धिसे ही वाक्यार्थकी प्रतिपत्ति हुई। पदोने वाक्यार्थ नही बताया और वाक्य

के लक्षणमें बुद्धिका सम्बन्ध अधिक है बुद्धि ही वाक्य कहलाये यह बात तो भली है क्योंकि जितने पदोंसे उसका भाव समझमें आया उतने पदोका नाम एक वाक्य कहलाता है। तो समझके अनुसार ही तो वाक्यकी सीमा बनी। तो ठीक है, पर पद ही तो वाक्यार्थ न बनेगा।

परम्परया पदोसे वाक्यार्थविगम माननेमें दोष निरूपण—अब शंकाकार कहता है जिसका कि यह पक्ष रहा कि पद वाक्यार्थ कहा करते है। शंकाकार कहता है कि अपेक्षा की बुद्धि रखकर परस्पर सम्बन्धित पदोंके अर्थसे वाक्यके अर्थका ज्ञान होता है। हुआ तो पदोंके अर्थसे वाक्यके अर्थका ज्ञान। परम्परया उनके पदोंसे सम्बन्ध है इस कारण परम्परया पदोंसे वाक्यार्थकी प्रतिपत्ति हुई तब पदोंसे भिन्न कोई वाक्य न रहा। पदोंका समुदाय ही वाक्य रहा तो उत्तरमें पूछते है कि इस प्रकार तो प्रकृति प्रत्ययसे भिन्न कोई पद हो न रहेगा। प्रकृति कहते है प्रत्ययविहीन शब्दको। जैसे रामने। यह तो हुआ शब्द और "राम" यह हुआ प्रकृति याने जो मौलिक शब्द है, जिसमें प्रत्यय जोडकर पद बना देते है उस पदमेंसे विभक्ति हटा दी जाय तो केवल प्रकृति कहलाती है। प्रकृतिमें प्रत्यय मिलता है तब उसका नाम पद कहलाता है। तब प्रकृतिसे भिन्न पद भी कुछ न रहा। क्योंकि पदसे अर्थ जाना जायगा पर उसमें मूल तो प्रकृति काम कर रही है। जो मौलिक शब्द है प्रकृतिका अर्थ यहा शब्द नही किन्तु प्रत्यय लगनेसे पहिले शब्दकी जो सकल होती है साधारणतया उसका नाम है प्रकृति। तो पदार्थोंसे वाक्यार्थ जाना गया इससे परम्परया पदका कारण मानकर पदोसे वाक्यार्थ समझना और पदसे भिन्न वाक्य कुछ नही, यह मानना है तब फिर प्रकृतिसे भिन्न पद भी कुछ नही है क्योंकि सम्बन्धित प्रकृतियोंके कहनेपर अथवा कही हुई प्रकृतियोंके सम्बन्ध बनानेमे पदार्थकी प्रतिपत्ति हो जाया करती है तब फिर प्रकृति ही पद कहलायी। तो जैसे प्रकृतिका नाम पद नही है प्रकृति एक आधारभूत मौलिक शब्द है और प्रत्यय मिलाकर उसका पद बनता है तो इसी प्रकार पदमें वाक्यार्थ नही जाना गया। पद अर्थसे वाक्यका अर्थ नही जाना गया।

पदकी प्रयोग हनासे वाक्यकी अर्थावगमाहेताकी प्रसिद्धि शंकाकार कहता है कि पद ही लोकमें और शास्त्रोंमें अर्थकी प्रतिपत्तिके लिये प्रयोगके योग्य हैं। वे प्रकृति या केवल प्रत्यय अर्थकी प्रतिपत्तिमें समर्थ नही है और अर्थज्ञानके लिये केवल प्रकृति या प्रत्ययका प्रयोग किया जाता है। प्रकृति तो अभिधान प्रत्यय पृथक् करके फिर बुद्धिकी निर्वृत्तिके लिए जिस किसी प्रकार प्रकृतिका कथन हुआ करता है। जैसे पूछा कि गौ शब्दमें क्या शब्द है? पद मात्रक शब्द एक क्या है? तो उत्तर दिया गया कि गौ ये भिन्न य शब्द है गौ म, तो जैसे वर्ण अनन्त है और केवल कल्पनामात्रमें भेद है अथवा इसी प्रकार गौ यह पद भी अनन्त है गौ रहना।

मात्रसे उनमे भेद है और ऐसा ये निरंश पद अपने अर्थके ज्ञानके निमित्त बताये जाते हैं। निश्चित किए जाते हैं। तो इसमे यह मालूम हुआ कि पद ही प्रयोगके योग्य होते हैं केवल प्रकृति या केवल प्रत्यय अर्थ ज्ञानके लिए समर्थ नही हैं। जैसे कोई भी वाक्य आप बोलें कुम्हारने मिट्टीका घडा बनाया, यह एक ही वाक्य बोला। अब इसमे प्रत्यय न बोलें कुम्हार, मिट्टी, घडा आदि बोला तो इसका क्या अर्थ निकला? जब तक उसमे प्रत्यय न जोडा जाय, विभक्ति न लगाई जाय तब तक इस का कोई अर्थ नही बन सकता। तो विभक्ति सहितका नाम है प्रत्यय। और यदि कहा गया—'ने, से, को' तो इसका भी अर्थ लोग क्या समझेंगे? तो अर्थज्ञान करने के लिये पद प्रयोगके योग्य होते हैं न केवल प्रकृति और न केवल प्रत्यय प्रयोगके योग्य है। और वे वर्ण निरंश हैं। इसी प्रकार पद भी निरंश है। लेकिन जैसे वर्णों में मात्रा भेदकी कल्पना की गई है ह्रस्व है। दीर्घ है। उदात्त है आदिक इसी प्रकार पदमे भी वाक्यार्थके ज्ञान करानेके लिये उसमे भी भेदकी कल्पना की जाती है। यो शकाकार कह रहा है उत्तरमे कहते हैं - तो ठीक है, इसमे तो वाक्यकी ही तात्त्विकता प्रसिद्ध हुई याने अर्थज्ञान वाक्यसे हुआ केवल पदमे नही हुआ। जैसे तुम कह रहे हो कि केवल प्रकृतिसे अर्थज्ञान नही होता केवल प्रत्ययसे अर्थज्ञान नही होता तो यह भी कहो कि केवल पदसे अर्थका ज्ञान नही होता। वक्ता क्या कहना चाहता है उस अभिप्रायका बोध केवल पदोंसे नही हो सकता तब तात्त्विक चीज क्या रही? वाक्य। वाक्यसे ही व्यवहार है। वाक्यसे ही समझ है। तो तात्त्विकता वाक्यमे रही। और उस वाक्यकी उत्पत्तिके लिए वाक्यसे पृथक कर करके पदोका उपदेश किया गया है। वैसे तो लोकमे और शास्त्रमे अर्थका ज्ञान करानेके लिए वाक्य ही प्रयोगके योग्य हैं जैसे शकाकारने कहा था कुम्हारने घडेको मिट्टीसे बनाया ऐसा पूरा पूरा पद बोला जायगा तब अर्थ आयगा। केवल कुम्हार, मिट्टी, घडा, इससे अर्थ न बनेगा "नेसेको आदिकसे" न बचा तो कुछ और स्पष्ट कर रहे हैं कि पदोमे भी अर्थ ज्ञान नही बनता। कोई कहे - कुम्हारने - बस क्या अर्थ समझा? अथवा कोई कहे घडेको। तो उससे भी क्या अर्थ समझेंगे? अर्थ तो समझा जायगा वाक्यसे। तो वाक्य ही लोकमे और शास्त्रमे अर्थका ज्ञान करानेके लिए प्रयोगके योग्य हैं। कहा भी है अन्य जनोने कि पद दो प्रकारके होते हैं—सुबन्त और एक तिङन्त। मायने एक तो क्रिया सम्बन्धी और एक शब्द सम्बन्धी। इस तरहसे पदका भेद भाव किया गया है कल्पना में करके। अथवा पद ४ तरहके होते हैं — नाम आख्यात, निपात और कर्म प्रवचनीय। अथवा ५ तरहके होते हैं इन्ही ४ मेसे एक उपसर्ग और जोड दीजिए, उपसर्ग पद होता है।

अभिहितान्वयवादके विवादका निष्कर्ष—भैया! पदोको वाक्योसे पृथक करके यह बताया गया है जैसे प्रकृति प्रत्यय अर्थाविगममे असमर्थ है। चीज तो है असलमे पद। अब उन पदोमेसे विभक्तिको पृथक करके बताया जायगा तो उसमे

प्रकृति जानी जायगी। ठीक है पर उससे यही तो सिद्ध हुआ कि प्रकृति आदिक अवयवोंसे कथञ्चित् भिन्न और कथञ्चित् अभिन्न पद हुआ करता है। कैसे? पद प्रकृति नही होती। पद कहते है प्रत्यय मिली हुई प्रकृतिको। प्रकृति कहते हैं प्रत्ययरहित शब्द को। तब पदका नाम प्रकृति नही है। पद है सो प्रकृति नही है। पदका स्वरूप न्यारा है प्रकृतिका स्वरूप न्यारा है। इस तरहसे जब पद और प्रकृति परस्परमे भिन्न भिन्न हुए तो कथञ्चित् भिन्न कहलाये पर समुदा रूप ही तो हैं पदमे। प्रकृति अलग हो, प्रत्यय अलग हो सो नही। वह समुदित चीज है अतएव प्रकृति आदिक अवयवोंसे पद अभिन्न हैं इस तरह समझना चाहिये, पर पद सर्वथा अनश हो वर्णोंकी तरह सो बात नही। जैसे निरश कोई वर्ण नही, निरश वर्णका कोई ग्राहक प्रमाण नही। तो क्या अर्थ हुआ कि पद होते हैं और उनसे पदोका अर्थ मात्र जाना जाता है वाक्यार्थ पदोसे नही जाना गया। वाक्यका अर्थ पूरे वाक्यसे ही समझा जायगा। इसी तरह वाक्य भी पदोमे कथञ्चित् भिन्न है और कथञ्चित् अभिन्न है। अभिन्न तो यो है कि पद ही वाक्य न कहलाया। इसलिए तो भिन्न है, अभिन्न यो है कि समुदित पदोका नाम ही वाक्य कहलाता है पदोसे भिन्न वाक्य नही हैं और वे वाक्य दो प्रकारके होते द्रव्य वाक्य भाव वाक्य। जो वचनात्मक हैं वे तो द्रव्यवाक्य हैं और जो बोधात्मक हैं वह भाववाक्य है। इसी प्रकार यह सब कुछ जो वाक्यका लक्षण किया गया था उस से प्रथक नही है। वाक्यका लक्षण है कि परस्परापेक्ष पदोका निरपेक्ष समुदाय वाक्य कहलाता है। एक कोई भाव समझनेमे जितने पदोकी अपेक्षा चाहिए उतने पदोकी तो अपेक्षा होती है और उससे अर्थ ध्वनित होगया तो अन्य किसी भी पदकी कुछ आकाक्षा नही रहती है। वाक्यका लक्षण माननेके लिये उसका यह लक्षण निर्दोष है कि परस्परापेक्ष पदोका अनर्थक समुदाय वाक्य कहलाता है।

आगम प्रमाणके लक्षणसे सम्बन्धित विरोधोकी समीक्षा – इस अन्तिम सूत्रमे आगमका लक्षण बताने वाले सूत्रमे जो यह कहा गया कि आप्तके वचन आदिकके कारणसे जो अर्थज्ञान होता है उसे आगम कहते हैं। आप्त है कोई सर्वज्ञ है, क्योकि जब रागादिक अज्ञान औपाधिक हैं और कही कम कही और कम इस तरह पाये जाते हैं उससे सिद्ध है कि कही बिल्कुल भी नही है। जब स्वभावभूत ज्ञान कही अधिक कहीं और अधिक विकसित पाया जाता है तो यह भी ज्ञात होता है कि किसी आत्मा मे पूर्ण विकसित ज्ञान होता है। जिसमे परिपूर्ण ज्ञान विकसित हुआ, रागादिक भावों का लेशमात्र भी न रहा हो उस आत्माको आप्त कहते हैं। इसके बाद वचनसिद्धि की है। वचन पौरुषेय होते हैं अपौरुषेय नही। फिर वचन वाचक होते हैं और अर्थ वाच्य हुआ करता है। इस सम्बन्धमे अभी बहुत कुछ वर्णन हुआ है। इसके विरोधमे जो यह कहा था कि शब्द वाचक नही हुआ करते किन्तु स्फोट वाचक होते हैं अथवा जो कहते थे कि पदार्थ वाच्य नही होता, किन्तु अन्यापोह वाच्य होता है उस सब पर ही विचार किया गया है। अब यहा अर्थज्ञान किस आप्त पुरुषकी बात चल रही है कि

अर्थज्ञान किस प्रकारका होता है ? तो निष्कर्ष यह निकला कि अर्थज्ञान वाक्यसे होता वाक्यका जो अर्थ है उसका ज्ञान होना इसमें व्यवहार लोकमें भी चलता है और शास्त्र में भी प्रतीति होती है और प्रवृत्ति निवृत्ति भी वाच्यार्थसे हुआ करती है तो कोई पुरुष कहता है कि वाक्यका अर्थ है पर्यवसान अभिधान, जो एक पदान्तर पदोंके अर्थसे अन्वित अपने अर्थको बना देता है, वही वाक्यार्थ है। तो यह पक्ष भी सबल नहीं रहा, कोई कहते हैं कि अभिहितान्वय सारे पदोंके द्वारा जो अर्थ कहे गए हैं उनका परस्परमें सम्बन्ध जोड़ देना। किन्तु इसमें यह भी कुछ यथार्थ न रहा। तो बात हुई यह कि पदार्थ ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे और वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे जो अर्थोपयोग होता है पदोंका अर्थ समझकर उसकी धारणा करके अन्य पदोंका अर्थ जानकर पूर्व पदोंके अवधारित अर्थसे संस्कृत पुरुष अन्तिम पदका अर्थ समझने ही सब भाव समझ जाता है और इस से भी वाक्यार्थका परिज्ञान होता है। यों आगमके लक्षणमें कहे गए एक-एक शब्दोंका विश्लेषण करके सिद्ध कर दिया गया कि आप्तवचनादिकके कारण उत्पन्न हुए अर्थज्ञानको आगम कहते हैं।

तृतीय परिच्छेदमें परोक्षज्ञानोंका विवरण—इस प्रकरणमें इस परिच्छेद में परोक्षज्ञानका स्वरूप कहा गया है। परोक्षज्ञान ५ प्रकारके होते हैं—स्मृति, प्रत्यभिज्ञान तर्क अनुमान और आगम। स्मृति तो संस्कारके जागनेसे किसी पदार्थमें वह है इस प्रकार वाला जो ज्ञान है वह स्मरणज्ञान है। और प्रत्यक्ष व स्मरणके कारण से प्रत्यक्ष और स्मरणके बीच एक जुड़ने वाला ज्ञान प्रत्यभिज्ञान कहलाता है। जैसे यह वही है यह उसके समान है यह उससे बड़ा है आदिक। तर्क किसी सम्बन्धके बारेमें ऊहापोह करना सो तर्कज्ञान है। तर्कज्ञानका सम्बन्ध और उपयोगिता अनुमान ज्ञानके लिए होती है। तर्कमें साध्य साधनका अविनाभाव जाना जाता है। फिर कहा है अनुमान ज्ञानको। साधन साधनसे देखकर साध्यका ज्ञान करना अनुमान प्रमाण है। इतने विस्तृत विवेचनके बाद फिर कहा आगम ज्ञान। शास्त्रमें जो अर्थज्ञान किया जाता है अर्थात् गुणवान पुरुषके वचनोंमें जो अर्थज्ञान होता है वह आगम है। इस प्रकार पाँचों ही ज्ञान अविशद हैं। प्रत्यक्षकी भांति साव्यवहारिक प्रत्यक्षकी भांति भी स्पष्ट नहीं है। अविशद होनेके कारण यह ज्ञान परोक्षज्ञान कहलाता है। इस ग्रन्थमें सर्वप्रथम प्रमाणका वर्णन किया। प्रमाणका लक्षण करना यों आवश्यक समझा कि वस्तुस्वरूपकी परीक्षा प्रमाण बिना नहीं है तो इसलिए वस्तुस्वरूपकी सच्चाई और झूठेके परिज्ञानके लिए प्रमाणका लक्षण बताना अति आवश्यक है। तो वह प्रमाण है ज्ञानरूप। स्वयं अचेतन पदार्थोंका समुदायरूप नहीं। उस ज्ञानरूप प्रमाणके दो भेद किए गये—प्रत्यक्ष और परोक्ष। ज्ञानरूप प्रमाणके साधन भी बताये गए। किस तरह ज्ञान प्रमाण बनता है। उसके अन्तरंग बहिरंग साधन क्या हैं ? ऐसे अवधारित ज्ञान के दो भेद किए प्रत्यक्ष और परोक्ष। दार्शनिक विधिसे प्रत्यक्षके मूल दो भेद हैं—साव्यवहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक प्रत्यक्ष। जो केवल व्यवहारमें ही विशद कह-